GL SANS 294.5926 SMR V.2 C.1 ancinemental personatives री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी 125100 LBSNAA Academy of Administration nonnemocracia con nonnemocracia cineracia cine मसूरो MUSSOORIE पुस्तकालय LIBRARY अवाप्ति संख्या Accession No. Sans वर्ग सख्या Class No.

पूस्तक संख्या Book No.



गुरुमण्डल प्रन्थमालायाः नवमम्पुष्पम् :---

# स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रगीत—धर्मशास्त्रसंप्रहः पराशरादिच गुष्टयस्मृत्यात्मकः

द्वितीयो सामः
"भ्रुतिन्तु वेदोबिक्केयो धर्मशासन्तु वैस्प्रतिः"
मनसुसराय मीर

भ, क्वाइव री,
कलकता।

सम्बत् २००९ ]

सिन् १९५२

मुद्रक :---

रुलियाराम गुप्ता दि बङ्गाल प्रिटिंग वर्क्स,

१, सीनागाग स्ट्रीट,

कलकत्ता-१।

#### श्रीगणेशाय नमः।

गुरुमण्डल प्रत्थमालायाः नवमम्युष्पम् :—

## स्मृति-सन्दर्भः

श्रीमन्महर्षिप्रणीत—धर्मशास्त्रमंग्रहः पराशरादि चतुष्टयस्मृत्यात्मकः

## दितीयो मागः

श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपति पीठत्रयम्भैरवम् ; सिद्धौषं वदुकत्रयम्पद्युगं दृतीक्रमं मण्डलम् । वीरान्द्वन्यत्र चतुष्क पष्टिनवकं वीरावली पश्चकम् , श्रीमन्मालिनिमन्त्रराजसिद्दनं वन्देगुरोर्मण्डलम् ॥

प, क्लाइव रो,

कलकता ।

वेक्रमाब्दः २००६ प्रथमं संस्करणम् ५००० ख्रेस्ताब्दः १६४२ 赐

#### Gurumandal Series No. IX

## THE SMRITI SANDARRHA

COLLECTION OF THE FOUR DHARMASHASTRIC TEXTS BY MAHARSHIES.

Volume II

125100

5. Clive Row. CALCUTTA.

2009.

Vikram Era First Edition 5000.

Christian Era 1952.

#### ॥ श्रीगणेशाय नमः ॥

## अथ स्मृतिसन्दर्भस्य द्वितीयभागस्थ मुद्रितस्मृतीनां नामनिदेंशः।

	म्मृतिनामानि	पृष्ठाङ्काः
११	पराशरस्मृतिः	 ६२५
१२	बृहत्परा <b>शरस्मृ</b> तिः	 ६८२
१३	लघुहारीत <del>रमृ</del> तिः	 ४७३
88	वृद्धहारीतस्पृतिः	 833

मुद्रा करकाराघातकातरा कापि भारती। करुणाईकरस्पर्यः मुधियः सान्त्वयन्तु ताम्।।१।। स्मृतिवचनमयेऽस्मिन् मंग्रहेचदशुद्धिः। सद्य हृदयमद्भिः शोधनीया महद्भिः।। प्रभवतु परितुष्टिः सर्वथाऽ लोकनेन। मिलितकरयुगाभ्यां याचये श्रीमहेशः।।२।।

> इतिविदुषामनुचरस्य— श्रीमहेश्वरमिश्रस्य ( मैथिल्प्स्य )

#### ।। श्रीगणेशाय नमः ॥

## स्मृतिसन्द्रभे द्वितीयभाग की विषय-सूची

#### पराशरस्पृति के प्रधान विषय ।

अध्याय

प्रधानविषय

पृष्ठाङ्क

वर्तमान किलयुग में पराशर म्मृति का मुख्य स्थान माना गया है। पराशर संहिता दो उपलब्ध हैं पराशरस्मृति और बृहत्पराशर। पराशर स्मृति में द्वादश अध्याय हैं, बृहत्पराशर में भी उतनी ही। प्रथमाध्याय में दोनों स्मृतियों में एक जैमा वर्णन "कलीपाराशरीस्मृता" दूसरे अध्याय से बृहत्पराशर में कुछ विशेष बात और विचार वर्णन किया है। पराशरस्मृति किस देश विशेष, संप्रदाय विशेष, जाति विशेष को लेकर धर्माख्या नहीं करती है, अप तु मनुष्यमात्र का पथ-प्रदर्शित यह स्मृति करती है। इसके प्रारम्भ में मृषियों ने इस प्रकार प्रशन किया।

#### प्रधानविषय

पष्ठाङ्क

#### १ धर्मीपदेशं तल्लक्षणवर्णनश्च-

६२५

"मानुपाणां हितं धर्मं वर्तमाने कलायुगे शोचाचारं यथावच्च वद सन्यवतीसुत !"

वतमान कलियुग में मनुष्यमात्र का हित जिससे हो वह धर्म कहिए और ठीक-ठीक रीति से शौचाचार की रीति भी वतला दीजिये-मृपियों के प्रश्न करने पर व्यासजी ने उत्तर दिया कि कलियुग के सार्वभौम धर्म के विकाश करने में अपने पिता पराशरजी की प्रतिभा शक्ति की सामर्थ्य कही यतः पराशरजी निरन्तर एकान्त बद्रिकाश्रम की तपोभूमि में आसीन हैं। तपोमय भूमि में तपस्याम्पी साधन के विना कलियुग के धर्म, ज्यवहार, मर्यादा पद्धति का पर्पदीकरण अवैध सुचित किया ऋषियों ने इस वात पर विचार किया कि कलियुग के मन्ष्य किसी धर्म मर्यादा की पर्षद् बुलाने की क्षमता नहीं रख सकते हैं यावत तपोमय जीवन से इन्द्रियों की उपरामता न हो जाय यतः इन्द्रिय भोग विलासिता के जीवनवाले वेद शास्त्रपारंगता प्राप्त करने पर भी धर्म, न्याय विधिको नहां बना सकते हैं। अतः विधि, नियम रूपी धर्म व्यवहार के लिये १ तपस्या तथा वनस्थली में राग, हेप, मल प्रश्लालनाथ ६२६ निवास करना परमावश्यक है। पराशरजी के आश्रम पर व्यास प्रमुख सब ऋषि गये पराशरजी ने मानवीय सदाचार द्वारा आश्रम में आये हुये सब का स्वागत किया। व्यासजी ने पितृभक्ति से पराशरजी को प्रणाम कर निवेदन किया:—

"यदि जानामि मे भक्ति स्नेहाद्वा भक्तवत्सल ? धर्म कथय मे तात ! अनुप्राद्योद्ययं तव" ॥

(पुत्र पिता से मर्वोच वस्तु क्या चाहता है यह समुदा-चार इस प्रश्न से सरलता से ज्ञान हो रहा है ) त्यासजी कहते हैं कि भगवन ! यदि मेरी भक्ति को आप जानते हैं या मेरे स्नेह को तो मुक्ते धर्मका उपदेश की जिये जिससे में आपका अनुगृतीत हो कंगा । पुत्र पिता से सबसे वड़ा धन धर्म मांगता है यह भारत की संस्कृति है (एक ओर व्यासजी की पिता की निधि धर्म जिज्ञासा, दूसरी ओर संसार में देखों पंतृक धन संपत्ति पर न्याया-लयों में पुत्र पिता पर अभियोग चलाते हैं) इससे सांस्कृतिक जीवन, अमांस्कृतिक जीवन का सरलता से ज्ञान हो जायगा। संस्कृति उसे कहते हैं जिससे धर्म

का ज्ञान माता, पिता, गुरु, बन्ध्जनों को पूज्य व्यवहार ६२६ ٤ की मर्यादामय प्रकृति होजाय। ब्यामजी ने विनम्न जिज्ञामा की—मनु, विसष्ठ, कश्यप, गर्ग, गौतम, उशना, हारीतः याज्ञवल्कयः कात्यायनः प्रचेताः आपस्तम्बः, शंखः, लिखित आदि धर्मशास्त्र प्रणेताओं के धम निवन्ध सुनने पर भी वर्तमान कलियुग को धर्म-मर्यादा वनाने में अपने को असमर्थ समस्कर आपके पास इन ऋषियों के साथ आया हूं कलियूग में धर्म को नष्ट्रपाय देख रहा हूं ! अतः आपका नपामय जीवन ही इस युग धम की व्यवस्था दे सकता है, इसपर व्यामजी ने (१६-२६) तक यूग चतुष्ट्य की व्यवस्था धर्म मर्याद्रा का तारतस्य बनाया है। (२६) में दान के प्रकरण में सेवा दान दान नहीं है वह सेवा का मृल्य है। मत्ययूग में अस्थि में प्राण रहते थे. त्रेता में मांस में द्वापर में रुधिर में और कल्यिंग में अन्न में प्राण रहते हैं (३०)। इस कारण दीर्घ समय तक तपम्या की क्षमता कलियुग के जीवन में नहीं है और अन्न की सावधानी पर ध्यान दिलाया जैसा अन्न खायगा उसी प्रकार उसके जीवन की सम्पूर्ण घटना होगी। कलियुग के जीवन की प्रवृत्ति बनाकर आचार पर ध्यान दिलाया हें (३१-३७)।

#### प्रधान विषय आचार धर्मवर्णनम्—

वृष्ठाङ्क

६२६

१ "आचार अष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्ग्रुख"।

व्यासजी ने अपना सिद्धान्त स्पष्ट किया है कि यदि सतुष्य आचार से च्युत है तो उसे धर्मपराङ्मुख समफना चाहिए। सदाचार विह्ति धर्म मर्यादा को नहीं जान सकता है।

"सन्ध्यास्नानं जपो होम स्वाध्यायो देवतार्चनम् । वैश्वदेवातिथेयश्च पट्कमीणि दिने दिने ॥ (३६) पट्कमीभरतो निन्यं देवताऽतिथिपूजकः । हुतशेपन्तु भुञ्जानो बाह्मणो नावसीदित" ॥ (३८)

पट् कम का निरूपण, गृहम्थी को अतिथि का सत्कार परमावश्यक हैं वेश्वदेव कर्मादि का निरूपण और अतिथि का स्क्षण (३८-४८)। राजा को प्रजा से सर्वस्वशोषण का निर्पेध "पुष्पं पुष्पं विचिनुयानमृष्टच्छेदं न कारयेत्" मास्राकार का उदाहरण दिया है (१८-समाप्ति तक)।

२ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

६३१

द्वितीयाध्याय में गृहम्थी के धर्माचार का निर्देश किया है (१)। ''षट्कर्म निरतो विष्ठः कृषिकर्माणि कारयेत्(२)। ६३१ हलमष्टगवं धर्म्यं षडगवं मध्यमं स्मृतम् ॥
चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृषघातिनाम् (३)।
क्षुधितं तृषितं श्रान्तं वर्लावर्द न योजयेत् ॥
हीनाङ्गं व्याधितं क्लीवं वृपं विष्ठा न वाहयेत् (४)।
स्थिराङ्गं नीरुजं दप्तं वृषभं पण्डवर्जितम् ॥
वाहयेदिवसस्यार्थं पश्चात् स्नानं समाचरेत्" (५)।

पट्कमे सम्पन्न विप्र को कृषि कर्म में जुट जाने का आदेश है. किम प्रकार भूमि में हल से जुताई करे, कितने बेलों से हल जोते तथा बेलों को हृष्टपुष्ट बनाना उसका धर्मकार्य और कितने समय तक बेलों को खेती पर जोते जाय इसका नियम। कृषि कर्म को पराशर ने मब से प्रथम द्विजाति मात्र अर्थान मनुष्य मात्र के लिये प्रधान कर्म बताया है और कृषिकार मब पापों से छूट जाते हैं (१२)। चतुर्वण का कृषि कर्म धर्म बनलाया है (१५)।

३ अशौच व्यवस्था वर्णनम्।

६३३

अशौच का प्रकरण—ब्राह्मण मृतसृत्क में ३ दिन में, क्षत्रिय १२ दिन में, वैश्य १५ दिन में और शृद्ध १ मास

में शुद्ध हो जाता है। तृतीय अध्याय में जन्म और मरण के अशोच का विवरण दिया गया है। किन्तु जातक अशौच में ब्राह्मण १० दिन में शेप पूर्व लिखित है। बालक और संन्यामी के मरने पर तत्काल शुद्धि बताई है। १० दिन के बाद म्बबर पावे तो ३ दिन का सूतक, और सम्बत्सर के बाद खबर पावे तो स्नान करके शुद्धि हो जानी है (१-१६)। गर्भ में मरने की और सदाः मरने की तत्काल शुद्धि होती है (२६)। शिल्प काम करने वाले, राजमजदूर, नाई, बैद्य, नौकर, वेदपाठी और राजा इनको सद्यः शौच बतलाया है ( २०-२८ )। गर्भम्नाव का बतलाया है ( ३३ )। विवाहोत्मव में स्रुतक हो जाय तो उसमें पृव दान किया हुआ दे हे सकता है ( ३४-३४ )। मंत्राम वाले की मृत्यु का १ दिन का अशौच माना गया है और उसका माहात्म्य वतलाया है ( ३६-४३ ) । संप्राम में क्षत्रिय के देहपात का माहात्म्य (४४-४७। शृद्ध के शब ले जाने वालं पर सृतक की अवधि ( समाप्ति )।

४ अनेकविधप्रकरण प्रायश्चित्तम् ।

६३६

जो किसी को फांसी में लगावे उसका पाप और उसकी

चान्द्रायण करना चाहिये (१-६)। जो विना इच्छा के पितनों से मम्पर्क रखता है उसकी शुद्धि के लिये बतलाया है (७-११)। जो स्त्री ऋनुकाल में पित के पास न जावे अथवा पित पत्नी के पास न जावे उसका वर्णन (१२-१६)। औरमा क्षेत्रज्ञा दत्तक, कृत्रिम पुत्रों की पिरभाषा है (१५-२८)।

#### ५ प्रायश्चित्त वर्णनम।

६४२

इसमें प्रायश्चित्त का वणन आया है। कुत्ता, भेड़िया किसी को काटे उसको गायत्री जपादि प्रायश्चित्त बत-लाया है (१-७)। चाण्डाल, चमार आदि से जो ब्राह्मण मर जाय उसका प्रायश्चित्त (८-१२)।

#### प्रश्रीताग्रिहोत्र संस्कार वर्णनम्।

६४३

आहितामि के शरीर छटने पर उसके श्रौतामि से उसका किस प्रकार संस्कार करना इसका विवरण हे (१३-३६)।

६ प्राणिहत्या प्रायिक्चित्त वर्णनम् । ६४४

प्राणिह्त्या का प्रायश्चित्त—हसः मारसः क्रोंचः टिड्डी आदि पक्षियों को मारने से जो पाप होता है उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१-८)। नकुछ मार्जारः सर्प आदि को मारने का पापः उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१-१०)। भेड़िया, गीदड और सूकर मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (११)। घोड़े, हाथी मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१२)। मृग, वराह के मारने का पाप, उसका प्रायश्चित्त और शुद्धि (१३-१४)। शिल्पी, कारू और श्वी आदि के घात का पाप, प्रायश्चित्त एवं शुद्धि (११-१६)। चाण्डाल से त्यवहार का पाप उसका प्रायश्चित्त एवं शुद्धि (२८-२४)।

#### ६ प्रायश्चित्त वर्णनम्।

६४७

उपर्युक्त के अन्न खाने का प्रायश्चित्त (२६-३०)। अविज्ञान में चाण्डाल आदि के यहां ठहर कर जूठे एवं कृमि दृषित अन्न भोजन करने का दोप और उसका प्रायश्चित्त तथा शुद्धि (३१-३८)। घर की शुद्धि जिस घर में चाण्डाल रह गये उस घर की शुद्धि। इन स्थानों पर रसः दृध दही आदि अशुद्ध नहीं होते हैं (३६-४३)।

#### ६ ब्राह्मण महत्त्ववर्णनम्।

६४८

ब्राह्मण के किसी व्रण पर कीड़ पड़ जाय तो उसका वर्णन और उसकी शृद्धि वताई है :-- "उपवासो त्रतं चंव स्नानं तीर्थं जपस्तपः। विष्ठः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत्"॥

ब्राह्मण जो व्यवस्था देते हैं उसके अनुसार चलने का माहात्स्य (४३-५८)। ब्राह्मण के वाक्य तथा उनका माहात्स्य (४६-६१)। अभोज्य अन्न, भोजन करते समय केंसे बैठना चाहिये उसका विधान। कुत्ते का स्पर्श किया हुआ अन्न त्याज्य बनाया है और चाण्डाल का देखा हुआ अन्न त्याज्य बनाया है (६२-६३)। एक बड़ी संख्या में जो अन्न अशुद्ध हो जाय तो उसे त्याज्य नहीं बनलाया है विक उसे सोने के जल से अथवा अग्न से शुद्ध किया जा सकता है (६४ समाप्ति)!

#### ७ द्रव्यशुद्धि वणनम्।

६५१

लकड़ी के पात्र और यज्ञ पात्र इनकी शुद्धि के सम्बन्ध में बतलाया है (१-३)। स्त्री, नदी, वापी, कूप और तड़ाग की शुद्धि के सम्बन्ध में वताया है (४-५)। रजस्वला होने से पहले कन्या का दान न करने पर माता पिता को पाप (६-६)।

#### ७ स्त्रीशुद्धिवर्णनम्।

६५३

रजस्वला स्त्री के शुद्धि के सम्बन्ध में बताया है (१०-१७)।

किसी का मन है कि बीमारी से किसी स्त्री का रज निकलता हो तो उसे अशुद्ध नहीं मानते हैं (१८)। कांग्य. मिट्टी आदि के पात्र एवं वस्त्रों की शुद्धि के सम्बन्ध में बनाया है (१६-३५)। सड़क में पानी. नाव और पक्के मकान उनको शुद्ध बताया है इनको अशुद्ध नहीं कहते हैं (३६)। बृद्ध स्त्री और छोटे बालक ये अशुद्ध नहीं होते हैं। पापियों के साथ बातचीन करने पर दाहिना कान छू देने पर शुद्धि बताई गई हैं (२७ समाप्ति)।

#### ८ धर्माचरणवर्णनम्।

६५५

प्रथम ऋोक में गाय को वाधने से जो मृत्यु हो जाय उसके प्रायश्चित्त के सम्बन्ध में है। पाप की व्यवस्था कराने के लिये धर्माधिकारी परिपद् का वर्णन है (२-२४)।

#### ८ निन्द्य ब्राह्मणवर्णनम्।

OYB

जो ब्राह्मण न लिखं पढ़े तो उन्हे पतित और उनका प्रायश्चित्त हें (२२-२५)। पश्च यज्ञ करनेवाले और वेद पड़े लिखं ब्राह्मण की प्रशंसा (२८-३१)। राजा को बिना विद्रान ब्राह्मणों के पृद्धे स्वयं व्यवस्था नहीं देनी चाहिये (३२-३६)। प्रायश्चित्त किन म्थानों पर करना चाहिये (३७-३८)।

#### ८ गोत्राह्मणहेतारुपदेशः।

343

गाय किसी स्थान पर कीचड़ में कंस जाय तो उसके रक्षा का पुण्य (३६-४३)। गो घाती को प्राजापत्य कुच्छ के विधान का वर्णन (४४-ममाप्रि)।

#### ६ गोसेवोपदेशवर्णनम्।

६६०

गो सेवा का उपदेश। गोबध करने में कौन-कौन दण्डनीय होते हैं। गाय को बांधना, लाठी मारना या काम कोय से मारना, पेर वा मींग तोड़ना याने कई तरह गो को मारने का पाप तथा उमका प्रायश्चित्त बताया गया है।

### ६ गवि विपन्नानां प्रायक्वित्तम्।

६६३

इसमें गाय के बांधने का एवं नदी और पर्वत पर गाय के चराने का वर्णन। इसमें गायको विपत्ति हो जाय और गाय को किन रिम्सयों से बांधना चाहिए और किनसे नहीं बांधना विजली गिरने से अति वृष्टि से यदि गाय मर जाय, इन सम्बन्धों में और गाय के सम्बन्ध में कोई बात न बतावे तो इससे पाप आदि का वर्णन आया है। इस अध्याय के अन्त में यह उपदेश दिया है कि स्त्री, बाल, भृत्य, "गो विश्रेष्वित कोपं विवर्जयेत" इन पर अति कोप नहीं करना (२६ समाप्ति)।

## १० अगम्यागमन प्रायश्चित्तवर्णनम्। ६६६

दशम अध्याय में अगम्यागम्य प्रायश्चित्त का वर्णन है। चातुर्वर्णको अगम्यागम्य में चान्द्रायण व्रत बतलाया है (१)। चान्द्रायण ब्रत की परिभाषा वतलाई है, शुक्रपक्ष में एक-एक प्राप्त बढावे और कृष्ण पक्ष में एक एक प्राप्त घटावे । प्रास का प्रमाण कुम्कुट (मुर्गा) के अंड के समान बताया है (२-३)। चाण्डालनी के गमन करने से पाप का प्रायश्चित्त (४-६)। माता, माता की बहिन और लड्की के गमन करने पर चान्द्रायण व्रत बतलाया है (१०-१४)। पिता की वह स्त्रियां और मां की सम्बन्धी, भ्रात भार्या, मामी, मगीत्रा इनके गमन का प्रायश्चित्त बतलाया है। पशु और वेश्या गमन या गो गामी या भैंस के साथ गमन करने का प्रायश्चित्त है (१४-१६)। मनुष्य का कर्तव्य-वीमारी, संवाम, दुर्भिक्ष, कद्खाने में भी औरत की रक्षा करता जाय (१७)। व्यभिचार से दुःखित स्त्री के शुद्धि और शृद्धि के प्रसंग में बताया है (१८-२६)। जो स्त्री शराब पीवे उसका पित पितत हो जाता है ऐसी पितत स्त्री के पुरुप को कोई चान्द्रायण व्रत नहीं हैं (२७)। जार से जो स्त्री संतान पैदा करें उसे दृसरे देश में त्याग देना चाहिए (२८-३२)। पितत स्त्री का प्रायश्चित्त यदि पित चाहे नो वो भी कर सकता है (३३-३४)। जो स्त्री जार के घर चली जाय फिर वहाँ से भाग कर यदि पिता के घर आजाय ता वह जार का घर समक्ता जायगा। काम और मोह से जो स्त्री अपने बच्चों को छोड़ कर जार के घर चली जाय तो उसका परलोक नष्ट हो जाता है (३४-४२)।

#### ११ अमध्यमक्षणप्रायश्चित्त वर्णनम्।

०७३

अभक्ष्य भक्षण का प्रायिश्वत्त गोमांस एवं चाण्डाल के अन्नादि भक्षण का प्रायिश्वत्त (१-७)। एक पंक्ति पर बैठे हुए में से एक भी भोजन करने वाला उठ जाय तो जो खाता रहे उसको प्रायिश्वत्त बतलाया क्योंकिहं वह अन्न दृषित हो जाता है (८-१०)। पलाण्डु (प्याज) वृक्ष का निर्यास, देवता का धन और उँट, भेड़ का दृध खानेवाले को प्रायिश्वत्त (११-१४)। अज्ञान से जो किसी के घर सूतक का अन्न खाले उसको प्रायिश्वत्त (१४-२०)। ब्राह्मण से शूद्र कन्या में उत्पन्न

हुए को दास कहते हैं। जिसके संस्कार हो जाते हैं उसे भी दास कहते हैं और जिसके संस्कार न हो वह नाई होता है (२१-२४)। ब्रह्मकूर्च उपवास की विधि किस तरह को जाय किस मंत्र से—गोमय, दृध, दही लावे इसका वर्णन आया है (२४-३३)।

#### ११ शुद्धि वर्णनम्।

६७३

ह्वन का विधान (३४-३४)। ब्रह्मकृच का माहात्म्य (३६)।

## ''ब्रह्मकूर्चो दहेत्मर्वं यथेवाग्निरिवेन्धनम"।

पीते पीते पानी यदि पात्र में रह जाय तो फिर पीने का दोप एवं उसको चान्द्रायण त्रत बनलाया है (३७)। तालाव, कूएं में जहां जानवर मर गया हो उस जल के पीने में प्रायश्चित्त से शुद्धि (३८-४२)। पंच यज्ञ का विधान। समय के ब्राह्मणों की निन्दा न करनी चाहिये (४३-५३।

#### १२ शुद्धिवर्णनम।

६७५

पुनः मंस्कारादि प्रायञ्चित्त वर्णनम्।

खराब स्वप्न देखने से स्नान करने से शुद्धि (१)। अज्ञान से जो सुरापान करे उसका प्रायश्चित्त । २-४)। तीर्ना बर्णों का प्रायश्चित्त, स्नान का विधान, अजिन (मृगचर्म), मेखला छोडने पर ब्रह्मचारी के पुनः संस्कार (४-८)। आग्नेय स्नान, वारुणेय स्नान, सातपवर्ष (दिव्य) और भम्म स्नानादि का वर्णन आया है (१-१४)। आचमन करने का समय और विधान वतलाया है (१४-१८)। दक्षिण कर्ण का स्पर्श (१६)। सूर्य की किरणों से स्नान का माहात्म्य (२०-२२)। रात्रि में चन्द्रप्रहण पर दान करने का माहात्म्य रात्रि में केवल प्रहण समय का माहात्म्य है (२३)। रात्रि के मध्य के दो प्रहर को महानिशा कहते हैं। रात्रि के उत्तरार्ध के दो प्रहर को प्रदोष कहते कहते हैं। उसमें दिनवत् स्नान करना चाहिये (२४)। प्रहण के स्नान का विधान (२४-२८)। जो यज्ञ न कर सकते हों उनका वेदाध्ययन की आवश्यकता है (२६)। शुद्रान्न को भक्षण कर जो प्रायश्चित्त नहीं करते हैं वे जिस जन्म में जाते हैं उन्हें कुत्तं, गीधादि की योनियां प्राप्त होती है (३०-३८)। जो अन्याय के धन से जीवन चलाता है उसका प्रायश्चित्त (३६-४२)। गोचर्म कितनी भूमि की संज्ञा है तथा उस भूमि के दान करने का माहात्म्य (४३)। छोटे-छोटे पाप जैसे— मुंह लगाकर जल पीने से पाप (४४-५४)। उपर नीचे का उच्छिष्ट जो अन्तरिक्ष में भरता है उसका प्रायश्चित्त

( ধ্ধ-ধ্ ।)। जो गृहस्थी व्यर्थ ( ऋतु कालाभिगमन के अतिरिक्त ) वीर्य नष्ट करे उसका प्रायश्चित्त ( ধৃ ।)।

#### १२ प्रायिक्चित्त वर्णनम्।

६८०

. छोटे-छोटे प्रायश्चित्त— संतुबन्ध में जाना, गोकुल में जाकर अपने पापों के वर्णन करने से पाप नष्ट हो जाते हैं। संतुबंध में स्नान का माहात्म्य तथा उससे पाप नष्ट हो जाने का वर्णन आया है। इसी प्रकार १०० गाय दान करने से ब्रह्महत्या दूर हो जाती है। मद्यप ब्राह्मण गङ्गाजी में स्नान कर कभी न पीने का सङ्कल्प करें। ऐसी-ऐसी शुद्धियों का वर्णन तथा इनसे पाप दूर करने का विधान आया है (५८-७४)।

#### बृहत् पराश्चरस्मृति के प्रधान विषय

इसमें १२ अध्याय है। प्रथम अध्याय में पराशर संहिता के क्रमानुसार ही विभिन्न अध्यायों में वर्णित आचार प्रायश्चित्त आदि विषयों का वर्णन किया है।

## १ वर्णाश्रमधर्म वर्णनम्।

६८२

प्रथमाध्याय में पराशरजी के पास वर्णाश्रम धर्म किल-युग में किस प्रकार से होता है, इस प्रश्न को लेकर व्यास आदि ऋषि पराशरजी के पास गये (१-२०)। पराशरजी ने कहा कि वेद और धर्मशास्त्र इन दोनों का कर्ता कोई नहीं है। ब्रह्माजी को जिस प्रकार वेदों का म्मरण हुआ था उसी प्रकार युग-प्रति-युग में मनुजी को धर्मसमृतियों का स्मरण हुआ। पराशरजी ने कलियुग की विद्रव दशा में खंद प्रगट किया कि धर्म दस्भ के लिये, तपस्या पाखण्ड के लिये एवं वड़-वड़े प्रवचन लोगों की प्रवंचना (ठगी) के लिये किये जाते हैं। गायों का दूध कम हो जाता है, कृषि में उर्वरा शक्ति कम हो जाती है, िक्सयों के साथ केवलमात्र रित की कामना सं सहवास करते हैं न कि पुत्रोत्पत्ति के लिये। पुरुष स्त्रियों के वशीभूत होते हैं। राजाओं को वंचक अपने वश में कर छेते हैं। धर्म का स्थान पाप ले लेता है। शूद्र बाह्मणों का आचार पालते हैं तथा ब्राह्मण शूद्रवत् आचरण करने लगते हैं। धनी लोग अन्याय मार्ग पर चलते हैं। इस प्रकार कलियुग की विषमता पर अत्यन्त खेद प्रगट किया है (२१-३४)।

१ धर्मविषयवर्णनम् ।

७८६

इसमें आचार वर्णन दिखाया और युगों का नाम बताया

ह। सतयुग को ब्राह्मण युग, त्रेता को क्षत्रिय युग, द्वापर को वैश्य युग तथा किलयुग को शूद्र युग बताया है। वर्णाश्रम धर्म की क्षमता उस भूमि में बताई है जिसमें कुष्णसार मृग स्वभावतः स्वतंत्रता पूर्वक विचग्ण करते हैं। हिमालय और विन्ध्याचल के मध्य देश को पावन देश बताया है और अन्य देश जहां से निद्यां साक्षात् समुद्रगामिनी हैं उन्हें भी तीर्थस्थान बताया है। इसमें पराशरजीने अपने पुत्र व्यास को द्विज कर्म और षट्कर्म वर्ण धर्म की प्रशंसा और गो बृपभ का पालन पशुपालन विधि

षट्कम वर्णधर्माञ्च प्रशंसा गोवृपस्य च । अदोद्य-बाद्यो यौ तत्र क्षीरं क्षीरप्रयोक्त्रिणा ॥ अमावास्या निषिद्धानि तत्तञ्च पशुपालनम् ॥

विवाह संस्कार, व्रतचर्यादि, पुत्रजन्म, अखिल गृहस्थर्म का उपदेश, भक्ष्याभक्ष्य की व्यवस्था, द्रव्य शुद्धि, अध्ययनाध्यापन का समय, श्राद्ध कर्म, नारायणवली, सूतक तथा अशौच, प्रायश्चित्त विधान, दानविधि तथा फल, भूमिदान की प्रशंसा, इष्टापूर्त कर्म, प्रहों की शान्ति, वानप्रस्थ धर्म, चारों आश्रम, दो मागं, अर्चि तथा धूम मार्ग इन सबका वर्णन यथानुपूर्व बृहत् पराशर के द्वादश अध्याय में बताया है (३६-६४)।

पृष्ठाङ्क

## २ आ वारधमेवर्णनम्।

६८८

चारों वर्णों का धर्मपालन में आचार बतलाया है। ब्राह्मण को यज्ञावशेष वृत्ति की प्रशंसा की है (१-३)। व्यासजी ने पराशरजी से पृछा कि कौन-कौन कर्म हैं जो प्रत्येक वर्णों को कलियुग में करने चाहिये तथा उनकी विधि क्या होनी चाहिये (४)।

२ नित्य पट्कर्म वर्णनम्, सन्ध्याकृत्य वर्णनम्, सदाचार कृत्यवर्णनम्।

333

"कर्मपट्कं प्रवश्यामि, यत्कुर्वन्तो द्विजातयः। गृहस्था अपि मुच्यन्ते संमारे बन्धहेतुभिः"॥

इस प्रकार कहकर संध्या, स्नान, जप, देवताओं का पूजन, वैश्वदेव कर्म, आतिथ्य इन पट्कर्मों को नित्यप्रति करने का आदेश देकर संध्या वर्णन किया (४-८४)।

#### २ आचारवर्णनम्।

333

सात प्रकार के स्नान का वर्णन किया गया है—मंत्रस्नान, पार्थिव स्नान, वायव्य स्नान, दिव्यस्नान, वारूणस्नान, मानसस्नान तथा आग्नेयस्नान ये सात प्रकार के स्नान, इनके मन्त्र फल सहित बताकर प्रातःस्नान का सब से ज्यादा माहात्स्य कहा गया है (८६-६३)। उषाकाल के स्नान की प्रशंसा कर और स्नानकाल में स्नान न कर हजामत या दंतधावन कर उसे रौरव नरक और पितृ श्राप कहा है (६४-६६)। गङ्गा और कुएँ के स्नान का माहात्स्य तथा स्नान का समय बताया गया है (६७-१०८)। भाद्रपद के महीने में नदी के स्नान का निषेध बताया है क्योंकि निद्या रजस्वला रहती हैं किन्तु जो निदयाँ सीधी समुद्र में जाती हैं उनमें स्नान हो सकता है (१०६-११०)। रिव संक्रान्ति में और प्रहण में अमावास्या में, व्रत के दिन, पष्टी तिथि पर गर्म जल से स्नान नहीं करना चाहिये (१११-११२)।

### २ स सदाचार नित्यकम वर्णनम्।

333

किस प्रकार म्नान करना अर्थात् म्नान करने की विधि वतलाई है (११३-१२३)। स्नान का मन्त्र, पश्चगव्य म्नान के मंत्र, मिट्टी लगाने के मंत्र आदि जिन मंत्रों का उच्चारण करना है उनका वर्णन किया गया है (१२४-१४८)। स्नान का फल और स्नान करने का विधान, विना मंत्रों के म्नान करने से स्नान का कोई फल नहीं होता है यह बताया गया है जैसे जल में मच्छी पैदा होती है और वहीं लय हो जाती है (१४६-१५०)। मन्त्र के उच्चारण का विधान, उदात्त अनुदात्त, स्वरित, प्लुत स्वरों के उच्चारण का क्रम बताया गया है (१६१-१६६) किस अङ्ग में कितनी बार मिट्टी लगानी चाहिये उसका विधान और शरीर पर ॐ का कहाँ कहाँ पर और कितनी बार लिखना इसका विधान, स्नान के समय गायत्री का जप और स्नानान्तर गायत्री के मन्त्र का जप करने का निर्देश किया गया है (१६६-१६८)।

२ श्राद्धे इति कर्तन्यता, तर्पण वर्णनम्। ७०४

तपण की विधि, देवताओं के तर्पण, पितरों के नर्पण, मनुष्यों के तर्पण और अपने वंशजों का तर्पण तथा यक्षों के तर्पण की विधि बताई गई हैं (१६६-२२०)।

#### २ कर्तब्यवर्णनम्।

300

मनुष्य के हाथ पर ब्रह्मतीर्थ, पितृतीर्थ, प्राजापत्य तीर्थ, सौमिक तीर्थ तथा दैव्य तीर्थ ये पंचतीर्थ बताये गये हैं। स्नान करके इन पांच तीर्थों से जल चढ़ाना चाहिये (२२१-२२४)। बिना स्नान किये भोजन करता है उसकी निन्दा और स्नान करने से दु:स्वप्न का नाश बताया गया है। स्नान करने के यह फल बताये हैं (२२४-२२६) यथा—

#### प्रधानविषय

पृष्ठाह

चित्तप्रसाद बलरूप तपांसिमेघा, मायुष्यशौच सुभगत्व मरोगितां च । ओजस्वितां त्विषमदात् पुरुषस्यचीर्णं, स्नानं यशो-विभव-सौख्यमलोलुपत्वम् ॥

## ३ ओंकार मन्त्र वर्णनम्।

080

ओंकार मंत्र के जप की विधि बताई गई है। जपने के मन्त्रात्मक सूक्त ये बताये हैं - ब्रह्म सूक्त, शिव सूक्त, वैष्णव सृक्त, सौरि सूक्त, सरस्वती सूक्त, दुर्गा सूक्त, वरुण सुक्त और पुराण शास्त्रों में जो जप आदि लिखे हैं उनका वर्णन है। ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद में जो सुक्त आये हैं उनकी परिगणना। गायत्री मन्त्र का जप और ओंकार का जप, जिस मन्त्र का जप उसका भूपि देवता जानने से सिद्धि होती है (१-६) ओंकार और गायत्री मनत्र के जप की महिमा और उसका म्वरूप, उसमें यह दर्शाया गया है कि पहले ओंकार शब्द हुआ और वह अकेला रहा, उसने अपने आमोद-प्रमोद के लिये गायत्री को स्मरण कर उसको प्रत्यक्ष किया, तो गायत्री उसकी पत्नी हो गई और प्रणव (ओंकार) उसका पति हुआ। इनके संयोग से तीन वेद, तीन गुण, तीन देवता, तीन मात्रा, तीन ताल तीन लिङ्ग ये उत्पन्न हुए। वेद शास्त्र में सब जगह ये तीन मात्रा आती हैं। इस ओंकार रूपी अक्षर के धन का माहात्म्य आदि अगले अध्याय में बताया गया है (७-३३)।

### ४ गायत्रीमन्त्र पुरइचरण वर्णनम्।

७१४

इसमें गायत्री मन्त्र का पुरश्चरण, गायत्री का उचारण, गायत्री प्रकृति और ओंकार को पुरुप और इनके संयोग से जगन की उत्पत्ति बताई गई है। गायत्री के २४ अक्षरों को २४ तत्त्व बताया है (१-१२)। वेदों से गायत्री की उच्चता (१३-१७)। एक एक अक्षर में एक एक देवता बताये हैं (१८-२४)। एक एक अक्षर किस किस अङ्ग में रखना बताया गया है (२६-३६)। गायत्री जप करने का स्थान और जपने की माला का विशदीकरण किया गया है (३७-४२)। प्राणायाम का माहात्म्य बताया गया है ( ५३-५५ )। उपांश जप और मानस जप का वर्णन किया गया है (४६-४८)। सव यज्ञों से जप यज्ञ की श्रेष्टता बताई है (४६-६३)। जप कैसा और किस मुद्रा और किस रीति से करना चाहिये बताया है ( ६४-७० )।

#### ४ गायत्री मन्त्र वर्णनम्।

७२०

गायत्री मन्त्र के एक एक अक्षर का एक एक देवता और उसके स्वरूप का वर्णन किया गया है (७१-६७)।

#### ४ गायत्री मन्त्र जप वर्णनम्

७२३

न्यास और गायत्री की उपासना और स्थूल, सूक्ष्म और कारण इन तीनों शरीरों को गायत्री से बन्धन करने का विधान है (६८-११०)।

#### ४ देवार्चन विधिवर्णनम्।

७२४

देवताओं का पूजन और उसके मन्त्र, जैसे विष्णु का गायत्री और ओंकार से पूजन इत्यादि (१११-१२३)। देवता के देह में न्यास जैसे कि मनुष्य अपनी देह में करता है (१२४-१३४)। पुरुष मृक्त के पहले मन्त्र से आवाहन, दृसरे से आसन, तीसरे से पाद्य, चतुर्थ से अर्ध्य इत्यादि का वर्णन आया है (१३४-१४१)। जो मनुष्य इस प्रकार विष्णु की पूजा करता है वह अन्त में विष्णु की देह में ही चला जाता है (१४२)। देवताओं का पूजन और उसकी विधि का वर्णन किया है (१४३-१४४)।

#### ४ वैस्वदेव विधिवर्णनम्।

७२८

वैश्वदेव विधि का वर्णन करते समय बताया है कि जो बिना अग्नि को चढ़ाये खाता है अथवा विना बिल बैश्वदेव किये जो अन्न परोसा जाता है वह अभोज्य अन्न है। जिस अग्नि में अन्न पकाये उसी में अन्न का हवन करना चाहिये और हवन करने के मन्त्र तथा विधान लिखा है (१६६-१६३)।

#### ४ आतिथ्य विधिवर्णनम्।

७३२

अतिथि की विधि और अतिथि को भोजन देने का माहात्म्य लिखा है। अतिथि का लक्षण, जैसे जो कि भूखा, प्यासा, मागं चलने से थका हुआ प्राणरक्षा मात्र चाहता है यदि ऐसा अतिथि अपने घर आवे तो उसे विष्णु रूप सममना चाहिये। गृहस्थी के लिये अतिथि सत्कार परम धमे वतलाया है (१६४-२११)।

## ४ वर्णाश्रम धर्म वर्णनम्।

७३४

वर्णाश्रम धर्म बताये हैं, जैसे यज्ञ करना, कराना, दान देना, लेना, पढ़ना, पढ़ाना ये छः कर्म ब्राह्मण के कहे हैं इसी प्रकार क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के कर्म का

प्रधान विषय

प्रष्ठाङ

विधान आया है। अपनी अपनी वृत्ति से सबको जीवन निर्वाह करने का माहात्म्य बताया गया है।

थ गोमहिमा वर्णनम्।

७३५

पट् कर्म सहित विप्र कृषि वृत्ति का आश्रय करे (१-२)। बैछ के पाछन करने का माहात्म्य और किस प्रकार के वैछ से खेती जोतनी चाहिये उसका वर्णन किया गया है (३-६)। गोमाहात्म्य और गो के पाछन करने का माहात्म्य और गो के पाछन करने का माहात्म्य और उचैछ, बीमार गाय को दुहने का पाप और गोदान का माहात्म्य, गो के अङ्ग प्रत्यङ्ग में देवताओं का निवास वताया गया है (७-४३)।

यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवः स्थितः । पृष्ठं नारायणस्तस्थौ श्रुतयञ्चरणेषु च ॥ या अन्या देवताः काञ्चित्तस्या लोमसुताःस्थिताः । सर्यदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः ॥

स्पृष्टाश्च गावः शमयन्ति पापं, संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्। ता एव दत्तास्त्रिदिवं नयन्ति, गोभिर्नतुल्यं धनमस्ति किश्चित्॥

प्रधानविषय

वृष्ठाङ्क

### ४ समहत्त्ववृषभप्जनवर्णनम्।

७४०

बैल पालने का माहात्म्य। गाय के पालने से बैल का पालन करने में दस गुणा माहात्म्य अधिक है। वृष का पूजन और वृष को धर्म का अवतार बताया गया है वृष अपने कंध पर भार है जाता है, अपने जीवन से दूसरे के जीवन की रक्षा और दूसरे के जीवन को बढ़ाता है। उन गायों की महती बन्दना की गई है जो वृषम को उत्पन्न करती है इलादि (४३-५६)।

**५ इल ( वेध ) करण वर्णनम् ।** 

७४१

हल बनाने का विधान (६०-७६)।

५ कृष्याद्यनेक सवृषभवर्णनम्।

६४७

हल लगाने का दिन तथा विधि का वर्णन किया है (७७-१००)। बैल का पूजन और बैल की रक्षा पर ध्यान देने का विधान (१०१-१११)। आकाश से जो जल गिरता है उसका माहात्म्य, पृथ्वी माता के जलकपी अमृत पड़ने से अन्न की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है (११२-११४)।

प्र कृषि महत्त्व धर्म वर्णनम्।

080

किस प्रकार की भूमि में कृषि करनी चाहिये इसका वर्णन किया गया है (११६-१४४)।

प्रधानविषय

क्राक्षर

कृषिकृच्छुद्धिकरण वर्णनम् ,

o ye

कृषिकर्मकरण स सीतायज्ञ वर्णनम्।

७५१

कृषि के सम्बन्ध में बहुत सुन्द्र वर्णन किया गया है। अन्त में यह बताया है—

५ ''कृषेरन्यतमो ऽधमों न लभेत्कृषितो उन्यतः । न मुखं कृषितो उन्यत्र यदि धर्मेण कर्षति" ।। अर्थात् कृषि के तुल्य दूसरा कोई धर्म नहीं एवं कृषि के तुल्य और कोई व्यवहार इतना लाभदायक नहीं । कृषि करने में ही बड़ा सुख है यदि धर्मानुकूल कृषि की जाय । (१५६-१६५)।

६ कन्या विवाह वर्णनम्।

RKO

कन्याओं के आठ प्रकार के विवाह होते हैं। अपनी जाति में वर के लक्षण देखकर वस्नाभूषण से सुसज्जित कर जो कन्या दी जाती है उसको ब्राह्म विवाह कहते हैं। लड़के का लक्षण देखना परमावश्यक है। जिसके पेशाब में फेन निकले वह पुरुष होता है। ऐसा न होने पर नपुंसक होता है। यझ करते हुए यझ करनेवाले को वस्नाभूषण से सुसज्जित जो कन्या दी जाती है इसे दैव विवाह कहते हैं। वर कन्या के समान हो और गुण- वान, विद्वान हो ऐसे पुरुष को दो गाय के साथ जो कन्या दी जाती है वह आर्ष विवाह होता है। कन्या और वर खेच्छा से धर्मचारी हो यह कर जो कन्या का दान किया जाय वह मनुष्य विवाह होता है। जिस जगह पर वर से रूपये की संख्या लेकर कन्या दी जाती है उसे देत्य विवाह कहते हैं। जहां वर कन्या दोनों अपनी इच्छा पूर्वक विवाह कर हे उसे गन्धर्व विवाह कहते हैं। जहां हरण करके कन्या ले जाई जावे उसे राक्षस विवाह कहते हैं। सोई हुई कन्या को जो मख इत्यादि के नशे में जबरदस्ती हे जाया जावे उसे पैशाच विवाह कहते हैं (१-१७)। विवाह के पहले जिन बातों का विचार करना चाहिये उनका निर्देश किया गया है। १ वर, २ कन्या की जाति, ३ वयस, ४ शक्ति, ४ आरोग्यता, ६ वित्त सम्पत्ति, ७ सम्बन्ध बहुपश्चता तथा अर्थित्व (१८)।

# ६ विवाहे वरगुण वर्णनम्।

OYE

वर के लक्षण बताये हैं (१६-२१)। लड़की—जाति, विद्या, धन तथा आचरण की इतनी परवाह नहीं करती है जितनी प्रीति की, अतः लड़का प्रीतिमान होना चाहिये इसलिये संगात्र की कन्या से विवाह करने पर वह धर्म के अनुसार स्त्री नहीं कही जा सकती है (२२)। जहां कन्या नहीं देनी चाहिये उनको बताया है (२३-२७)। उन लड़िकयों के लक्षण लिखे हैं जिनके साथ विवाह नहीं करना हैं और कन्यादान करने का जिनका अधिकार है उनका वर्णन (२८-३२)। उन कन्याओं का वर्णन है जिनके साथ विवाह हो सकता है (३३-३७) कन्यादान और कन्या के लक्षण जिनको कि दायविभाग मिल सकता है उनका वर्णन (३८-४०)।

### ६ लक्ष्मीस्वरूपा स्त्री वर्णनम्।

280

गृहस्थी को स्त्रियों की इच्छा का अनुमोदन करना तथा उनको प्रसन्न रखना यह गृहस्थ की सम्पत्ति और श्रेय का साधन बताया है (४१-४४)। स्त्रीपुरूष में जहां विवाद होता है वहां धर्म, अर्थ, काम सभी नष्ट हो जाते हैं (४६-४७)। स्त्रियों को पतित्रत पर रहना और इसका अनुशासन और पतित्रता न रहने से नार-कीय दारुण दु:खों का होना बताया है (४८-५४)।

६ गृहस्थधर्म वर्णनम्।

स्त्री शक्तिक्षपा है एवं शक्ति का स्रोत है। सारे संसार की उत्पादिका शक्ति भी स्त्री जाति ही है। उसका संरक्षण कुमार्यावस्था में पिता द्वारा तथा युवावस्था में

**530** 

पति द्वारा वाञ्छनीय है। वृद्धावस्था में पुत्र का कर्तव्य हैं कि उनकी शक्ति की देखरेख और सेवा करे। इस प्रकार मातृशक्ति की सद्उपयोगिता का ध्यान रखा जाय (५६-६१)। क्षियों की स्वाभाविक पवित्रता और स्त्रियों को इन्द्र के वरदान स्त्रियों की शुद्धता के लिये बताये हैं (६२-६५)। उनके सहवास के नियम बताये गये हैं। यहां पर यह दिखाया है कि गृहस्थधम का आधार स्त्री ही है और गृह के यज्ञ कमे स्त्री के ही साथ हो सकते हैं अतः उसी का सत्कार और मान करना चाहिये (६६-७६)। पितृ यज्ञ, अतिथि यज्ञ, स्वाहाकार वषट्कार और हन्तकार प्राणामि होत्र विधि से भोजन करने का आचार वताया गया है (७७-८६)।

वेदिविद्विप्रस्य कलाइस्य वणनम्। प्राणाग्नि यह की विधि बताई गई हं। जिसमें इस बात का विषदीकरण किया गया कि नासिका के पन्द्रह अङ्कुली तक जीवकी कला संचरण करती जाती है इसी को षोडसी कला कहते हैं। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं जो इसे जाने उसी को वेद का ज्ञाता कहते हैं। इसी को तुरीय पद और इसी में सारा संसार लीन हो जाता है। इस बात को जानने से और कुछ जानना बाकी नहीं

रह जाता है (८७-६६)। प्राणायाम के विधान, प्राणवाय के चलने के तीन मार्ग बताये हैं-इडा, पिङ्गला, सुषुम्ना, नासिका के दो पुट होते हैं दाहिने को उत्तर और बाएँ को दक्षिण बीच भाग को विषुवृत्त कहते हैं। जो योगी प्रातः, सायं मध्याह्न और अर्धरात्रि में विषुवृत्त को जानता है उसको नित्यमुक्त कहा ह। इस प्रकार प्राणायाम की विधि बताई है। पांच वायु (प्राण, उदान, व्यान, अपान, समान ) का नाम लेकर स्वाहा शब्द लगावे, पांच आहुति ब्रास रूप में देवे और दांत नहीं लगावे तो इसे पंचामि होत्र कहते हैं (१७-१०७)। शरीर के जिस प्रदेश में जो अग्नि रहती है उसका वर्णन (१०८-१११)। प्राणामि होस का विधान और मुद्रा का वर्णन (११२-१२१)। प्राणाप्रिहोत्र विधि का माहात्म्य (१२२-१२४)। प्राणाप्रिहोत्र के बाद जल पीने का नियम (१२४-१२७)। प्राणायाम की विधि जानने का माहात्म्य और पांच सात मनुष्यों को खिला कर गृहपत्नी के लिये भोजन विधि (१२८-१३८)।

६ स पोडश संस्कार मान्हिक वर्णनम्। ७६७ सायं सन्ध्या विधि और कुछ स्वाध्याय करके शयन विधि (१३६-१४०)। स्त्री के साथ संगम, योनि शुद्धि और गर्भाधान विवरण (१४१-१४३)। ब्राह्म मुहूर्त में उठकर सूर्योदय से पूर्व सन्ध्या विधि का वर्णन (१४४-१४६)। प्रातःकाल सन्ध्या करने से मद्यपान तथा द्यूत का दोष दृर होता हैं (१४६)। सूर्योदय के पहले सन्ध्या का विधान (१४७)। सीमन्त, अन्नप्राशन, जातकर्म, निष्क्रमण चूड़ाकर्म आदि संस्कारों का विधान, लड़कों का मन्त्र से और लड़कियों का विना मन्त्र से संस्कार करना (१४८-१६१)।

# ६ ब्रह्मचर्य वर्णनम्।

330

डपनयन का समय, विधान और ब्रह्मचारी को भिक्षाधन तथा किससे भिक्षा छेवे उसका स-विस्तार वर्णन एवं पिता को स्वपुत्र के उपनयन का विधान (१४२-१८३)।

# ६ गृहस्थाश्रमे पुत्र वर्णनम्

९७७

पुत्र की परिभाषा, पुत्र पुत्राम नरक से पिता को बचाता है अतः वह पुत्र कहा गया है। इसिछिये पुत्र का संस्कार करना उसका कर्तव्य माना गया

स्वर्ग गति होती हे, अतः पशु-पक्षी भी पुत्र को चाहते हैं (१८५-१६२)। जो पुत्र गया में पिता का श्राद्ध करे (१६३)। पुत्र का कर्तव्य और उसका लक्ष्ण बताया है। यथा— जीवती वाक्यकरणातु क्षयाहे भूरि भाजनातु । गयायां पिण्डदानाच त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥ अर्थात् ये तीन लक्षण जिसमें है उसीमें पुत्रत्व है। जीते जी पिता की आज्ञा पालन, श्राद्ध के दिन ब्राह्मण भोजन करानेवाला और गया में पिण्ड देनेवाला (१६४ १६६)। पिता के लिये बूपो-रसर्ग (१६७-१६८)। साध्वी स्त्री का लक्षण सास श्रमुर की सेवा करे (१६६)। जहाँतक सन्तानोत्पत्ति का सम्बन्ध हं पिता, पुत्र समान

६ आचार वर्णनम्—

६७७

४० संस्कार, सदाचार की प्रशंसा साथ ही हीनाचार की निन्दा बताई हैं (२०१-२०७)। मनुष्य को विद्या पढ़ना, शास्त्र पढ़ना, सदाचार पर निर्भर है। आचारहीन मनुष्य कोई कर्म में सफल नहीं होता ह (२०८-२११)।

और पुत्री भी वैसी ही (२००)।

#### ६ शीच वर्णनम्।

७७४

शौचाचार भावशुद्धि के सम्बन्ध (२१२-२१६)। स्त्रियों में रमण करनेवाले वित्तपरायण, मिथ्या-वादी, हिंसक की शुद्धि कभी नहीं होती हैं (२१७)।

#### ६ प्रतिग्रह (दान) वर्णनम्।

ROO

मूर्व को दान देने से दान का फल नहीं होता है (२१८-२२१)। दान हेनेवाहा मूर्ख और दाता भी नरक में जाता है (२२२-२२६)। दान पात्र को देना चाहिये इसपर कहा गया है (२२७-२२८) हाथी का दान, घोड़े का दान और नवश्राद्ध का दान लेनेवाला हजार वर्ष तक नर्क में रहता है ( २२६-२३१ )। विष्णु की प्रतिमा, पृथिवी, सूर्य की प्रतिमा तथा गाय यह सत्पात्र को देने से दाता को तीन छोक का फल होता है (२३२)। मोजन दान के समय पर अच्छे चरित्रवान ब्राह्मणों का सत्कार करना तथा अनाचारी पुरुषों को बिल-कुल वर्जितका विधान हैं (२३३-२३७)। दही, दूध, घी, गंध, पुष्पादि जो अपने को देवे (प्रत्याख्येयं न किहिंचित्) उसे वापस नहीं करना (२३८)।

जो ब्राह्मण सदाचारी दान हेने योग्य है और वह दान न होने तो उसे स्वर्ग का फल होता है (२३६-२४०)। जो मांगने पर इकरार किया हुआ दान नहीं देता है वह अगले जन्म में दाह होता है (२४१)। दान देने के सम्बन्ध की बातों का विवरण है (२४२-२४८)।

### ६ त्याज्य वर्णनम्।

200

आचार का वर्णन और गृहस्थ के कर्तव्यों को कहा है। भोज्य अभोज्य की विधि बताई है (२४६-२७६)। भोजन में जिनका निषध किया उनका वर्णन आया है (२७७-२८२)। जिनका अन्न खाना निपंध है उनका प्रकरण आया है। जैसे-रेशम वेचनेवाला, विप वेचनेवाला, शाक वेचने वाला इत्यादि (२८३-२६२)। इप्रका यज्ञ जो कि द्विजातियों को करने चाहिये दर्श, पौर्णमास्य और चातुर्मास्य यज्ञों का विधान बताया है ( २१३-२६६ )। स्नातक की परिभापा (२९७)। सोम याग और इष्टका पशु यज्ञ का माहात्म्य बताया है (२६८-३०३)। श्रद्धा से दान देने का माहात्म्य है (३०४-३०४)। जो जिसका अन्न खाता है वैसा ही उसका मन होता है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रादि वर्ण के अन्न की शुद्ध अशुद्ध की सूचि बताई है। जिनसे भिक्षा नहीं लेनी हैं उनका भी निर्देश हैं (३०६-३१२)। रजस्वला स्त्री से छुआ हुआ अझ, कुत्ते और कौंवे के जूठे अझ तथा जो अझ अप्राह्म हैं उनका विवरण दिया हैं (३१३-३१६)। जो अझ अभोज्य होने पर भी प्राह्म हैं उसको विशेष रूप से कहा गया हैं (३१७)।

#### ६ अभक्ष्य वर्णनम्।

420

जिन शाकों को नहीं खाना चाहिये उनके नाम वताये हैं (३२०-३२२)। अति संकट पर अर्थात् प्राण जाने पर जो अभक्ष्य है उनका वर्णन आया हैं (३२३-३२४)। जो गृहस्थी मांस नहीं खाता हैं उसको म्वर्ग लोक की प्राप्ति बताई गई हैं। जहां पर मांस खाने का नियम बताया भी है उसकी निष्ठत्ति—उसको न खाने से महाफल बताया है (३२४-३३१)।

## ६ शुद्धि वर्णनम्।

७८६

का विधान और कौन २ वस्तु शुद्ध होती हैं

इसका वर्णन (३३२-३४०)। बछड़े के मुख से जो दूध गिर जाता है उसको शुद्ध बताया है तथा अन्यान्य शुद्धियाँ बताई है (३४१-३४४)। जो चीज शुद्ध हैं उनका वर्णन, स्त्री के शुद्ध होने का वर्णन आया है (३४४)।

#### ६ अनध्याय वर्णनम।

220

अनध्याय अर्थान जिस समय वेद नहीं पढ़ना चाहिये उसे बताया हैं (३५४-३६६)। जो अनध्याय में वेदाध्ययन करता है वह निष्फल होता ह ऐसा बताया हैं (३६७-३७०)। म्वर हीन वेद पढ़ने का पाप और बज्रम्प फल बताया हैं (३७५-३७२)।

"ये स्वाध्यायमधीयीरन्ननध्यायेषु लोभतः। वज्र रूपेण ते मन्त्रास्तेषां देहे व्यवस्थिताः"॥

मनुष्यों को किसके साथ कैसा व्यवहार, किसीको ताड़न नहीं करना, किन्तु पुत्र और शिष्य को छोड़कर यह बताया है (३७३-३७६)।

''न कञ्चित्ताड्येद्वीमान् सुतं शिष्यञ्च ताड्येत्"। मनुष्यों को आचार का पालन करने से यश और धन की प्राप्ति है। आयु, प्रजा, छक्ष्मी और संसार में सम्मान का मूल आचार ही हैं (३७० से समाप्ति)।

#### ७ श्राद्ध वर्णनम्।

930

श्राद्धके समय कौन-कौन हैं उनका निर्देश (१-४)। श्राद्ध में जिनको निमन्त्रण देना निपिद्ध हैं उनको निमन्त्रित करने का निषध ( ५-१४ )। श्राद्ध में जिनको निमन्त्रण देना चाहिये और पूजना चाहिये उनका वर्णन (१४-२६)। श्राद्धमें जो ब्राह्मण भोजन करते हैं उनको किस प्रकार रहना चाहिये और उनके यम नियम वताये गये हैं (२७-३२)। श्राद्ध में पत्रावली (३३-३४)। जो निर्धन पुरुप है जिनके पास श्राद्ध करने की सामग्री नहीं है वे जंगल में जाकर हाथ उँचाकर मदन करे और अपने पितरेश्वरों से कहे कि मेरे पास घरमें स्त्री पुत्रादि के अतिरिक्तधन नहीं है में श्राद्ध किस तरह करूं। इस तरह क्षमा मांग पितृऋण से क्षमा याचना कर सकता है (३४-३७)। जो इतना भी न कर सके वह पितृ-हत्यारा कहा जाता है (३८-३६)। कौन किसका श्राद्ध कर सकता हैं इसका निर्णय हैं, जैसे; अपुत्र की स्त्री भी पति का

श्राद्ध कर सकती है; इष्ट परिजन अपने मित्रों का भी श्राद्ध कर सकते हैं। लडकी का लड़का अर्थात् दौहित्र भी श्राद्ध कर सकता है और पार्वण श्राद्ध का वर्णन आया हं। एको इष्ट श्राद्ध पुत्र ही अपने पिता और पिनामह का कर सकता है (४०-६१)। श्राद्ध में शुद्रान्न का निषध और स्त्री को भोजन करना निपंध बताया गया है ( ६२-८३ ):। एकोइए श्राद्धका विधान तथा किस किस काल में श्राद्ध करना चाहिये उन कालों का वर्णन । जेसा कुतुप, ( मध्याह्न ) रोहिणी, संक्रान्ति अमावाम्या, व्यतीपात आदि का है (८४-१०१)। मलमास में भी श्राद्ध कर सकते हैं इसका निर्णय किया गया हैं और नित्य श्राद्ध का भी निर्णय किया है (१०२-१०४)। श्राद्ध की तिथि का निर्णय, सगोत्र ब्राह्मण को श्राद्ध में भोजन कराने का निपध (१०६-११६)। वृद्धि श्राद्ध (नान्दीमुख) हाभ कार्य में जो पितरों का श्राद्ध होता है उनके उपयुक्त जो पात्र है उनका निर्णय, वट वृक्ष की लकडी और विल्वपत्र के पत्ते पर भोजन करने का निर्पेध बताया है (११७-१२२)। श्राद्ध में कौन पुष्प किसको चढ़ाने चाहिये अथवा नहीं

चढाने चाहिये ऐसा कहा है (१२३-१२७)। गुग्गुल की धूप को श्राद्ध में निषेध बताया है (१२८-१२६) श्राद्ध में तिलक कैसे लगाना चाहिये उसका वर्णन हं (१३०-१३१)। श्राद्ध में कैसा वस्न देने का निर्णय हैं (१३२)। श्राद्ध में देश रीति तथा कुछ रीति का पालन करना बताया गया है (१३३-१३४) सपिण्डी श्राद्ध का विवरण और अग्नि में जले हुए, सांप से कटे हुए की छः मास में श्राद्ध किया बताई हैं (१३४-१४८)। नान्दीमुख श्राद्ध में कौन देवता पूजे जाते हैं और उसमें दीप दानादि कैसे होता है। नान्दीमुख श्राद्ध का विशेष वर्णन किया है ( १४६-१७२ )। श्राद्ध के भेद और श्राद्ध की विधियां, स्त्री का पति

श्राद्ध के भेद और श्राद्ध की विधियां, स्त्री का पित के साथ तथा किस स्त्री का पृथक् श्राद्ध होता हैं उसका वर्णन किया है। चतुर्दशी में जो एको-हिष्ट श्राद्ध होता है उसका वर्णन और प्रतिलोम के छड़कों को श्राद्ध का अधिकार नहीं उसका वर्णन तथा नारायणबली, जो अपमृत्यु से मरते हैं जैसे पेड़ से गिरकर; नदी में डूबकर इत्यादि इनकी नारायणवली का विधान कहा है। अपने पित के साथ जो स्त्री मरती है उसके श्राद्ध का वर्णन, श्राद्ध में जो जो विधान करने हैं उनका पूरा वर्णन, श्राद्ध के सम्बन्ध में जितनी बातों की जानकारी चाहिये उन सबका वर्णन इस अध्याय में सविस्तर दिखाया गया है (१७३-३६६)।

### ८ शुद्धि वर्णनम्।

८२६

सूतक और अशौच का निर्णय किया गया है। सूतक वर्ष के जन्म होने से जो छूत होती हैं उसे कहते हैं। अशौच मृत्यु की छत को कहते हैं (१-२)। किसको कितने दिन का सूतक पातक लगता है उसका विचार किया गया है (३-२४)। अनाथ मनुष्य की क्रिया करने से अनन्त फल होता है तथा स्नान करने पर ही शृद्धि बताई गई है (२६-२७)। गर्भपात का मृतक जितने महीने का गर्भ हो उतने दिन के मृतक का निर्णय, अग्नि, अङ्कार, विदेश आदि में जे। मर जाते हैं उनका सदाःशीच अर्थात् तत्काल स्नान करने से शृद्धि कही गई है। जिन बच्चों को दांत नहीं निकले हैं उनके मरने पर सदाःशीच और जे। जन्मते ही मर गये हैं उनका भी सद्य:शौच कहा है। इनका अग्नि संस्कार आदि कुछ नहीं होता। किसी के घर में विवाह उत्सव आदि हो और यदि वहां

८ अशौच हो जाये तो उसका जा पहले किये हुए दानादि मत्कर्म अग्रुद्ध नहीं होते हैं (२८-४०)। जिन जिन पर स्तक नहीं लगता तथा जिस दशा पर स्तक पातक नहीं लगता उनका वर्णन किया गया है (४१-६०)।

# ८ प्रायश्चित्त वर्णनम्।

**८३५** 

पापों के। क्षालन करने के लिये प्रायश्चित्तों का माहात्म्य और कर्तव्य वताया है [ ६१-७० ]। प्रायश्चित्त विधान करनेवाली सभा का संगठन [७१-७७]। महापापी के प्रायश्चित्त का वर्णन [७८-१०७]। शराब पीने का प्रायश्चित्त [१०८-११०]। स्वर्णकी चोरीका प्रायश्चित्त [१११-११३ । मातृगामी का प्रायश्चित्त वताया है [११४-११६]। जिन पापों में चान्द्रायण त्रत किया जाता है उनका वर्णन आया है तथा महा-पातकियों का प्रायश्चित्त बताया है [११६-१४०]। गोवध के प्रायश्चित्तों का निर्णय और गे। के मरने के अगल-अलग कारणों पर भिन्न भिन्न प्रकार के प्रायश्चित्त बताये गये हैं [ १४१-१७१ ]। हाथी, घोडा, बैल, गधा इनकी हत्या पर शुद्धि का वर्णन

आया है [१७२-१७४]। हंस, कौआ, गीध, बन्दर आदि के वध का प्रायश्चित [१७४-१७८]। तोता, मेना, चिड़ी इनके वध करने का प्रायश्चित्त बताया है [१७६-१८०]। बाज, चील के मारने का प्रायश्चित्त [ १८१ ]। मंडूक, गीद्ड, शास्ता-मृग (बंदर) महिप, ऊँट आदि जंगली जानवरों के मारने का प्रायश्चित्त। १८२-१८७]। अभस्य के खाने का प्रायश्चित्त और रजस्वला स्त्री के छुये हुए खाने का प्रायश्चित्त बताया है [ १८८-१६१ ]। दांतों के अन्दर गया हुआ उच्छिष्ठावशेष के। खाने का तथा अपना ही जूठा जल पीन का प्रायश्चित्त है [ १६२ ]। जिस जल में कपड़े धोये जाते हैं उस पानी के पीन से प्रायश्चित्त बताया है । १६३-१६४ ]। वेश्या, नट की स्त्री, धोबी की स्त्री आदि के सहवास के पापों का प्रायश्चित्त बताया है [१६५-२००]। कसाई के हाथ का मांस खाने का प्रायश्चित्त [२०१-२०२]। जिनके घर का अन्न नहीं खाना चाहिये जैसे वेश्या आदि के घर खाने का प्रायश्चित्त कहा है [२०३-२०८]। बाएँ हाथ से भोजन करने का दोष बताया है [२०६ २११]। बाएँ हाथ से भोजन करना सरा तुल्य

बताया है और उसका चान्द्रायण [ २१२-२१३ ]। चान्द्रायण और पादकुच्छ ब्रत का विधान [ २१४-२१४ ]। वेश्याओं के साथ रहनेवाला; जेा अज्ञात कुलशील हो और चाण्डाल नौकर रखनेवाले को पुनः संस्कार का निर्णय दिया है [२१६-२२१]। अभक्ष्य भक्षण, अपेय पान ( जिसका छुआ पानी नहीं पीना उसके पीने ) करने पर प्रायश्चित्त का विधान वताया गया है [२२२-२३०]। रज-स्वला के सम्पर्क से शुद्धि का विधान [२३१-२४२]। धोबी के स्पर्श से शुद्धि का विधान [२४३]। वर्णक्रम से (ब्राह्मण, श्वत्रिय, वैश्य, शूद्रादि ) रज-स्वला स्त्रियों के गमन करने पर प्रायश्चित्त बताया है [२४४-२५३]। अन्त्यज स्त्री के गमन से प्रायश्चित्त कहा है [२५४]। गुरुपत्नी आदि के गमन का पाप और उसके प्रायश्चित्त का उल्लेख हैं [२४४-२६३]। रजस्वला के छुये हुए अन्न खाने का प्रायश्चित्त [२६४-२६६]। उन्हों पापों के प्रायश्चित्तों का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है [२६७-२७४]। दुःस्वप्न देखने और हजामत (क्षीर) करने पर स्नान की विधि [२७६]। सूअर, कुत्ता आदि के छूने पर शुद्धि [२५७-२७६]।

कन्या कुमारी को कोई कुत्ता यदि चाट ले तो उसकी शुद्धि जिधर सूर्य जा रहा हो उधर देखने से हो जानी हैं [२८०-२८१]। कोई कुत्ता किसी को काट देवे तो उसकी शुद्धि की विधि वताई है [२८२-२८४]। गुरु को 'तू' बोलना और अपने से बडों को 'हूं हूं' बोलना इस पाप की गृद्धि बताई है [२८४]। विवाद में स्त्री से जीतकर और स्त्री को मारना उसैका प्रायश्चित्त [२८६-२८७]। प्रेत को देखकर स्नान से शुद्धि का वर्णन [ २८८-२६३ ]। १०८ बार गायत्री मंत्र जपने से शुद्धि वर्णन [ २६४-२६५ ]। मुंह से गिरे हुए को फिर खा छ तो उसकी शुद्धि बताई है [२६६-२६८] कहीं जल पर पेशाव आदि के छीटे पड जायें तो उसकी शुद्धि [ २६६-३०० ]। नीच पुरुष, पापी पुरुष और पतित के साथ वात करने से जो पाप लगता है तो अपने दाहिने कान का तीन बार छू लेने से शुद्धि [३०१-३०४]। घर में मक्खियों के आने से, बचों, स्वियों और वृद्धों के बोलने से यदि थूक के छींटे पड जाये तो कोई दोष नहीं होता है [३०४-३१०]। जो पलास वृक्ष और शीशम के वृक्ष की दन्तधावन करता है और नाई के देखे अध्याय

#### प्रधानवि**ष**य

पृष्ठाङ्क

हुए खाने का दोष गाय के दर्शन से मिट जाता है [३११]। जिनके छूने से सिर में जल स्पर्श करने से शुद्धि और जिनके स्पर्श करने से स्नान करना उनका अलग अलग विवरण आया है ( ३१२-३२२ )। जिनका अन्न नहीं खाना चाहिये उनका वर्णन आया है (३२३-३२६)। नाई जो अपने यहाँ नौकर हो उसका अन्न लेने में दोष नहीं और तेल या घृत से बनी हुई चीज वासी होने पर भी दृषित नहीं होती है (३२७)। आपत्तिकाल में छूत का दोष नहीं होता है (३२८-३३०)। जो वस्तु म्लेच्छ के वर्तन मं रहने पर भो अपवित्र नहीं होती, जैसे घी, तेल, कचा मांस, शहद, फल-फूल इत्यादि उनका वर्णन (३३१-३३४)। किस धातु के बर्तन की किससे शुद्धि होती है उसका वर्णन आया है। आत्मा की शुद्धि सत्य व्यवहार और सत्य भाषण से ही होगी प्रायश्चित्त आदि से नहीं। सड़क का कीचड़, नाव और रास्ते में घास इत्यादि ये वायु और नक्षत्रों से ही शुद्ध हो जाते हैं। यह प्रायश्चित्त को जानने की बात सबको सममनी चाहिये (३३६-३४२)।

#### १ व्रतोपवासविधि वर्णनम्।

८६२

चान्द्रायण व्रत, जैसे शुक्छपक्ष में एक प्रास की बृद्धि और कृष्णपक्ष में एक-एक ब्रास का ह्वास इसको एन्द्रव व्रत कहते हैं। इस प्रकार विभिन्न चान्द्रायण व्रत कहे गये हैं। जैसे शिशु चान्द्रायण और यति चान्द्रायण आदि (१-८)। कुच्छ ब्रत, तप्त कुच्छ, सांतपन, महासांतपन, प्राजापत्यकुच्छ, पशुकुच्छ्र, पर्णकुच्छ्र, दिव्य सांतपन, पादकुच्छ्र, अति कुच्छ, कुच्छातिकुच्छ और परातिवृत सौम्य कुच्छ (६-२१)। ब्रह्मकूर्च का विधान, पंचगव्य बनाने का मंत्र और उनकी विधि बताई गई है (२२-३२)। ब्रह्मकूर्च के माहात्म्य का वर्णन है (३३-३४)। उपवास व्रत से पापों की शुद्धि और जितने चान्द्रायण व्रत वर्णन किये गये हैं इनको मनुष्य स्वेच्छा से भी करे तो जन्म-जन्मान्तर के पाप दूर होकर आत्मशुद्धि होती हैं (३६-४३)।

# १० सर्वदान विधि **व**र्णनम्।

८६६

ह्यास तथा वशिष्ठजी ने जो दान विधि वताई है उसका फल (१-२)। दान का माहात्म्य और

पृथक् पृथक् दान करने का विवरण जैसे अत्रदान, 80 जलदान, गृहदान, बैलदान, गोदान, निल्घेनु, घतघेन, जलधेनु, हेमघेनु, गजदान, अश्वदान, कृष्णाजिन दान, सुखासन ( पालकी ) दान, आदि का विस्तार वताया हैं [३-६] । भूमिदान, तुलादान, धातुदान, विद्यादान, प्राणदान, अभयदान और अन्नदान का वर्णन वताया है [१०-१७]। अपूप (मालपुर) के दान का उल्लेख है, पृथक-पृथक दान के प्रकार और उनकी महिमा [१८-२४]। गोदान का माहात्म्य, गोदान की विधि और बैल के दान की विधि बताई गई हैं [२४-४०]। उभयमुखी (जो गाय वह को उत्पन्न कर रही है) उस दशा मं गोदान की विधि और उसका माहात्म्य [४१-४४]। तिलघेनु दानविधि और माहात्म्य तथा विशेष सामग्री का वर्णन बताया है [४६-७०]। घृतघेनु की विधि एवं उसकी सामग्री और उसके फल का वर्णन [ ७१-८६ ]। जलघेनु विधि और उनके फल का वर्णन [८७-१०३]। हेमधनु, स्वर्ण की घेनु बनाने का प्रकार पूजाविधि और दानविधि तथा दान के माहात्म्य का उल्लेख है। स्वर्णघेतु की रचना किस प्रकार १० करनी और क्या-क्या रत उसके किस-किस अंग प्रत्यंग में लगाने चाहिये उसका वर्णन आया है [१०४-१२१]। कृष्णमृगचर्म के दान का विधान वैशाखी पूर्णिमा और कार्तिक की पूर्णिमा को जो दान किया जाय उसका माहात्म्य दर्शाया है [१२२-१४२]। मार्ग दान की विधि [१४३-१४६]।

१० इयगज दानविधि वर्णनम्

668

सुखासन दान का माहात्म्य, रथदान का माहात्म्य, हस्तीदान एवं उसका अलंकार और उसकी दान विधि का उल्लेख तथा अश्वदान का माहात्म्य और रथ दान का वर्णन [१६०-१६६]। कन्यादान का माहात्म्य [१७०-१७३]।

१० भूमिदान वर्णनम्।

623

भूमिदान का माहात्म्य, सब दानों से श्रेष्ठ भूमिदान बताया है। भूमिदान करनेवाला सब पापों से मुक्त हो अनन्त काल तक स्वर्ग में रहता है [१७४-२००]। स्वर्ण तुला का दान और चांदी की तुला दान का दिग्दर्शन कराया है। गुड़ की तुला, लवण की तुला दान जो स्त्री करे तो पार्वती के समान सीभाग्यवती रहेगी तथा पुरुष करे तो प्रदुष्टन के समान तेजस्वी होगा।

#### १० दान विधि वर्णनम्।

660

ब्राह्मण को वस्त्राभूषण दान का माहात्म्य, बड़-बड़ं रक्नों के दान का माहात्म्य, स्वर्ण तुला दान करने में भगवान विष्णु की पूजन का विधान, चाँदी दान का माहात्म्य, माणिक्य के तुलादान का माहात्म्य, घृत, भोजन की चीज, तेल, पान आदि वस्तुओं का पृथक्-पृथक् दान माहात्म्य। फल, गुड़, अझ, मकान, पलंग दान आदि का माहात्म्य [२०१-२३३]।

# १० विद्यादान वर्णनम्।

666

विद्यादान का माहात्म्य और विद्यार्थियों को भोजन, वस्त्र देने का माहात्म्य। सब दानों से अधिक विद्यादान बताया है [२३४-२४४]। औषधि दान और अस्पताल (औषधालय) खोलने का माहात्म्य और दया दान [२४२-२४८]।

#### १० तिथिदान विधि वर्णनम्।

033

भगवान विष्णु का पूजन पौर्णमासी में करने का माहात्म्य [२४६-२६०]। चैत्र शुक्का द्वादशी को वस्त्रदान का माहात्म्य और छाता, जता दान

करने का माहात्म्य। आषाढ़ में दीप दान का माहात्म्यः श्रावण में वस्त्र दान, भाद्रपद में गोदान, आश्विन में घोड़ा दान, कार्तिक में वस्त्र दान, मार्गशोप में लवण दान, पौप में धान का दान, फाल्गुन में इत्र दान, मास विशेष में अलग-अलग दान बताये हैं [२६१-२७८]।

#### १० दान त्याज्यकाल वर्णनम् ।

533

अशौच सूतक में दान देना हेना निषंध, राम्नि में दान निषंध, और राम्नि में विद्या दान, अभय दान, अनिथि सत्कार हो सकता है, अभय दान हर समय हो सकता है, दूसरे का दान अशौच सूतक में हेना निषंध, [२७८-२८२]। दान हैने की और देने की शास्त्रोक्त विधि का वर्णन [२८३-२८६]। सत्पात्र को दान देना चाहिये अन्य को नहीं, परोक्ष दान के महान् पुण्य की विधि [२६०-३००]।

# १० दानार्थ गौलक्षण वर्णनम्।

**L8** A

गोदान का वर्णन आया है कैसी गौ दान के लिये होनी चाहिये [ ३०१-३०६ ]। दान में तौल वर्णन बताया है और गौ का दान अक्षय फलवाला बताया है [३०७-३१३]। १६ प्रकार के वृथा दान का वर्णन [३१४-३२३]।

### १० दानग्राह्य पुरुषलक्षण वर्णनम् ।

035

दातच्य वत्तु के दान का माहात्म्य, किसका कैसा दान देना व लेना, उसकी विधि जैसे गौ का पूंछ पकड़ कर उसके कान में कुछ कह कर दान करे इस तरह अन्य दान की विधि, प्रतिप्रह लेने पर विशेष विधि, अश्व दान का विशेष विधान, अश्व दान लेने की विधि [ ३२४-३४१ ]।

# १० मास, पक्ष, तिथि विशेषेण दान महत्त्व वर्णनम् ८६८

श्रावण गुक्का द्वादशी को गोदान का माहात्स्य [३४३]।
पौष गुक्का द्वादशी को घृतधेनु का विधान [३४४]।
माघ गुक्का द्वादशी को तिलघेनु का विधान
[३४४]। ज्येष्ठ गुक्ला द्वादशी को जलघेनु का
विधान [३४६]। काल, पात्र, देश में दान का
माहात्स्य [३४७-३४६]। म्रह्ण काल में दिया
हुआ दान अक्षय होता है [३४०-३४२]।
वैशाख, आषाढ़, कार्तिक, फाल्गुन की पूर्णिमा को

दान का माहात्म्य [३४३-३४४]। तुला संक्रान्ति, मेष संक्रान्ति में प्रयाग में दान का माहात्म्य [३४४]। मिथुन, कन्या, धनु, मीन संक्रान्ति में भास्कर तीथ में दान का माहात्म्य [३४६-३४८]। अक्षय दान का माहात्म्य [३४६]। सूर्य, ब्रह्मा आदि देवों के मन्दिरों का निर्माण तथा जीणों-द्वार विधि का माहात्म्य [३६०-३६८]।

# १० कूप तड़ागादि कीर्ति महत्त्ववर्णनम्।

803

कूप बावड़ी तास्राव आदि बनाने का माहात्म्य [३६२-३७४]। पीपल, उदुम्बर, वट, आम. जामुन, निम्ब, म्वजूर, नारियल आदि भिन्न-भिन्न जाति के वृक्ष लगाने का माहात्म्य [३७४-३७८]। यथा—

''अञ्बत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश चिचिणीइच । पट् चम्पकं तालशतत्रयं च पश्चाम्रवृक्षे नरकं न पश्येत्''।।

> इतने वृक्षों को लगाने से नगक में नहीं जाते हैं। लगाये हुए वृक्षों के फल पक्षी जितने दिन खाते हैं। उतने दिन स्वर्ग में रहते हैं [३७६-३८२]। जिनने फूळ के वृक्ष लगाता है उतने दिन तक स्वर्ग

में रहता है [ ३८३ ]। विभिन्न प्रकार के वृक्ष और पुष्पवाटिकायें अपने हाथ से लगाने से स्वग गति का माहात्म्य है [ ३८६ ]।

# ११ विनायकशान्तिविधि वर्णनम्।

803

शान्ति प्रकरण यथा—विनायक शान्ति का प्रकरण है जवतक विनायक शान्ति नहीं होनी तवनक ये लिखित दुःम्वप्न दर्शन होते हैं यथा रात्रि में निशाचर, जलावगाहन इत्यादि [१-८]। इसके वाद उसके स्नान का वर्णन, सफेद मरसों से स्नान ब्राह्मण की सहायता से करना जो सम संख्या के हो यथा ४ हो या ८ हो। दुर्वा से उपर्युक्त मन्त्रों से अभिषेक करे [१-२१]। हवन का विधान [२२-२४]। भगवती पार्वती का स्तवन मन्त्र (२६-३०) आचार्य दक्षिणा इत्यादि (३१-३३)।

## ११ ग्रहशान्तिविधि वर्णनम।

303

मह्शान्ति—महमण्डप, महों के जप मन्त्र, महों का पूजोपचार, महदान आदि नवमह का पूजन एवं प्रतिवर्ष का माहात्म्य (३४-८४)। अध्याय

#### प्रधानविषय

क्राह्य

## अद्भुत शान्ति वर्णनम ।

993

घर के उपद्रव, एवं खेती में अपाय यथा सरसों के वृक्ष में तिल, एवं जल में अग्नि, इन्धन इत्यादि गाय, बैल के शब्द से बोले, कीवे गृह में जाने लगे, दिन में तारे दिखना, मकान पर गृद्ध इत्यादि का बैठना, ऐसे ऐसे उपद्रवों की शान्ति एवं उपचार मन्त्रों का वर्णन हैं (८६-१०६)।

# ११ रुद्रपूजाविधि वर्णनम ।

883

मद्र की पूजा का विधान और उसके मंत्र बताये हैं (१०७-१६८)।

### ११ रुद्रशान्ति वर्णनम ।

393

कद्र शान्ति का सम्पूर्ण विधान वताया है। कद्र शान्ति से आयु नथा कीर्ति वद्गती है उपद्रवों की शान्ति होती हैं। मृत्युञ्जय का हवन बिल्बपत्रों से (१५६-२०६)।

#### ११ तड़ागादि विधि वर्णनम।

६२३

तड़ाग, कूप, वापी इनकी प्रतिष्ठा का विधान। उपर्युक्त वापी इत्यादि दृषित होने पर इनकी शुद्धि का विधान बताया है और इनका माहात्स्य बताया है (२०३-२४०)।

#### ११ लक्ष होमविधि वर्णनम ।

६२७

कोटि होमविधि वर्णनम्।

353

लक्ष होम, कोटि होम की विधि इन दोनों में कितने ब्राह्मण और कैसा कुण्ड इनका वर्णन तथा लक्ष और कोटि होम का आहवनीयद्रव्य, अभिषेक मंत्र, अभिषेक विधान, आचार्य मृत्विक् इनकी दिश्लणा का विधान और इसका माहात्म्य। सब प्रकार की आपत्तियों को दूर करनेवाला और राष्ट्र के सब उपद्रवों को दूर करनेवाला होता है (२४१-२६६)।

# ११ प्रत्रार्थं पुरुषस्क विधान वर्णनम ।

६३२

जिस स्त्री के सन्तान न हो अथवा मृतवत्सा हो उसको सन्तित के लिये त्रैमासिक यज्ञ जो कि शुक्ठ पक्ष में अच्छे दिनपर दम्पति द्वारा उपवास कर पुत्र कामना के लिये किया जाता है उसकी विधि एवं मंत्र (२६७-३१३)।

# ११ शान्ति विधिवर्णनम्---

६३४

प्रत्येक प्रह् के मंत्र एवं भृषि पूजन विधान, वैदिक सूक्तों का वर्णन आया है जो कि उपर्युक्त प्रहों में किया जाता है (३१४-३४७)।

# १२ राजधर्म वर्णनम्---

583

राजा को देवता के समान वताया गया है (१४-२३)। राजा को प्रजा की रक्षा का विधान तथा राजा को राज्य संचालन के लिये पडगुण, सन्धि, वित्रह, यान, आसन, संश्रय, द्वैधीकरण इनके जानकार तथा रहस्यों की रक्षा इनका आचरण करना चाहिये। अपने समीप कैसे पुरुषों को रखना इसका वर्णन आया है (२४-३६)। राजा को जहाँतक हा लड़ाई नहीं करनी चाहिये क्योंकि युद्ध करने से सर्वनाश होता है (३७-४३)। जब युद्ध से न बचे उस समय व्यृह रचना आदि का वर्णन (४४-६६)। पुरुषार्थ और भाग्य इन दोनों को समान दृष्टिकोण रखकर कार्य करना चाहिये (६७-७१)। सांसारिक ऐश्वर्य को विनाशवान समभकर उसमें आस्था न करें। भाग्य और

पुरुषाथे के सम्बन्ध में विवेचना की गई है। दुष्टां को दण्ड से दमन करना, राजा को प्रसन्नमूर्ति रहना चाहिये क्योंकि राजा सब देवताओं के अंश से बना हुआ है (७२-६५)।

## १२ वानप्रस्थ भिक्षाधर्मवर्णनम्--

083

वानप्रस्थी के नियम तथा उसके कर्तव्यों का वर्णन आया है। वानप्रस्थ को अपने यज्ञ की रक्षा के छिये राजा को कहना चाहिये। वानप्रस्थी को यज्ञ आदि कर्म करने का विधान और उसको भिक्षा छाकर आठ प्रास खाने का नियम वताया है (६६-१२०)। वेदान्त शास्त्र को पढ़कर यज्ञविधि को समाप्त कर सन्न्यास में जाने का नियम एवं सन्न्यासी के धर्म, दिनचर्या आदि का वर्णन किया गया ह तथा उसको निर्भयता, निर्मोह, निरहंकार, निरीह होकर ब्रह्म में अपनी आत्मा को छीन करना दर्शाया है (१२१-१४४)।

#### १२ चतुर्णामाश्रमाणां भेदवर्णनम्—

848

ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और सन्न्यासी के

भेद बताये हैं। ब्रह्मचारी के भेद प्राजापत्य, नंष्ठिक इत्यादि गृहस्थ के चार भेद-शालीन याया- वर इत्यादि, वानप्रस्थ के भेद-वेखानस, उदुम्बर इत्यादि संन्यासी के भेद—हंस, परमहंस, दण्डी इत्यादि तथा उनके धर्मों का निदंश किया है (१४४-१७४)।

# १२ योगवर्णनम्—

848

गर्भ में देहरचना और उससे वैराग्य, यह बताया है कि आत्मा देह से भिन्न है। अनेक प्रकार के कर्मी का वर्णन दिखलाया है कि कमे के अनुसार देह वनती हैं। शब्द ब्रह्म का वर्णन और प्राण, योग सिद्धि, दीर्घायु का वर्णन। प्राणायाम का वर्णन पूरक, रेचक,कुम्भक और प्रत्याहार के अभ्यास का वर्णन, अग्नि, वायु, जल के संयोग से शुद्धि (१७६-२४२)।

१२ प्रणवध्यानवर्णनम्---

१३३

ध्यानयोगवणनम्---

६६४

योगाभ्यासवर्णनम्---

003

ज्ञान योग और परम मुक्ति का वर्णन, भगवान

का ध्यान एवं प्रणव का ध्यान जानना और 85 उसमें भक्ति का वर्णन, ध्यान के प्रकार-किस स्वरूप में तथा किस जन्म में किस देवता का ध्यान करना इत्यादि का वर्णन । मृत्यु के अनन्तर जीव की दो मार्ग की गति का वर्णन, एक धूम-मार्ग दूसरा प्रकाश (अर्चि) मार्ग । एक से ब्रह्म की प्राप्ति और एक से म्वर्ग की प्राप्ति। ब्रह्मयोग की प्राप्ति के साधन का वर्णन किया गया है। ब्रह्म का अभ्यास, ध्यान और प्रत्याहार का वर्णन तथा यह बताया है कि "मृत्युकाले मतिर्यास्यात्तां गर्ति याति मानवः"। इसिलये मुमुक्ष को नित्य ऐसा अभ्यास करना चाहिये जिससे अंत समय ब्रह्म ज्ञान का अभ्यास वना रहे। यह पराशरजी से कथित धर्मशास्त्र जो नित्य सुनता है और जो श्राद्ध में ब्राह्मणों को सुनाता है उसके पितरेश्वर रुप्ति को प्राप्त होते हैं (२४३-३७८)।

श्री बृहत्पराशर स्मृतिस्थ विषयानुकमणिका समाप्ता।

#### प्रधानविषय

क्राक्ष

## लघुहारीतस्मृति के प्रधान विषय

# १ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्---

803

ऋृिषगणों का हारीत ऋृिष से सम्वाद — ऋृषियों ने वर्णाश्रम धर्म तथा योगशास्त्र हारीत से पूछा जिसके जानने से मनुष्य जन्ममरण रूप वन्धन को तोड़कर संसार से मुक्त हो जाय। इस अध्याय के नवम श्लोक से हारीत ने सृष्टि का वर्णन किया, भगवान शेषशायी समुद्र में शयन कर रहे थे उस समय ब्रह्मा की उत्पत्ति से प्रारम्भ कर जगत की उत्पत्ति तक वर्णन किया। श्लोक तेईस मे लिखा है जो धर्मशास्त्र न जाने उसको दान न देना। संक्षेप में ब्राह्मण का धर्म इस अध्याय में कहा गया है (१-२३)।

# २ चतुर्वर्णानां धर्मवर्णनम्—

**ee 3** 

क्षत्रिय तथा वंश्य का धर्म बताया गया है। क्षत्रिय का धर्म प्रजापालन, दान देना, अपनी भार्या में ही रित रखना, नीति शास्त्र में कुशलता और मेल करना तथा लड़ना इसके तस्त्र को

#### प्रधानविषय

पृष्ठाङ्क

जाने। वंश्य का धर्म बताया है गोरक्षा, कृषि और वाणिज्य। मनुष्य को स्वदार निरत रहना चाहिये (१-१५)।

# ३ ब्रह्मचर्याश्रम धर्मवर्णनम्---

303

उपनयन संस्कार के बाद विधिपूर्वक अध्ययन करना और अध्ययन विधि के विरुद्ध करना निष्फल वताया गया है (१-४)। **ब्रह्म**चारी के नियम एवं नैष्ठिक ब्रह्मचारी को विवाह करना और संन्यास करने का निषेध बताया गया है। इस प्रकार ब्रह्मचारी के धर्म का वर्णन बताया गया है (४-१४)।

# ४ गृहस्थाश्रम धर्मवर्णनम्-

833

वेदाध्ययन के अनन्तर ब्राह्मविवाह से विवाह करने की प्रशंसा लिखी है (१-३)। प्रातःकाल उठकर दन्तधावन का विधान और दन्तधावन की लकड़ी तथा मन्त्रों से झान, प्रातःकाल जब सूय लाल-लाल दिखाई पड़ता है उस समय मन्देह नामक राक्षसों के साथ सूर्य का युद्ध होता है अतः प्रातःकाल गायत्री मंत्र से सूर्य को अर्घ्यदान २—4

देना लिखा है। मरीचि आदि मुषि और सनकादि योगियों ने भी प्रातःकाल सूर्य को अर्घ्यदान देना बताया ह। जो मनुष्य अर्घ्यदान नहीं करता है वह नरक मं जाता है (४-१६)। स्नान करने की विधि और स्नान करने के मन्त्र बताये गये हैं (१७-३३)। तीन पानी की चुल्छू पीना और पानी की अञ्जली सिर पर डालना। कुशा को हाथ मं लेकर पूव की ओर मुख करके प्रोक्षण करे (३४-३८)। प्राणायाम और गायत्री के मन्त्र जपने की विधि। जपकं मन्त्र का उच्चारण करने का विधान। जप के तीन मुख्यमेद वाचिक, उपाश और मानस। जप करने से देवता प्रसन्न होते हैं यह वताया गया है। जो नित्य गायत्री का जप करता है वह पापों से छट जाता है। गायत्री जप करने के वाद सूर्य को पुष्पाञ्जलि दे और सूर्य की प्रदक्षिणा कर नमस्कार करे पश्चात् तीथं के जल से तर्पण करे (३६-५०)। ब्रह्मयह के मंत्रों का वर्णन (५१-५४)। अतिथि पूजन और वश्वदेव की विधि बताई है (४४-६२)। पहले सुवासिनी स्त्री और कुमारी को भोजन करावे फिर बालक और बृद्धों को भोजन करावे तब

- ४ गृहस्थी भोजन करे। भोजन से पूर्व अन्न को हाथ जोड़े और पूव या उत्तर की ओर मुख करके पहले "प्राणाय स्वाहा" इत्यादि मंत्रों से पांच आहुति
  - देवे तब आचमन कर लेवे इसके बाद मौन पूर्वक म्वादिष्ट भोजन करे (६३-६४)। भोजन करने के अनन्तर दिन में कोई इतिहास, पुराण आदि की पुस्तकें पढ़नी चाहिये (६६)। प्रातःकाल एवं सायंकाल केवल दो समय ही गृहस्थी को भोजन करना चाहिये और बीच में कुछ नहीं खाना चाहिये (६७-६८)। अनध्याय काल (वह दिन जिनमें पुस्तकों को नहीं पढ़ना) का वर्णन किया गया है (६६-७३)। गृहस्थी को सुवर्ण गौ एवं पृथिवी का दान करना चाहिये (७४-७७)।

## थ वानप्रस्थाश्रम धर्मवर्णनम्—

223

वानप्रस्थ आश्रम के नियम बताये हैं जोकि अन्य धर्मशास्त्रों में समान रूप से बताये गये हैं (१-१०)।

### ६ सन्न्यासाश्रम धर्मवर्णनम् —

353

वानप्रस्थ के बाद सन्न्यास में जाना चाहिये और सन्न्यास में जाने के बाद छड़कों के साथ भी

स्तेह की बातें न करें (१-५)। संन्यासी को दंड, कौपीन तथा खड़ाऊ आदि धारण करने का नियम बताया है (६-१०)। संन्यासी को मिक्षा के नियम और धातु के पात्र में खाने का दोष बताया है (११-१६)। संन्यासी को सन्थ्या जप का विधान, भगवान का ध्यान जीव मात्र पर समदृष्टि रखने का आदेश दिया है (२०-२३)।

### ७ योगवर्णनम्—

533

वर्णाश्रम धर्म कहकर जिससे मोक्ष हो और पाप नाश हो ऐसे योगाभ्यास की क्रिया रोज करनी चाहिये (१-३)। प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा और ध्यान बतला कर सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में जो भगवान हैं उनका ध्यान करना लिखा है। जिस प्रकार बिना घोड़े के रथ नहीं चल सकता उसी प्रकार बिना तपस्या के केवल विद्या से शान्ति नहीं होती हैं। तप और विद्या दोनों इस जीव के पृष्ठ भाग है जिससे उत्तम गति को पाता है (४-११)। विद्या और तपस्या से योग में तत्पर होकर सूक्ष्म और स्थूल दोनों देह को छोड़कर मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। हारीत मृषि कहते हैं कि मैंने संक्षेप से ४ वर्ण एवं ४ आश्रमों के धमे इस उद्देश्य से बताये हैं कि मनुष्य अपने वर्ण और आश्रम के धर्म पालन से भगवान मधुसूदन का पृजन कर वंष्णव पद को पहुंच जाता है (१२-२१)।

### वृद्धहारितस्मृति कं प्रधान विषय

### १ पश्चसंस्कार प्रतिपादनवर्णनम्—

833

राजा अम्बरीप हारीन क्षृपि के आश्रम में गये। वहां जाकर हारीत से परम धर्म, वर्णाश्रम धर्म, क्षियों का धर्म नथा राजाओं के लिये मोक्ष मार्ग पृद्धा (१-६)। उपर्युक्त प्रश्न के उत्तर में हारीत ने कहा कि मुक्ते जो ब्रह्माजी ने वताया है वह में आपको कहता हूं। नारायण वासुदेव विष्णु-भगवान सृष्टिके विधाता हैं अतः उन भगवान का दास होना ही सबसे बड़ा धर्म है (७-१६)। में विष्णु का दास हूं यही भावना चित्त में रखना। नारायण के जो दास नहीं होते हैं वे जीते जी चाण्डाल हो जाते हैं। इसलिये अपनेको भगवान

का दास समक्षकर जप पूजादि करे, नारायण का मनसे ध्यान कर उनका संकीतन करे और शांख, चक्र, ऊर्धपुंड्र धारण करे यह दास के चिन्ह हैं। जो वैष्णव शंख, चक्र धारण करता है वही पूज्य है और वही धन्य है यह बताया है (१७-३६)।

पंच संस्कार शंखचक चिन्ह धारण कथेपुण्ड़ादि की विधि, वैष्णव सम्प्रदाय की दीक्षा, उसका माहात्म्य, वैष्णव सम्प्रदाय के वालक की पंच संस्कार विधि बताई गई है (१-१४)।

३ भगवन मंत्रविधान वर्णनम्—

१०१२

अम्बरीष राजा ने हारीत ऋषि से वैष्णव मन्त्रों का माहात्म्य तथा विधि पूछी। इसके उत्तर में हारीत ने बड़े विचार के साथ पंचविंशति अक्षर का मन्त्र, अष्टाक्षर मंत्र, द्वादशाक्षर मंत्र, हयप्रीव मंत्र तथा पोड़शाक्षर मंत्र आदि अनेक वैष्णव मंत्रों का उद्धरण, उनके विनियोग, न्यास, ध्यान, जप विधि, शंख, चक्र पूजन और भगवान विष्णु केपूजन आदि का सुन्दर वर्णन किया है (१-३६२)।

**४ प्राप्तकाल भगवत् समाराधन विधिवर्णनम्— १०५०** 

प्रातःकाल उठने का विधान, शौच से निवृत्त हो वेष्णव धर्म के अनुसार तुलसी और आंवले की मिट्टी को अपने बदन पर लगाकर मार्जन करने और स्नान करने का विधान तथा मन्त्रों का विधान बताया है (१-४६)। विष्णु का पूजन और विष्णु को कौन-कौन पुष्प चढ़ाने चाहिये एवं पडश्चर मंत्र का विधान (४७-१४०)।

४ प्राप्तकाल भगवत्समाराधन विधौ कृषिवर्णनम् १०६५

पुराणों का पाठ, वैष्णव पूजा का विधान बताया है। तामस देवनाओं का वर्णन और द्रव्य शुद्धि का वर्णन आया ह। खेती करना, पशु का पालन करना सबके लिये समान धर्म बताया है। चोरी करना, परस्ती हरण, हिंसा सबके लिये पाप बताया है (१४१-१७४)।

# प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौ राजधर्मवर्णनम् १०६७

राजधर्म का वर्णन, दण्डनीति विधान-प्रायः वही है जो याज्ञवल्क में हैं। इसमें विशेषता यह है कि धर्मच्युत को सहस्र दण्ड विधान बताया है। खी के साथ व्यभिचार करनेवाले का अंगच्छेदन, सर्वस्वहरण और देश निष्कासन बताया है (१७५-२१३)। युद्ध का वर्णन और युद्ध में राज्य जीतकर उसे अपने आधीन कर राज्य समर्पित कर देना इसकी बड़ी प्रशंसा की गई है एवं विजय की हुई भूमि सत्पात्र को देनी चाहिये। सत्पात्र के लक्षण-तपस्या और विद्या की सम्प-न्नता है (२१४-२२३)। राज्यशासन का विधान कर लगाना, याचित, अनाहित और भ्रणदान देने का विधान, पुत्र को पिता का भ्रण देना, स्त्री धन की रक्षा, पतिव्रता स्त्री का पालन, व्यभिचारिणी को पित के धन का भाग न मिलने का वर्णन और बारह प्रकार के पुत्रों का वर्णन इस तरह संक्षेप

में राजधर्म और भागवत धर्म की जिज्ञासा लिखी है (२२४-२६४)।

प्र भगवन्नित्यनैमित्तिक समाराधन विधिवर्णनम् १०७४

राजा अम्बरीपने मनु, भृगु, वशिष्ट, मरीचि, दक्ष, अङ्गिरा, पुलः, पुलस्त्य, अत्रि इनको जगन् गुरु कहकर प्रणाम किया और वह परमधर्म पूछा जिससे संसार के वन्धन से छटकारा हो जाय (१-६)। उत्तर में परमधर्म इस प्रकार बताया:-भगवान वासुदेव में भक्ति और उनके नाम का जप, भगवान को उद्देश्य कर व्रतादि, स्वदार में प्रीति दूसरी स्त्री में लगन न हो, अहिंसा और भगवान का दास होकर रहना आदि आदि। मेरा स्वामी भगवान है और में उनका दास हूं यह धारणा रक्खं। यही भगवत् प्राप्ति का मार्ग् हे और इसके अतिरिक्त सब नरक का मार्ग बताया है (१०-१६)। वैष्णव धर्म का माहात्म्य और अपनेको भगवान का दास समभना (१७-४०)। तप्त शंख चक का चिन्ह जिनपर लगाया गया उन महाचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थी और यतियों का नित्य कर्म और वर्णाचार, पूजन, जप, उपासना का विधान

विस्तार से बताया गया है (४१-२४६)। यति ¥ एवं वानप्रस्थ का रहनसहन तथा मन से अष्टो-त्तर षट् मन्त्र का जप, उनका धर्म, सन्ध्या का विधान, वैश्वदेव और भूतबलि का विधान, दिनचर्या संस्कार तथा पुत्रोत्पत्ति का विधान (२४७-३०२)। वैष्णवों को प्रातःकाल में स्नान कर लक्ष्मीनारायण के पूजन की विधि वताई है। भगवान को पायस चढाकर पुष्पाञ्जलि देकर द्वादशाक्षर जप करने का विधान आया है (३०३-३१३)। मन्दिर में जाकर पूजन और द्वादशा-क्षर मन्त्र से पुष्पाञ्जली देना (३१४-३२७)। वैशाख, श्रावण, कार्तिक, माघ, इन मासों में जिस प्रकार भगवान विष्णु का पूजन तथा विष्णु के उत्सवों का वर्णन आया है और पुराण पाट आदि भगवान के पूजन कीर्तन के अनेक प्रकार के विधान बताये हैं (३२८-४६२)।

६ भगवतः यात्रोत्सववर्णनम्— ११२७ वैष्णवेष्टि क्रियातः श्राद्धपर्यन्त विधिवर्णनम् ११३७ भगवान के महोत्सव की विधियां हैं जो कि अपने आचार के अनुसार की जाती है जिनसे अनावृष्टि श्रादि उत्पात तथा महारोग दूर होते हैं। संवत्सर, प्रित संवत्सर या प्रित अगृतु में महोत्सव करने का विधान लिखा है। इन महोत्सवों में मण्डप के सजाने की विधि और नगर कीर्तन यज्ञ आदि की विधि बताई है। किस दशा में किस सूक्त का पाठ करना बताया है। भगवान को नीराजन कर शच्या में सुलाना उसके मंत्र बताये गये हैं और विस्तार से बृहत्पूजन की विधि बताई है। श्राद्ध का वर्णन और श्राद्ध न करने पर नारायणबलि का विधान बताया है (१-१६५)। सात्विक, राजसिक, तामसिक प्रकृति का वर्णन और पाप के अनुसार नरक की गित और उन नरकों के नाम (१६६-१७१)।

# ६ महापातकादि प्रायक्चित्त वर्णनम्-

११४३

पापों का वर्णन (१७२)। महापाप जिनका कि
अग्नि में जलने के अतिरिक्त और कोई प्रायश्चित्त
नहीं उनका वर्णन आया है। सब प्रकार के
पाप, प्रकीर्ण पाप और उनका प्रायश्चित्त बताया
है। द्वादशाक्षर मंत्र के जप से पापों का नाश
और ग्रुद्धि बताई है (१७३-२४१)।

### ६ रहस्य प्रायश्चित्तवर्णनम्---

११५३

सम्पूर्ण प्रकार के पापों की गणना बतला कर उनका प्रायश्चित्त बत, जप, दान आदि बताया है। इसी तरह गुप्त पापों से छुटकारा जिस तरह हो सके उनका प्रायश्चित्त और दान तथा भगवान का मन्त्र जप बताया है (२४६-३५०)।

६ महापापादि प्रायिश्वत्त प्रकरण वर्णनम्— ११६० रजस्वला के स्पर्श से लेकर बड़े-बड़े पापों की निवृत्ति के लिये वापी, कूप, तड़ाग, बृक्ष लगाने का माहात्म्य और वेंकुण्ठनाथ विष्णु भगवान के पूजन का माहात्म्य आया है (३५१-४४६)।

७ नानाविधात्सव विधानवर्णनम्---

३३६६

नारायण इष्टी, वासुदेव इष्टी, गारुड़ इष्टी, वैष्णवी इष्टी, वेंगुही इष्टी, वेभवी इष्टी, पाद्मी इष्टी, पव-मानिका इष्टी का विधान आया है और इनके मन्त्र तथा यज्ञ पुरुष के बनाने का विधान, द्रव्य यज्ञ, तपोयज्ञ, योगयज्ञ, स्वाध्याय, ज्ञान यज्ञ इनका विधान बताया है। यज्ञ की वेदी बनाना उनके मन्त्र आदि का वर्णन किया है (१-६६)। कृष्ण पक्ष की एकादशी में उपवास व्रत, रात्रि जागरण और द्वादशी को द्वादशाक्षर मंत्र का जप, भगवान का पूजन, देवर्षियों के तर्पण का विधान बताया है (७०-६०)। वैष्णवी इष्टी (यज्ञ) का विधान बताया है। उनके मन्त्र, उनकी सामग्री और वैष्णव गायत्री का जप बताया है ( ६१-१०४ )। शुक्र-पक्ष की द्वादशी, संक्रान्ति और प्रहण के समय संकर्षणादि की मूर्ति, वासुदेव की मूर्ति का पूजन और किस प्रकार किस देवता की मूर्ति बनानी तथा पूजन बताकर वैभवी इष्टी का विधान बताया है। यह बैष्णवी यह जो विष्णु भक्त न करे उसको पाप बताया है। इसमें कहां पर किस देवता की स्थापना करनी चाहिये उनका वर्णन बताया है। शुक्रुपक्ष की शुक्रवारीय द्वाद्शी को पाद्मी इष्टी का विधान बताया है। इसमें भगवान् का उत्सव और उसका माहात्म्य बताया है। जलशायी भगवान् का पूजन बताया है और इनके मन्त्र बताये हैं। दोलयात्रा उत्सव का वर्णन बताया है। भगवान् का विशेष प्रकार से पूजन, विशेष प्रकार से भोग और विशेष प्रकार से कीर्तन, रथयात्रा का वर्णन आया है (१०६-३२६)।

८ विष्णुपूजा विधिवर्णनम्—

१२०१

विष्णु की पूजा की विधि वेद के मन्त्रों से बताई गई है (१-६०)।

सवृत्यधिकार भाण्डादीनाम् संग्रुद्धिवर्णनम् १२०६ सभावद्ष्यादि द्रत्र्यभाण्डादीनाम् संशुद्धिवर्णनम्१२११ स वैष्णवलक्षण नवविघेज्याभिघान वर्णनम्— १२१५ स्त्रीधर्माभिभान वर्णनम्— १२१७ स चक्रादि धारण पुण्ड्कियाभिधान वर्णनम् १२२१ वैष्णव दीक्षा विधि वर्णनम— १२२३ वैष्णवधर्म निरूपणम्-१२२५ वैष्णव प्रशंसा वर्णनम्— १२२७ स श्राद्ध कथनपर्वक विष्णोस्थानप्राप्ति वर्णनम् १२२६

स वैष्णव धर्माभिधानैतच्छास्रस्यफलश्रुति वर्णनम्—

१२३३

पौराणिक तथा स्मृति के मन्त्रों से भगवान् विष्णु का पूजन और नवधा भक्ति का वर्णन, ध्यानजप, मन्त्रजप का वर्णन, तप्तचक्रांक धारण का माहास्त्य और वैष्णव धर्मवालों की प्रशस्ति बताई है।

''दानं दमः तपः शौचं आर्जवं शान्तिरेव च आनृशंसं सतां संग पारमैकान्त्य हेतवः। वैष्णवः परमेकान्तो नेतरो वैष्णवःस्मृतः॥

पूजा का माहात्म्य और भिन्न भिन्न प्रकार से जो भगवान विष्णु की पूजा उत्सव यह दान वताये हैं, इन सबका तात्पर्य यह है कि भक्त पर विष्णु भगवान की कृपा हो जाय। जिसपर वैष्णव संस्कारों से विष्णु भगवान की कृपा या आशि-र्वाद हो जाता है उनका जीवन-चरित्र ऐसा होता है—दान करना, दम इन्द्रियों का दमन, तप तपस्या, शौच पवित्रता, आर्जव सरस्ता, शान्ति क्षमा, आनुशंसं सत्य वचन, सज्जनों का

प्रधानविषय

पृष्ठाङ्क

संग, परमेकान्त में रहना ये वैष्णव के चिह्न हैं ( ६१-३५१ )।

बृहत् हारीत स्पृति में स्पृति-प्रतिपाद्य आचार-व्यवहार प्रायश्चित्त के समुचित निर्णय के अति-रिक्त वैष्णवाचार, वैष्णवोपासना, विष्णु इप्टी; विष्णु पूजन सांग सावरण; वैष्णव पूजा उत्सव; रथयात्रा; एकादश्यादि व्रतोद्यापन; मण्डप-रचना आदि का सुचाक विधान निरूपण किया है।

स्मृति सन्दर्भ द्वितीय भाग की विषय-सूची समाप्त।

॥ शुभम् ॥

---**\*::**\*--

#### ॥ ॐ तत्सद्वह्यणे नमः ॥

### श्रीमन्महर्षि पराशरप्रणीता-

# ॥ पराशरस्मृतिः ॥

-:000:--

प्रथमोऽध्यायः।

---00---

श्रीगणेशायनम:।

तत्रादौ-धर्मोपदेशंतहक्षणश्वाह-

अथातो हिमशैलांग देवदाहवनालये।
व्यासमेकाप्रमासीनमप्टच्छन्नृपयः पुरा ॥१
मानुषाणां हितं धर्मं वर्त्तमाने कलौ युगे।
शौचाचारं यथावच वद सत्यवतीसुत!॥२
तच्छ्रुत्वा मृषिवाक्यन्तु समिद्धाम्न्यर्कसिन्नभः।
प्रत्युवाच महातेजाः श्रुतिस्मृतिविशारदः॥३
नचाहं सर्व्वतत्त्वज्ञः कथं धर्मं वदाम्यहं।
अस्मत् पितेव प्रष्टव्य इति व्यासः सुतोऽवद्त्॥४

ततस्ते भूषयः सर्व्ये धर्मतत्त्वार्थकाङ्किणः। भूपिं व्यासं पुरस्कृत्य गता वदरिकाश्रमे ॥५ नानावृक्षसमाकीर्णं फलपुष्पोपशोभितम्। नदीप्रस्रवणाकीर्णं पुण्यतीर्थेरलङ्कृतम् ॥६ मृगपिक्षगणाह्यञ्च देवनायतनावृतप्। यक्षगन्धर्विसद्धेश्च नृत्यगीतसमाक्कञम् ॥७ तस्मिन्तृपिसभामध्ये शक्तिपुत्रं पराशरम्। सुखासीनं महात्मानं मुनिमुख्यगणावृतप् ॥८ कृताञ्जलिपुटो भूत्वा व्यासस्तु ऋषिभिः सह्। प्रदक्षिणाभिवादैश्च स्तुतिभिः समपूजयत्।।६ अथ सन्तुष्टमनसाः पराशरमहामुनिः। आह् सुस्वागतं ब्रहीत्यासीनो मुनिपुङ्गवः॥१० क्यासः सुरवाग**तं** ये च ऋषयश्च समन्ततः। कुशलं कुशलेरयुक्ता व्यासः प्रच्छत्यतः परम्।।११ यदि जानासि मे भक्ति स्नेहाद्वा भक्तवस्तल ! ' धर्म कथय मे तात ! अनुवाह्योह्यहं तव ॥१२ श्रुता मे मानवा धर्म्मा वाशिष्टाः काश्यपास्तथा। गार्गेया गीतमाश्चेव तथा चौशनसाः स्पृताः ॥१३ अत्रेविष्णोश्च साम्बर्ता दाक्षा आङ्गिरसास्तथा। शातातपारच हारीता याज्ञवल्क्यकृतारच ये ॥१४ कात्यायनकृता श्चेव प्राचेतसकृताश्च ये। आपस्तम्बकृता धर्म्माः शङ्कस्य लिखितस्य च ॥ १४ श्रुता ह्यते भवत्त्रोक्ताः श्रीतार्थास्तेन विस्मृताः। अस्मिन्मन्वन्तरे धर्माः कृतत्रेतादिके युरो॥१६ सर्व्वे धर्मा कृते जाताः सर्वे नष्टाः कलौ युगे। चातुर्वण्यसमाचारं किश्वित् साधारणं वद् ॥१७ व्यामवाक्यावमाने तु मुनिमुख्यः पराशरः। धर्मस्य निर्णयं प्राह सृक्ष्मं स्थूल्ख विस्तरात ॥१८ शृणु पुत्र । प्रबक्ष्ये उहं शृण्यन्तु ऋषयम्तथा ॥१६ कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तौ ब्रह्मविष्गुमहेश्वराः। श्रुतिः स्पृतिः सदाचारा निर्णेतव्यास्च सर्वदा ॥२० न कश्चिद्वंदकत्तां च वेदस्मर्ता चतुर्मुखः। तथैव धर्मं स्मरति मनु कल्पान्तरान्तरे ॥२१ अन्ये कृतयुगे धम्मास्त्रतायां द्वापरे परे। अन्ये कल्रियुगे नृणां युगरूपानुसारतः॥२२ तपः परं कृतयुगे त्रेतायां ज्ञानसुच्यते। द्वापरे यज्ञमित्यूचुईनिमेकं कली युगे ॥२३ कृते तु मानवो धर्मम्बेतायां गौतमः स्वृतः। द्वापरे शाङ्कलिखितः कलौ पाराशरः स्पृतः॥२४ त्यजेदेशं कृतयुगे त्रतायां वाममुल्यूजेत्। द्वापरे कुछमेकन्तु कर्त्तार्थ कस्त्री युगे ॥२४ कृते सम्भाषणात पापं त्रेताबाब्चेव दर्शनात । द्वापरे चान्नमादाय कली पत्तति कर्मणा ॥२६

कृते तु तत्क्षणाच्छापस्नतायां दशभिर्दिनैः। द्वापरे मासमात्रेण कली सम्वत्सरेण तु ॥२७ अभिगम्य कृते दानं त्रतास्वाह्य दीयते। द्वापरं याचमानाय सेवया दीयते कली ॥२८ अभिगम्योत्तमं दानमाहृतब्चेव मध्यमम् । अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानश्व निष्फलम् ॥२६ कृते चास्थिगताः प्राणास्त्रेतायां मांससंस्थिताः। द्वापरं रुधिरं यावत् कलावन्नादिषु स्थिताः ॥३० धर्मो जितो ह्यधर्मेण जितः मत्योऽनृतेन च। जिता भृत्येस्त राजानः स्वीभिश्च पुरुषा जिताः॥३१ सीदन्ति चाप्रिहोत्राणि गुरुपूजा प्रणश्यति। कुमार्घ्यश्च प्रसूयन्ते तस्मिन् कलियुगे}सदा ॥३२ युगे युगे च ये धर्मास्तत्र तत्र च ये द्विजाः। तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपाहि देते द्विजाः ॥३३ युगे युगे च सामध्य शेषं मुनिविभाषितम्। पराशरेण चाप्युक्तं प्रायश्चित्तं प्रधीयते ॥३४ अहमद्येव तद्धममनुस्मृत्य त्रवीमि वः। चातुर्वर्ण्यसमाचारं शृणुध्वं मुनिपुङ्गवाः ! ॥३४ पाराशरमतं पुण्यं पवित्रं पापनाशनम्। चिन्तितं ब्राह्मणार्थाय धर्मसंस्थापनाय च ॥३६ चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपाळकः। आचारश्रष्टदेहानां भवेद्वर्मः पराङ्गुखः ॥३७

पट्कर्माभिरतो नित्यं देवतातिथिपृजकः। हुतशेषन्तु भुञ्जानी ब्राह्मणो नावमीदित ॥३८ सन्ध्यास्त्रानं जपो होम स्वाध्यायो देवतार्चनम्। वैश्वदेवातिथेय 🗃 षर्कर्माणि दिने दिने ॥३६ प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्म्व पण्डित एव वा। वंश्वदेवे तु संप्राप्तः मोऽतिथिः स्वर्गमंक्रमः॥४० द्राद्ध्वानं पथि श्रान्तं वश्वदेवे उपस्थितम् । अतिथि तं विजानीयात्रातिथिः पूर्वमागतः ॥४४ न पुच्छेद्रोत्रचरणं न स्वाध्यायव्रतानि च। हृद्यं कल्पयेत्तिस्मन सर्वदेवमयोहि सः॥४२ नैकवामीणमतिथि विष्रं साङ्गमिकं तथा। अनित्यं ह्यागतो यस्मात्तस्माद्तिथिकच्यते ॥४३ अपूर्वः सुन्नती विप्रो ह्यपूर्वी वातिथिस्तथा। वेदाभ्यासरतो नित्यं त्रयोऽपूर्वा दिने दिने ॥४४ वैश्वदेवे तु संप्राप्ते भिक्षुके गृहमागते। उद्घृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥४६ यती च ब्रह्मचारी च पकान्नस्वामिनावुभौ। तयोरस्रमदत्वा च भुक्तवा चान्द्रायणश्वरेत ॥४६ यतिहस्ते जलं द्याद्वेक्षं द्यान् पुनर्जलम्। तद्भेक्षं मेरूणा तुल्यं तज्जलं सागरोपमम् ॥४७ वैश्वदेवकृतान् दोषान् शक्तो भिक्षुव्यंपोहितुम्। नहि भिक्षु कृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥४८

अकृत्वा वंश्वदेवन्तु भुञ्जते ये द्विजातयः। सर्वे ते निष्फला ज्ञेयाः पतन्ति नरके शुची ॥४६ शिरोवेष्टनतु यो भुङ्कं योभुङ्कं दिवणामुखः। वामपादे करं न्यस्य नद्धे रक्षांसि भुञ्जते ॥५० यतये काञ्चनं दस्वा ताम्यूलं ब्रह्मचारिणे। चौरेभ्योऽयभयं दुस्वा दातापि नरकं ब्रजेत ॥५१ पापोवा यदि चाण्डालो विप्रध्नः पितृघातकः। बैश्वदेवे तु सन्त्राप्तः सोऽतिथिः स्वर्गमंकमः ॥५२ अतिथियम्य भग्नाशो गृहान् प्रतिनिवर्त्तते। पितरम्तम्य नाश्नन्ति दशवर्पशतानि च ॥५३ न प्रमुख्याति गो विप्रो ह्यतिथि वेदपारगम्। अदद्त्रात्रमात्रन्तु भुक्त्वा भुङ्कं तु किल्विषम् ॥४४ ब्राह्मणस्य मुखं क्षेत्रं निरुद्कमकण्टकम्। वापयेत सर्व्वीजानि सा कृषिः सर्वकामिका ॥४४ मक्षेत्रं वापयेद्वीजं सुपुत्रं दापयेद्धनं। सुक्षेत्रं च सुपत्रं च यत्थियं नैव नश्यति ॥ ६६ अनृता ह्यनधीयाना यत्र मैक्षचरा द्विजाः। तं ब्रामं दण्डयेदाजा चौरभक्तप्रदो हि सः ॥५७ क्षत्रियोहि प्रजा रक्षन् शस्त्रपाणिः प्रचण्डवन् । विजित्य परमैन्यानि क्षिति धर्मेण पालयेत्॥६८ न श्री: कुलक्रमायाता स्वरूपाडिखितापि या। खड्गेणाकम्य भुद्धीत वीरभोग्या वसुन्धरा ॥६६

पुष्पं पुष्पं विचित्तयानमूलच्छेदं न कारयेत्।
मालाकार इवोद्याने न तथाङ्गारकारकः।।६०
लोहकर्म तथा रत्नं गवाश्व प्रतिपालनम्।
बाणिज्यं कृषिकर्माणि वेश्यवृत्तिकदाहृता।।६१
शूद्राणां द्विजश्रपूपा परो धर्मः प्रकीर्त्तितः।
अन्यथा कुरुते किश्विनद्भवेतस्य निष्फलम्।।६२
लवणं मयु तेलश्व द्धि तक्रं घृतं पयः।
न दृष्येन्छूद्रजातीनां कृष्यांत्र सर्वस्य विकयम्।।६३
अविकयं मग्रमासमभश्यस्य च भक्षग्रम्।
अगम्यागमनव्येव शूद्रोजिप नरकं व्रजेत्।।६४
किपलाक्षीरपानेन ब्राह्मगोगमनेन च ।
वेदाक्षरिवचारेण शूद्रस्य नरकं ध्रुवम्।।६४

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः॥

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

अतःपरं गृहस्थस्य धर्माचारं कलौ युगे। धर्मं साधारणं शक्यं चातुर्वर्ण्याश्रमागतम्॥१ संप्रवक्ष्याम्यहं भूयः पाराशर्ण्यं प्रचोदितः। षट्कर्मनिरतो विप्रः कृषिकर्माणि कारयेत्॥२ हलमप्टगवं धर्म्यं षड्गवं मध्यमं स्पृतम्। चतुर्गवं नृशंसानां द्विगवं वृपघातिनाम।।३ क्ष्घितं तृषितं श्रान्तं वलीवईं न योजयेन्। हीनाङ्गं व्याधितं क्रीवं वृपं विप्रो न वाह्येत्।।४ स्थिराङ्गं नीकजं दृष्यं वृष्यं पण्डवर्जितप्। वाहयेदिवसम्याद्धं पश्चान स्नानं समाचरेत्।।४ जपं देवार्चनं होमं स्वाध्यायं माङ्गमभ्यसेत्। एकद्वित्रिचतुर्विप्रान् भोजयेन् स्नातकान् द्विजः ॥ई स्वयंक्टरं तथा क्षेत्रं धान्येश्व स्वयमर्जितैः। निर्वपेत् पञ्च यज्ञानि क्रनुदोक्षाञ्च कारयेत्।। अ तिञा रसा न विकंया विकंया धान्यतःसमा। विप्रस्यैवंविधा वृत्तिस्तृणकाष्ठादिविक्रयः ॥८ ब्राह्मणस्तु कृषि कुःवा महादोप मवाप्तुयात्। सम्बत्सरेण यत्पापं मत्स्यवाती समार्त्रयात्। अयोम्बन काष्ठेन तदेकाहेन लाङ्गली।।६ पाशको मत्यवानी च व्याधः शाक्तिकल्रथा। अदाता कर्षकश्चेव पञ्चेते समभागिनः॥१० कण्डनी पेपणी चुल्ली उदकुम्भोऽथ मार्जनी। पश्व शूना गृहस्थत्य अहन्यहिन वर्तते ॥११ वृक्षान् ब्रित्वा महीं हृत्वा हत्वा तु मृगकीटकान्। कर्षकः खञ्ज यज्ञन सर्वपापान् प्रमुच्यते ॥१२

यो न द्द्याद्दिजातिभ्यो राशिमूलमुपागतः।
स चौरः म च पापिष्ठो ब्रह्मन्नं तं विनिर्द्दिशेत् ॥१३
राज्ञे दत्वा तु पड्भागं देवानाञ्चेकविशकमः।
विप्राणां त्रिंशकं भागं कृषिकर्ता न लिप्यते ॥१४
क्षत्रियोऽपि कृषि कृत्वा द्विजान् देवांश्च पूजयेत्।
वैश्यः शूद्रः मदा कुर्यात् कृषिवाणिज्यशिल्पकान् ।१४
विकर्म कुर्वते शूद्रा द्विजसेवाविवर्जिताः।
भवन्त्यल्पायुपस्ते वं पतन्ति नरकेषु च ॥१६
चतुर्णानामपिवर्णानामेष धर्मः सनातनः॥१७

।। तृतीयोऽध्यायः ॥ अशौचव्यवस्थावर्णनम् ।

इति पाराशरे धर्मशास्त्रं द्वितीयोऽध्यायः॥

अतः शुद्धि प्रवक्ष्यामि जनने मरण तथा।
दिनत्रयेण शुद्धधन्ति ब्राह्मणाः प्रेतसृतके॥१
क्षित्रियो द्वादशाहेन वैश्यः पश्चदशाहकेः।
शूद्रः शुद्धति मासेन पराश्यवचो यथा॥२
उपासने तु विप्राणामङ्गशृद्धिस्तु जायते।
ब्राह्मणानां प्रसृतौ तु देहस्पशों विधीयते॥३
जाते विप्रो दशाहेन द्वादशाहेन भूमिपः।
वैश्यः पश्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुद्धधित ॥४

एकाहाच्छद्धचते विप्रो योऽप्रिवेदसमन्धितः। ज्यहान केवलवेदस्तु द्विहीनो दशभिर्दिनैः॥५ जन्मकमपरिभ्रष्टः सन्ध्योपासनवर्जितः। नामबारकविश्रस्य दशाहं सृतकं भवेत्॥६ एकपिण्डाग्त् दायादाः पृथग्दारनिकेतनाः। जन्मन्यपि विपत्तौ च भवेत्तंपाश्च सूतकम्॥७ उभयत्र दशाहानि कुलस्यान्नं न भुञ्जते। दानं प्रतिप्रहो होम स्वाध्यायश्च निवर्त्तते ॥८ प्राप्नीति सूतकं गोत्रे चतुर्यपुरुषेण तु। दायाद्विच्छंदमाप्नोति पश्वमो वाश्मवंशजः ॥६ चतुर्थे दशरात्रं स्यात् षणिगशा पुंसि पश्चमे । पण्डे चतुरहाच्छ्रद्वि सममे तु दिनत्रयम्॥१० पश्वभिः पुरुरेर्युक्ता अश्राद्धेया सगीत्रिगः। ततः षट्पुरुपाद्यश्च श्राद्धे भोज्याः मगोत्रिणः॥११ भृग्वग्निमरणं चैव देशान्तरमृते तथा। वाले प्रेते च मन्त्यामे सद्यः शौचं विधीयते ॥१२ दशरात्रेष्वतीनेषु त्रिरात्राच्छ्द्धिरिष्यते । तत सम्बत्मरादृद्धं सचैलं स्नानमाचरेन् ॥१३ देशान्तरमृतः कश्चित् सगोत्रः श्र्यतं यदि। न त्रिरात्रमहोरात्रं सद्यः स्नात्वा विश्रद्धचित ॥१४ आत्रिपक्षात्त्रिगत्रं स्यादाषण्मासाच पक्षिणी। अहः सम्वत्सराद्ववांकु सद्यः शौचं विधीयते ॥१४

अजानदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःस्रताः। न तेषामग्निसंरकारो नाशीचं नोदकक्रिया ॥१६ यदि गर्भोविपद्यंत स्त्रवतं वापि योपिताम । यावन्सामं स्थितोगर्भो दिनं तावत् म सूतकः ॥१७ आ चतुर्थाद्भवेत् स्रावः पातः पश्चमषप्रयोः। अत उद्भवं प्रमृतिः स्यादशाहं मृतकं भवेन ॥१८ प्रसृतिकालं संप्राप्त प्रसवे यदि योषिताम्। जीवापत्ये तु गोत्रस्य मृतं मात्रश्च सृतकम् ॥१६ रात्रावेव समुत्पन्नं मृते रजसि मृतके। पूर्वमेव दिनं प्राह्मं यावन्नोद्यतं रविः॥२० दन्तजातं उनुजातं च कृतच्ड्रं च संभितं। अग्निसंस्करणं तेयां त्रिरात्रं सूतकं भवेत् ॥२१ आ दन्तजननान् सद्य आच्डान्नेशिकी स्मृता। त्रिरात्रमात्रतात्तेषां दशरात्रमतः परम् ॥२२ गर्भे यदि विपत्तिः स्यात्दशाहं सूतकं भवेत्। जीवन् जातो यदि प्रेत सद्य एव विशद्धश्वति ॥२३ स्रीणां चूड़ाम आदानात् संक्रमात्तद्धःक्रमात्। सद्यः शौचमथैकाहं त्रिरहः पितृबन्धुपु ॥२४ ब्रह्मचारी गृहे येषां हुयते च हुताशने। सम्पर्क न च कुर्वन्ति न तेषां सूतकं भन्नेत्॥२४ सम्पर्काद्दुष्यते विप्रो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे। सम्पर्केषु निवृत्तस्य न प्रेतं नैव सूतकम् ॥२६

शिल्पिनः कारुका वैद्या दासीदासाश्च नापिताः। श्रोत्रियाश्चेव राजानः सद्यः शौचाः पुकीर्त्तिताः ॥२७ सन्तरी मन्त्रपृतश्च आहिताग्निश्च यो द्विजः। राज्ञश्च सूतकं नान्ति यस्य चेन्छति पार्थिवः॥२८ उद्यतो निधने दाने आर्त्तो विष्ो निमन्त्रितः। तदेव ऋषिभिर्द्धं यथाकालेन शुद्धयति॥२६ प्सवे गृहमेधी तु न कुर्यान सङ्करं यदि। दशाहाच्युद्धचनं माता अवगाह्य पिता श्चिः॥३० सर्वेपां स्नावमाशौचं मानापित्रोईशाहिकं। सूतकं मातूरेव स्यादुपस्प्रश्य पिता शचिः॥३१ यदि पत्न्यां प्रमृतायां सम्पर्कं कुन्ते द्विजः। मृतकन्त् भवेत्तस्य यदि विपः षडङ्गवित्॥३२ सम्पर्काजायतं दोषो नान्यो दोषोऽस्ति ब्राह्मणे। तस्मान् सर्वपयत्नेन सम्पर्कं वर्जयेद्द्विजः ॥३३ विवाहोत्मवयज्ञंपु त्वन्तरा मृतसूतके। पूर्व सङ्कल्पितं द्रव्यं दीयमानं न दृष्यति ॥३४ अन्तरा तु दशाहस्य पुनर्मरणजन्मनी। तावत् स्यादशुचिर्विपोयावत् स्यादनिर्दशम् ॥३४ ब्राह्मणार्थे विपन्नानां वन्दिगोग्रहणे तथा। आह्वेषु विपन्नानामेकरात्रन्तु सूतकम्॥३६ द्वाविमी पुरुषो लोके सूर्यमण्डलभेदकी। परिवाड्योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखं इतः ॥३७

यत्र यत्र हतः श्र्रः शत्रुभिः पिरविष्टितः।
अक्षयां हमते लोकान् यदि क्षीवं न भाषते ॥३८
जितेन लभते लक्ष्मीं मृतेनापि मुराङ्गनाः।
आणिविष्वं मिकेऽमुम्मिन् का चिन्ता मरणे रणे ॥३६
यत्तु भग्नेषु सैनेषु विद्रवत्मु समन्ततः।
पित्राता यदा गच्छेत् म च ऋतुफलं लभेत्॥४०
यस्य च्छेदक्षतं गात्रं शरशक्त्यृष्टिमुद्गरेः।
देवकन्यास्तु तं वीरं गायन्ति रमयन्ति च ॥४१
वराङ्गनासहस्राणि श्रूरमायोधने हतं।
नागकन्याश्च धावन्ति मम भक्तां भवेदिति॥४२
ललाटदेशाद्विधरं हि यस्य

तप्तस्य जन्तोः प्रविशेच वक्ते।
तत् सोमयानेन हि तस्य तुल्यं
संप्रामयज्ञे विधिवच दृष्टम्।।४३
यं यज्ञसंघैस्तपसा च विद्यया
स्वर्गेषिणो वात्र यथैव विप्राः।
तथैव यान्त्येवहि तत्र वीराः

प्राणान् सुयुद्धेन परित्यजन्तः ॥४४ अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः। पदे पदे यज्ञफलमानुपूर्वाह्मभन्ति ते॥४५ असगोत्रमबन्धुभा प्रेतीभूतभा ब्राह्मणं। नीत्वा च दाहयित्वा च प्राणायामेन शुद्धचित ॥४६

न तेषामशुभं कि चिद्दिजानां शुभकर्मणि। जलावगाह्नात्तंयां शुद्धिः स्मृतिभिरीरिता ॥४७ अनुगम्येन्छया प्रेतं ज्ञातिमज्ञातिमेव वा। स्नात्वा चैव तु स्पृष्टागिन घृतं प्राश्य विश्रद्धवति ॥४८ क्षत्रियं मृतमज्ञानादु ब्राह्मणो योऽनुगच् ब्रति । एकाह्मशुचिर्भ्त्या पश्चगव्येन शुद्धश्वति ॥४६ शव च वेश्यमज्ञानादुबाह्मगो योऽनुगच्यति। कृत्वा शोचं द्विरात्रभा प्राणायामान् पडाचरेत्।।५० प्रेतीभूतन्तु यः शूद्रं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्वलः। नयन्तमनुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेन् ॥५१ त्रिरात्रे तु ततः पूर्ण नदीं गत्वा समुद्रगाम्। प्राणायामशतं कृत्वा वृतं प्राश्य विशुद्धन्यति ॥५२ विनिर्वर्त्य यदा शूद्रा उद्कान्त मुपस्थिताः। द्विजैस्तरानुगन्तव्या इति धर्मविदोविधिः॥५३ तस्माद्द्विजो मृतं शूदं न सृशेन्न च दाह्येत्। हुष्टं मूर्यावलोकन शुद्धिरेपा पुरातनी ॥५४

इति पागशरे धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः॥

### ॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

#### अनेकविधप्रकरणप्रायश्चित्तम्।

अतिमानादतिक्रोधात् स्नेहाद्वा यदित्रा भयात्। उदुबध्नीयात् स्त्री पुमान् वा गतिरेपा विधीयते।।१ पूचशोणितसंपूर्णे अन्धं तमसि मज्जति। पष्टिं वर्गसहस्राणि नरकं प्रतिपद्यते। नाशीचं नोदकं नाम्नि नाश्रुपातश्व कारयेत् ॥२ वोढारोऽग्निप्रदातार पाशच्छंदकरास्तथा। तप्तकुन्छ्रेण शुद्धचन्तीत्येवमाह प्रजापतिः ॥३ गोभिईतं तथोद्बद्धं ब्राह्मणेन तु घातिनम्। संस्पृशन्ति तु ये विप्रा वोढारश्चाग्निदाश्च ये ॥४ अन्येऽपि वानुगन्तारः पाशच्छेदकराश्च ये। तप्तकुच्छ्रेण शुद्धचन्ति कुर्यूर्बाह्मणभोजनम् ॥४ अनडुत्सहितां गाञ्च दद्यविप्राय दक्षिणाम्। त्र्यहमुद्दर्गं पिवेद।परत्र्यहमुद्धां पयः पिवेत्। ज्यहमुष्णं घृतं पीत्त्रा वायुभक्षो दिनत्रयम्।।६ यो वै समाचरेद्विप्रः पतितादिष्वकामतः। पश्चाहं वा दशाहं वा द्वादशाहमथापि वा।।७ मासाद्धं मासमेकं वा मासद्वयमथापिवा। अब्दार्ह्य मन्द्रमेकं या तद्रदुर्ध्यं चैव तत्समः॥८

त्रिरात्रं प्रथमे पक्षे द्वितीये कृच्छ्माचरेत्। तृतीये चैव पक्षे तु कुच्डुं सान्तपनं चरेन्॥६ चतुर्थे दशरात्रं स्यात् पराकः पश्चमे मतः। कुरयां चान्द्रायणं षष्ठे सप्तमे त्वैन्द्रवद्वयम् ॥१० ग्रद्धश्रर्थमप्टमे चैव पण्मासात् कृष्णमाचरेत्। पक्षसंख्याप्रमाणेन सुवर्णान्यपि दक्षिणा ॥११ श्रवस्त्राता तु या नारी भत्तारं नोपसर्पति। सा मृता नरकं याति विधवा च पुनः पुनः ॥१२ भ्रतौ स्नातान्तु यो भार्य्या सन्निधौ नोपगच्छति। घोरायां भ्रूणहत्यायां युज्यते नात्र संशयः॥१३ अदुष्टापतितां भार्यां यौवने यः परित्यजेत्। सप्तजन्म भवेत् स्नीत्वं वैधव्यश्व पुनः पुनः ॥१४ दरिद्रं व्याधितं मूर्खं भत्तीरं या न मन्यते। सा मृता जायते व्याली वैधव्यश्व पुनः पुनः ॥१५ ओघवाताहतं वीजं यथा क्षेत्रे प्ररोहति। क्षेत्री तहभते वीजं न वीजी भागमहित ॥१६ तद्वत् परिवयाः पुत्रौ द्वौ सुतौ कुण्डगोलकौ। पत्यौ जीवति कुण्डः स्यान्मृते भर्तरि गोलकः॥१७ औरसः क्षेत्रजश्चैव दत्तः कृत्रिमकः सुतः। द्द्यान्माता पिता वापि स पुत्रो दत्तको भवेत् ॥१८ परिवित्तिः परीवेत्ता यया च परिविद्यते। सर्वे ते नरकं यान्ति दातृयाजकपश्वमाः ॥१६

दाराग्निहोत्रसंयोगं यः कुर्याद्यजे सति। परिवेत्ता स विज्ञयः परिवित्तिस्तु पूर्व्वजः॥२० द्वी कृच्डी परिवित्तेग्तु कन्यायाः कृच्डु एव च। कुच्छातिकुच्छी दातुश्च होता चान्द्रायणश्चरेत्॥२१ कुञ्जवामनपण्डेषु गदुगदेषु जङ्गेषु च। जासन्यं बिधरं मूके न दोषः परिवेदने ॥२२ पितृव्यपुत्रः सापत्न्यः परनारीसुतस्तथा। दाराग्निहोत्रसंयोगे न दोपः परिवंदने ॥२३ ज्येष्ठो भ्राता यदा तिष्ठेदाधानं नैव चिन्तयेतु। अनुज्ञातस्तु कुर्वीत शङ्कस्य वचनं यथा॥२४ नष्टे मृते प्रव्रजिते क्षीवे च पतिते पती। पश्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥२४ मृते भर्तरि या नारी ब्रह्मचर्ये व्यवस्थिता। सा मृता लभते स्वर्गं यथा सद् ब्रह्मचारिणः ॥२६ तिस्रः कोट्यर्द्धकोटी च यानि रोमाणि मानुषे। तावत् कालं वसेत् स्वर्गे भर्तारं यानुगच्छति ॥२७ व्यालग्राही यथा व्यालं विलादुद्भरते वलात्। एवमुद्धृत्य भत्तारं तेनेव सह मोदते ॥२८

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः॥

#### ॥ अथ पश्वमोऽध्यायः॥

### प्रायश्चित्तवर्णनम्।

श्रवृकाभ्यां श्रृगालाचैर्यदि दृष्टम्तु ब्राह्मणः। स्नात्वा जपेत गायत्रीं पवित्रां वेदमातरम्।।१ गवां शृङ्गोद्के स्नातो महानद्यास्तु सङ्गमे। समुद्रदर्शनाद्वापि शुना दष्टः शुचिर्भवेत्।।२ वेदविद्यात्रतस्मातः शुना दृष्टस्तु ब्राह्मणः। स हिरण्योद्के स्नात्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥३ सन्नतस्तु शुना दष्टिखरात्रं समुपोषितः। घृतं कुशोदकं पीत्वा व्रतशेषं समापयेत्।।४ अवृतः सक्तो वापि शुना दृशे भवेदिजः। प्रणिपत्य भवेन पूतो विप्रश्चानुनिरीक्षितः ॥६ शुना घातावलीढस्य नखे विलिखितस्य च। अद्भिः प्रक्षालानाच्छुद्भिग्प्रिना चोपच्लनम् ॥६ शुना च बाह्मणी दष्टा जम्बुकेन वृकेण वा। उदितं सोमनक्षत्रं दृष्ट्या सद्यः शुचिर्भवेन्।।७ कृष्णपक्षे यदा सोमो न दृश्येत कदाचन। यां दिशं वृजते सोमस्तां दिशञ्चावलोकयेत्।।८ असद्बाह्मणके प्रामे शुना दृष्टरतु ब्राह्मणः। वृषं प्रदक्षिणीकृत्य सद्यः स्नानाद्विशुध्यति ॥६ चाण्डालेन श्वपाकेन गोभिविप्रहेतो यदि।

आहिताप्रिमृतो विश्रो विषणात्महतो यदि। दहेत्तं ब्राह्मणं विप्रो लोकाग्नौ मन्त्रवर्जितम् ॥१० स्र्या चोद्य च दग्धा च सपिण्डेषु च सर्व्यथा। प्राजापत्यं चरेत् पश्चाद्विप्राणामनुशासनात् ॥११ द्ग्ध्वास्थीनि पुनर्गृ ह्य क्षीरैः प्रक्षालयेद्दृ द्विजः । पुनर्दहेत् स्वकामी तन्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् ॥१२ आहिताग्निर्द्विजः कश्चि**त्** प्रवसन् काल्रचोदितः। देहनाशमनुप्राप्तस्वात्यामिर्वर्त्तते गृहे ॥१३ श्रौताम्निहोत्रसंस्कारः श्रूयतामृपिसत्तमाः ! ॥ कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुरोश्च पुरुषाकृतिम्।।१४ षट् शतानि शतञ्चेव पलाशाना च वृन्तकम्। चत्वारिंशच्छिरे दद्यात् पष्टि कण्ठे विनिर्दिशेत्।।१४ बाहुभ्याश्व शतं द्द्याद्ङ्कुलीयु द्रीव तु। शतश्वोरसि संद्वान् त्रिंशचैवोद्रे न्यसेत्॥१६ अष्टी वृपणयोर्दयात् पश्च मेढूं च विन्यसेत्। एकविंशतिमूहम्यां जानुजङ्खे च विंशतिम् ॥१७ पादाङ्करयोः शतार्द्ध च पात्राणि च तथा न्यसेत। शम्यां शिश्ने विनिःक्षिय्य अरणीं वृषणे तथा।।१८ जुहूं दक्षिणहस्तेन वामहस्ते तथोपसत्। कर्णेचोलूखलं दद्यात् पृत्वे च मुक्लं तत ॥१६ नि क्षिप्योरसि दशदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखं। श्रीते च प्रोक्षणी द्वादाज्यस्थाली च चक्षुषोः॥२०

कर्णे नेत्रे मुखं घाणं हिरण्यशकलं क्षिपेत्। अग्निहोत्रोपकरणं गात्रे शेषं प्रविन्यसेत्।।२१ असी स्वर्गाय लोकाय स्वाहेति च घृताहुतीः। दद्यात् पुत्रोऽथवा भ्राता ह्यन्ये वापि स्वधर्मिणः।।२२ यथा दहनसंस्कारस्तथा कार्य्यं विचक्षणेः। ईदृशन्तु विधि कुर्याद्ब्रह्मलोके गतिध्रुवम्।।२३ ये दहन्ति द्विजाम्तन्तु ते यान्ति परमां गतिम्। अन्यथा कुर्व्वते कि चिद्रात्मवुद्धिप्रबोधिताः।।२४ भवन्त्यल्पायुषस्ते वं पतन्ति नरके ध्रुवम्।।२६

इति पाराशरे धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

प्राणिहत्याप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्राणिहत्यासु निष्कृतिम्। पराशरेण पूर्व्योक्तां मन्वर्थेऽपि च विस्मृताम्।।१ हंससारसकोश्वांश्च चक्रवाकं सकुक्कुटम्। जालपादांश्च शरभमहोराजेण शुध्यति।।२ वलाकाटिट्टिमानाच्च शुक्रपारावतादिनाम्। आटिनाच्च क्कानाच्च शुद्धयते नक्तमोजनात्॥३

भासकाककपोतानां सारीतित्तिरिघातकः। अन्तर्जले उभे सन्ध्ये प्राणायामेन शुध्यति ॥४ गृध्रश्येनशिखिष्राह्चासोलुकनिपातने । अपकाशी दिनं तिष्ठेत्त्रिकालं मारुताशनः ॥४ वल्गुणीचटकानाञ्च कोकिलाखञ्जरीटकान्। लावकारक्तपादांश्च शुद्धचन्ते नक्तभोजनात्।।६ कारण्डवचकोराणां पिङ्गलाकुररस्य च। भारद्वाजनिहन्ता च शुद्धयते शिवपूजनात्।।७ भंरुण्डरयेनभासञ्च पारावतकपिञ्जलान्। पक्षिणामेव सर्वेपामहोरात्रेण शुध्यति ॥८ हत्वा नकुन्नमाजीरसपीजगरडुण्डुभान्। कृशरं भोजयद्विप्रान् लोहदण्डब्च दक्षिणाम्।।६ शहकीशशकागोधामस्यकूर्माभिपातने। वृन्ताकफलभोक्ता च ह्यहोरात्रेण शुध्यति ॥१० वृकजम्बूकऋक्षाणां तरश्लूणाञ्च घातने। तिलप्रस्थं द्विजे दद्याद्वायुभक्षो दिनत्रयम्।। ११ गजगवयतुरङ्गानां महिपोष्ट्रनिपातने। श्रद्धचते सप्तरात्रेण विप्राणां तर्पणेन च ॥१२ मृगं रुरुं वराहञ्च अज्ञानाद्यस्तु घातयेत्। अफालकृष्टमश्नीयादहोराशेण शुध्यति ॥१३ एवं चतुष्पदानाञ्च सर्वेषां वनचारिणाम्। अहोरात्रोषितस्टिटेजपन् वै जातवेदसम् ॥१४

शिल्पिनं कारकं शूद्रं स्त्रियं वा यस्तु घातयेत्। प्राजापत्यद्व<mark>यं कुर्</mark>यां**द्**बृपैकादशदक्षिणा ॥१४ बैश्यं वा क्षत्रियं वापि निर्होपमभिघातयेतु। सोऽिक्छ उद्धरं कुर्याद्गोविशं दक्षिणां द्देत्॥१६ वैश्यं शुद्रं क्रियासक्तं विकर्मस्थं द्विजोत्तमम्। हत्वा चान्द्रायणं कुर्य्याद्दयाद्ग्रीत्रिशदक्षिणाम् ॥१७ क्षत्रियेणापि वैश्येन शुद्रंणैवेतरेण वा। चाण्डालबधसंप्राप्तः कृष्कार्द्धेन दिशुव्यति ॥१८ चौराः श्रपाकच।ण्डाला विप्रेणापि हता यदि। अहोरात्रोपवासेन प्राणायामेन गुध्यति ॥१६ श्रपाकं वापि चाण्डालं विप्रः सम्भापते यदि। द्विजसम्भापणं बुर्व्याद्वायत्रीं वा सक्कुज्ञेत् ॥२० चाण्डालैः सह सुप्रन्तु त्रिगत्रमुपवासयेत्। चाण्डारुकेपथङ्गत्वा गायत्रीस्मरणाच्छ्चः ॥२१ चाण्डालद्र्शनेनैव आदित्यमवलोक्येत्। चाण्डालम्पर्शने चैव मचैलं म्नानमाचरेत्॥२२ चाण्डालखानवापीपु पीत्वा सलिलमप्रजः। अज्ञानाचैव नक्तेन त्वहोरात्रोण शुद्धचित ॥२३ चाण्डालभाण्डसंस्पृष्टं पीत्वा कृपगतं जलम्। गोमृत्रयावकाहारिक्षरात्राच्छद्भिमा नुयात् ॥२४ चाण्डालोदकभाण्डे तु अज्ञानात् पिबते जलम्। तत्क्षणात क्षिपते यस्तु प्राजापत्यं समाचरेत्।।२६

यदि न क्षिपते तोयं शरीरे यस्य जीर्घ्यति। प्राजापत्यं न दातव्यं कृच्छं सान्तपनञ्चरेत् ॥२६ चरेत् सान्तपनं विप्रः प्राजापत्यन्तु क्षत्रियः। तद्धीन्तु चरेहैश्यः पादं शूद्रम्य दापयेत्॥२७ भाण्डस्थम त्यजानान्तु जलं दिध पयः पिवेत्। ब्राह्मणः क्षत्रियो वश्यः शूद्रश्चेव प्रमादतः॥२८ ब्रह्मकूर्चोपवासेन द्विजातीनान्तु निष्कृतिः। शू इश्य चोपवासेन तथा दानेन शक्तितः॥२६ ब्राह्मणो ज्ञानतो भुङ्कं चाण्डालान्नं कदाचन। गोमूत्रयावकाहाराइशराजेण शुध्यति ॥३० एकंकं प्रासमश्नीयाहोमूत्रयावकस्य च। दशाह्नियमस्थस्य व्रतं तत्र विनिर्द्धिंत् ॥३१ अविज्ञातश्च चाण्डालः सन्तिरंतस्य वेश्मनि। विज्ञाते तूपसंत्यम्य द्विजाः कुवन्त्यनुप्रहम् ॥३२ भृषियक्ताच्छ्रता धर्मास्नायन्ते वेदपावनाः। पतन्तमुद्धरेयुस्ते धर्मज्ञाः पापसङ्कटात् ॥३३ द्ध्ता च सर्पिपा चैव क्षीरगोम्त्रयावकम्। भुञ्जीत सह सर्वैंश त्रिसन्ध्यमवगाहनम् ॥३४ त्र्यहं भुञ्जीत दध्ना च त्र्यहं भुञ्जीत सर्पिपा। **त्र्यहं क्षीरेण** भुक्षीत एकैकेन दिनत्रयम् ॥३४ भावदुष्टं न भुङ्जीयान्नोच्छिष्टं कृमिदूषितम्। त्रिपलं द्धिदुग्धस्य पलमेकन्तु सर्पिषः ॥३६

[

भस्मना तु भवेच्छुद्धिरुभयोम्ताम्रकांम्ययोः। जलशौचेन वस्नाणां परित्यागेन मृण्मयम् ॥३७ कुसुम्भगुडकार्पासलवणं तैलसर्पिपी। द्वारे कृत्वा तु धान्यानि गृहे दग्राद्वुताशनम्।।२८ एवं शुद्धस्ततः पश्चान् कुर्यादुबाह्मणभोजनम् । त्रिशतं गा वृपब्चैकं दद्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥३६ पुनर्लेपनया तेन होमज'येन शुध्यति। आधारेण च विष्राणां भूमिदोपो न विद्यते ॥४० रजकी चर्मकारी च छुन्धकम्य च पुकसी। चातुर्वण्यंगृहे यस्य ह्यज्ञानाद्धितिष्ठति ॥४१ ज्ञात्त्रा तु निष्कृति कुर्यात् पूर्वोक्तस्यार्द्धमेव च। गृहदाहं न कुर्व्वीताप्यन्यत सर्वश्व कारयेत्।।४२ गृहस्याभ्यन्तरं गच्छंबाण्डालो यस्य कस्यचित्। तस्म द्रुगृहाद्विनिःसृय गृर्भाण्डानि वर्जयेत्।।४३ रसपूर्णन्तु यद्गाण्डं न त्यजेश कदाचन। गोरसेन तु संमिश्रेर्ज्ञ प्रोक्षेत् समन्ततः ॥४४ ब्राह्मगस्य व्रणद्वारं पूयशोणितसम्भवे। कृमिरुत्पद्यते यस्य प्रायश्चित्तं कथं भवत् ॥४५ गवां मूत्रपुरीपेण दध्ना क्षीरंण सर्पिपा। त्र्यहं स्नात्वा च पीत्वा कृमिदुष्टः शुचिर्भवेत्।।४६ क्षत्रियोऽपि सुवर्णस्य पश्व मापान् प्रदापयेत्। गोदक्षिणान्तु वैश्यस्याप्युपवासं विनिर्दिशेत्।।४७

शुद्राणां नोपवासः स्याच्छ्रद्रो दानेन शुध्यति। ब्राह्मणांस्तु नमस्कृत्य पञ्चगव्येन शृच्यति ॥४८ अच्छिद्रमिति यहाक्यं वदन्ति क्षितिदेवताः। प्रणम्य शिरसा धार्य्य मित्रष्टोमफलं हि तत्।।४६ व्यायिव्यसनिनि श्रान्ते दुर्भिक्षं डामरं तथा। उपवासो वतो होमो हिजसम्पादितानि वा॥६० अथवा ब्राह्मणास्तुष्टाः स्वयं कुट्यन्त्यनुप्रहम् । सर्वधर्ममवाप्नोति द्विजेः सम्बद्धिताशिषा ॥५१ दुर्ब्बलेऽनुप्रहः कार्य्यस्तथा व बालगृद्धयोः। अतोऽन्यथा भवेद्दोषम्तस्मान्नानुत्रह समृतः ॥५२ स्नेहाद्वा यदि वा लोभाद्भयाद्ञ्जानतोऽपि वा। कुर्वन्त्यनुहं ये वै तत्पापं तेषु गच्छति ॥४३ शरीरस्यात्यये प्राप्ते वद्गति नियमन्तु ये। महत्कार्योपरोधन न स्वस्थस्य कदाचन ॥५४ स्वस्थस्य मृढाः कुर्वन्ति नियमन्तु वदन्ति ये। ते तम्य विघ्नकर्तारः पतन्ति नरकेऽग्रचौ ॥४४ स एव नियमस्याज्यो ब्राह्मणं योऽवमन्यते । वृथा तम्योपवासः स्यान्न स पुग्येन युज्यते ॥५६ स एव नियमो प्राह्यो यं यं को अप वदेद्दिजः। कुर्व्याद्वाक्यं द्विजानाश्व अकुर्रेन् ब्रह्महा भनेत्॥५७ उपवासो व्रतञ्चैव स्नानं तीर्थं जपस्तपः। विष्रैः सम्पादितं यस्य सम्पन्नं तस्य तद्भवेत् ॥६८

वतन्छिद्रं तपश्चिद्रं यन्छिद्रं यज्ञकर्मणि। सर्वं भवति निन्छिद्रं ब्राह्मणैरुपपादितम् ॥४६ ब्राह्मणा जङ्गमं तीथं निर्जलं सर्वकामदम्। तेपां वाक्योदकेनैव शृद्धचन्ति मलिना जनाः ॥६० ब्राह्मणा यानि भापन्ते भापन्ते तानि देवताः। सर्वेदमया विप्रा न तहचनमन्यथा ॥६१ अन्नाचं कीटसंयुक्ते मक्षिकाकीटद्पिते । अन्तरा संस्पृशेचापरतदन्नं भरमना स्पृशेत्॥६२ भुञ्जानो हि यदा विप्रः पादं हस्तेन संष्ट्रित्। उच्छिष्टं हि स वै भुड्के यो भुङ्के भुक्तभाजने ॥६३ पादकाश्यो न भञ्जीत पर्व्यक्कं संश्यितोःपिवा। शुना चाण्डालहरो वा भोजनं प्ररिवर्जयेत्॥**६४** पकान्रञ्च निपिद्धं यद्त्रशुद्धितथेव च । यथा पराशरेणोक तथवाह बदामि वः ॥६४ मितं दोणाढकस्यानं काकश्वानोपघातितम । केनैतच्छुद्धचते चान्नं ब्राह्मगभ्यो निवेद्येत्॥६६ काकश्वानावली इन्तु द्रोणान्नं न परित्यजेत्। वेर्वेराङ्गविद्विष्ठेर्धभैशास्त्रानुपालकैः ॥६७ प्रस्था द्वात्रिंशतिद्रोणः स्मृतो द्विप्रस्थ आढकः। ततो द्रोगाढकस्यानं श्रुतिम्मृतिविदो विदुः ॥६८ काकश्वानावलीढं तु गवाघातं खरेण वा। म्बल्पमन्नं त्यजेद्विप्रः शुद्धिद्वर्णाढके भवेत् ॥६६

अन्यस्योद्धृत्य तन्मात्रं यश्च नोपहतं भवेत्। सुवर्णोद्कमभ्युक्ष्य हुताशेनेव तापयेत्॥७० हुताशनेन संस्पृष्टं सुवर्णसल्लिलेन च। विप्राणां ब्रह्मघोषण भोज्यं भवति तत्क्षणात्॥७१

इति पाराशरं धर्मशास्त्रं पष्टोऽध्यायः॥

0 \* \* 0

॥ अथ सप्तमोऽध्वायः ॥

द्रव्यशुद्धिवर्णनम् ।

अथातो द्रव्यसंगुद्धिः पराशरवचोयथा।
दारवाणान्तु पात्राणां तक्षणाच्छुद्धिरिष्यते ॥१
मार्ज्जनाद्यझपात्राणां पाणिना यझकर्मणि।
चमसानां प्रहाणाञ्च गुद्धिः प्रक्षालनेन तृ ॥२
चरूणां श्रुक्स्यवाणाञ्च गुद्धिः प्रक्षालनेन तृ ॥२
चरूणां श्रुक्स्यवाणाञ्च गुद्धिरुष्टंगन वारिणा।
मस्मना गुद्धचते कास्यं ताम्रमम्लेन गुण्यति॥३
रजसा गुद्धचते नारी विकलं या न गच्छिति।
नदी वेगेन गुद्धचत लेपो यदि न दृश्यते॥४
वापीकूपतृशागेषु दृषितेषु कथञ्चन।
उद्घृत्य वै घटशतं पञ्चगन्येन गुण्यति॥५
अष्टवर्षा स्रोद्दौरी नववर्षा तृ रोहिणी।
दशवर्षा स्रवेत् कन्या अत उद्धु रजस्वला॥६

प्राप्ते तु द्वादशे वर्षे यः कन्यां न प्रयच्छति। मासि मासि रजस्तस्याः पिवन्ति पितरः स्वयम् ७ माता चैव पिता चैव ज्येष्ठो भ्राता तथैवच। त्रयस्ते नरकं यान्ति दृष्टा कन्यां रजस्वलाम् ॥८ यस्तां समृद्धेत् कन्यां ब्राह्मणोऽज्ञानमोहितः। असम्भाप्यो ह्यपाङ्कंयः स विष्रो वृपलीपतिः ॥६ यः करोत्येकरात्रेण वृपलीसेवनं द्विजः । स मेक्षुभुग्जपन्नित्यं त्रिभिवपैर्विशुत्र्यति ॥१० अरतं गते यदा सूर्य्ये चाण्डालं पतितं स्त्रियम्। सूनिकांस्प्रातःचेत्र कथं शुद्धिर्विधीयते ॥११ जातवेदं सुवर्णभ्व सोममार्गं विलोक्य च । ब्राह्मणानुगतरचैव म्नानं कृत्वा विशुध्यति ॥१२ स्पृष्टा रजस्त्रलान्योन्यं ब्राह्मणी ब्राह्मणी तथा। तावत्तिष्ठेन्निराहारा त्रिरात्रेणैव शुःयति ॥१३ स्पृरा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मणी क्षत्रिया तथा। अर्द्ध छञ्जं चरत् पूर्वा पादमेकमनन्तरा ॥१४ सृष्टा रजस्वलान्योन्यं ब्राह्मगी वैश्यजा तथा। पादोनं चैव पूर्व्वायाः परायाः कृष्क्रपादकम्।।१४ स्पृष्ट्रा रजस्त्रलान्योन्यं ब्राह्मणी शूद्रजा तथा। कुच्छं ण शुद्धचते पूर्वा शूद्रा दानेन शुध्यति ॥१६ स्नाता रजस्त्रला या तु चतुर्थेऽह्ननि शुध्यति। कुर्य्याद्रजोनिवृत्तौ तु दैवपित्र्यादिकर्म च ॥१७

रोगेण यद्रजः स्त्रीणामन्वहन्तु प्रवर्त्तते। नागुचिः सा ततस्तेन नन् म्याद्वैकालिकं मतम्॥१८ प्रथमेऽहिन चाण्डाली दितीये ब्रह्मचातिनी। तृतीये रजकी प्रोक्ता चनुर्थे ऋनि गुध्यति ॥१६ आतुरे स्नानमुत्पन्ने दशकृत्वो ह्यनातुरः। स्नात्वा स्नात्वा स्पृशंदेनं ततः गुद्धंचत् म आतुरः ॥२० उच्जिष्टोच्जिटसंस्प्रष्टः श्ना शूद्रण वा द्विजः। उपोष्य रजनीमेका प<del>श्च</del>गव्येन शुष्यति ॥२१ अनुच्छिप्टेन शूद्रंण स्नानं म्पर्शे विधीयते। उच्डिकुष्टेन च संख्रष्टः प्राजापत्यं समाचरेत् ॥२२ भस्मना शुद्व-चते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते। सुरामात्रेण संस्पृट शुद्धचतेऽग्न्युपलेपनः ॥२३ गवाघातानि कांस्यानि श्वकाकोपहतानि च। शुद्धचन्ति दशभिः क्षारैः शुद्रोच्छिष्टानि यानि च ॥२४ गण्डूषं पादशौचश्व कृत्वा वै कांस्यभाजने। षण्मास.द् भुवि निक्षिप्य उद्गृत्य पुनराहरेत्।।२४ आयसेष्वपसारेण सीसस्याग्नी विशोधनम्। दत्तमस्थि तथा शृङ्गं रोप्यं सौवर्णभाजनम् ॥२६ मणिपाषाणशङ्खाश्च एतान् प्रक्षालयेजलैः। पाषाणे तु पुनर्घृ टिरेवा शुद्धिरुदाहृता ॥२७ मृद्भाण्डदहनाष्ट्छद्विर्वान्यानां मार्जनादपि। अद्भिस्तु प्रोक्षणं शौचं वहूनां धान्यवाससाम् ॥२८

प्रक्षालनेन त्वल्पानामद्भिः शौचं विधीयते। वेणुबल्कलचीराणां क्षौमकार्पासवाससाम् ॥२६ और्णानां नेत्रपट्टानां जलाच्छौचं विधीयते । तूलिकाद्यपधानानि पीतरक्ताम्बराणि च ॥३० शोपयित्वार्कतापेन प्रोक्षयित्वा शुचिर्भवेत्। मुञ्जोपम्करमूर्पाणां शाणस्य फलचर्मण म् ॥३१ रुणकाष्ठादिरञ्जूना मुदकप्रोक्षणं मतम्। मार्जारमक्षिकाकोटपतङ्गकृमिदर्दु राः ॥३२ मेध्यामेश्यं सपुरात्त्येव नोच्छिटान मन्रवीत्। भूमि रष्टुा गतं तोयं यश्चाप्यन्योन्यविष्रुषः ॥३३ भुक्तोच्डिष्टं तथास्तेहं नोच्डिष्टं मनुरव्रवीत्। ताम्बूलेक्षुफले चेव भुत्तस्तेहानुलेपने ॥३४ मधुपर्के च सोमे च नोच्डिटं मनुखबीत्। रथ्याकईमनोयानि नावः पन्थास्तृणानि च ॥३४ मरुतार्केण शुद्धचन्ति पक्ष्येष्टकचिनानि च । अदुष्टा सन्तता धारा वातोद्वताश्च रेणव ॥३६ क्षियो वृद्धाश्च बालाश्च न दुष्यन्ति कदाचन। क्षुते निष्ठीवने चैव दन्तोचित्रष्ट तथानृते ॥३७ पतिताना अ सम्भाषे दक्षिणं श्रवणं स्रूशेत्। अग्निरापश्च वेदाश्च सोमसूर्य्यानिलास्तथा ॥३८ एते सर्व्वेऽपि विप्राणां श्रोजे तिष्ठन्ति दक्षिणे। प्रभासादीनि तीर्थानि गङ्गाचाः सरिवस्तथा ॥३६ विप्रस्य दक्षिणे कर्णे सान्निध्यं म गुरज्ञवीत्।
देशभङ्गं प्रवासे वा व्याविषु व्यसनेष्विप ॥४०
रक्षेदेव स्वदेहादि पश्चाद्धमं समाचरेत्।
येन केन च धर्मेण मृदुना दारुगेन च ॥४१
उद्धरेहोनमात्मानं समर्थो धर्ममाचरेत्।
आपत्काले तु सम्प्राप्ते श्रीचाचारं न चिन्तयेत्।
स्वयं समुद्धरेत् पश्चात् स्वस्थो धर्ममं समाचरेत्॥४२

इति पाराशरे धर्मशास्त्रं सहमोऽध्यायः।

॥ अदृमोऽध्यायः ॥ धर्माचरणवर्णनम्।

गवां बन्धनयोक्त्रंतु भवेन्मृत्युरकामतः।
अकामात् कृतपः।परय प्रायश्चित्तं कथं भवेतः।।१
वेद्वेदाङ्गविदुषां धर्मशास्त्रं विजानताम्।
स्वकर्मरतविप्राणां स्वकं पापं निवेद्येत्।।२
अत उद्ध्वं प्रवक्ष्यामि उपस्थानस्य लक्ष्णम्।
उपस्थितो हि न्यायेन ब्रतःदेशनमईति।।३
सद्योनिःशंसये पापे न भुञ्जीतानुपस्थितः।
भुञ्जानो वर्द्वयेत् पापं पर्शद्यत्र न विद्यते॥४
शांसये तु न भोक्तव्यं यावत् कार्यविनिश्चयः।
प्रमादश्च न कर्त्तव्यो यथैवाशंसयस्तथा॥१

कुत्वा पापं न गृहेत गुह्यमानं विवर्द्धते। स्वल्पं वाथ प्रभूतं वा धर्मविद्धयो निवेदयेत् ॥६ ते हि पापे कृते वेद्या हन्तारश्चेव पाप्मनाम्। व्याधिताय यथा वैद्या वृद्धिमन्तो कजापहाः॥७ प्रायश्चित्तं समुत्पन्नं हीमान् सत्यपरायणः। मुहुरार्जवसम्पन्नः शुद्धि गच्छेत मानवः॥८ सर्चेलं वाग्यतः स्नात्वा क्षित्रवासाः समाहितः। क्षत्त्रियो वाथ वैश्यो वा नतः पर्पद् मात्रजेत्॥६ उपस्थाय ततः शीव्रमात्तिमान धर्णी व्रजेत्। गात्रेश्च शिरमा चैत्र न च कि चिदुदाहरेत्॥१० साविज्याश्चापि गायज्याः सन्ध्योपारत्यप्रिकार्ययोः। अज्ञानात् कृषिकत्तारो ब्राह्मणा नामधारकाः ॥११ अन्नतानाममन्त्राणां जातिमात्रोपजीविनाम। सहस्रशः समेतानां परिपत्त्वं न विद्यते ॥१२ यद्वदन्ति तमोमृढा मूर्खा धर्ममतद्विदः। तत्पापं शतधा भूत्वा तडक्तूरिय गच्छति॥१३ अज्ञात्वा धर्मशास्त्राणि प्रायश्चित्तं द्दाति यः। प्रायश्चित्तीभवेत् पृतः किल्विषं परिषद्बजेत् ॥१४ चत्वारो वा त्रयो वापि यं ब्र्युर्वेद्पारगाः। स धर्म इति विज्ञेयो नेतरैस्तु सहस्रशः॥१४ प्रमाणमार्गं मार्गन्तो ये धर्मं प्रवदन्ति वै। तेषामुद्धिजते पापं सम्भूतगुणवादिनाम् ॥१६

यथाश्मनि स्थितं तोयं मारुतार्कण शुद्धचिति। एवं परिपदादेशामाशयेदेव दुष्कतम् ॥१७ नैव गच्छति कत्तारं नैव गच्छति पर्षदम्। मारुतार्कादिसंयोगात् पापं नश्यति तोयवन ॥१८ अनाहिनाग्तयो येऽन्ये वंदवेदाङ्गपारगाः। पश्च त्रयो वा धम्मज्ञाः परिपत् सा प्रकीर्त्तिता॥१६ मुनीनामात्मविद्यानां द्विजानां यज्ञयाजिनाम्। वंदन्रतेषु स्नातानामेकोऽपि परिपद्भवंतु ॥२० पश्च पूर्वं मया श्रोक्तस्तेषाञ्चेव त्वसम्भवे। स्ववृत्तिपरितुष्टा ये परिषत् सा प्रकीर्त्तिता॥२१ अत ऊर्ध्वन्तु ये विप्राः केवलं नामधारकाः। परिषस्वं न तेषां वे सहस्रगुणितेष्वपि ॥२२ यथा काष्ठमयो हस्ती यथा चर्ममयो मृगः। ब्राह्मणास्त्वनधीयानास्त्रयस्ते नामधारकाः ॥२३ प्रामस्थानं यथा शून्यं यथा कूपस्तु निर्ज्ञछः। यथा हतमनमी च अमन्त्रो ब्राह्मणस्तथा ॥२४ यथा षण्डोऽफलः स्त्रीषु यथा गौरूपराफला। यथा चाइंडफलं दानं यथा विप्रोडनृचोडफलः ॥२४ चित्रं कर्म यथानेकरङ्गेरुन्मील्यते शनैः। ब्राह्मण्यमपि तद्वत् स्यात् संस्कारैविधिपूर्वकः ॥२६ प्रायश्चित्तं प्रयच्छन्ति ये द्विजा नामधारकाः। ते द्विजा पापकर्माणः समेता नरकं ययः॥२७ ४२

ये पठन्ति द्विजा वेदं पश्चयज्ञरताश्च ये। त्रैलोक्यं धारयन्त्यते पञ्चेन्द्रियरताश्रयाः ॥२८ सम्प्रणीतः श्मशानेषु दीप्तोऽग्निः सर्वभक्षकः। तथैव ज्ञानवान् विप्रः सर्वभक्षश्च दैवतम् ॥२६ अमेध्यानि च सर्वाणि प्रक्षिपन्त्युद्कं यथा। तथैव किल्विषं सर्वं प्रक्षेप्तव्यं द्विजेऽमले॥३० गायत्रीरहितो विप्रः शुद्राद्प्यशुचिभवेत्। गायत्रीब्रह्मतत्त्वज्ञाः संपूज्यन्ते द्वितोत्तमाः ॥३१ दु:शीलोऽपि द्विजः पूज्यो न शुद्रो विजितेन्द्रियः। कः परीत्यज्य दुष्टाङ्कां दुह्च्क्रीलवतीं खरीम्॥३२ धर्मशास्त्ररथारूढा वेदखड्गधरा द्विजाः। क्रीड़ार्थमपि यद्बूयुः स धर्मः परमः स्पृतः॥३३ चातुर्वेद्यो विकल्पी च अङ्गविद्धर्मपालकः। प्रपश्चाश्रमिणो मुख्याः परिपत् स्युर्दशावराः ॥३४ राज्ञाञ्चानुमते चैव प्रायश्चितं द्विजो वदेतु। स्वयमेव न वक्तव्या प्रायश्चित्तस्य निष्कतिः ॥३४ ब्राह्मणांश्च व्यतिक्रम्य राजा यत् कर्त्तुमिच् ब्रति। तत्पापं शतधा भूत्वा राजानमुपगच्छति॥३६ प्रायश्चित्तं सदा दद्याद्वतायतनामतः। आत्मानं पावयेत् पश्चाज्ञपन् वे वेदमातरम् ॥३७ सशिखं वपनं ऋत्वा त्रिसन्ध्यमवगाहनम्। गवां गोष्ठे बसेद्रात्री दिवा ताः समनुब्रजेत्।।३८

उष्णे वर्षति शीते वा मारुते वाति वा भृशम्। न कुर्व्यातात्मनस्त्राणं गोरकृत्वा तु शक्तितः ॥३६ आत्मनो यदि वान्येपां गृहे क्षेत्रेऽथवा खले। भक्षयःती न कथयेत् पिवन्तञ्चेव वत्सकम्।।४० पिवन्तीपु पिवन्तोयं सम्विशन्तीषु संविशेत्। पतितां पङ्कमग्नां वा सर्वप्राणैः ममुद्धरेत्।।४१ ब्राह्मणार्थ गवार्थे वा यस्तु प्राणान् परित्यजेत्। मुच्यते ब्रह्महत्यादौंगीप्ता गोब्राह्मगस्य च । ४२ गोवधस्यानुरूपेण प्राजापत्यं विनिर्दिशेत्। प्राजापत्य तु यत्कुच्य विभजत्तवत्विधम् ॥४३ एकाहमेकभकाशी एकाहं नक्तभोजनः। अयाचिताश्येकमहरेकाहं मारुताशनः ॥४४ दिनद्वयं चैकभक्तोद्विदिनं नक्तभोजनः। दिनद्वयमयाची स्याद्दिदिनं मारुताशनः ॥४४ त्रिदिनब्बंकभक्ताशी त्रिदिनं नक्तभोजनः। दिनत्रयमयाची स्यात्त्रिदिनं मारुताशनः ॥४६ चतुरहन्त्वेकभक्ताशी चतुरहं नक्तभोजनः। चतुर्दिनमयाची स्याबतुरहं मारुताशनः॥४७ प्रायश्चित्तं ततश्चीणें कुर्यादुबाह्यणभोजनम्। विप्राय दक्षिणां दद्यात् पवित्राणि जपेद्द्विजः ॥४८ ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु गोघनः शुद्धो न शंसयः ॥४६ इति पाराशरे धर्मशास्त्रेऽष्टमोऽध्यायः।

#### पराशरस्पृतिः ।

नवमोऽध्यायः ॥
 गोसेवोपदेशवर्णनम् ।

गवां संरक्षणार्थाय न दुष्येद्रोधबन्धयोः। तदुबधन्तु न तं विद्यात् कामात् कामकृतन्तथा ॥१ अङ्गप्रमात्रः स्थुलो वा वाहुमात्रः प्रमाणतः। आर्द्रस्तु सपलाशश्च दण्ड इत्यभिधीयते॥२ दण्डादृद्धं यदन्येन प्रहरेद्वा निपातयेत । प्रायश्चित्तं चरेन् प्रोक्तं द्विगुणं गोबत्वारेन्।।३ रोधवन्यनयोक्ताणि घातनश्च चतुर्विधम्। एकपादभ्बरेद्रोधे द्विपादं बन्धने चरेतृ ॥४ योक्त्रेषु पादहीनं स्याचरेत् सर्वं निपातने। गोचारे च गृहे वापि दुर्गेष्वपि समेष्वपि ॥४ नदीष्वपि समुद्रेषु खातेऽप्यथ द्रीमुखे। द्ग्धदेशे स्थिताः गावः स्तम्भनाद्रोध उच्यते ॥६ योक्त्रदामकडोरैश्च घण्टाभरणभूषणैः। गृहे वापि वने वापि बद्धा स्याद्वौर्मृता यदि ॥७ तदेव बन्धनं विद्यात् कामाकामकृत व यत्। मृल्लेखं शकटे पंक्ती भारे वा पीड़ितो नरें:।।८ गोपतिर्मृत्युमाप्नोति योक्त्रो भवति तद्बधः। मत्तः प्रमत्त उन्मत्तश्चंतनो वाप्यचेतनः ॥६ कामाकामकृतक्रोधोदण्डैईन्यदथोपळेः। प्रहता वा मृता बापि तद्धि हेतुर्निपातने ॥१०

मुर्चित्रतः पतितो वापि दण्डनाभिहत स तु। उत्थितस्तु यदा गच्छेत् पश्च सप्त दरीव वा।।११ य्रासं वा यदि गृह्णीयात्तोयं वापि पिवे**दा**दि। पूर्वव्याध्युपसृष्टश्चेत् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१२ पिण्डस्थं पादमेकन्तु हो पादौ गर्भसम्मिते। पादोनं व्रतमुद्धिं हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१३ पादेऽङ्गरोमवपनं द्विपादे श्मश्रणोऽपि च। त्रिपादे त शिखावर्ज सशिखन्त निपातने ॥१४ पादे वस्तुगञ्जेव द्विपदे कांस्यभाजनम्। पादोने गोवृपं दद्याचतुर्थे गोद्वयं स्मृतम् ॥१४ निष्पन्नसर्वगात्रन्तु दृश्यते वा सचेतनम्। अङ्गप्रत्यङ्गसम्पन्ने द्विगुणं गोन्नतं चरेत्॥१६ पाषाणे नैव दण्डेन गावो येनाभिघातिताः। शृङ्गभृङ्गे चरेत् पादं द्वी पादी तेन यातन ॥१७ लाङ्गुले कुष्क्रपादन्तु द्वौ पादावस्थिभञ्जने। त्रिपाद्ब्वेव कर्णे तु चरेत् सर्वं निपातने ॥१८ शृङ्गभृङ्गेऽस्थिभङ्गं च कटिभङ्गे तथेव च। यदि जीवति षण्मासान् प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१६ जणभङ्गे च कर्त्तव्यः स्तेहाभ्यङ्गस्तु पाणिना । यवस्रश्चापहत्तव्यो यावदृदृढबलो भवेत्॥२० यावत्सम्पूर्णसर्वाङ्गस्तावत्तं पोषयेष्ररः। गोरूपं ब्राह्मणस्यामे नमस्कृत्य विवर्जयेत् ॥२१

यद्यसम्पूर्णसर्वाङ्गो हीनदेहो भवेत्तदा। गोघातकस्य तस्याद्धं प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत् ॥२२ काष्टलोष्ट्रकपाषाणैः शस्त्रेणैवोद्धतो बलात्। व्यापाद्यति यो गान्तु तस्य शुद्धि विनिर्द्दिशेत्॥२३ चरेत् सान्तपनं काप्ठं प्राजापत्यन्त लोष्टके। तप्रकृष्डन्त् पाषाणे शस्त्रे चंबातिकृष्डवस् ॥२४ पश्च सान्तपनं गावः प्राजापत्ये तथा त्रयः। तप्रकृष्ट्रे भवेन्त्यष्टावतिकृष्ट्रे त्रयोदश ॥२५ प्रमापणे प्राणभृतां द्यात्तत्प्रतिरूपकम्। तस्यानुरूपं मूल्यं वा दद्यादित्यववीन्मनुः॥२६ अन्यत्राङ्कनलक्ष्मभ्यां वाहने मोहन तथा। सायं संयमनार्थं तु न दुष्येद्रोधबन्धयोः ॥२७ अतिदाहंऽतिवाहं च नासिकाभेदनं तथा। नदीपर्वतमञ्चारे प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्॥२८ अतिहाहं चरेत्पादं ही पादी बाहने चरेतु। नासिके पादहीनं तु चरेत्सवं निपातने ॥२६ दहनाश्व विपद्येत अबद्धो वापि यन्त्रितः। उक्तं पाराशरेणैव ह्येकपादं यथाविधि ॥३० रोधवन्धनयोक्त्रश्व भारः प्रहरणन्तथा। दुर्गप्रेरणयोक्त्रञ्च निमित्तानि बधस्य षट् ॥३१ बन्धप्राशसुगुप्ताङ्को स्त्रियते यदि गोपशुः। भवने तस्य नाशस्य पापं कृच्छार्द्धं महीति ॥३२

ऽध्यायः ]

न नारिकेलेनेच शाणबाले-नंचापि मौज्जेन च बन्धशृङ्खलेः। एतेल्लु गावो न निबन्धनीया-

बद्धाृतु तिष्ठेत् परशुं गृहीत्वा ॥३३ कुरोः कारौश्च बध्नीयाद्गोपशुं दक्षिणामुखम्। पाशलग्नादिद्ग्धेषु प्रायश्चित्तं न विद्यतं ॥३४ यदि तत्र भवेत काण्डं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्। जिपत्वा पावनीं देवीं मुच्यतं तत्र किल्विपात् ॥३४ प्रेरयन् कृपवापीषु वृक्षच्डंदेषु पातयन्। गवाशनेषु विक्रीणंस्ततः प्राप्नोति गोबधम् ॥३६ आराधितम्त् यः कश्चिद्धिन्नकक्षो यदा भीत्। श्रवणं हृद्यं भिन्नं मग्नी वा कृटसङ्कटे ॥३७ कृपादुत्क्रमणे चैव भग्नो वा ब्रीवपादयोः। स एव भ्रियते तत्र त्रीन पादांस्तु समाचरेन ॥३८ कूपखाते तटीबन्धे नदीबन्धे प्रपासु च। पानीयेषु विपन्नानां प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥३६ कूपखाते तटीखाते दीर्घखाते तथैव च। अन्येषु धर्मपातेषु प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥४० वेश्मद्वारे निवासेषु यो नरः खातमिच्छति। स्वकार्यगृह्खातेषु प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।।४१ निशि बन्धनिरुद्धेषु सर्पव्यावहतेषु च। अग्निविद्यद्विपन्नानां प्रायिश्वत्तं न विद्यते ॥४२

प्रामघाते शरीघेण वेश्मबन्धनिपातने।
अतिवृष्टिहतानाश्च प्रायश्चित्तं न विद्यते।।४३
संप्रामे प्रहतानाश्च ये द्ग्धा वेश्मकेषु च।
दावाग्नि प्रामघाते वा प्रायश्चित्तं च विद्यते।।४४
यन्त्रिता गौश्चिकित्सार्थं मूढगर्ब्भविमोचने।
यत्ने कृते विपद्यंत प्रायश्चित्तं न विद्यते।।४६
व्यापन्नानां बहूनाश्च बन्धनं रोधनं ऽपिवा।
भिषमिश्याप्रचारे च प्रायश्चित्तं विनिर्दिशेत्।।४६
गोवृषाणां विपत्तौ च यावन्तः प्रेक्षका जनाः।
न वारयन्ति तां तेषां सर्वेषां पातकं भवेत्।।४७
एको हतोर्यर्बहुमिः समेतं-

निज्ञायते यस्य हतोऽभिधानात्। दिव्येन तेषामुपलभ्य हन्ता

निवर्त्तनीयो रूपसित्रयुक्तैः ॥४८
एका चेद्वहुभिः कापि दैवाद्वचापादिता भवेत्।
पादं पादः इत्यायाश्चरेयुस्ते पृथक् पृथक् ॥४६
हतेषु रुधिरं दृश्यं व्याधिप्रस्तः कृशो भवेत्।
नाना भवित दृष्टेषु एवमन्त्रेषणं भवेत्।।५०
मनुना चैवमेकेन सर्वशास्त्राणि जानता।
प्रायश्चित्तन्तु तेनोक्तं गोषु चान्द्रायणं चरेत्।।५१
केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं गोत्रतं चरेत्।
द्विगुणे व्रत आदिष्टं दक्षिणा द्विगुणा भवेत्।।६२

राजा वा राजपुत्रो वा ब्राह्मणो वा बहुश्रुतः। अकृत्वा वपनं तस्य प्रायश्चिनं विनिर्दिशेन ॥ १३ यस्य न द्विगुणं दानं कशश्च परिरक्षितः। तत्पापं तस्य तिष्ठंत वक्ता च नरकं ब्रजेत्।। ४४ यत्किञ्चित क्रियतं पापं सर्वकेशेषु तिष्ठति। सर्वान् केशान् समुद्धृत्य च्छंद्येदङ्गलिद्वयम् ॥५४ एवं नारीकुमारीणां शिरसो मुण्डनं स्मृतम्। न क्षियाः केशवपनं न दुरे शयनाशनम् ॥५६ न च गोष्ठं वसेद्वात्री न दिवा गा अनुब्रजेन्। नदीषु सङ्गमे चैव अरण्येषु विशयतः॥५७ न स्त्रीणामजिनं वासो व्रतमेवं समाचरेत्। त्रिसन्थ्यं स्नानमित्युक्तं सुराणामर्चनं तथा ॥५८ बन्धुमध्ये व्रतं तासां कुन्छचान्द्रायणादिकम्। गृहेषु नियतं तिष्ठेन्छुचिनियममाचरेत्।।५६ इह यो गोबधं कृत्वा प्रच्छाद्यितुमिच्छति। स थाति नरकं घोरं कालसूत्रमसंशयम्।।६० विमुक्तो नरकात्तस्मान्मर्त्यं होके प्रजायते। क्रीवो दु.खी च कुष्ठी च सप्त जन्मानि वै नरः ॥६१ तस्मात् प्रकाशयेत् पापं स्वधर्मं सततं चरेत्। स्त्रीवालभूत्यगोविप्रेष्वतिकोपं विवर्जयत् ॥६२ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे नवमोऽध्यायः।

## ॥ दशमोऽध्यायः ॥

## अगम्यागमनप्रायश्चित्तवर्णनम् ।

चातुर्वर्ण्यस्य मर्वत्र हीयं प्रोक्ता तु निष्कृतिः। अगम्यागमने चंव शुद्धौ चान्द्रायणश्वरत्॥१ एकैकं हासयेत् पिण्डं कृष्णं शुक्ते च वर्द्धयेत्। अमावाम्यां न भुञ्जीत एप चा द्रायणो विधिः॥२ कुक्कुटाण्डप्रमाणन्तु प्रासञ्च परिकल्पयेन्। अन्यथा भावदृष्टम्य न धर्मो नैव शुद्धश्रति ॥३ प्रायश्चित्तं नतश्चीर्णे कुर्यादुत्राह्मणभोजनम्। गोद्वयं वस्त्रयुरमञ्च द्द्याद्विप्रेषु दक्षिणाम् ॥४ चाण्डालीच श्रपाकीच हाभिगच्छति यो द्विजः। त्रिरात्रमुपवासी स्याद्विप्राणामनुशासनान् ॥४ सशिखं वपनं कुर्यान् प्राजापत्यत्रयञ्चरेन्। ब्रह्मकुर्च ततः कृत्वा कुर्याद् ब्रह्मणतर्पणम् ॥६ गायत्रीश्व जपेन्नित्यं द्दाहोमिथुनद्वयम्। विप्राय दक्षिणां द्याच्छद्धिमाप्रोत्यसंशयम्।।७ क्षत्रियश्चापि वैश्यो वा चाण्डाली गन्छतो यदि। प्राजापत्यद्वयं कुर्र्याद्वाद्वोमिथुनन्तथा ॥८ श्वपाकीमथ चाण्डालीं शूद्रो वे यदि गन्द्रति। प्राजापत्यं चरेत्कुच्छ्ं दद्याद्गोमिथुनन्तथा ॥६

मातरं यदि गच्छंत भगिनीं पुत्रिकान्तथा। एतास्तु मोहितो गत्वा त्रीन कुच्छांस्तु समाचरेन ॥१० चान्द्रायणत्रयं कुर्याच्छिशनच्छेदेन शुद्धयति। मात्रवसगमे चैव आत्मभेदनिदर्शनम् ॥११ अज्ञानात्तान्तु यो गच्छंत् कुर्य्याचान्द्रायणद्वयम्। दशगोमिथुनन्दद्याच्युद्धिः पाराशरोऽत्रत्रीत् ॥१२ पितृदारान् समारु मातुराप्ताञ्च भ्रातृजाम्। गुरुपत्नी स्तुषाञ्चेव भ्रातृभार्य्या तथैव च ॥१३ मातुलानीं सगोत्राश्व प्राजापत्यत्रयश्वरेत्। गोद्वयं दक्षिणां दत्त्वा शुद्धचते नात्र संशयः॥१४ पशुवेश्यादिगमने महिष्युष्टीकपीस्तथा। खरीच शुकरीं गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्।।१४ गोगामी च त्रिरात्रेण गामेकं ब्राह्मणे ददन्। महिष्युष्टीखरीगामी त्वहोरात्रेण शुद्धचित ॥१६ डामरे समरे वापि दुर्भिक्षे वा जनक्षये। वन्दिप्राहं भयार्त्ते वा सदा स्वस्त्री निरीक्ष्येत्।।१७ चाण्डाले सह सम्पर्क या नारी कुरुते ततः। विप्रान् दश वरान् गत्वा स्वकं दोषं प्रकाशयेत्।।१८ आकण्ठसम्मिते कृपे गोमयोदककर्दमे। तत्र स्थित्वा निराहारा त्वेकरात्रेण निष्क्रमेत्।।१६ सशिखं वपनं कृत्वा भुञ्जीयाद्यावकौदनम्। त्रिरात्रमुपवासित्वा ह्येकरात्रं जलं वसेत्।।२०

शङ्खपुष्पीलतामूलं पत्रश्व कुपुमं फलम्। सुवर्ण पश्चगव्यश्व काथयित्वा पिवेजालम् ॥२१ एकभक्तं चरत् पश्चाद्यावत् पुष्पवती भवत्। व्रतं चरति तग्रावत्तावत् संवसते वहिः।।२२ प्रायश्चित्तं ततश्चीर्णं कुर्यादुवाह्मणभोजनम्। गोद्वयं दक्षिणा दद्याच्छुद्धिः पाराशरोऽत्रवीत्।।२३ चातुर्वर्ण्यस्य नारीणां कृच्छचान्द्रायणं व्रतम्। यथा भूमिस्तथा नारी तस्म।त्तां न तु दृषयेत्।।२४ वन्दिप्राहेण या भुत्तवा हत्वा बद्धाः बलाद्भयात्। कृत्वा सान्तपनं कुच्छ्ं शुद्धेत् पाराशरोऽत्रवीत्।।२४ सकृद्भुक्ता तु या नारी नेच्छन्ती पापकर्मभिः। प्राजापत्येन शुद्धं यत ऋतुप्रस्रवर्णन तु ॥२६ पतत्यर्द्धशरीरस्य यस्य भार्घ्या सुरां पिवेत्। पतितार्द्धशरीरस्य निष्कृनिर्न विधीयते।।२७ गायत्री जपमानस्तु कृष्ठं सान्तपनं चरेत्।।२८ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दिध सर्पिः कुशोदकम्। एकराज्युपवासश्च कृच्छ्ं सान्तपनं स्पृतम्।।२६ जारेण जनयेद्रर्भं गते त्यक्तं मृते पतौ। तां त्यजंदपरे राष्ट्रे पतितां पापकारिणीम्।।३० त्रा**द्य**णी तु यदा गच्छत् परपुंसा समन्त्रिता। सा तु नष्टा बिनिर्दिष्टा न तस्यां गमनं पुनः ॥३१

कामान्मोहाद्यदा गच्छेत्यत्तवा बन्धून् मुतान पतिम्। सा तु नष्टा परे लोके मानुषेषु विशेषतः॥३२ दशमे तु दिने प्राप्ते प्रायश्चित्तं न विद्यते। दशाहं न स्यजंनारी त्यजंन्नप्रश्रुता तथा॥३३ भर्ता चैव चरेत् कुच्छ कुच्छार्द्ध चैव वान्धवाः। तेपां भूत्तवा च पीरवा च अहोरात्रण शुद्धधनि ॥३४ ब्राह्मणी तु यदा गच्छेन परपुंमा विवर्जिता। गत्वा पुंमा शतं याति त्यजेयु स्तान्तु गोत्रिणः॥३४ पुंसो यदि गृहं गर्द्यत्तदशुद्धं गृहं भवेत्। पितृमातृगृहं यश जारम्येव तु तद्गृहम् ॥३६ उहिल्य तद्गृहं पश्चात् पश्चगव्येन शुद्धश्वति। त्यज्ञनमृष्मयपात्राणि वस्त्रं काष्ट्रश्व शोधयेन ॥३७ सम्भारान् शोधयेत् सर्वान् गोकेशश्च फलोद्भवान्। ताम्राणि पञ्चगञ्येन कांस्यानि दश भस्मभिः॥३८ प्रायश्चित्तं चरेद्विप्रो ब्राह्मणे कपपादितम्। गोद्वयं दक्षिणां दद्यात् प्राजापत्यं समाचरेत्।।३६ इतरेषा महोरात्रं पश्चगव्येन शोधनम्। सपुत्रः सह भृत्यश्व कुर्याद् ब्राह्मणभोजनम् ॥४० आकारां वायुरप्रिश्च मेध्यं भूमिगतं जलम्। न दुष्यन्तीह दर्भाश्च यज्ञेषु च समास्तथा।।४१ उपवासैर्वतैः पुण्यैः स्नानसन्ध्यार्चनादिभिः। जपैहोंमैस्तथा दानैः शुद्धचन्ते ब्राह्मणा सदा ॥४२ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे दशमोऽध्यायः।

॥ एकादशोऽध्यायः ॥

अभक्ष्यभक्षगप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अमेध्यरेतोगोमांसं चाण्डालान्नमथापिवा। यदि भुक्तन्तु विप्रेण कृच्छुं चान्द्रायणश्वरेत् ॥१ तथैव क्षत्रियो वंश्य स्तर्द्धन्तु समाचरेत्। शूद्रोऽप्येवं यदा भुङ्क्तं प्राजापत्यं समाचरेत्।।२ पञ्चगव्यं पिवंच्छुद्रो ब्रह्मकूचै पिवंद्द्विजः। एकद्वित्रिचतुर्गाश्च दद्याद्विप्रादनुकमात्।।३ शुद्रान्नं सृतकस्यान्न मभोज्यस्यान्नमेव च। शङ्कितं प्रतिषिद्धान्नं पूर्वीचित्रष्टं तथैव च ॥४ यदि भुक्तन्तु विप्रेण अज्ञानादापदापि वा। ज्ञात्वा समाचरेत कुच्छु ब्रह्मकूर्चन्तु पावनम्।।**४** व्यार्रेनेकुरुमार्जारे रन्नमुच्छिप्टितं यदा। तिलदर्भोदकैः प्रोक्ष्य शुद्धयते नात्र संशयः॥६ शूद्रोऽप्यभोज्यं भुक्तान्नं पश्चगव्येन शुद्धचिति। श्रुत्रियो वापि वैश्यश्च प्राजापत्येन शुद्धचित ॥७ एकपंत्त्युपविष्टानां विप्राणां सहभोजने। यद्यकोऽपि त्यजेन् पात्रं शेपमन्नं न भोजयेत्।।८ मोहाद्वा लोभतस्तत्र पंक्ताबुच्डिष्टभोजने। प्रायश्चितं चरेद्विपः कुन्जं सान्तपनन्तथा।।६ पीयूषश्वेतलसुनवृन्ताकफलगृज्जनम्।।१०

पलाण्डं वृक्षनिर्यासं देवस्वं कवकानि च। उष्टीक्षीर मविक्षीर मज्ञानाद्वञ्जति द्विजः॥११ त्रिरात्रमुपवासी स्यात् पश्चगच्येन शुद्धश्चति। मण्ड्कं भक्षयित्वा च मूपिकामांसमेव च ॥१२ ज्ञात्त्रा विप्रस्वहोरात्रं यावकान्नेन शुद्धश्रति । क्षत्रियोवापि वृश्योवा क्रियावन्तौ ग्रुचित्रतौ। तर्गृहेषु द्विजेभीज्यं हव्यकव्येषु नित्यशः॥१३ घृतं तैलं तथा क्षीरं गुड़ं तैलेन पाचितम। गःचा नदीतटे विष्रो भुज्ञीयाच्जूद्रभोजनम् ॥१४ अज्ञानाद् मुखते विप्राः मृतके मृतकेऽपिवा। प्रायश्चित्तं कथं तेपां वर्णे वर्णे विनिर्दिशेत ॥१५ गायत्र्यप्टसहम्रंण शुद्धः स्याच्छ द्रमृतके। वैश्ये पश्वसहस्रेण त्रिमहस्रेण क्षत्रियः ॥१६ ब्राह्मणस्य यदा भुङ्कं प्राणायामेन शुद्धश्वति। अथवा वामदेव्येन साम्ना चैकेन शुद्धचित ॥१७ शुक्तान्नं गोरसं स्तेहं शुद्रोश्मन आगतम्। पकं विप्रगृहे पूर्व भोज्यं तन्मनुरत्रवीत्।।१८ आपत्काले तु विप्रेण भुक्तं शूद्रगृहे यदि। मनस्तापेन शुद्धेचत द्रुपदां वा शतं जपेत्।।१६ दासनापितगोपालकुलमित्राद्धं सीरिणः। एते शुद्रेषु भोज्याना यश्चात्मानं निवेद्येत्।।२०

शूद्रकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः। संस्कृतस्तु भवेद्दास्यो ह्यसंस्कारस्तु नापितः ॥२१ क्षत्रियाच्ड्रद्रकन्यायां समुत्पन्नग्तु यः सुतः। स गोपाल इतिज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः॥२२ वैश्यकन्यासमुत्पन्नो ब्राह्मणेन तु संस्कृतः। आद्धिकश्च म तु ज्ञेयो भोज्यो विप्रैर्न संशयः ॥२३ भाण्डस्थित मभोज्येषु जलं द्धि घृतं पयः। अकामतस्तु यो भुङ्क्तं प्रायश्चित्तं कथं भवेत्।।२४ ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वाप्युपसर्पति। ब्रह्मकूर्चोपवासेन यथावर्णस्य निष्कृतिः ॥२५ श्रुद्राणां नोपवासः स्याच्छ्रद्रो दानेन शुद्धश्रति । ब्रह्मकूर्वमहोरात्रं श्वपाकमपि शोधयेत् ॥२६ गोमूत्रं गोमयं क्षीरं दिध सर्पिः कुशोदकम्। निर्द्धिं पश्चगव्यन्तु पवित्रं पापनाशनम्।।२७ गोमूत्रं कृष्णवर्णायाः श्वेताया गोमयं हरेत्। पयश्च ताम्रवर्णाया रक्ताया द्धि चोच्यते ॥२८ कपिलाया घृतं प्राह्यं सर्वं कापिलमेव वा। गोमूत्रस्य फलं दद्याद्दध्नस्त्रिपलमुच्यते ॥२६ आज्यस्यैकपलं दद्यादङ्गुष्टाद्धंन्तु गोमयम्। क्षीरं सपद्छं दद्यात् पलमेकं कुशोदकम्।।३० गायत्र्यागृ**द्य गोमूत्रं ग**न्धद्वारेति <mark>गोमयम्</mark> । आप्यायस्त्रेति च श्लीरं दिधकावनेति वै दिधि ।।३१ तेजोऽसि शक्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। पश्चगव्यमृवा पूतं स्थापयेद्ग्निसन्नियौ ॥३२ आपोहिष्ठेति चालोड्य मानम्तोकिति मन्त्रयेत्। सप्तावरास्तु ये दर्भा अच्छिन्नामाः शुकतियः॥३३ एभिरुद्धृय होतन्यं पञ्चगन्यं यथाविधि। इरावती इदं विष्णुर्मानस्तोके च शंवती॥:४ एतैकद्भृत्य होनव्यं हुतगेषं स्वयं पिवेत्। आलोड्य प्रणवेनेव निर्माध्य प्रणवेन तु। उद्धृत्य प्रणवेनैव पिवेच प्रणवेन तु ॥३४ यस्वगस्थिगतं पापं देहे तिष्ठति देहिनाम्। ब्रह्मकृची द्रेत् सर्व यथैवामिरिवेन्धनम् ॥३६ पिवतः पतितं तोयं भाजने मुखनि सृतम्। अपेयं तद्विजानीयाद्भुक्षा चान्द्रायणं चरत्।।३७ कृपे च पतितं दृष्टा श्वश्वगालौ च मर्कटम्। अस्थि चर्मादि पतिनं पीत्वा मेध्या अपो द्विजः॥३८ नारन्तु कूपे काकच विदुराहखरोष्ट्रकम्। गावयं सौप्रतीकञ्च मायूरं खाड्गकं तथा ॥३६ वैयाव्रमार्श्व सेंहं वा कुणपं यदि मज्जति। तड़ागस्याथ दुग्रस्य पीतं स्यादुदकं यदि ॥४० प्रायश्चित्तं भवेत् पुंसः क्रमेणतेन सर्वशः। विप्रः शुद्धेयितित्ररात्रेण क्षत्रियस्तु दिनद्वयात् ॥४१ एकाहेन तु वैश्यस्तु शुद्रो नक्तेन शुद्धचित ॥४२ ४३

परपाकनिवृत्तस्य परपाकरतस्य च। अपचस्य च भुकून्नं द्विजश्चान्द्रायणञ्चरेत्॥४३ अपचस्य च यहाने दातुश्चास्य कुनः फलम्। दाता प्रतिप्रहीता च ह्रौ तौ निरयगामिनौ ॥४४ गृहीत्वाप्नि समारोप्य पञ्च यज्ञान्न वत्तरेत्। परपाकनिवृत्तोऽसौ मुनिभिः परिकीत्तितः॥४५ पञ्चयज्ञं स्वयं कृत्वा पराम्नेनोपजीवति। सततं प्रातरुथाय परपाकरतो हि सः॥४६ गृहस्थधर्मो यो विप्रो ददाति परिवर्ज्जितः। भृपिभिर्धमतत्वज्ञरपचः परिकीर्त्तितः ॥४० युगे युगे च ये धर्मास्तेषु धर्में यु द्विजाः। तेषां निन्दा न कर्त्तव्या युगरूपा हि ब्राह्मणाः ॥४८ हुङ्कारं ब्राह्मगस्योक्ता त्वङ्कारव्य गरीयसः। स्नात्वा तिष्ठत्रहःशेपमभिवाद्य प्रसाद्येत् ॥४६ ताड्यित्वा तृणंनापि कण्डे वा बध्यवाससा। विवादेनापि निर्जित्य प्रणिपत्य प्रमाद्येत् ॥५० अवगृर्य्य त्वहोरात्रं त्रिरात्रं क्षितिपातने। अतिकृच्ड्रञ्च रुधिर कुच्ड्रमन्तरशोणिते ॥५१ नवाहमतिकृच्छं स्यात् पाणिपूरान्नभोजनम्। त्रिरात्रमुपवासः स्यादतिकृच्छू. स उच्यते ॥५२ सवयामेव पापानां सङ्करे समुपस्थिते। शतसाहस्त्रमभ्यस्ता गायत्री शोवनं परम्॥५३ इति पाराशरे धर्मशास्त्रे एकादशोऽध्यायः।

॥ द्वादशोऽध्यायः ॥

तत्रादौ-पुनः संकारादिप्रायश्चित्तवर्णनम्।

दुःश्वप्नं यदि पश्येत् वान्ते वा श्लरकर्मणि । में यने प्रेतध्मे च स्नानमेव विधीयते ॥१ अज्ञानात् प्राप्य विष्मृत्रं सुरां वा पिवते यदि। पनः संस्कारमहन्ति त्रयो वर्णा द्विजातयः ॥२ अजिनं मेखला दण्डो भैक्षचर्या व्रतानि च। निवर्तन्ते द्विजातीनां पुनःसंस्कारकर्मणि ॥३ स्त्रीश्रद्रम्य तु शुद्धचर्य प्राजापत्यं विधीयते। पश्चगन्यं ततः कृत्वा स्नात्वा पीत्वा विशुध्यति ॥४ जलाग्निपतने चैव प्रत्रज्यानाशकेषु च। प्रत्यवसितमेतेपां कथं ग्रुद्धिर्विधीयते ॥५ प्राजापत्यद्वयेनापि तीर्थाभिगमनेन च। वृत्रकादशदानेन वर्णाः शुद्धचन्ति ते त्रयः ॥६ त्राह्मणस्य प्रवक्ष्यामि पनं गत्वा चतुष्पथम्। सशिखं वपनं कृःवा प्राजापत्यत्रयश्वरेत् ॥७ गोहयं दक्षिणां द्याच्छुद्धिः स्वावस्भुवोऽनवीत् । मुच्यते तेन पानेन ब्राह्मणत्वश्व गच्छति॥८ स्नानानि पञ्च पुण्यानि कीर्त्तितानि मनीषिभिः। आग्नेयं वारुणं ब्राह्मं वायव्यं दिव्यमेव च ॥१ आग्नेयं भस्मना स्नानमवगाह्य तु वारुणम्। आपोहिष्ठेति च ब्राह्मं वायव्यं रजसा स्मृतम् ॥१०

यत्त सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते। तत्र स्नाने तु गङ्गायां स्नातो भगति मानवः॥११ स्नानार्थं विश्रमायान्तं देवाः पितृगणैः सह। वायुम्ता हि गन्छन्ति तृपात्ताः सलिलार्थिनः॥१२ निराशास्ते निवर्त्तन्ते वस्ननिष्पीडने कृते। तस्मान्न पीडयेद्वस्त्रमकुःवा पिनृतर्गणम् ॥१३ थिधनोति हि यः केशान् स्नातः प्रस्नवतोद्विजः। आचामेद्वा जलस्थोऽपि स वाह्यः पितृदैवनैः॥१४ शिरः प्रावृत्य कं बद्ध्वा मुक्तकच्छशिखोऽपिवा । विना यज्ञोपवीतेन आचा तो उपयग्रचिभवेन ॥१४ जले स्थलम्थो नाचामेज्ञलस्थश्च वहि स्थले। उभे म्हुट्रा समाचान्त उभयत्र शुचिर्भवेत् ॥१६ म्नात्वा पीत्वा क्षुते मुप्ते भुक्तं ग्रथोपमर्पणे। आचान्तः पुनराचामेद्वासोविपरिधाय च ॥१७ क्षते निष्ठीविते चैव दन्तोच्छिष्टं तथानृते। पतितानाञ्च सम्भाषं दक्षिणं श्रवणं स्पृरोत्।।१८ ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च सोमः सूर्य्योऽनिलस्तथा। ते सर्वे ह्यपि तिष्ठन्ति कर्णे विप्रस्य दक्षिणे ॥१६ दिवाकरकरैः पूतं दिवास्नानं प्रशस्यते। अप्रशस्तं निशि स्नानं राहोरन्यत्र दुर्शनात्।।२० मकतो वसवो हृदा आदित्याश्चादिदेवताः। सर्वे सोमे विछीयन्ते तस्मात् स्नानन्तु तद्महे ॥२१

खलयं विवाहे च संकान्ती प्रहणेयु च। शर्वय्यां दानमतेषु नान्यत्रेति विनिश्चयः॥२२ पुत्रजन्मनि यहो च तथा चात्ययकर्मणि। गहोश्च दर्शने दानं प्रशस्तं नान्यदा निशि॥२३ महानिशा तु विशेया मध्यस्थप्रहरद्वयम्। प्रदोषपश्चिमी यामी दिनवत स्नानमाचरेत ॥२४ चैयरृक्ष्श्रितिस्थ चण्डालः सोमविक्रयी। एतांस्तु ब्राह्मणः स्पृष्टा सवासा जलमाविशेन् ॥२४ अस्थिस खयनात् पूर्व मदित्वा स्नानमाचरेत्। अन्तर्दशाहे विप्रस्य पर्वमाचमनं भवेत ॥२६ सर्वं गङ्गासमं तोयं राहुवस्ते दिवाकरे। सोमप्रहे तथैवोकं स्नानदानादिकमेषु ॥२७ कुश रतन्तु यत्स्नानं कुरोनोपस्पशंदुद्विजः। कुरानोद्व,ततोयं यत् सोमपानसमं स्मृतम् ॥२८ अतिकार्यान् परिस्रद्याः सन्ध्योपासनवर्जिताः। वेद्ब्चैवानयीयानाः सर्वे ते वृषलाः स्मृताः ॥२६ तमाद्वारलभोतेन बाह्यगेन विशेषतः। अध्येतव्योऽप्येकदेशो यदि सर्वं न शक्यते॥३० शूद्रान्नरसपुष्टस्याप्यध्योयानस्य नित्यशः। जपतो जुइतो वापि गतिरुक्ता न विद्यते ॥३१ शूद्रानं शूद्रसम्पर्कः शूद्रेण तु सहासनम्। शुद्राज्ज्ञानागमश्वापि ज्वलन्तमपि पातयेत्।।३२

मृतसूत रुपु राङ्गी दिजः श्रद्रात्रभोजने । अहं तां न विज्ञानामि कां कां योनि गमिष्यति ॥३३ गृघो द्वादश जन्मानि दश जन्मानि शुकरः। श्वयोनी सपजन्म स्यादित्येवं मनुरत्रवीत्।।३४ दक्षिगार्थं तु यो विष्रः शूद्रस्य जुहुयाद्वविः। ब्राह्मगम्तु भवेन्छ्द्रः शूद्रस्तु ब्राह्मगो भवेत् ॥३४ मौनव्रतं समाब्रित्य आशीनो न वदेद्द्विजः। भुञ्जानो हि वदेद्यम्तु तद्रत्नं परिवर्जयेन ॥३६ अर्द्धे भुक्तं तु यो विप्रस्तस्मिन् पात्रे जलं पिवेत्। हतं देवश्व पित्रयश्व आत्मानश्वोपयानयेत्।।३७ भाजनेषु च निष्ठत्यु म्बस्ति कुर्वन्ति ये द्विजाः। न देवा म्ट्रिमायान्ति निराशाः पितरम्तथा ॥३८ गृहम्थस्तु यदा युक्तो धर्ममेवानुचिन्तयेन। पोप्यधर्माथसिद्धन्यर्थं न्यायवर्त्ती सुबुद्धिमान् ॥३६ न्यायोपाजितवित्तंन कर्त्तव्यं ज्ञानरक्षणम्। अन्यायेन तु यो जीवेन सर्वकर्मवहिष्कृतः॥४० अग्निचिन कपिला सत्री राजा भिक्षमहोद्धिः। दृष्टमात्रं पुनन्त्येते तस्मात् पश्येत्तु नित्यशः॥४१ अर्राण कृष्णमार्जारश्चन्द्रनं सुमणि घृतम्। तिलान् कृष्णाजिनं छागं गृहे चैतानि रक्षयेत्।।४२ गवा शतं सेकवृषं यत्र तिप्रत्ययन्त्रितम्। तत्सेत्रं दशगुणितं गोचर्म परिकीर्त्तितम् ॥४३

ब्रह्महत्यादिभिर्मत्यो मनोवाकायकर्मजेः। एतद्गोचर्मदानेन मुच्यते सर्वकिल्विपः ॥४४ कुटुम्बिने दरिद्राय श्रोत्रियाय विशेषतः। यहानं दीयते तस्में तदायुर्वे द्विकारकम् ॥४४ आषोड्शदिनाद्वांक् स्नानमेव रजस्वला। अत ऊर्द्धं त्रिरात्रं स्यादुशना मुनिरत्रवीत ॥४६ युगं युगद्वयञ्चंव त्रियुगञ्च चतुर्युगम्। चाण्डालसृतिकोद्क्यापतितानामधः क्रमान् ॥४७ ततः सन्निधिमात्रेण मर्चेलं स्नानमाचरेत्। स्नात्वावलोकयेन सूर्यमज्ञानान स्पराते यदि ॥४८ वापीकूपतड़ागेषु ब्राह्मगो ज्ञानदुर्वलः। तोयं पिवति वक्तरोण श्रयोनौ जायते ध्रुवम् ॥४६ यस्तु ऋद्ध पुमान् भार्य्या प्रतिज्ञायाध्यगम्यताम्। पुनरिन्छति ताङ्गन्तुं विप्रमध्ये तु श्रावयेन्।।५० श्रान्तः कृद्धस्तमोश्रान्त्या क्षुत्पिपासाभयार्दितः। दानं पुण्यमकुःवा च प्रायश्चित्तं दिनत्रयम्।।५१ उपसृशेनत्रिषवणं महानद्यपसङ्गमे । चीर्णान्ते चैत्र गां द्याद्त्राह्मणान् भोजयेद्दश ॥५२ दुराचारस्य विप्रस्य निषिद्धाचरणस्य च। अनं भुका द्विजः कुर्यादिनमे कमभोजनम् ॥५३ सदाचारम्य विप्रस्य तथा वेदान्तवादिनः । भुकानं मुच्यते पापादहोरात्रन्तु वे नरः ॥५४

उद्धीचित्रष्टमधोचित्रष्टमन्तरीक्षमृतौ तथा। कुच्ड्रत्रयं प्रकुर्तीत आशीचमरणे तथा ॥४४ कुच्छुदेन्ययुतब्चैव प्राणायामशतत्रयम् । पुग्यतीर्थे नाद्रेशिरः स्नानं द्वादशसंख्यया। हियोजनं तीर्थयात्रा कुच्छमेवं प्रकल्पितम् ॥५६ गृहस्थः कामतः कुर्याद्रतसः सेचनं भूवि। सहस्रन्तु जपेइव्याः प्राणायामैस्निभिः सह ॥५७ चातुर्वश्रोपपन्नस्तु विधिवद्बह्मघातके। समुद्रसेत्गमनप्रायश्चित्तं विनिर्द्दिगंत् ॥६८ सेनुबन्धपथे भिक्षां चातुर्वण्यात् समाचरेत्। वजंयित्वा विकर्भस्थांञ्छत्रोपानद्विवर्जितः ॥५६ अहं दुष्कृतकर्मा वै महापातककारकः। गृहद्वारेपु तिष्ठामि भिक्षार्थी ब्रह्मघातकः ॥६० गोक्लेपु वसेशेव प्रामेत्र नगरेषुच। तथा वनेषु तीर्थेषु नदीप्रस्रवणेषु च ॥६१ एतेपु क्यापयन्ननः पुण्यं गत्वा तु सागरम्। दशयोजनविग्तीणं शतयोजनमायतम् ॥६२ रामचः द्रसमादिरं नलसञ्चयसञ्चितम्। सेतुं द्या समुद्रस्य ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥६३ यजेत वाश्वमेवेन राजा तु पृथिवीपतिः॥६४ पुनः प्रत्यागतो वेश्म वासार्थ मुपसर्पति। सपुत्रः सह भृत्येश्च दुर्ध्याद्वनाह्मणभोजनम् ॥६४ गाश्चेवैकशतं दद्याश्वातुर्वद्येषु दक्षिणाम्। ब्राह्मणानां प्रसादेन ब्रह्महा तु विमुच्यते ॥६६ सवनस्था स्त्रियं हत्वा हहारत्याव्रतं चरेत्। मद्यपश्च द्विजः कुर्यान्नदी गत्वा समुद्रगाम् ॥६७ चान्द्रायणे ततश्चीर्णे कुट्यांद्ब्राह्मणभोजनम्। अनुदुत्सहिता गाञ्च दद्याक्षिप्रेषु दक्षिणाम् ॥६८ अपहृत्य सुवर्णन्तु ब्राह्मणस्य तत स्वयम् । गच्छेन्सुपलमादाय राजाभ्यासं वधाय तु ॥६६ ततः शुद्धिमवाप्नोति राज्ञामौ मुक्त एव च। कामकारकृतं यतु स्यान्नान्यथा वधमहीति ॥७० आमनाच्छयनाद्यानातु मम्भाषातु सहभोजनातु। संक्रामति हि पापानि तेलविन्दुरिवाम्मसि ॥७१ चान्द्रायणं यावकञ्च तुलापुरुष एव च। गवाञ्चेवानुगमनं सर्वपापप्रणाशनम् ॥७२ एतत् पराशरं शास्त्रं श्लोकाना शतपञ्चकम्। हिनवत्या समायुक्तं धर्मशास्त्रस्य संप्रहः॥७३ यथाध्ययनकर्माणि धर्मशास्त्रमिदं तथा। अध्येतव्यं प्रयत्नेन नियतं स्वर्गगामिना ॥७४ इति पाराशरे धर्मशास्त्रं द्वादशोऽध्यायः॥ समाप्ता चेयं पराशरसंहिता॥ ॐ तत्सत्।

#### ॥ अथ ॥

( सुत्रतमुनिप्रोक्ता )

# \* वृहत्पराश्ररसृतिः \*

॥ श्रीगणशाय नमः॥

--:000:--

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

---00---

तत्राद्रौ-वर्णाश्रमप्रश्नम्।

व्यक्ताव्यक्ताय देवाय वेधसेऽनन्ततेजसे।
नमस्कृत्य प्रवक्ष्यामि धर्मान् पाराशरोदितान्॥१
अथातो हिमशैलाम् देवदाम्वनाश्रमे।
व्यासमेकाम्रमासीन मृत्रयः प्रष्टुमागताः॥२
मनुष्याणां हितं धर्मं वर्तमाने कलौ युगे।
वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद॥३
युगे युगेपु ये प्रोक्ता धर्मा मन्वादिभिर्मृने!।
वाक्यं तेनैव ते कर्तुं वर्णेराश्रमवासिभिः॥४
स पृष्टो मुनिभिव्यांसो मुनिभिः परिवेष्टितः।
प्रष्टुं जगाम पितरं धर्मान् पराशरं ततः॥६
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च वरे वद्रिकाश्रमे।
स विवेशाश्रमे तिसम् तनुं योगीव वेधसः॥६

नानापुष्पलताकीर्णे फलपुष्पेरलङ्कृते। नदी प्रस्तवणानेकै: पुण्यतीर्थापशीभिते॥७ मृगपक्षिभिराकीर्णं देवतायतनावृते। यक्ष गन्धर्व सिद्धेश्व नृत्यगीतसमाकुले ॥८ तस्मिन्नविप्तभामध्ये शक्तिपुत्रः शराशरः। सुखासीनो महातेजा सुनिमुख्यगणावृत: ॥६ कृताञ्जलिपुरो भूत्वा व्यामम्तु मुनिभिः मह। प्रदक्षिणाभिवादेश्व मुनिभिः प्रतिर्ज्ञितः ॥१० ततः सन्तुष्टमनसा पाराशरमहामुनि । व्यामस्य स्वागतं त्र्याद् आमीनो मुनिपुङ्गवः॥११ वशस्य स्वागतं तेऽन्तु महर्पीणां समन्ततः। कुरालं कुरालेत्युक्ता व्यामो पृच्छ इतः परम ॥१२ यदि जानासि मां भक्तं स्नेहोवा यदि वत्मछ। धम कथय मे तातः अनुप्रह्यो उस्म्यहं यदि।।१३ श्रुतास्तु मानवा धर्मा गार्गीया गौतमास्तथा। वासिष्ठाः काश्यपाश्चैव तथा गोपालकम्य च ॥१४ आत्रया विष्णु सम्वर्ता दाक्षाश्चाङ्गिरमान्तया। शातातपाश्च हारीता याज्ञवल्क्यकृताम्तथा ॥१४ आपस्तम्बकुता धर्माः सशङ्खिलिखितास्तया। कात्यायनकृताश्चेव प्रचेतमकृतास्तथा ॥१६ श्रुतिरात्मोद्भवा तात ! श्रत्यर्था मानवाः स्मृताः । मन्वर्थः सर्वधर्माणां कृतादि त्रियुगेषु च ॥१७

धर्मं तु त्रियुगाचारं स शक्यं हि कली युगे। वर्णानामाश्रमाणाञ्च किञ्चित्साधारणं वद ॥१८ व्यामवाक्यावमाने तु मुनिमुख्यः पराशरः। सुखासीनो महातेजा इदं वचनमत्रवीत ॥१६ क्रियन्ते नेव वंदाश्च नेवाति प्रभवन्ति ते। न कश्चिद्वंदकर्ताऽस्ति वेदस्मर्ता चतुर्मुखः॥२० तथा स धर्म समर्रात मनुः कल्पान्सन्तरे। अन्ये कृतवृगे धर्मास्त्रेतायां द्वापरे परे ॥२१ अन्ये कल्रियुगे नृणां युगह्वासानुहृपनः। तपः परं कृतयुगे त्रतायां ज्ञानमुच्यते।।२२ द्वापरे यज्ञमेवाहुर्दानमेकं कली युगे। कृते तु मानवा धर्मास्त्रतायां गौतमस्य च ॥२३ द्वापरे शाङ्ख-लिखिताः कलौ पाराशराः स्मृताः। त्यजेदशं कृतयुगे जेताया ब्राममुत्सृजेत् ॥२४ द्वापरे कुलमेकं तु कत्तांगञ्च कली युगे। कृते सम्भाष्य पनित त्रतायां स्पर्शनेन च ॥२६ द्वापरे भक्षणे ज्ञस्य कली पत्ति कर्मणा। अभिगम्य कृते दानं त्रेतामाहूय दीयते।।२६ द्वापरे याच्यमानन्तु सेवया दीयते कलौ। अभिगम्योत्तमं दानमाहूतज्ञेव मध्यमम्।।२७ अधमं याच्यमानं स्यात् सेवादानश्व निष्फलम्। कृते त्वस्थिगताः प्राणास्नेतायां मासमेव च ॥२८

द्वापरं रुधिरं यावत्कलौत्वन्नाद्यमेव च। कृते तात्क्षणिकः शापस्त्रतायां दशभिर्दिनैः॥२६ मासेन द्वापरं ज्ञेयः कली सम्बत्सरंण तु। युगे युगेषु ये धर्माम्तेषु धर्मेषु ये द्विजाः ॥३० ते द्विजा नावमन्तव्या युगम्पा द्विजोत्तमाः। धर्मश्च सत्यमायश्च तुर्व्या गेन कली युगे।।३१ अद्नात्तद्नाद्यस्य तुच्छमाय्रकार्य्यतः । धर्मश्र लोकदम्भार्थं पाषण्डार्यं तपस्विनः॥३२ विविधा वाग्वश्वनार्थं कलौ सत्यानुसारिणो। अल्पक्षीर-घृता गावो ह्यल्पमस्या च मेदिनी ॥३३ स्रीजनन्यः स्त्रियः सर्वा रत्यर्थं कृतमेथुनाः। पुरुषाश्च जिताः स्त्रीभी राजानो दस्युभिर्जिताः॥३४ जितो धर्मश्च पापेन अनृतेन तथा ऋतम्। श्रुद्राश्च ब्राह्मगाचाराः श्रुद्राचारास्तथा द्विजाः ॥३४ अन्यानुयायिनश्चाह्या वर्णास्तरुपजीविनः। कतन्तु ब्राह्मणयुगं जेता तु क्षत्रियं युगम्।।३६ वैश्यं तु द्वापरयुगं कलिः शृद्गयुगं स्मृतम्। चातुर्विणिकनारीणां तथा तुरीयजन्मनी।।३७ यति(पति)द्विजा(त्युपास्त्यापि)भ्युपास्त्यादि धर्मर्द्धिमहतीकलौ। शतेन या कृते दत्ते फलाप्तिः पुरुपस्य सा ॥३८ दत्तेषु दशभिर्नृणां फलाप्तिः स्यात् कलौ युगे। कृते यत् कोटिदस्य स्यात् त्रतायां लक्षदस्य तत्।।३६

द्वापरे उयुतद्स्य स्यान् शतद्स्य कली फलम् । युगावकपमाख्यातमन्यं निगदतः श्रुणु ॥४० वर्णानामात्रमाणाञ्च सर्वपा धर्मसाधनम्। मृगः कृष्णश्चरंदात्र स्वभावेन महीतले ॥४१ वसेत्तत्र द्विजातिस्त् शद्रो यत्र तु तत्र तु। हिमपर्वतविन्ध्याद्वचो विनशन-प्रयागयोः ॥४२ मध्ये तु पावनो देशो म्लंच्छदेशस्ततः परम्। देशेष्वत्येषु या नद्यो धन्याः मागरगाः शुभाः ॥४३ तीर्थानि यानि पुण्यानि मुनिभिः सेवितानि च। वसेयुस्तदुपान्तेऽपि शमिच्छन्तो द्विजातयः॥४४ मुनिभिः सेवितत्वाच पुण्यदेशः प्रकीर्तितः। यत्र पानमपेयस्य देशेऽभक्ष्यस्य भक्षणम् ॥४५ अगन्यागामिता यत्र तं देशं परिवर्जयेत्। एवं देश: ममारूयातो यज्ञियस्तु द्विजन्मनाम्।।४६ एवमेवानुवर्त्तरन्देशं धर्मानुकाङ्क्षिणः। वसन् वा यत्र तत्रापि स्वाचारं न विवर्जयेत्।।४७ पट्कर्माणि च कुर्वीरन्निति धर्मस्य निश्चयः। पराशरः म्वयम्प्राह शास्त्रं युत्रस्य बत्सलः॥४८ अथातः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजकर्मादिकं द्विजाः !। पट्कर्म-वर्णधर्माश्च प्रशंसा गोवृषस्य च ॥४६ अदोह्य-वाह्यो यो तत्र श्लीरं श्लीरप्रयोक्तिणा। अमावास्यानिषद्धानि ततश्च पशुपालनम् ॥६०

अन्न-तोयप्रशंसा च वाह्याऽवाह्यावसुन्धरा। अथार्थक्रवतोऽपारं तद्दवस्यापि शोधनम् ॥५१ बह्नि सोतामत्वश्वापि विवाहाः कन्यकावराः। ह्योप (पुं) धर्मी मखाः पश्च द्विजातिस्त्रर्गमाधनाः ॥४२ विविः प्राणाऽग्निहोत्रम्य आवानादिकमंस्कृतिः। व्रतचर्यादि तद्वमेः प्रशमा पुत्रजनमनः ॥४३ कुरुस्रो गृहस्थधर्मश्च भक्ष्याऽभक्ष्यं तथेत्र च। निपिद्धवस्तुकथनं पात्रशुद्धिस्तनः परम् ॥५४ द्रव्याणाञ्च तथाशुद्धिरु राकर्माणि कर्म च। अनध्यायास्तथा श्राद्वं विप्र-काञ्ज-हविर्युतम् ॥५५ बलिर्नारायणीयश्च सृतकाशीचमेव च। परिपत्प्रायश्चितानि तद्त्रतानि यथा द्विजाः ! ॥५६ विविवत्सर्वशानानि तेषाञ्चेव फलानि च। भूमिदानप्रशंसा च विरोषो विप्र कालयोः॥५७ इष्टापूर्ता तथा विद्वन्! तयोर्भिन्नफलानि च। प्रतिप्रह्विधिम्तद्वश्या तम्य प्रतिप्रहः ॥६८ विनायकादिशान्तोनां विवयश्च द्विजोत्तमाः।। वानप्रस्थम्य धर्मी जिप तथा धर्मी यतेरिप ॥५६ चतुराश्रमभेदोऽपि वपुर्निन्दा तथैव च। योगोऽर्विर्ध्ममार्गी च कालं स्द्रान्तमेव च।।६० दृष्ट्य तत्परं ध्येयं सर्वमेतत्पराशरः। प्रोक्तवान् व्यासमुख्यानां शेषं मुनिविभाषितम् ॥६१

नियुक्तः सुब्रतः शेषं विप्राणां ख्यापनाय च ॥६२ पराशरो व्यास वचो निशम्य यदाह शास्त्रं चतुराश्रमार्थम्।

युगानुरूपञ्च समस्तवर्ण-

हिताय वश्यस्य सुत्रतस्तन् ॥६३

शक्तिसूनोरनुज्ञातः सुतपाः सुत्रनस्त्वदम्। चतुर्वणाश्रमाणाञ्च हिनं शास्त्रमथात्रवीत्॥६४

इति श्रीवृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे व्यासप्रश्ने सुत्रनप्रोक्तायां शास्त्रसंप्रहोदृशकथनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

आचारधर्म**व**र्णनम्।

पराशारमतं पुण्यं पिविशं पापनाशनम्। चिनिततं ब्राह्मणःथाय धर्मसंस्थापनाय च ॥१ चतुर्णामपि वर्णानामाचारो धर्मपालनम्। आचारश्रष्टदेहानां भवेद्धर्मः पराङ्मुखः॥२ पट्कर्माभिरतो नित्यं देवताऽतिथिपूजकः। हुतशेषन्तु भुद्धानो ब्राह्मणो नावसीदित ॥३ (व्यासखाच)

कर्माणि कानीह कथव्च तानि कार्याणि वर्णेश्च किमाद्यकानि । तेषामनेहाकरणे विधिश्च सर्वं प्रसादान् प्रतनुष्व मह्मम् ॥४ (पराशर उवाच)

कर्मषट्कं प्रवक्ष्यामि यन् कुर्वन्तो द्विजातयः। गृहस्था अपि मुच्यन्ते संसारे र्वन्थहेत्रभिः॥४ अथोदशक्रमं शास्त्रं यच्ड्रूतं श्रुतिदृष्टिकृत्। तदुक्तं कर्म यत् पुंसा शृणुध्वं पापनाशनम्।।६ सन्ध्या स्नानं जपश्चेव देवतानाञ्च पूजनम्। वैश्वदेवं तथाऽऽतिथ्यं षट्कर्माणि दिने दिने।।७ प्रियो वा यदि वा द्वेष्यो मूर्खः पण्डित एव वा। वैश्यदेवं तु सम्प्राप्तः सोऽतिथि स्वर्गसङ्कमः॥८ सन्ध्यामथ प्रवक्ष्यामि देवता-काल-नामभिः। वर्णर्षि-च्छन्द्सा युक्ता यद्विधानं यथार्चनम्।।६ यावत्मन्त्रा यथोपास्तिहपस्पर्शनमेव च। आवाहनं विसर्गेश्व यावन्मानं(मन्त्र)क्रमेण तु ॥१० दिवसस्य च रात्रेश्च सन्धिः सन्ध्येति कीर्तिता ॥११ सोपास्या सद्दृद्धिजैर्यनात् स्यात्तेर्विश्वसुपासितम्। मध्याह्रे ऽपि च सन्धिः स्यात् पूर्वस्याहः परस्य च ॥१२

पूर्वाह्नो ह्यपराह्नस्तु क्षपा चति श्रुतिक्रमः। पूर्वा सन्ध्या तु गायत्री ब्रह्माणी हंसवाहना ॥१३ रक्तपद्मारुणा देवी रक्तपद्मासनस्थिता। रक्ताभरणभासाङ्गा रक्तमाल्याम्बरा तथा॥१४ अक्षमाला स्रग्धरा च वरहस्ता अराचिता। प्रागादित्योदयादिद्वान् मुद्ति वैयसे सनि॥१४ "प्रातः संध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । सादित्यां पश्चिमां सन्ध्यामधीस्तमितभास्कराम् ॥" उःथायोपामयेत्नन्थ्यां यावन् स्याद्रकेद्र्शनम्। विश्वमातः ! सुराभ्यच्यें ! पुण्ये ! गायत्रि ! वैधिम ! ॥१६ आवाह्याम्युपास्यर्थं एख्रेनोध्नि पुनीहि माम्। सन्ध्या माध्याहिकी श्वेता सावित्रो मद्रदेवता।।१७ वृषंन्द्रवाहना देवी ज्वलित्रिशिखधारिणी। श्वेताम्बरघरा श्वेता नानाभरणभृपिता।।१८ श्वेतन्त्रगक्षमाला च कृतानुरिकशङ्करा। जलाधारा धरा धात्री धरेन्द्राङ्गभवा तथा ॥१६ स्वभाविभातभूराद्या सुरोघनुतपाद्द्वया। मातर्भवानि ! विश्वेशि ! विश्वे विश्वजनार्चिते !।।२० शुभे ! वरे ! वरेण्येहि आहूतासि पुनीहि माम् ॥२१ सम्बया सायन्तनी कृष्णा विष्णुदैवी सरस्वती। सग्गा : कृष्णवस्रा तु । शङ्खचक्रगद्गधरा ॥२२

क्रणसम्भूषणेर्युक्ता सर्वज्ञानमया वरा। सर्ववाग्देवता सर्वा ब्रह्मादिवचिस स्थिता ॥२३ वीणा-ऽश्रमालिका चापहस्ता स्मितवरानना। चतुर्दशजनाभ्यच्यां कल्याणी शुभवाक्प्रदा ॥२४ मातर्वाग्देवि ! वरदे ! वरेण्ये ! वचनप्रदे !। सर्वमस्द्रणस्तुत्ये ! आहृतेहि ! पुनीहि माम ॥२६ बर्बशार्क हरीणां तु सङ्गमोऽम्त्भयोर्भवन । माध्याह्निकायां सन्ध्यायां सर्वदेवसमागमः ॥२६ पृजाभिकाद्भिणो ये च ये च कि चिज्जलार्थिनः। श्राद्वा**न्नभा**गचेया ये ये चाग्निहुतभागिनः॥२७ अन्यान्युबावचानीह स्थावराणि चराणि च। माध्याधिकीमपेक्षन्ते तेपामाप्यायिका हि सा ॥२८ यग्तस्यां नार्चयेहवांस्तर्पयेन्न पितृंश्तथा। भूता युवाववानी इ सोऽन्यतामिम्बमृच्यति ॥२६ ईशान्याभिमुखो भूत्वा द्विजः पूर्वमुखो**ं**पि वा। सन्ध्यामुपासयेद्यद्वत्तथावत्तन्निबोधत ॥३० आ मणेर्बन्धनाद्धरतौ पादौ चा ऽऽजानुत: शुचि:। प्रक्षऽऽल्या वमेद्विद्वानन्तर्जानुकरो द्विजः ॥३१ निर्मलात् फेनपूताभि मेर्नोज्ञाभिः प्रयत्नवान्। आचामेद्ब्रहातीर्थेन पुनराचमनाच्छुचिः॥ ३२ वक्तनिर्मार्जनं कृत्वा द्विस्तेनैवाधरान्यथा। अद्भिश्च संस्पृशेत् खानि सर्वाण्यपि विशुद्धये ॥३३

अङ्कुष्ठेन प्रदेशिन्या सव्यपाणिस्थवारिणा। ब्राणं संस्पृश्य नेत्रो च तेनानामिकया श्रुतीः ॥३४ नाभिच तत्कनिष्ठाभ्यां बक्षः करतलेन च। शिरः सर्वाभिरंसी च हाङ्गुल्यमेश्व संस्पृशेत्।।३४ आचम्य प्राणसंरोधं कृत्वा चोपस्पृशेत्पुनः। अत्रोपस्पर्शने मन्त्रां प्रातः केचित्पठन्ति हि ॥३६ सूर्यश्चमेति मन्त्रेण प्रातराचमनं स्मृतम्। 'आपः पुनन्तु' मध्याह्वे सायमग्निश्चमेति च। मन्त्राभिमन्त्रितं **इ**त्वा कुशपूत<del>ञ्च तज</del>्जलम्।।३७ आचम्य विधिवद् धीमान् सन्ध्योपासनमाचरेत्॥३८ सोङ्कारां चैव गायत्रीं जप्त्वा व्याहृतिपूर्वकम्। आपोहिष्टादि जल्पन्ति च्छन्दो-देवर्षिपूर्वकम् ॥३६ छन्दोभिर्विनियोगैश्च मन्त्र-ब्राह्मणसंयुतम्। एतद्वीने न कुर्वीत कुर्यान् होतत्तदासुरम्॥४० मृत्युभीतैः पुरा देवैरात्मनश्छादनाय च। ब्रन्दांसि संस्मृतानीह च्यादितास्तैरतोऽमराः ॥४१ **छादनाच्छन्द उद्दि**ष्टं वाससी कृतिरेव वा। छन्दोभिरावृतं सर्वं विद्या सर्वत्र नान्यतः ॥४२ यस्मिन्मन्त्रे तु ये देवा स्तेन मन्त्रेण चिह्नितम्। मन्त्रा तद्दैवतं विद्यात् सैत्र तस्य तु देवता ॥४३ येन यद्दिषणा दृष्टं सिद्धिः प्राप्ता तु येन वै। मन्त्रोण तस्य स प्रोक्तो मुनेभीवस्तदात्मकः ॥४४

यत्र कर्मणि चारव्धे जपहोमार्चनादिके। क्रियते येन मन्त्रोण विनियोगस्तु स म्मृतः ॥४४ अस्य मन्त्रस्य चाऽर्थोऽयमयं मन्त्रोऽत्र वर्तते । तत्तस्य ब्राह्मणं ज्ञेयं मन्त्रस्येति श्रुतिक्रमः॥४६ एतद्धि पञ्चकं ज्ञात्वा क्रियते कर्मयद्दृ हिजेः। तदनन्तफलं तेषां भवेद्वंदनिदर्शनात् ॥४७ अकामेनापि यन्न्यूनं कुर्य्यात् कर्म द्विजोऽपि यः। तेनासौ हन्यते कर्ताऽमृतो गन्ताधमृच्छति ॥४८ कुर्वन्नज्ञा द्विजः कर्म जपहोमादि कञ्चन। नासौ तम्य फलंबिन्देन् कर्म(क्लंश)मात्रं हि तम्य तत् ॥४६ आपद्यते स्थाणु गर्नं स्वयं वापि प्रलीयते। यातयामानि च्छन्दांसि भवन्यफलदान्यपि ॥५० सिन्धुद्वीप भृषिश्ञन्दो गायत्री भृक्षु तिसृपु। आपो हि दैवतं प्राहुरापे।हिष्ठादिषु द्विजा: ॥५१ गोभिलो (गाधिजो) राजपुत्रस्तु द्रुपदायामृषिर्भवेत् । आनुष्टुमं भवेच्छन्द आपश्चेव तु देवतम्॥५२ सौत्रामण्यावभृतके विनियोगोऽस्य कल्पितः । उदुत्यमुषिः प्रस्कण्यो गायत्रं सूर्य्यदेवता ॥५३ चित्रभित्यत्र कुत्सस्तु शकरी सूर्य्यदेवता। प्रणवो भूर्वभुंबः स्वश्च गायज्यापो भृचां त्रयम्।।५४ अघमर्षणसूक्तस्य ऋषिरेवाघमर्षणः। **छन्दोऽस्यातुष्टुभं प्राहुरापश्चेव तु दैवतम् ॥**५६

द्रुपदाघमर्षणं सूक्तं मार्जने व्याहरेदिति। स्मृतिभिः परिशिष्टैश्च विशेषस्तोयसेचने ॥६६ उक्तो अधेर्घ विभागेन कर्तभ्यः सोऽपि सद्दृद्धिजैः। आपोहिष्टेति च भूचामष्टाक्ष्रपदेन च ॥६७ पादान्ते प्रक्षिपेद्वापि पादमध्ये न च क्षिपेत्। भूमी मूर्धिन तथाऽकारा मूब्त्यांकारा पुनर्भव ॥५८ एवं वारि द्विजः मिश्वन् तर्पयेन् सर्वदेवताः। भृगन्ते माजनं कुर्यान् पादान्ते वा समाहितः॥५६ **ऋ**गर्धे वा प्रकुर्वीत शिष्टानां मतमोदृशम्। उदुत्यं चित्रां देवानामुपस्थाने नियोजयेत् ॥६० हंस. शुचिः षदित्यादि केचिदिच्छन्ति सूरयः। अव्याकृतमिदं ह्यासीन सदेवासुर-मानुपम् ॥६१ सङ्घोभायासृजद् ब्रद्धाः, मातेमा व्याहृतीः पुरा । भृटर्भुवः स्वर्महर्जनस्तपः सत्यं तथंव च ॥६२ आद्यास्तिम्रो महाप्रोक्ताः सर्वत्रैव नियोजनात्। अग्निर्वायुम्तथा सूर्य्यो वृहस्पत्याप एव च ॥६३ इन्द्रश्च विश्वेदेवाश्च देवताः समुदाहृताः। गायत्रपुष्णिगनुष्टुप् च बृह्ती पङ्क्तिरेव च ॥६४ त्रिष्ट्प च जगती चैव च्छ्रस्दांस्यैतांस्यर्तुक्रमात्। भरद्वाजः कश्यपश्च गौतमोऽत्रिर्रतः वेव<sup>ां स्व</sup>ंगाई हैं ' विश्वामित्रो जमद्गिर्वशिष्ठश्चर्षयः क्रेमीत् भे एनाभिः सक्छ व्याप्तमेताभ्यो नांस्ति वार्परंभ्ाहिह

सप्तेते स्वर्गलोका वे सत्यादृद्धुन विद्यते। तस्माह्नोकात्परा मुक्तिग्वर्शचीनाद्येक्षया ॥६७ प्राणमंयम रेप्वेता अभ्यस्याः पूरकादिभिः। ओमापोज्योतिरित्येति इरः पश्चात्प्रयुज्यते ॥६८ प्रत्योङ्कारसमायुक्तो मन्त्रोऽयं तेत्तिरीयके। अत्रोक्कारवदार्पादि विदु र्बद्यविदो जनाः॥६६ प्रणवाद्यन्त गायत्रीप्राणायामेष्वयं विधिः। गायज्यादि रुचित्रान्तेर्मन्त्रेश्च प्रागुद्रीरितः ॥७० उपासीरिन्द्वजास्तावद्यावन्नोदेति भास्करः। गर्वा वालपवित्रण यस्तु सन्ध्यामुरासते ॥७१ सर्वतीथां भिपकं तुलभते नात्र संशयः। गोवालं दर्भमारञ्च खड्गं कनकमेव च ॥७२ दर्भ-ताम्र-तिलैवांपि एतेन्तर्पणकृद्-द्विजाः। म सन्तर्प्य पितृन्देवानात्मानं त्रिदिवं नयेत् ॥७३ त्रिंशत्कोट्यस्तु विख्याता मन्देहा नाम राक्षमाः। उग्रन्तं ते विवस्वन्तं बलादिच्छन्ति ग्वादितुम्॥७४ दिने दिने सहस्रांशु रलक्ष्यैस्तैरभिद्रतः। भानुर्हीनः कृतस्तूगं तद्वश्यत्वमिवागतः ॥७४ अतस्तस्य च तेपां तु हाभूचद्वं सुदारूणम्। कि भविष्यति युद्दे ऽस्मिन् नित्यभूतमुरविस्मय ॥ ३६ अरुणम्य च ये बाणा ज्वलन्ती ये च भारवतः। विलक्ष्यास्ते निवर्तन्ते मन्देहानामदर्शनात् ॥७७

रवेरप्यंशवो ह्यस्मात् यातायाता ह्यशक्तितः। अप्राप्त्या च शरीराणां स्वामिनैव लयं गताः ॥७८ हेषाशब्दमकुर्वाणाः शफस्फूरणवर्जिताः। स्तव्याङ्गा निर्जयाज्ञाताः सूर्य्यस्यन्दनवाजिनः ॥७६ ततो देवगणाः सर्वे ऋष्यश्च तपोयनाः। यत्सन्ध्यांते उपासीत प्रक्षिपन्ति जलं महत्।।८० ॐकारब्रह्मसंयुक्तं गायत्र्या चाभिमन्त्रितम्। दह्यरन् तेन ते दैखा वजीभूतेन वारिणा॥८१ सहस्रां पुरथे तिष्ठन् योऽधीयानश्चतुः श्रुतीः । याज्ञवल्क्यः समाप्त्येतित्रशानुक्तवांस्तथा ॥ ८२ सत्वे त्वनुद्वादित्ये सन्ध्योपास्तिकरो भवेत्। उदिते सति या सन्ध्या बालक्रीडोपमा च सा ॥८३ सञ्या येन न विज्ञाता ज्ञात्वा नैव ह्युपासिता। स जीवन्नेव शूर्श्च ह्याशु गच्द्रति सान्वयः ॥८४ मान्त्रं पार्थिवमाग्नेयं वायत्र्यं दिव्यमेत्र च। वारुणं मानसञ्चेति सप्त स्नानान्यनुक्रमान् ॥८४ शं न आपस्तु वै मान्त्रं मृहालम्भं तु पार्थिवम्। भस्मना स्नानमाग्नेयं गोरेण्नाऽऽनिखं समृतम् ॥८६ आतरे सति या वृष्टि र्दिव्यस्नानं तदुच्यते। बहिर्नद्यादिके स्नानं वारुणं प्रोच्यते बुघैः ॥८७ यद्धयानं मनसा विष्णोर्मानसं तत्रकीर्तितम्। असामर्थ्येन कायस्य कालशक्त्याद्यपेक्षया ॥८८

तुल्यफ जानि सर्वाणि स्युरित्याह पराशरः। स्नानानां मानसं स्नानं मन्त्राद्येः परमं स्मृतप् ॥८६ कृतेन येन मुच्यन्ते गृहस्था अपि तु हिजाः। दिञ्यादीनां त्रयाणां तु स्नानानामौषसं परम ॥६० सद्यः पापहरं प्राहुः प्राजापत्यवताधिकम्। उषस्यपिस यत्म्नानं क्रियतेऽ नुदितेऽरवौ ॥११ प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम्। प्रातम्त्थाय यो विप्रः प्रातःम्नायो सदा भवेत् ॥६२ सर्वपापविनिर्मुक्तः परं ब्रह्माधिगच्छति । अस्नातो नाचरेत्कर्म जपहोमादि किञ्चन ॥६३ विद्यन्ते (क्रियन्ते)च सुरुप्तानि (सुगुप्तानि)इन्द्रियाणि क्षरन्ति च। अङ्गानि समतां यान्ति उत्तमान्यधर्मेः सह ॥६४ अत्यन्तमिलनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः। स्रवत्यंप दिवारात्रौ प्रात स्नानेन शुध्यति ॥६४ उषः। नानं प्रशंसन्ति सर्वे च पितरोदमराः। दृष्टादृष्टकरं पुग्यं शंमन्ति पितरो(भ्रायो)ऽपि हि ॥६६ प्रात स्नायो हि यो विप्रः सोऽर्हः स्यात्सवेकर्मसु। तत्कृतं कर्म यत्किञ्चित्तत्मवं स्याद्यथार्थवत् ॥ ६७ अविद्वान् स्नानकाले तु यः कुर्य्याद् तथावनम् । पापीयान् रौरवं याति पितृशापहतो ध्रुवम्।। ६८ यच श्मश्रुषु केशोषु यज्जलं देहलोमसु। हस्ताभ्यां न तु वस्त्रण जलं विद्वान हि मार्जयेत्।।६६

मार्जिते पितरः सर्वे सर्वा अपि च देवताः। तथा सर्वे मनुत्याश्च त्यजेरन् नियतं द्विजम्।।१०० स्नात्सि चिन्ततं सर्वे तीय पितृदिवौ स्सः। नतो नद्याद्यसी गच्छन्निराशास्ते शपन्ति दि।।१०१ ये तु म्नानार्थिनस्तीर्थं सिन्बन्तिन जलाश्रयान्। तइडमुपतिष्ठन्ति तृष्त्यै पितृहिवौकसः ॥/०२ अतो न चिन्तयेत्तीर्थ ब्रजेदेव स्व चिन्तितप्। देवखातनदोस्रोतःसग्म्यु स्तानमाचरेत्।।१०३ म्नानं नद्यादिबन्धेषु सद्भिः कार्यं सदम्बुषु। कृत्रिमं तोयकूपस्थं तोयं तत्र त्वकृत्रिमम्।।१०४ न तीर्थे म्ह्याकुले म्नायान्नासज्जनसमावृते । दर्भहीनोऽन्यचित्तस्तु न नप्नो न शिरोविना ॥१०४ कदाचिद्विदुपा मि॰या न स्नातव्यं पराम्भसा। अम्भ कृदुदृष्कृतांशन मनानकतःपि लिप्यते ॥१०६ प=व वा सप्त वा पिण्डान् स्नायादुद्धृत्य तत्र तु। वृथाम्नानादिकानोह् विशेषण विवजयेत्।।१०७ वृथा चोष्गोदकस्नानं वृथा जप्यमवैदिकम्। वृथा चाओत्रिये दानं वथा भुक्तमसाक्षिकम् ॥१०८ मासे नभिम न स्नायात्कदाचिक्रिस्नगासु च। रजस्वला भवन्त्येता वर्जयित्वा समुद्रगाः॥१०६ नापो मूत्रपुरीयाभ्यां नाग्निर्दहति कर्मणा। न स्त्री दुष्यति जारेणं न विप्रो वेदकर्मणा ॥११०

न स्नायात क्षोभितास्वयमु स्वयं न क्षोभयेश ताः। निनर्गनासु तीर्थाच पतन्तीष्वाहतासु च ॥१११ रविसंकान्तिवारेषु प्रहणेषु शशिक्षये। त्रतेषु चैव पष्टीषु न स्नायादुष्णवारिणा ॥११२ न स्नायाच्छद्रहस्तेन नैकहम्तेन वा तथा। उद्भुताभिरपि स्नायादाहताभिद्विजातिभिः ॥११३ म्बभावाभिरनुष्णाभि सहसाभिःतथा द्विजः। नवाभिनिर्दशाहाभिरसंस्रृष्टाभिरन्स्यज्ञं ॥११४ यः स्नानमाचरेन्निन्यं तं प्रशंमन्ति दे ताः। तस्माद्वहुगुणं स्नानं सदा कार्यं द्विजातिभिः॥११५ उत्माहाप्यायनंस्वाः तत्रशान्ति-शक्ति-वद्धिःम् । कीर्ति-कान्ति-वपुः पुष्टि-सौभाग्या-ऽऽयुःप्रवर्धनम् ॥११६ स्वर्ये च दशिमर्युक्तं गुर्गेः स्नानं प्रशस्यते। सूर्यादिदिनवारोक्तं तेलाभ्यश्वनपृर्वकम् ॥११७ हृताप-कीर्तिमरण सुत्र(लक्ष्मी)स्थानाप्ति मृत्यवः। आयुश्चार्कादिवारेषु तेलाभ्यङ्गे फलं क्रमात् ॥११८ जलावगाहनं नित्यं स्नानं सर्वपु वर्णियु। शक्तरहरहः कार्यं तस्याथ विधिरुच्यते ॥५१६ गोशकुत्मृत्कुशांश्चेव पुष्पाणि पत्रिकौ तथा। स्तानार्थी प्रयती निर्लं स्नानकाले समाहरेत् ॥१२० स्वमनोऽभिमतं तीर्थं गत्वा प्रक्षाल्य पाद्योः। हस्ती चाचम्य विधिविष्ठेखा बध्वेकचेतसा ॥१२१

मृद्म्बुभि: स्वगात्राणि क्रमात्प्रक्षालयेद्यथा। पादौ जहा कटिञ्चैव क्रमात्त्राणं जलैसिमः १२२ प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य च तज्जलम्। गृद्धोपगृद्धमित्येतदाज्ञुषा प्रयताञ्जलिः ॥१२३ ऊरू एं हीति च मन्त्रेण कुर्यादापोऽभिमन्त्रिताः। विधिज्ञाः कवयः केचिन्मन्त्रतत्त्वार्थवेदिनः ॥१२४ यत्र स्थाने तु यत्तीर्थं नदी पुण्यतरा तथा। तां ध्यायेन्मनसा नित्यमन्यतीर्थं न चिन्तयेत् ॥१२४ गङ्गादिपुण्यतीर्थानि कृत्रिमादिषु संस्मरेन्। ता ध्यायेन्मनसा वापि अन्यतीर्थं न चिन्तयेन ॥१२६ महाव्याहृतिभिः पश्चादाचामेत्र्ययतोऽपि सन्। उदुत्तमिति सप्पु मन्त्रोण प्राङ्मुखो विशेत्।।१२७ येऽप्रयो दिवि चेत्येतरकुर्यादालम्भनं ततः। सूर्य्य पश्यं जलं मुक्ता समुत्तीर्य ततः स्थलम् ॥ १२८ आचम्याथ हरेनमृत्स्नां तथा कायं समालभेत्। अश्वकान्ते रथकान्ते विष्णुकान्ते वसुन्धरे ॥१२६ मृत्तिके हर मे पापं यन्मया पूर्वसिवतम्। मृतिकाहरणे मन्त्रमिति वासिष्ठजोऽनवीत्। समास्रभेत्रिभिर्मन्त्रैरिदं विष्णादिभिर्द्धिजः॥१३० शिरश्चांसावृरश्चोरू पादी जङ्को कमेण तु। भास्कराभिमुखो मञ्जेदापो श्रस्मानिति त्रिभिः॥१३१

उत्सृत्य सर्वगात्राणि निमज्जेच पुन पुनः। उत्तीर्घ्याऽऽचम्य गात्राणि गोमयेनाथ लेपयेन ॥१३२ मानस्तोक इति ह्यूक्ता प्राग्वदङ्गक्रमेण तु। इमं मे वरुण, त्वन्नः, सत्यं नय, उदुत्तमम् ॥१३३ मुञ्च त्ववभृथेत्येतैरात्मानमभिषचयेन्। निमज्ज्याऽज्वम्य चाऽज्ञ्मानं दर्भैमेन्त्रेश्च पावयेत् ॥१३४ सर्वपापापनोदार्थं प्राग्वदङ्गक्रमेण त्। आपोहिष्ठादिकैर्मन्त्रैक्विभिरन्येश्च पावयेत् ॥१३५ हविष्मतीरिमा आप इदमापस्तथैव च। देवीराप इति द्वाभ्यामापो देवीरिति त्यचा ॥१३६ संस्थ्य द्रुपदां देवीं शन्नो देवीरपां रसम्। प्रत्यङ्गं मन्त्रनवकमापोदेवी पुनन्तु माम् ॥१३७ चित्पतिं मां पुनात्वेतन्मन्त्रेणापि च पावयेत्। हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथापरम्।।१३८ तरत्समन्द्रीधावति पवित्र्याण्यपि शक्तितः। स्नानकर्मात्मकेर्मन्त्रीरन्येरप्यम्बुद्वैवते ॥१३६ प्राव्यात्मानं निमज्ज्याथ आचान्तस्वन्यदाचरेत्। काल-काय-प्रदेशानां तथा चैवोदकस्य च ॥१४० प्राक्रत्ये सति चैवायं विधिरन्यो विपर्यये। सोंकारां चैव गायत्रीं महाव्याहृतिभिः सह।।१४१ त्रिषण्णवैकथाऽऽवर्त्य सायाद्विद्वानिप द्विजः : **ब्रन्दो-मुन्यमरैर्युक्तं स्वशास्त्रास्वरसंयुतम् ॥१४**२

आवर्त्य प्रणवं स्नायाच्ब्रतमर्धशतं दश। चिद्र्पं परमं ज्योतिर्निरालम्बमनामयम्।।१४३ अन्यक्तमन्ययं शान्तं स्नायाद्वापि हरिं स्मरन्। गायत्रीवारिसंस्नातः प्रणवेनिर्मलीकृतः ॥१४४ विष्णत्मरणसंशुद्धो योग्यः सर्वेषु कर्मसु। योऽधीतोद्देशेरार्थः स स्नानः सर्ववारिषु ॥१४५ शुद्धेयद् ग्रचिनः स्वान्तस्तच्छ दृश्तु श्रचिर्यतः। मन्त्रेश्च मनमा स्न'नं न गोमय-मृद्ग्युभिः ॥१४६ र्तस्वे हो-त्वर-मतस्याश्च स्नानस्य फलमाप्नुयुः । भावपृतः पवित्र स्थान्मन्त्रपृतम्तथा नरः ॥१४७ उभयन पवित्रस्तु नित्यस्नायी श्रुचिर्नरः। विधिदृष्टं तु यन कर्म करोत्यविधिना तु यः ॥१४८ न किंचिन फलमाप्नोति क्लेशमाज्ञं हि तस्य तत्। उत्पद्यन्ते जले मत्स्या विपद्यन्ते तु तत्र च ।१४६ तिष्ठःनोऽपि च ते स्नानफलं नैवाप्तुयूर्यतः। विविहीनं भावदुष्टं कृतमश्रद्धयापि च ॥१५० तद्भरन्त्यमुरास्तस्य मृहत्याद्कृतात्मनः। श्रद्धा-विधिसमायुक्तं यत् कर्म क्रियते नृभिः। श्चिभीरेकचित्तेश्च तद्दानन्त्याय कल्पते ॥१५१ उदात्तमनुदात्तं च स्वरितं ग्लुतमेव च। द्रतं च स्वरितोदात्तं स्वरं विद्यात्तथा ग्लुतम् ॥१४२

Section of the sectio

स्वरान्तं व्यञ्जनान्तं च विसर्गान्तं तथैव च । सानस्वारं पृथक्तं च ज्ञातन्यमपरं च यन् ॥१५३ वृत्रं शतकतुईन्ति वज्रेण शतपर्वणा। यथा तथा प्रवक्तारं मन्त्रो होन म्बरादिभिः॥१५४ स्वरतो वर्णतः सम्यक् सःध्या-ध्यान-जपादिषु। सर्व मन्त्राः प्रयोक्तव्या होनाः स्युरफला नृणाम ॥१५५ नाभरधस्तादङ्गानि क्षालयित्वा मृदम्भमा। उपिए।त निक्तवस्रो मन्त्रीः प्रोक्ष्य श्रुचिमीत् ॥१४६ चतुरश्चतुरस्त्वङ्बचोद्दंही च जङ्खयोरतथा। होही च जानुनोर्न्यस्य उर्जो पश्च च पश्च च ॥१५० द्वावत्येवं तथा गुद्धं दशदशोदर-वक्षसाः। होंहो गलं च बाबोश्च होहावंस मुखंयु च ॥१६८ होही च चक्षुपोः श्रुत्योः मग्नोङ्कराश्च मूघनि। न्यस्तप्रणवसर्वोङ्गः म्नातः स्यान् सर्ववारिषु ॥१४६ अकारं मूर्विन विन्यम्य उकारं नेत्रमध्यतः। मरुषं कण्ठदेशे तु ब्रह्मीभवति वे द्विजः ॥१६० अव्यङ्गाक्किष्टधौते तु विद्वाञ्छुक्ले च वाससी। परिवास मृदम्बुभ्यां करी पादी च मार्जवेत्॥१६१ तद्वाससोरसम्पत्ती शाण-श्लीमा-ऽऽविकानि च। कुतपं योगपट्टं वा द्विवासास्तु यथा भवेत्।।१६२ न जीर्ण-नील-काषाय-माञ्जिज्ञेन तु वाससा। मूत्रायुषगतेनेव शुचिः स्यानैकवाससा ॥१६३

एकं वासो यथाप्राप्तं परिधाय मनःश्रुचिः। अन्यत् कृत्वोत्तरासङ्गमाचम्य प्राङ्गमुखः स्थितः ॥१६४ प्रत्योङ्कारसमायुक्ताः प्रणवाच-तकास्तथा। महाव्याहृतयः सप्त देवतार्पादिसंयुताः ॥१६४ प्रणवान्ता च गायत्री शिरस्तस्यास्तथैव च। त्रिरावर्तनमेतस्याः प्राणायामो विधीयते ॥१६६ शक्त्याऽमुसंयमं कृत्वा तथाचम्य विधानतः। उपास्य विविवत् सन्ध्यामुपस्याय च भास्करम् ॥१६७ गायत्री शक्तितो जप्त्वा तर्पयेद्देवताः पितृन्। अन्वारब्धेन सब्येन पाणिना दक्षिणेन तु ॥१६८ तृप्यतामिति सेक्तव्यं नाम्ना तु प्रणवादिना। ब्रह्मेश-केशवान् पूर्वं प्रजापतिमथो श्रुतीः ॥१६६ ब्रन्दो यज्ञानृषीन् सिद्धानाचार्यास्तनयानपि । गन्धर्व-वत्सरतूँश्च मासान् दिन-निशास्तथा १७० देवान् देवानुगांश्चैव नागान्नागकुलानि च। सरितः सागरांस्तीर्थान् पर्वतान् कुळपर्वतान् ॥१७१ किन्नरान् खेचरान् यक्षान् मनुष्यानथ तपयेत्। सनकश्च सनन्दश्च तृतीयश्च सनातनः ॥१७२ आसुरिः कपिल्रश्चेव बोद्धः पञ्चशिखस्तथा। मानुषान् यातुधानांश्च तेषां चैव कुलान्यपि।।१७३ सुपणाश्च पिशाचांश्च भूतान्यथ पश्रंस्तथा। वनस्पतीनोषधीश्च भूतमामं चतुर्विधम्।।१७४

ब्रह्मादयो मयाहूता आगच्छन्त्वाददन्त्वपः। अनृणं मां प्रकुर्वन्तु प्रसीदन्तु ममोपरि ॥१७४ ततः पूर्वाप्रदर्भेषु साप्रेषु सकुशेषु च। प्रादेशिकेषु शुद्धेषु ब्रह्मादिभ्यो उन्बु सेचयेत् ॥१७६ अन्वारच्यापसव्येन पाणिना दक्षिणे न तु। भूस्थदक्षिणजानुः सन् देवेभ्यः सेचयेज्जलम् ॥१७७ देवेभ्यश्च नमः स्वाहा पितृभ्यश्च नमः स्वधा। मन्यन्ते कवयः केचिदित्ययं तर्पणक्रमः॥१७८ तर्प्यमाणेयु कर्मत्वं णिजन्तं च क्रियापदम्। तर्पयामि पितृन् देवानित्याहुरपरे पुनः ॥१७६ सिच्यमानेन तोयेन मन्यन्ते मुनयो परे। देवास्तृप्यन्तु पितरस्तृप्यन्स्विति निदर्शनम् ॥१८० उदीरतामाङ्गिरस आयन्तु नोर्जमत्यपि। पितृभ्यश्च स्वधायिभ्यो ये चेह पितरस्तथा ॥१८१ अग्निःवात्तोपरूताश्च तथा वर्हिपदोऽ पि च। येन पूर्वे च तितरः सोमपानामुदीरयेत् ॥१ २ आवाह्य च पितृनेतेरपसव्योपवीतिना। दक्षिणाभिमुखो द्वाभ्यां कराभ्यामम्बु सेचयेत् १८३ भूलप्रसन्यजानुश्च दक्षिणामकुरोषु च। रुष्म-रोप्य-तिरुस्ताम्र-दर्भ-मन्त्रीः क्षिपेत् पयः ॥१८४ विना रौप्य-सुवर्णाभ्यां विना-ताम्र-तिलैरपि। विना दभैँश्च मन्त्रीरच पितृणां नोपतिष्ठति ॥१८५ 84

दर्भेलीहितदर्भेश्च काश-वीरण-वस्वजैः। शुक्धान्य-तृणैर्वापि दर्भकार्य श्रवेद् द्विजः ॥१८६ न तर्पयेत् पतन्तीभिविद्वानद्भिः कर्थचन। षात्रस्थाभिः सद्रभीभिः सतिलाभिश्च तर्पयेत्।।१८७ वसून् रूद्रांस्तथाऽऽदियाश्रमस्कारसमन्वितान्। एते च दिञ्याः पितर एतहायसमानुषाः ॥१८८ ध्रवो धरश्च सोमध्य आपश्चेवानस्रो ऽनिस्त । प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो उद्दी प्रकीर्तिताः ॥१८६ अजैकपादहिई्डन्यो विरूपाक्षोऽश्रं रैवतः। हरश्च बहुरूपश्च ज्यम्बकश्च सुरेश्वर ॥१६० साम्बन्ध्यं अयन्त्रस्य पिनाकी चापराजितः। एते स्ट्राः समारूयाता एकाईश सुरीत्तमाः ॥१६१ इन्द्रो धाता मंगः पूरा मित्रोऽथ वरुणोऽर्यमा । अंगुर्विवस्वास्त्वष्टा च सविता विष्णुरेव च ॥१६२ एते वै द्वार्वशाहित्या देवानां परमाः स्वताः। एवं हि दिव्याः पिंसरः पूंडियाः सर्वे प्रयत्नर्तः :॥१६३ कव्यवाहो नलः सीमी यमश्चीव र्सथार्थमा। अंग्निकीं सोमपारव तथा विधियीऽपि च ।।१६४ एते चान्ये च पितरः पृष्टयाः सर्वे प्रथन्नतः। <del>एतिस्तु तिर्पितैः सर्वै:पुरुषि।सिर्पितां कृतिः।।१६४</del> यमंश्रचे धर्मरीजेश्च मृत्युंश्चेध तथान्तकः। वैवस्वतिश्व कें।लश्व सर्वभूतिक्षयंस्था ।।१६६

औदुम्बरश्च नीलश्च दंध्नश्च परमेष्ट्रचपि। चित्रश्च चित्रगुपरच वृकोदरस्तथार्यमाः ॥१६७ एतेस्त तर्पितैः सद्भिर्विश्वं स्यात्तर्पितं नृभिः। तस्मान प्रार्क्तरियत्वैतान् पित्रादीन् तर्पयेक्ततः ॥१६८ मातामहान् मातृलाश्च सखि-सम्बन्धि-बान्यवान् । स्वजनान् ज्ञातिक्गीयानुपाष्यायीन् गुरूनपि ॥१६६ मित्रान् भृत्यानपत्यांश्व ये भवन्ति तदाश्रिताः। त.न् सर्वास्तर्पयेद्विद्वानीहन्ते ते यतो जर्छम् ॥२०० जलस्थरच जले सिँचेन स्थलस्थरच तथा स्थले। पादौ स्थाःयीऽभयोश्चैव प्रक्षाल्यीभयतः शुचिः॥२०१ यज्ञले शुक्तवस्रोण स्वर्के चैवाईवाससा। कुर्याद्वीमं जपं दानं तत्सर्वं निष्फैलं भवेतु ॥५०२ नार्द्रवासा खल्खस्तुं बुधर्तिपैणमाचरेत्। जानुद्ध्तजलस्थी वो विगलस्त्रीनवर्द्धकः ॥२०३ गोशृङ्गमात्रमुद्ध त्य करी वित्रौ जलें स्थितः। अम्बरे तु क्षिपेद्वारि पितृंणां तृप्तिमाबहर्न्।।२०४ उमाभ्यां सेचयेद्वारि आकारी दक्षिणामुखः। पितृगां सानमाकारी दक्षिणा दिक् तथिव च ॥५०४ खलगी मार्द्रवासास्तु कुर्याह्रे तेर्पणानिकम्। प्रेताष्ट्रते नार्द्रवासा नैकेवासी समीचरेष् ॥२०ई एवं हि तेपीण ईत्वा सर्वेषा विधिवद्विती:। निष्णिख्येम् आनवसं वैन स्मातो अविद्दितिः ॥२०७

निष्पीडयति यः पूर्वं स्नानवश्वमबुद्धिमान्। निराशाः पितरस्तस्य यान्ति देवाः सहर्षिभिः २०८ निष्पीडयेत् स्नानवस्तं तिल-दर्भसमन्वितम्। न पूर्वं तर्पणाद्वस्तं नैवाम्भसि न पादयोः ॥२०६ एषु चेत पीडयेद्वस्तं राक्षसं तदतिक्रमात्। बस्ननिष्पीडने विप्र इमं श्लोक मुद्दाहरेत् ॥२१० ये मे कुले लुप्तिपण्डा पुत्र-दार-विवर्जिताः। तेषां प्रदत्तमक्षय्यमिद्मस्तु तिलोदकम्॥ २११ पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे कुमृत्युना। तेषां तृष्तिर्भवस्वेषा तिलमिश्रेण वारिणा।।२१२ जलमध्ये च यः कश्चिद्गाद्मणा ज्ञानदुर्वलः। निष्पीडयति चेर् वस्नं स्नानं तस्य वृथा भवेत् ॥२१३ यद्रास् मलनिक्षेपः शौच-म्नानादिकुर्वताम्। तत्पापस्य व्यपोहार्थमिमं मन्त्रभुदीरयेत् ॥२१४ यन्मया दृषितं तोयं मर्लः शारीरसम्भवैः। तस्य पापस्य निष्कृत्ये यक्ष्मणस्तत्र तर्पणम् ॥२१५ अम्बुपेभ्यो Sथ यक्ष्मभ्यो ददामीदं जलाञ्जलिम्। अन्यथा ध्नन्ति ते सर्व सुरृतं पूर्वसिश्वतम् ॥२१६ अपुत्रा ये मृताः कंचित पुमांसो योपितो ऽपि वा। अस्मद्वंशेऽपि तेभ्यो वै दत्तं वस्त्रजलं मया।।२१७ नास्ति वेनापि यो विप्रस्तपेयेत पितृ-देवताः। स तत्त्र प्तिकृतो धर्मान प्राप्त्यान् परमां गतिम् ॥२१८

नास्तिक्यावस्थितो यस्तु तर्पयेम्न पितन द्विजः। पिवन्ति देहनिमावं पितरस्तज्जलार्थिनः ॥२१६ पितणां पितृतीर्थेन देवानां देविकेन तु। इति मत्वा प्रकुर्वाणा मुच्यते गृहमेधिनः ॥२२० पश्च तीर्थानि विप्रस्य करे तिष्टरित दक्षिणे। ब्राह्मं दैवं तथा पित्र्यं प्राजापत्यं तु सीमिकम्।।२२१ ब्राह्मं पश्चिमलेखायां देवं हाङ्गलिमधीन । प्राजापत्यं कनिष्ठादौ मध्ये मौम्यं विजानतः॥२२२ अङ्गप्टम्य प्रदेशिन्या मध्ये पित्र्यं प्रतिप्रितम् । कुर्याची ऽहरहरचैवं सम्यग्ज्ञात्वा विधानतः॥२२३ स प्राप्तुयादुगृहस्थोऽपि ब्रहणः पद्मव्ययम्। स्नात्वा जप्त्वा च हुत्वा च दृत्वा चैव तु योऽश्वृतं ॥२२४ सो अमृतं नित्यमश्नाति तस्य स्थानमनामयम्। अस्नात्वा अनन् मलं भुड्कं अजप्त्वा प्य-शोणितम्। अज़ुद्धंश्च कुमीन कीटानद्दंश्च शकुत्तथा।।२२६ आह्वादकारणं स्नानं दुःख-शोकापहं तथा। दुःस्वप्ननाशनं चैव कार्यं स्नानमतः सदा ॥२२६ चित्रप्रसाद-बल-रूप-तपांसि-मेधा-मायुष्य-शौच-सुभगत्वमरोगितां च । ओजस्त्रितां त्विपमदात् पुरुषस्य चीण म्नानं यशो-विभव-सौख्यमळोळपत्वम् ॥२२७

गीर्वाष्ट्रन्द्वद्विजसत्तम्स्तुतः प्रमृत्तो मया यस्तु वस्त्रिष्ठपौत्रतः। पापप्रणाशं वितनोति यः श्रुतः

प्रोदीरितः स्तानुविधिः स लेशतः २२८

उद्शतो मया प्रोक्तः स्नानस्य परमो विधिः। द्विजन्मनां हितार्थं तु जपस्यातः परो विधिः॥२२६

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रं सुत्रतशोक्तायां समृतायां स्नानविधिर्नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

-:00:-

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥ ॐकारमन्त्रवर्णनम् ।

जपस्याथ प्रवक्ष्यामि विधि पाराशरोदितम्। यावद्विधो जपो यस्तु यथा कार्यो द्विजातिभिः॥१ जप्यानि बद्धासूक्तानि शिवसूक्तानि चैव हि। वैष्णवानि च सूक्तानि तथा सौरण्यनेकधा॥२ सारस्वतानि दौर्गाणि वारुणान्यानिलानि च। पौराणिकानि चान्यानि स्था सिद्धान्तिकानि च।।३

सर्वेषां जप्यसुकानासूचां स ग्रजुकां तथा। साम्नां वैकाक्षरादीनां गायत्री परसो जपः ॥४ तस्याश्चेत्र तु ॐकारो ह्याद्मणा यमुपासन्ते। आभ्यां तु परमं जप्यं त्रेहोक्येऽपि न विद्यते ॥४ तयोख्त देवतार्षादि समासेनाभिधीयते। येन विद्यातमात्रीण द्विजो ब्रह्मत्वमाप्नुयात् ॥६ आसीझेव यदा किंचित् सदेवाऽ-सुर-मानुपम्। तदैकाक्षर एकासीदात्मविन्यस्तविश्वकः ॥७ गतभीरहितीयोऽपि एकाकी स न मोदते। चिन्तयामास गायत्री प्रत्यक्षा साऽभवत्तरा ॥८ गायत्री साऽभवन् पत्नी प्रणवोऽभून् पतिस्तद्।। पुनरन्यौ च दम्पत्याविति ताभ्यामभूज्ञगन्।।६ प्रणबो हि परं तत्त्वं त्रिवेदं त्रिगुणात्मकम्। त्रिदेवतं त्रिधामं च त्रिप्रज्ञं त्रिरवस्थितम् ॥१० त्रिमाणं च त्रिकालं च त्रिलिङ्गं कवयो विदुः। सर्वमेन त्रिक्ष्पेण व्याप्तं तु प्रणवेन हि ॥११ भायजुः-सामवेदाश्च त्रिवेद इति कीर्तितः। सत्त्वं रजस्तमध्रेव त्रिगुणस्तेन चोच्यते ॥१२ ब्रह्मा विष्णुस्तथेशानस्त्रिदैवत इतीष्यते। अहिः सोमध सूर्येश्व त्रिधामेति प्रकीर्तितः ॥१३ अन्त प्रश्नं बिक्टःप्रश्नं घनप्रश्नमुदाहराम्। हत्कण्ठ-साकुकं चेति त्रिस्थान इति कीर्त्यते ॥१४

अकारोकारी मश्चेति त्रिमात्रः प्रोच्यते बुधैः। भूतं भव्यं भविष्यं च त्रिकाल इति स स्मृतः ॥१६ स्ती-पंत्रपुसकं चति त्रिलिङ्ग इति कीर्तितः। त्रिस्वभावः स्थितो देवो मन्त्रज्यो ब्रह्मवादिभिः ॥१६ पर्यवस्यति यञ्जैतहिश्रमुत्पद्यते यतः। निर्मात्रकः समात्रोऽपि सादिरेव निरादिकः॥१७ स जप्यः सर्वदा सद्भिष्यातव्यश्च विधानतः। वेदेषु चैव शास्त्रेषु बहुधा स व्यवस्थितः॥१८ तथा मत्यपि चैकोऽयं घटाकाश इव स्थितः। कर्मारम्भेषु सर्वेषु त्रिमात्रः सम्प्रकीर्तितः॥१६ स्थितो यत्र यथोक्तश्च स्मर्तव्यः स तथैव हि। भगवेदे स्वरिदोदात्त उदात्तस्तु यज्ञःश्रुतौ ॥२० सामवेदे स विज्ञेयो दीर्घः स ग्लत एव च। सनत्कुमारसिद्धान्ते प्रणवो विष्णुरूच्यते ॥२१ यस्मिस्तम्य च विश्रान्तिम्तन् परं ब्रह्मसंज्ञितम्। उच्चारितम्य तस्याथ विश्रान्तौ च यदक्षरम्।।२२ तदक्षरं सदा ध्यायेद्यम्तजैव प्रलीयते। घण्टास्वनितवत्तस्य विश्रान्तिः शब्दवेधसः ॥२३ कुर्वीत ब्रह्मविद्विप्रो यदीच्छंचोगमात्मनः। सर्वस्यापि च शब्दस्य ह्यन्त उन्नारितस्य यत्।।२४ तद्धशायेद्यस्तु स ज्ञानी शब्दब्रह्मविदुच्यते। याज्ञवल्क्यो मुनीनां प्रागबवीजनकस्य च ॥२४

वासिष्टजो ऽपि तं ब्र्यात् स्वभावं शब्दवेधसः। तैलधारामिवाच्छिन्नं दीर्घं घण्टानिनादवत्।।२६ अवाग्जं प्रणवस्यायं यस्तं वेद् स वेद्वित्। स्थित्वा मर्वेषु शब्देषु सर्वं ब्याप्तमनेन हि। न तेन हि विना किंचिद्रक्तुं याति गिरा यतः॥२७ उद्गीथमक्षरं ह्यंतदृद्गीर्थं च उपामते। उपास्यो मध्यतस्वंप नादं विश्रामयेद्ववृद्दि ॥२८ प्रणवाद्याः स्मृता वेदाः प्रणवे पर्यवन्थिताः। वाङ्मयं प्रणवे सर्वं तस्मान प्रणवमभ्यसेन्॥३६ ब्रह्मार्षं तत्र विज्ञेयमप्रिश्च दैवतं मह्त्। आद्यं छन्दः स्नरेत्तत्र नियोगो ह्यादिकर्मणि॥३० उत्पन्नमेनत् यतः समस्तं व्यावृत्य तिष्ठेत् प्रलये ऽपि यत्र । एकाक्षरेणापि जर्गान्त येन व्याप्रानि कोऽन्यः परमोऽस्ति तस्मात्।। ध्येयं न जप्यं नच पूजनीयं तम्मान्न देवाहरणीयमन्यन्। दुस्तारसंसारपयोधिमग्नताराय विष्णुः प्रणवः स पूज्यः ॥३२ उक्तमुद्दशतो हातद् रूपमेकाक्षरस्य च। जप्या च सततं देवी गायत्री साऽधुनोच्यते॥३३

इति श्रीबृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुत्रतप्रोक्तायां समृत्यां षट्कर्मनिरूपणे प्रणवस्वरूपवर्णनं नाम तृतीयोऽध्यायः

## ॥ चतुर्थोऽध्यायः ॥

## गायत्रीमन्त्रपुर्श्चरणवर्णनम्।

गायज्याः संप्रवक्ष्यामि देवर्ष्यादि क्रमेण तु।

अक्षराणां च विन्यासं तेषां चेव तु देवताः ॥१ जप्ये यथाविधा कार्या यथारूपा च सार्वने। होमे यथा च कर्तव्या यथा वा चाऽऽभिचारिके।।२ यत फलं जपहोमादौ यद्धं जप्यते तु सा। ध्यातव्या च यथा देवी यथावत्तित्रवोधत।।३ गायत्री तु परं तस्वं गायत्री परमा गतिः। सर्वाऽमरैरियं ध्याता सर्वं व्याप्तं तया जगत्।।४ उत्पद्यते त्रिपादायाः पुनस्तस्यां विशेदिदम्। ग़ायत्री प्रकृतिर्ज्ञेया ॐकार: पुरुष: समृत: ॥४ पतयोरेव संयोगाज्जगत् सर्वं प्रवर्तते। पादास्यस्यो वेदास्तेपु तत्त्वाक्षराणि च ॥६ चतुर्विशतिरेवास्यां तेहिं व्याप्तसिदं जगत्। आदाय चैकं प्रथमं तु पादमृग्भ्यो द्वितीयं तु तथा यज्जुभ्यः। साम्नस्तृतीयं तु ततोऽभवन मा सावित्रिदेवी स्वयमेव सर्गे ॥७ दैवत्यमस्यां सचिता सुरार्ष्यश्कुरदोऽपि गायत्रमभूच तस्याः । विश्वस्य मित्रो द्विजराज पूज्यो मुनिर्नियोगश्तु जपादिकेषु ॥८ अस्यां तु तत्त्वाक्षरविंशतिस्तु चत्वारि पादत्रियतं तु देव्याम् । भूरादिभिस्तिसृभिः संप्रयुक्तं सोङ्कारसेतद्वदनं च तस्याः ॥६

केचिद्धुताशं वदनं वद्धन्ति सावित्रिदेन्योः श्रुतिहस्त्रिक्ताः। इदं च वक्त्रं सक्क्ष्णमराष्ट्रामित्येतया व्याप्तमशेपमेतत् ॥१० भूरादिकेन त्रितयेन पादं पादं च वेदित्रतयेन चास्याः। प्राणादिकेन त्रितशेन पादं पादेखिभिन्याप्तमशेष्मस्याः॥११ यस्तुर्यमस्या द्विज होत्ति पादं स वेत्ति विद्वत् परमं प्रदं तु। ज्याप्ति.पराऽस्याःसकलापि चैषा यो वेत्ति चैनां स तु वित्तमःस्यात्॥

गायत्री यो न जानाति ज्ञात्वा नैव उपासयेत्। नामधारकमात्रोऽसौ न विप्रो वृपलो हि सः॥१३ कि वेदेः पटिते सर्वेः सेतिहास-पुराणकैः। साङ्गेः सावित्रिहीनेन न विप्रत्वमवायते॥१४ गायत्रीमेव यो हात्वा सम्यगभ्यसते पुनः। इहामुत्र च पूज्योऽसौ ब्रह्मलोकमवाप्तुयात् ॥१४ गायत्री च तथा देदा ब्रह्मणा तुलिताः पुरा। वेदेभ्योऽपि षडङ्गभ्यो गायत्र्यतिगरीयसी ॥१६ यदक्षरेषु दैवत्यं चतुर्विशतिपूच्यते। संन्यासं यद्विबोधेन कुर्वन् ब्रह्मत्वमाप्नुयात्।।१७ जानीयादक्षरं देव्याः प्रथमं त्वाशुशुक्षणप्। प्रामञ्जनं द्वितीयं तु वृतीयं शशिदेवतम् ॥१८ विद्युतश्च तुरीयं तु पश्चमं तु यमस्य च। षष्ठं तु झारणं तस्वं सप्तमं तु बृहरपतेः ॥१६ पार्जन्यमृष्टम् तस्वं स्वमं चेन्द्रदेवतम्। गान्ध्रकं दुशुम्ं विद्मात्त्वाष्ट्रमेकाद्शां तथा।।२०

मैत्रावरुगमन्यद्वै तथा पृष्णस्त्रयोदशम्। चतुर्दशं सुरेशस्य प्रागिदं इद्याणः समृतम् ॥२१ मरुदेवतकं इंयं पश्चदशं यदक्षरम्। सौम्यं च पोडशं तत्त्वं तथा चाङ्गिरसं परम्।।२२ विश्वेषां चंब देवानामष्टादशमथाक्षरम्। अश्विनोश्चोनविंशं तु विंशं प्रजापतेर्विदुः ॥२३ एकविशं कुवेरस्य द्वाविशं शंकरस्य च। त्रयोविशं तथा ब्राह्मं चातुंवशं तु वैष्णवम् ॥२४ इति ज्ञात्वा द्विजः सम्यग्सर्वाश्राक्षरदेवताः। कुर्वन् जपादिकं विप्रः परं श्रयोऽधिगच्छति ॥२५ पादाङ्ग्रष्टादिमूर्द्धान्तमात्मनो वपुषि न्यसेत्। अक्षराणि च सर्वाणि वाब्द्धन् ब्रह्मत्वमात्मनः ॥२६ पादाङ्कष्टयुगे त्वकमेकंकं गुल्फयोईयोः। जानुनोश्च द्वयोरेकमेकमूरुक्यांद्वयोः ॥२७ गुह्यं कट्यां तथैकंकमेकंकं जठरोरसोः। स्तनद्वये तथैकं तु न्यसेदेकं गले तथा ॥२८ वक्त्रं तालुनि हक्-श्रुत्योध्रतुष्वेकैकमेव च। भ्रवोर्मध्ये तथैकं तु ललाटे चेकमेव हि ॥२६ याम्य-पश्चिम-सौम्येषु एकैकमेकमूर्धनि । गायत्रीन्यस्तसर्वाङ्गो गायत्रो विप्र उच्यते ॥३० लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा। श्रोक्तः प्र**ण**वविन्यासो व्याहृतीनामथो**ण्य**ते ॥३१

सप्तापि व्याहृतीर्न्थस्याः सबदेहे जपादिषु। भूलोंकं पादयोर्न्यस्य भुवलोंकं तु जानुनोः॥३२ स्वर्लोकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महस्तथा। जनलोकं तु हृद्ये कण्ठदेशे तपम्तथा।।३३ भ्रवोर्छलाटसन्ध्योस्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः। हिरण्मये परे कोशं विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥३४ तळ्डं ज्योतिपां ज्योतिम्तद्यदात्मविदो विदुः। देवस्य सवितर्भगों वरंण्यं चैव धीमहि ॥३४ तदस्माकं धियो यस्तु ब्रह्मत्वे च प्रचोदयात्। च्युन्दोदेवतमार्पं च विनियोगं च ब्राह्मणम् ॥३६ मन्त्रं पश्चिवधं ज्ञात्वा द्विजः कर्म समाचरेत। स्वरतो वर्णतश्चव परिपृणे भवेद्यथा ॥३७ हीनं न विनियुद्धीत मन्त्रं त मात्रयापि च। देवतायतने कुर्याज्ञपं नद्यादिकेषु च ॥३८ आश्रमें यु यतीनां वा गोष्टे वा स्वगृहे अप बा चतुर्त्वन्तिमपूर्वेषु ह्यूत्तमादिक्रमेण तु ॥३६ दशगुणं सहस्रं स्यात् फलं विष्णावनन्तकम्। अप्समीपे जपं कुर्यात् ससङ्ख्यं तद्भवेषया ॥४० असङ्ख्यमासुरं यस्मात्तस्मात्तद्रणयेद्वत्र वम् । स्फाटिकेन्द्राक्ष-हृद्राक्षेः पुत्रजीवसमुद्भवे ॥४१ अक्षमाला प्रकर्तव्या प्रशस्ता चोत्तरोत्तरा। अभावे त्वक्षमालाया कुराप्रतथ्याऽथ पाणिना ॥४२ यथा कर्यनिद्रणयेत् संसङ्ख्यं तद्भवेद्येयां। प्रणवो भूटर्भुवः स्वश्च पुनः प्रणवसंयुर्तम् ॥४३ अन्त्योऽङ्कारसमायुक्तां मन्यन्ते मुनयोऽपरे । प्रणवोऽन्ते तथा चादावाहुरन्ये जपै क्रमम्॥४४ आदावेव तु चोङ्कार आवृत्तावादिकोऽन्ततः। तदाद्यं च तदन्तं च कुर्यात् प्रणवसम्पुटम् ॥४४ आद्यन्तरिक्षतां कुर्यादिति पाराशरोऽज्रवीत्। यो न वाब्च्छति सन्तानं मोक्षमिच्यति केवलम् ॥४६ प्रत्योद्धारमसी कुर्वन्नक्षरं मोक्षमा नुयात्। अक्षरप्रातिछोम्येन सोङ्कारेण क्रमेण तु ॥४० फट्कारान्तां च कुर्वीत प्रेच्क्रिक्नेरिवर्ध र्ह्युधः। होमे चापि पठन् कुर्यात् प्रणवावर्तनं द्विजः। अभिव्रेतार्थहोमादौ स्वाहान्तां तासुं रीरयेत् ।।४८ संकीर्णितीं यहा पश्येद्रोगीद्वा द्विपतीऽपि वा । तदा जपेच गायंत्री संवैदीषापनुत्तर्ये ॥४६ रुद्रजाप्यानि कार्याणि सूंर्क्ते चे पुरुषस्य च । शिवसंकर्त्पजाप्यं च सर्वं कुयार्द्धिधानतः ॥६० जप्यानि घ्नन्ति पापांनि श्रियी दंद्युस्त**र्देथिना**म्। अतो जर्प सदा **ईंयांचरों** छे छे में में सिमनं: il दें? द्रुपदां वा जपेहेंवींमजपां जम्बुकां तथा। प्रणवं चे सदाभ्यस्येखदि ब्रह्मत्वमिच्येति ।।१२

प्राणीनामयुताभ्यां च तंत्री वीडशिमः शतेः। पुंसी गच्यत्यहोरात्रं सरसंख्यामजपा विदुः ॥१३ रविमण्डलमध्यस्थे पुरुषे लोकसाक्षिणि। समर्पितं मया चेदं सूर्याख्ये ब्रह्मणः पदे ॥५४ न जप्यं प्रसमं कुर्यात् प्रसमं घनन्ति राश्वसाः। ब्राह्मणा भागध्यास्तु तेषां देवो विधिक्रमः ॥५५ उपांशु तु जपं कुर्यान् ब्रह्मणो वाथ मानसम्। विवृतोष्ट्रमुपांद्यः स्याद्चलोष्ठं तु मानसम् ॥५६ द्विविधस्त जपः प्रोक्त उपांशुर्मानसस्तथा। उपांशुः स्याच्य्रतगुणः साहस्रो मानसः स्पृतः॥५७ उपांशुजपयुक्तस्तु मानसे च रतरतथा। इहैव यांति वैधस्त्वर्मिति पाराशरोऽत्रवीत्।।६८ विधियज्ञाः पार्कयज्ञां ये चान्ये बहवी मखाः। सर्वे ते जपयक्षस्य कर्ला नाहिन्ति पीडशीम् ॥४६ जंप्येनैकैनं सिद्धेन कि नं सिद्धं भवैदिह। कुर्यादन्यन वां कुर्यान्मेनी ब्राह्मण उच्यते ।। है ० शतेन जन्मजनितं सहस्रेण पुराकृतम्। अयुतेन त्रिजन्मोरवं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६१ दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम्। सहस्रेण त्रिजन्मोत्थं गायत्री हन्ति पातकम् ॥६२ अस्मिनं करो च विदुषा विधिवंत कर्म यत् कृतम्। भेवेदरीगुण तदि हातादेखीगतो ध्रवेमें ॥६३

न च तच्छव्यते कर्तुं मन्त्राम्नायेऽस्य दृषणात्। अयथार्थकृतात पाठात मन्त्रसिद्धिगरीयसी ॥६४ न च क्रमञ्ज च हसन्न पार्श्वमवलोकयन्। नान्यसक्तो न जल्पंश्च न चंवोर्ध्वशिरास्तथा ॥६४ नाङ्घिणा पीडयेत पादं न चैव हि तथा करम्। नवंविधं जपं कुर्यात्र च संचालयेत करम्।।६६ प्रच्यन्नानि च दानानि ज्ञानं च निरहंकृतम्। जप्यानि च सुगुप्तानि तेषां फल्लमनन्तकम् ॥६७ य एवमभ्यसेन्नित्यं ब्राह्मणः संयतेन्द्रयः। स ब्रह्मलोकमाप्नोति तथा ध्यानार्चनाद्पि ॥६८ अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि यथा तात पितामहः। लब्धवान् वेधसः पृष्ठाद्गायत्रीध्यानमुत्तमम् ॥६६ यदश्चरेषु यद्वणं यत्र यत्र च यः स्मरेत्। यत्फलं लभते कृत्वा यथा तस्याः समचनम्।।७० तत् प्रकृतिः स स्वातं विकारो बुद्धिरेव च। तुरित्येतदहंकारं वशब्दं विद्धि पापहम्।।७१ रे स्पर्शे तु णि रूपं च यं रसं गधमत्र भम्। <u>र्गो</u> श्रोत्रं <u>दे</u> त्वचं वा <u>व</u> चक्षु स्य रसना तथा॥७२ <u>धी</u> नासा च <u>म</u> वाचा च हि हस्तौ <u>धि</u> च पाद्द्वयम्। े<u>यो</u> उपस्थं मुखं <u>यो</u> ऽन्यो <u>नः</u> खं <u>प्र</u>कारमारुतम्।।७३

चो तेजो द जलं यात् क्ष्मा गायत्र्यास्तर्त्वाचितनम् । चतुर्विशतितत्त्वानि प्रत्येकमक्षरेपु यः ॥७४ गायज्याः संसमरेद्योगी स याति ब्रह्मणः पदम्। तुरकारं पादयोर्न्यस्य ब्रह्म-विष्णु-शिवाकृतिम् ॥७४ शान्तं पद्मासनारूढं ध्यानादद्दति किल्विषप्। सकारं गुल्फयोर्न्यस्येदतसीपुष्पसिश्रमम् ॥७६ पद्ममध्यस्थितं सौम्यं दहते चोपपातकम्। विकारं जङ्गयोदींनं ध्यायेदेतद्विचक्षणः ॥७७ त्रहाहत्याकृतं पापं हन्यात्तद्धि स्मृतं क्षणात्। तुरकारं जानुदेशे तु इन्द्रनीलसमप्रभम्।।७८ निर्दहेत् सर्वपापानि प्रहरोगमुपद्रवम्। उर्वोर्व विमलं ध्यायेन्छ्द्रस्फटिकविद्युतिम्।। ७६ विज्ञातं हन्ति तत्पापमगम्यागमनान् कृतम्। रेकारं वृषणे प्रोक्तं विद्युतःफुरिततेजसम्।।८० मित्रद्रोहकुनं पापं स्मरणादेव नाशयेत्। णि गुद्धं श्वेतवणं तु जातिपुष्पसमद्यतिम्। गुरुइलाकृतं पापं शोधयेद्धयानचिन्तनात् ॥८१ यं कट्यां तारकावणं चन्द्रवद्धिष्ण्यभूपितम्। योगिनां वरदं प्राहुब्रह्महत्याविशोधनम्।।८२ भं (भकारंचालि) नभोवलिवर्णामं मेवोन्नतिसमद्यतिम्। ध्यात्वा कमलमध्यस्थं महद् दहति पातकम् ॥८३ 84

जठरे रक्तवर्णे तु मात्राद्वयविभूषितम्। गोहत्यादिकतं पापं गींकारस्तु विशोधयेन्।।८४ श्यामरक्तं च देकारं ध्यानं तहेशयेहृदि। हिम्-कुन्देन्दुवर्णाभं वकारममृतं स्रवत् ॥८४ पित्र-मात्र-वधोद्भूतं मित्रावरुणदेवतम्। गुरुहत्याकृतं पापं वकारेण प्रणश्यति ॥८६ स्यकारं विन्यसेन् कण्ठे त्वाष्ट्रं स्फटिकसन्निभम्। मनसोपार्जितं पापं स्यकारेण प्रणश्यति ॥८७ धीकारं वसुदैवत्यं वदन्ति स्वर्णसन्निभम्। प्रतिप्रहक्कतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥८८ मकारं पद्मरागाभं शिरम्थं दीप्ततेजसम्। पूर्वजन्मकृतं पापं मकारेण प्रणश्यति ॥८६ हिकारं नासिकाये तु पूर्णचन्द्रसमप्रभम्। पूर्वात्र्वृतरं पापं स्मरणादेव नश्यति ॥६० भिकारं शान्तमक्ष्णोश्च पीतवर्णं सुधांशुवत्। मनो-वाकायजं पापं चिन्तनादेव नश्यति ॥६१ योकारौ द्वौ धूम्र-नीलो भ्रू-ललाटे च संस्थितौ। ध्यायन्नित्यं द्विजो नूनं सर्वपापैः प्रमुच्यते।।६२ नकारं तु मुखे पूर्व द्वादशादित्यसन्निभम्। सकृद्ध्यात्वा द्विजश्रेष्टः प्राप्नोति ब्रह्मणः पद्म्। १६ ई प्रकारं दक्षिणे वक्त्रे कालाग्नि-रुद्रसन्निभम्। सङ्ख्यात्वा द्विजश्रेष्ठ ऐश्वरं पदमाप्नुयात्।।६४

चोकारं पश्चिमे वक्त्रे विद्युदीप्रिसमप्रभम्। एक बारं द्विजो ध्यात्या वेष्यवं पद्माप्नुयात ।।६४ दकारमुत्तरे व नत्रे शुक्रवर्णसमग्रतिम । सक्रद्रध्यानान् द्विजश्रेष्ठ प्रानुयान् पद्मव्ययम् ॥६६ याकारम्तु शिरः प्रोक्तं चतुर्वदनसंयुतम्। स एष त्रिगुणः प्रोत्तश्चतुर्विशतिमः स्पृतः॥६७ यं यं पश्यति चक्षुम्यां यं यं स्पृशति पाणिना। यं यं च भापते कि चित्तत्सर्वं पूतमेव च।।६८ जाप्ये तु त्रिपदा ज्ञंया पूजने तु चतुष्पदा। न्यासे जप्ये तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने ॥६६ सर्वत्र त्रिपदा होया ब्राह्मणेम्तस्वचिन्तकेः। जम्बुका नाम सा देवी यज्ञर्वेदे प्रतिष्ठिता।।१०० सा देवी द्रुपदा नाम मन्त्रं वाजसनेयके। अन्तर्जले त्रिरावर्त्य मुच्यते हहाइत्यया ॥१०१ सोऽपनीय समस्तानि महैनांसि द्विजोत्तमः ' ब्रह्मणः पद्माप्रोति यद्गत्वा न नित्रर्तते ॥१०२ विना श्रद्धां प्रमादाद्वा जपं कुर्वेश्च्यवेद्यदि। स्मरणादेव तद्विष्णोः सम्यूणं स्यादिति समृति ॥१०३ तद्विष्णोरिति मन्त्रोयं स्मर्तव्यः सर्वकर्मसु। आवर्त्यः प्रणवो वापि सर्वस्यादिर्यतो हि सः॥१०४ अभ्यसेन् प्रणवं नित्यमेकचित्तः समाहितः। गायत्री च तथा देवीमभ्यस्यन् मुक्तिमाप्नुयात् ॥१०४ वैदिकं तु जपं कुर्यात् पौराणां पाश्वरात्रिकम्।
यो वेदस्तानि चेतानि यान्येतानि च सा श्रुतिः ॥१०६
जपेन येनेह कृतेन पुंसो ददाति मार्गं सवितापि कर्तुः।
अयं हि सर्वेष्टिकृतां विष्ठो विषेः पदं यास्यति निर्विकल्पम् ॥१०७
यदुक्तं सर्वशास्त्रेषु तथा सर्वश्रुतिष्वपि।

उपनिपन्मतं तहो विप्रा ह्यंतन् प्रकीर्तितम् ॥१०८ न्यासं तनुत्रं न बवन्ध देहे जग्राह नोक्कारमसि च तीक्ष्णम् । विप्रो वशे यिश्वपदां न चक्रं लोके स रुष्टः किमु कस्य कुर्यात् ॥१०६

उद्देशेन मया प्रोक्तो विधिर्जय्यस्य पावनः। देवार्चनविधानं तु सम्प्रवक्ष्याम्यनःपरम्।।११० इति श्रीष्टदृत्पराग्नरीये धर्मशास्त्रे जपनिर्णयः।

अथ देवार्चनविधिवर्णनम्।
देवार्चनं प्रवक्ष्यामि यदुक्तमृपिभिः पुरा।
वैदिकंरेव तन्मन्त्रेर्यस्य ये तस्य तैरिति ॥१११
अर्चयन् वैदिकंर्मन्त्रेर्नानुमहमपेक्षते।
वैदिकोऽनुमहस्तस्य वेदस्त्रीकरणेन तु॥११२
ब्रह्माणं वैधसंर्मन्त्रेर्विच्णुं स्वैः शंकरं स्वकैः।
अन्यानिप तथा देवानार्चयेन् स्त्रीयमन्त्रकैः ११३
मन्त्रन्यासं पुरा कृत्वा स्वदेहे देवतासु च।
गायज्यौकारन्यस्ताङ्गः पूजयेद्विच्णुमञ्ययम्॥११४
न्यरश्वा तु व्याहृतीः सर्वाः प्रोक्तस्थानक्रमेण तु।
ब्रह्मभूतः शुचिः शान्तो देवयागमुपक्रमेत्॥११४

विष्णुरादिरयं देवः सर्वामरगणार्चितः। नामप्रहणमात्रेण पापपाशं अिनत्ति यः ॥११६ तदर्चनं प्रवक्ष्यामि विष्णोरमिततेजसः। यत् कृत्वा सुनयः सर्वे परं सायुज्यमाप्नुयुः ॥११७ षद्खेतेषु हरेः सम्यगर्चनं मुनिभिः समृतप्। अप्स्वमी हृद्ये सूर्ये स्थण्डिले प्रतिमासु च ॥११८ अग्री क्रियावतां देवो दिवि देवो मनीपिणाम्। प्रतिमास्वलपबुद्धीनां योगिनां हृद्ये हरिः ॥११६ आपो ह्यायतनं तस्य तम्मान्तामु मदा हरिः। सर्वगरवेन विष्णोस्त् स्थण्डिले भावितात्मनाम् ॥१२० दद्यात् पुरुषसूक्तंन आपः पुष्पाणि चैत्र हि। अर्चितं स्यादिदं तेन नित्यं भुवनसप्तकम् १२१ आनुष्ट्रभस्य सूक्तस्य त्रेष्टभस्य च इवेतम्। पुरुषो यो जगद्वीजमृषिर्नारायणः स्मृतः ॥१२२ तस्य सूक्तस्य सर्वम्य ऋचां न्यासं यथाक्रमम्। देवे चैवात्मनि तथा सम्प्रवक्ष्याम्यतः परम्।।१२३ हस्तन्यासं पुरा कुत्वा ममृत्वा विष्णुं तथाऽज्ययम्। शिखाबन्धं च दिग्बन्धं सिचन्त्य विष्णुमात्मनि ॥१२४ प्रथमां वित्यसेद्वामे द्वितीयां दक्षिणे करे। रुतीयां वामपादे तु चतुर्थी दक्षिणे न्यसेत्।।१२५ पश्चमीं वामजानौ तु पष्टी च दक्षिणे न्यसेत्। सा.मीं बामकट्यां च दक्षिणायां तथाष्ट्रमीम् ॥१२६

नवमीं नाभिमध्ये तु दशमीं हृदि विन्यसेत्। एकादशीं वामपादे द्वाइशीं दक्षिणे न्यसेत्।।१२७ कण्डे त्रयोदशीं न्यम्य तथा वक्त्रे चतुर्दशीम्। अक्ष्णोः षञ्चद्शीं नयस्य षोडशीं मूर्ध्नि विन्यसेत् ॥१२८ एवं न्यासविधि कृत्वा पश्चाद्यागं समाचरेत्। आसनं चिन्तयेन्मेरुमष्टपत्रं सकर्णिकम् ॥१२६ व्याहृतीनामथ न्यासं कुर्य्याच विधिवदु द्विजः। भूर्लीकं पादयोर्न्यस्य भुवर्लीकं तु जानुनोः ॥१३० स्वलीकं कटिदेशे तु नाभिदेशे महम्तथा। जनोलोकं तु हृद्ये कण्डदेशं तपस्तथा।।१३१ भ्रुवोर्छलाटमन्ध्योग्तु सत्यलोकः प्रतिष्ठितः । हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम् ॥१३२ तच्छुभ्रं ज्योतिगां ज्योतिस्तद्यशस्मविदो विदुः। आबाहनमथ ब्राहर्विष्गोरमिततेजसः ॥१३३ यथार्चा क्रियते तस्य स्वदेहे चिन्तयेत्तथा। आद्ययाऽऽवाह्येदेवमृचा तु पुरुपोत्तमम्।।१३४ यथा देवे तथा देहे न्यासं कुर्याद्वियानत.। द्वितीययाऽऽसनं द्यान् पात्रं चैव तृतीयया ॥१३४ च र्थ्यार्घः प्रदानव्यः पश्चम्याऽऽचमनं तथा। षष्ठचा स्नानं प्रकुर्वीत सप्तम्या वसनं तथा।।१३६ यज्ञोपवीतं चाष्टम्या नवम्या गन्धमेव च। पुष्पं देयं दशम्या तु एकादश्या च धूपकम् ॥१३७

द्वादश्या दीपकं द्वाल्योदश्या नैवेचकम्। चतुर्दश्याञ्जलि कुर्यात् पञ्चदृश्या प्रदक्षिणम्।।१३८ षोडश्योद्वासनं कुर्याच्छेपकर्मणि पूर्ववत्। स्नाने वस्ते च नैवेचे द्यादाचमनं हरेः। षण्मासान् मिद्धिमाप्नोति एवमेविह् योऽर्घयेत्।।१३६ आदित्यमण्डले देवं ध्यात्वा विष्णुं मनोमयम्। स याति ब्रह्मणः स्थानं नात्र कार्या विचारणा।।१४०

> ध्येयो दिनेशपरिमण्डलमध्यवर्ती नारायणः सरमिजामनमन्निविष्टः। केयूग्वान मञ्गकुण्डलवान् किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्वृतशङ्ख-चक्रः॥१४१ सूकंन विष्णुविधिना ममुद्दीरितेन योऽनेन नित्यमजमादिमनन्तमूर्तिम। भक्तयाऽच्येन् पठित यश्च म विष्णुदेहं विष्रो विशेष्टरिवरेण कृतार्थदेहः॥१४२

पश्चरात्रविधानेन स्थिण्डिले वापि पूजयेत्। जलमध्यगतो वापि पूजयेज्ञलमध्यतः ॥१४३ द्वादशारं नवन्यूहं पश्चरात्रकमेण तु। अभावे धौतवस्वस्य पत्रिकायास्तथा द्विजः ॥१४४ जलेऽपि हि जलेनेव मन्त्रैरेवार्चयेद्धरिम्। विष्णुर्विष्णुरित्यजस्रं चिन्तयेद्धरिमेव तु॥१४५

तिष्टन् ब्रजंस्तथाऽऽसीनः शयानोऽपि हरिं सदा। संस्मरका ऽशुभं परयेदिहाऽमुत्र च वे द्विजः ॥१४६ रुदं रुद्धिविधानेन ब्रह्माणं च विधानतः। सूर्यं संहितमन्त्रेश्च तदीरितविधानतः॥१४७ दुर्गा कात्यायनी चैव तथा वाग्देवतामपि। स्कन्दं विनायकं चैव योगिनी क्षेत्रपालकान् ॥१४८ विधिवद्चयेत् मर्वान्यो विप्रो भक्तितत्परः। विष्णुना सुप्रसन्नेन विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥१४६ प्रहांश्च पूजयेद्विद्वान् ब्राह्मणः शान्तितत्परः। आरोग्य-पुष्टिसंयुक्तो दीर्घमायुरवाप्नुयात् ॥१५० गृहा गावो नृपा विप्राः सद्भिः पू<del>ष</del>्याः सदा **नरैः**। पूजिताः पूजयन्त्येते निर्दहन्त्यपमानिताः ॥१५१ यो हितः सर्वसत्त्रेषु नृप-गो ब्राह्मणेषु च। इहाऽमुत्र च पूज्योऽसी विष्णुलोकमवाप्नुयात्।।१५२ उक्तो गृहस्थस्य सुरार्चनस्य धन्यो विधिर्विष्णुपद्रोपलञ्ज्ये । कार्यो द्विजातेः प्रतिवासरं यो वेदोक्तमन्त्रेः स मया हिताय ॥१४३ देवपूजाविधिः प्रोक्त एप उद्देशतो यथा। वैश्वदेवस्य वक्तज्यो विविर्विषा मयाधुना॥१४४ इति देवपूजाविधिः। अथ वैश्वदेवविधिवर्णनम्। वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि यथाकार्यं द्विजातिभिः।

स्वगृद्योक्तविधानेन जुहुयाद्वैश्वदैविकम् ॥१६६

हविष्यस्य द्विजोऽभावे यथालाभं शृतं हविः। ज़ह्याद्विधिवद्भवत्या यथा स्याचित्तनिवृतिः ॥१५६ यद्वा तद्वापि होतव्यमग्नी किंचिद् द्विजातिभिः। फलं वा यदि वा मूलं घासं वा यदि वा पयः॥१५७ अहुत्वा च द्विजोऽरनीयाद्यत्किचित् स्वयमस्तुते। अश्नीयाचेद्हत्वापि नरकं स समाविशेत् ॥१४८ जुद्र्याद्व-यञ्जन-क्षारवर्ज्यमन्नं द्वताशने। अनुज्ञातो द्विजैस्तैस्तु त्रिःकृत्वा पुरुषर्षभः ॥१५६ यत्त्वमी ह्यते नेत्र यस्य चामं न दीयते। अभोज्यं तद् द्विजातीनां भुक्त्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥१६० लौकिके वैदिके चेंव वैश्वदेवो हि निखशः। हौकिके पापनाशाय वैदिके स्वर्गमाप्तुयात् ॥१६१ अभावाद्ग्रिहोत्रस्य आवस्थ्यस्य वा तथा। यस्मिन्नमौ पचेदन्नं तत्र होमो विधीयते ॥१६२ अग्निःसोमस्समस्तो तौ विश्वेदेवास्तर्थेव च। धन्वन्तरिः कुरूस्तहद्वुमतिः प्रजापतिः ॥१६३ द्यावाभूभ्योः स्विष्टकृते हुत्वतेभ्यः पुनस्ततः। कुर्योद्वलिहृति पश्चान सर्वदिक्ष प्रदक्षिणम् ॥१६४ सुत्राम्गे तस्य पुंभ्यश्च यमाय च सहानुगैः। वरुणाय सहैतेश्व सोमाय च सहानुगैः ॥१६४ मरुद्भिश्च क्षिपेद्वारि अधिभ्यां च तथा हरेत्। बनस्पतिभ्यः सर्वेभ्यो मुसलोळखले हरेत् ॥१६६

श्रिये च भद्रकाल्ये च उच्छीर्षे पाद्योः क्रमात्। ब्रह्ममें सातृगायेति मध्ये चैव बर्लि हरेत् ॥१६७ बास्तवे सातुगायेति वास्तुमन्ये बर्लि हरेत्। विश्वेभ्यश्चेत्र देवेभ्यो बलिमाकाश उत्क्षिपेत् ॥१६८ द्यवरेभ्यश्च भूतेभ्यो नक्तंचारिभ्य एव च। बास्तोः पृष्ठे च कुर्वति बलिं सर्वानुतृप्तये ॥१६६ पितृभ्यो बिछरोषं तु सर्वं दक्षिणतो हरेतु। पतितेभ्यः श्वपाकेभ्यः पापानां पापरोगिणाम् ॥१७० क्रमि-कीट-पतङ्गानां सर्वभयोऽपि विलं हरेत्। एवं सर्वाणि भूतानि यो वित्रो नित्यमर्चयेत्।।१७१ तन स्थानं परमाप्नोति यङ्ग्योतिः परवेधसः। गृह्य ऽग्री वश्चदेवं तु प्रोक्तमेतन्मनीषिभिः ॥१७२ अनिप्रकर्तु कुर्वीत वैश्वदेवं कथं त्विति १। महाज्याहृतिभिम्तिम्नः समन्ताभिस्तथाऽपरा ॥१७३ इत्याहुतीश्चतम्बस्तु तथा देवकृते ऽपि च। त्रियम्बकं यजामत् इत्यादि चाहतिद्वयम् १७४ वैश्वदेवेन जुडुयाद्विशेषोऽन्यत्र वै पुनः अपमृत्युनिवृत्त्यर्थमायुः पुष्टिविवृद्धयं ॥१७५ जुड्यान ज्यस्वकं देवं विल्वपत्रीस्तलैस्तथा। विनायकाय होतव्या घृतस्याहुतयस्तथा।।१७६ सर्वविद्नोपशान्त्यर्थं पुजयग्रह्मतस्तु तम्। गणानां त्वेति मःशेण स्वाहाकारान्तमादृतः ॥१७७

चतम्रो जुह्यात्तरमै गणेशाय तथाऽऽहुतीः। तद्विष्णोरिति जुड्याद्विधिसम्बर्णनाकृते ॥१७८ प्रणवेन च गायत्रया केचिङजुद्दति तद् द्विजाः। एती वे सर्वदेवत्यो एत परं न किंचन ॥१७६ एताभ्यां तु हतेनैव सर्वभ्योऽपि हतं भवेत्। जुडुयान् सर्पिपाऽभ्यक्तं गन्येन पयसाऽथ वा ॥१८० क्रीतेन गोविकारेण तिलतैलन वा पुनः। सम्प्रोक्ष्य पाथसा वाऽन्नं नाभ्यक्तं चाश्नुयाद्पि ॥१८१ अस्तेहा यव-गोधूमाः शालयो हवनीयकाः। हिवस्तु हिवरभ्यक्तमहिवस्तु हिवर्यतः ॥१८२ अभ्यक्तमेव होतव्यमतो रूक्षं विवर्जयेत्। दारिद्रयं श्वित्रितामेके रूक्षान्नहवने विदुः ॥१८३ जठराग्नेः क्षयं चंके रूक्षमन्नं न ह्यते। आंकारपूर्विका सर्वाः स्वाहाकारान्तिकाम्तथा ॥१८४ जुरुयाद्विको वित्रो गृहमेवी हि नित्यशः। बर्लि चोपान्तभूतेम्यः सर्वेभ्यो ऽ यविशेषतः ॥१८५ हुरगाऽथ कृष्णवरमीनं कृताञ्जलिः प्रसाद्येत् । त्वमाने द्यभिरेतेन मन्त्रोण भक्तिमान् द्विजः ॥१८६ आब्रह्मन्निति मन्त्रं तु जपेद्धे सार्वकामिकम्। आहाज्यप्र इति होनं मन्त्रं च प्रयतो जपेत् ॥१८७ अन्यं हौताशनं मन्त्रं जपित्वाथ क्षमापयेत्। अन्यानि चैव मूक्तानि पवित्राणि ततो जपेत । सर्वशान्तिककृत्यर्थं तथाप्रिर्देवतेति च ॥१८८

इनं धनमरोगित्वं गतिमिन्छं तथा द्विजः ।

शम्भुमितं रिवं विष्णुमर्चयेद्वित्ततः क्रमात् ॥१८६

अजानन् यो द्विजो नित्यमहुत्त्वाऽत्ति श्वतं हिवः ।

पितृ-देव-मनुज्याणामृगयुक्तः स यात्यधः ॥१६०

शाकं वाऽपि तृणं वापि हुत्वाग्नावश्नुते द्विजः ।

सर्वकामसमायुक्तः सोऽजीव सुम्बमश्नुते ॥१६१

हगरेण वर्णेन च यदिहीनं तथंव हीनं किययापि यश्व ।

तथातिरिक्तं मम तन् क्षमस्य नदस्तु चाग्ने परिपूर्णमेतत् ॥६२

सर्वपापापनोदाय सर्वकामाय वे द्विजाः ।

द्विजन्मनां हितार्थाय वंश्वदेव उदाहृतः ॥१६३

इति वैश्वदेविधिः ।

अथातिथ्यविधिवर्णनम्।
आतिथ्यं सम्प्रवक्ष्यामि चातुर्वर्ण्यफलप्रदम्।
चातुवर्ण्योऽतिथिः प्रोक्तः काले प्राप्तोऽध्वगोऽश्रुतः १६४
अदृष्ठप्रियोत्रादिरज्ञाताचार-विद्यकः।
सन्ध्यामात्रकृताचारस्तज्ज्ञैः सोऽतिथिरुच्यते।।१६६५
श्रुत्तृष्णा-ऽध्वश्रमश्रात्तः प्राणत्राणान्नयाचकः।
गृहीतपात्रमात्रः सन् गृहद्वारमुपागतः।।१६६
विष्णुरूपोऽतिथिः सोयमुत्तरार्थमुपागतः।
इति मन्त्वा महाभक्त्या वृणुयाद्वोजनाय तम्।।१६७
• एष स्वर्ग्यः समायातः सर्वदेवमयोऽतिथिः।
निर्देश सर्वपापानि ममायं सम्प्रयास्यति।।१६८

ब्राह्मणैः सह भोत्तव्यो भक्तया प्रक्षाल्य पादुद्वयम् । आसनार्घादिकं दत्वा कृत्वा स्नक्-चन्दनादिकम् ॥१६६ योगिनो विविधे रूपैर्च मन्ति धरणीतले । नराणामुपकाराय ते चाज्ञातस्वरूपिणः ॥२०० तस्मादभ्यचेयेन प्राप्तं श्राद्धकालेऽतिथिं हिजः। श्राद्धिकयाफलं हन्ति तत्रैवापूजितोऽतिथिः।।२०१ तस्मादप्रवेमेवात्र पूजयेदागताऽतिथिम । कदाचित् कश्चिदागच्छेत्तारयेद्यस्तु पूर्वजान् ॥२०२ यतिर्द्रत्यिप्रहोत्री च तथा च मत्वदृद् द्विजः। सदैतेऽतिथयः प्रोक्ता अपूर्वाश्व दिने दिने ॥२०३ अति थेऽमरदेहस्त्वं मत्तारार्थमिहागतः । संसारपङ्कमग्नं मामुद्धरस्वाऽघनाशन ॥२०४ नैकाश्रमे वसन् विप्रो मुनीन्द्रंरुच्यतेऽतिथिः। अन्यत्र दृष्टपूर्वी यो नासावतिथि रूच्यते ॥२०२०६ क्षत्रियो यदि वा गच्छेदतिथित्वेन वेश्मनि । भुकेषु सस्य विषेशु कामतस्तु तमाशयेत् ॥२०६ वैश्यो वा यदि वा शुद्रो विश्गेहं समान्नजेत्।। तौ भृत्यैः सह भोक्तव्यावितिपाराशरोऽन्नवीत् ॥२०७ क्षींबो वा यदि वा काणः कुछी वा व्याधितो ऽपि वा। आगतो बैरदेवान्ते द्रष्टव्यः सर्वदेववत् ॥२०८ क्षत्त्रियेणापि बैश्येन तथैव व्रपलेन च । आतिथ्यं सर्ववर्णानां कर्त्तःयं स्यार्संशयम् ॥२०६

योऽतिथिं पूजयेद्भत्तया अन्याभ्यागतमेव च । बाल-बृद्धादिकं चैव तम्य विष्णुः प्रसीदति ॥२१० देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे म्युर्येन तृप्तेन च भूरि दिष्टम् । त'मान्न दातुम्त्वमगङ्गनाभिस्तम्यातिथेः केन समत्वमस्ति ॥२११

इति आतिथ्यविधिः।

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्। वर्णधर्मान् प्रवक्ष्यामि यन् कृत्यं ब्राह्मणादिभिः। निबोधध्वं द्विजास्तद्वे संक्षेपेण पृथक् पृथक् ॥२१२ यजनं याजनं विष्रं तथा दान-प्रतिष्रही। अध्यापनमध्ययनं कर्माण्येतानि षट् नथा ॥२१३ प्रजानां रक्षणं दानमरीणां निष्रहस्तथा। यजना-ऽध्ययने राज्ञि विपयासक्तिवर्जनम् ॥२१४ यजना-ऽध्ययने दानं पाद्युगाल्यं तथा विशि। वाणिज्यं च कुसीदं च कर्मपट्कं प्रकीर्तितम्।।२१४ शुश्रृषा ब्राह्मणादीनां तदाज्ञापालनं तथा। एप धर्मः स्पृतः शूद्रे वाणिज्येन च जीवनम्।।२१६ सर्वेपां जीवनं प्रोक्तं धर्मेणैव च कर्षणम्। भिन्नवृत्तिर्यथा न स्यात् वुर्याद्विप्रस्तथा च तत् ॥२१ँ७ कुर्वन्तुक्तानि कर्माणि वृत्या वा क्षत्रियस्य च। वृत्यभावे द्विजो जीवेद्भिन्नवृत्ति विवर्जयेन्॥२१८ प्रजानां पालनं दानं शस्त्रभृत्वं प्रचण्डता । निर्ज्ञयः परसैन्यानामेष धर्मः म्मृतो नृषे ॥२१६

पुत्रं पुष्पं विचिनुयान् मूलच्छेदं न कारयेन ।

मालाकार इवाऽऽरामे प्रजासु स्यात्तथा नृषः ॥२२०
लोहकर्मरथानां च गवां च प्रतिपालनम् ।

गोरश्चा ऋषि-वाणिज्यं वश्यवृत्तिकदाहृता ॥२२१
शूद्रस्य द्विजञुश्रूषा परो धर्मः प्रकीर्तितः ।
अन्यथा कुरुते यत्तु तद्भवेत्तस्य निष्फलम् ॥२२२
लवणं मयु तेलं च दिध तकं घृतं पयः ।
न दुष्येच्द्रद्वजातीनां कुर्यात् सर्वस्य विक्रयम् ॥२२३
कित्रयं मग्नः मांसानामभक्ष्यस्य च भक्षणम् ।
अगम्यागामिता चौर्यं शूद्रे म्युः पातहेतवः ॥२२४
किपलक्षीरपानेन बाह्मणीगमनेन च ।
वेदाक्षरविचारेण शूद्रस्य नरको ध्रुवम् २२४
इति श्रीबृहत्पराञ्चरीये धर्मशास्त्रं सुवतप्रोक्तायां संहितायां

चतर्थो ऽध्यायः ॥४॥

॥ पश्चमोऽध्यायः॥

अथ गोमहिमावर्णनम्।

अतः परं गृहस्थस्य कर्माचारं कलौ युगे। वर्णसाधारणं साक्षाचातुईण्यक्रमेण तु॥१ युष्माकं सम्प्रवक्ष्यामि पराशरवचोदितम्। षट्कर्मसहितो विप्रः कृपिवृत्तिं समाश्रयेत्॥२

हीनाङ्गं व्याघिसंयुक्तं प्राणहीनं च दुर्बलम्। क्षुद्युक्तं तृपितं श्रान्तमनडाहं न वाहयेत् ॥३ स्थिराङ्कं नीक्जं तुप्तं साण्डं पण्डविवर्जितम्। अधृष्यं सबलप्राणमनड्राहं तु वाहयेत्।।४ वाहयेदु दिवसस्याध ततः स्नानं समाचरेत्। कुगवैने कृषि कुर्यात सर्वथा धेनुसंग्रहम् ॥४ बन्धनं पालनं रक्षां द्विजः कुर्याद्गृही गवाम्। वत्साश्च यन्नतो रक्ष्या वर्धन्ते ते यथा क्रमात्।।६ न द्रे तास्तु नेतव्याश्चारणाय कदाचन। द्रे गावश्चरन्त्यो हि न भवन्ति शुभावहाः॥७ प्रातरेव हि दोग्धव्या दुह्यात् सायं न ता गृही। दोग्धुद्धिः पयसो नैव वर्धन्ते ताः कदाचन ॥८ अनादेयतृणान्यत्त्वा स्रवन्त्यनुदिनं पयः। तुष्टिदा देवतादीनां पूज्या गावः कथं न ताः ॥६

स्पृग्रश्च गावः शमयन्ति पापं संसेविताश्चोपनयन्ति वित्तम्। ता एव दत्तास्त्रिद्वं नयन्ति गोभिर्न तुल्यं धनमस्ति किचित्॥१० यस्याः शिरसि ब्रह्माऽऽस्ते स्कन्धदेशे शिवःस्थितः। पृष्ठे नारायणस्तस्यो श्रुतयश्चरणेषु च॥११ या अन्या देवताः काश्चित्तस्या लोमसु ताः स्थिताः। सर्वदेवमया गावस्तुष्येत्तद्भक्तितो हरिः॥१२ हरन्ति स्पर्शनात् पापं पयसा पोषयन्ति याः। प्रापयन्ति दिवं दत्ताः पूज्या गावः कथं न ताः ॥१३ यतवराहतभूमेर्ये उत्पद्यन्ते रजः कणाः । प्रलीनं पातकं तम्तु पूज्या गावः कथं न ताः ॥१४ शकुनमुत्रं हि यम्याग्तु पीतं दहति पातकम्। किमपूज्यं हि तम्या गोगिति पागशरो ज्ववीत् ॥१४ गौरवत्सा न दोग्धव्या न चैवं गर्भसन्धिनी । प्रमूता च दशाहार्वाग्दोग्धि चन्नरकं व्रजेन ॥१६ दुबेला व्याधिसंयुक्ता पुष्पिता या द्विवत्मका। साधुभिनं च दोग्यव्या धार्मिकेयनमीप्सुभिः॥१७ कुलान्ते पुष्पिता गावः कुलान्ते बहवस्तिजाः। कुरान्ते चलचित्ता स्त्री कुलान्ते बन्धुविपहः॥१८ एकत्र पृथिवी सर्वा सरील-वन-कानना। तस्या गौज्यायमी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥१६ यथोक्तविधिना चैता वर्णैः पाल्याः सुरूजिताः। पालयन् पूजयन्नताः म प्रेरवेह च मोदते॥२० दक्षिणाभिमुखा गाव उत्तराभिमुखा अपि। बन्धनीयास्त्रयेताः स्युर्ने प्राक्-पश्चिमतोमुखाः ॥२१ वाजि-गो-वृषशालायां सुतीक्ष्णं लोहदात्रकम्। स्थाप्यं तु सर्वदा तत् स्यादवलु ।विमोक्षकृत्।।२२ गावो देयाः सदा रक्ष्याः पाल्याः पोष्याश्च सर्वदा । ताडबन्ति च ये पाषा ये चाक्रोशन्ति ता नराः ॥२३

नरकाग्री प्रप€यन्ते गोनिःश्रासप्रपीद्विताः । सपलाशंन शुष्केण ता दण्डेन निर्वतयेत्।।२४ गच्छ गच्छेति तां ब्रुयान् मा मा भैरिति वारयेत्। संखुशन् गां नमस्कृत्य कुर्यात्तां च प्रदक्षिणम् ॥२४ प्रदक्षिणीकृता तेन सप्तद्वीपा वसुन्यरा। तृणोदकादिसंयुक्तं यः प्रदद्याद्रवाह्निकम् ॥२६ सोऽश्वमेधसमं पुण्यं लभते नात्र संशयः। गवां कण्ड्यनं स्नानं गवां दानसमं भवेन्॥२७ तुल्यं गोशतदानस्य भयतो गां प्रपाति यः। पृथिव्या यानि तीर्थानि आसमुद्रं सरांसि च ॥२८ गवां श्वक्षोदक न्नान कछां नाई न्ति षोडशीम्। पातकानि कुतस्तेशं येषां गृहमलंकुतम्।।२६ सततं बाछवःसाभिगोभिः श्रीभिरिव स्वयम्। ब्राह्मणाश्चेव गावश्च कुलमेकं द्विधा कृतप्।।३० तिष्ठन्त्येकत्र मन्त्रास्तु हिनरेकत्र तिष्ठति। गोभिर्यज्ञाः प्रवर्तन्ते गोभिर्देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३१ गोभिर्वेदाः समुद्रीर्णाः षडङ्गाः सपद्-क्रमाः। सौरभेयास्तु यस्यामे पृष्ठतो यन्य ताः स्थिताः ॥३२ वसन्ति हृदये नित्यं तासां मध्ये वसन्ति ये। ते पुण्यपुरुषाः क्षोण्यां नाकेऽपि दुर्लभाश्च ते ॥३३ ये गोभक्तिकरा नित्यं भवन्ते ये च गोप्रदाः। शृङ्गमूले स्थितो ब्रह्मा शृङ्गमध्ये तु केशवः। शृक्षाप्रे शंकरं विद्यात्त्रयो देवाः प्रतिष्ठिताः ॥३४

शृङ्काघ्रे सर्वतीर्थानि स्थावराणि चराणि च। सर्वे देवाःस्थिता देहे सबदेवमयी हि गौः ॥३४ ळळाटावे स्थिता देवी नासामध्ये तु षण्मुख । कम्बलाऽरवतरौ नागौ तत्कर्णाभ्यां व्यवस्थितौ।।३६ स्थितौ तस्याश्च सौरभ्याश्चक्षपोः शशिभान्करौ। दन्तेप वसवश्चाष्टी जिह्नाया वरुणः स्थितः॥३७ मरस्वती च हुंकारे यम-यक्षी च गण्डयोः। भृषयो रोमकूपेपु प्रमावे जाह्ववीजलम् ॥३८ कालिन्दी गोमये तस्या अपरा देवतास्तथा । अष्टाविंशतिदेवानां कोट्यो लोमसु ताः स्थिताः ॥३६ उदरे गाईपत्योऽग्निह दये दक्षिणस्तथा। मुखं चाहबनीयस्तु सभ्याऽऽवसथ्यौ च कुक्षिप् ॥४० एवं यो वर्तते गोपु ताडनकोधवर्जितः। महती श्रियमाप्रोति स्वर्गलोके महीयते ॥४१ कुछं तस्या न शङ्केत प्तिगन्धं न वर्जयेतु। यावत् पिबति तद्दुग्धं तावत् पुण्यं प्रवर्धते । ४२ यो गां पयस्विनीं दद्यात्तरुणां वत्ससंयुताम्। शिवस्यायतने दत्त्वा दत्तं तेन तु विश्वकम् ॥४३

इति गोमहिमावर्णनम्।

## अथ समहत्ववृषभपूजनवर्णनम्।

उक्षाणो वेधसा सृष्टाः सस्यस्योत्पादनाय च । तैरुत्पादितसस्येन सर्वमेतद्विधार्यते ॥४४ यश्चेतान पालयेदाबाद्वर्धयेचेव यवतः। जगन्ति तेन सर्वाणि साक्षान् स्युः पालितानि च ॥४५ यावद्गोपालने पुण्यमुक्तं पृर्वमनीपिभिः। उक्ष्णोऽपि पालेन तेषां फलं दशगुणं भवेत् ॥४६ जगदेतद्धृतं सर्वमनडुद्भिश्चराचरम् ॥४७ वृष एव ततो रक्ष्यः पालनीयश्च सर्वदा । धर्मोऽयं भूतले साक्षाद् ब्रह्मणा द्यवतारितः ॥४८ त्रेलोक्यधारणायालमञ्जानां च प्रसूतये। अनादेयानि घासानि विघसन्ति स्वकामतः ॥४६ भ्रमित्वा भूतलं दृरमुक्षाणं को न पूजयेत्। उत्पादयन्ति सस्यानि मर्दयन्ति वहन्ति च। आनयन्ति द्वीयस्तदुक्षतः कोऽधिको भुवि ॥५०

स्कन्धेन दूराच वहन्ति भारमाख्याति पत्युर्न च भारयुक्ताः।
स्वीयेन देहेन परस्य जीवान्पुष्यन्ति रक्षन्ति च वर्धयन्ति ॥५१
पुण्यास्तु गावो वसुधातले या विश्रत्यमुं गोवृपगर्भभारम्।
भारःपृथिन्या दशताद्विताया एकस्य चोक्ष्णो ह्यपि साधुवाचः॥५२
एकेन दत्तेन वृषेण येन भवन्ति दत्ता दश सौरभेय्यः।
माहेय्यपीयं धरणीसमाना तस्माद्वृषात् पूज्यतमोऽस्ति नाम्यः॥५३

उत्पाद्य सस्यानि तृणं चरन्ति तदेव भूयः सततं वहन्ति । न भारिक्जाः प्रवदन्ति किंचिदहो वृपैर्जीवति जीवलोकः ॥४४ तृतीयेऽच्दे चतुर्थं वा यदा वत्सो हढो भवत्। तदा नामाऽस्य भेत्तव्या नैव प्राग् , दुबलस्य च ॥४६ नामावेधनकीलं तु म्वादिरं वाथ शेंशपम्। द्वादशाङ्गलकं कार्यं तज्ज्ञेस्तेश्च समं च वा ॥४६ शालां द्विजेन्द्रा वृष गो-हयानां तां याम्यदिग्हारवतीं विद्ध्यान्। सौम्याककुव्हारवर्ता मुशोभां तेपां शमिन्छन ध्रृवमात्मनश्च ॥५७ गावो वृपा वा ह्य-हस्तिनो वा अन्येऽपि मर्वे पशवो द्विजेन्द्राः। याम्यामुखा बोत्तरदिङ्मुखा वा नान्याशकाम्ते खल बन्धनीयाः ॥४८ शालाप्रवेशे वृप-गो-पश्नां राजा ऽपि यनाद्धय-कुञ्जराणाम्। होमं च सप्ताचिपि शास्त्रयुक्तं कुर्याद्विधिज्ञो द्विजपूजनं च ॥५६ इति समहत्ववृपभपूजनवर्णनम्। अथ हल ( वेध ) करण वर्णनम्। लाङ्गलं सम्प्रवक्ष्यामि यत्काष्टं यत्प्रमाणतः। हलेषायास्तथोन्मानं प्रतोदस्य युगस्य च ॥६०

चत्वारिंशत्तथा चाष्टावङ्गुलानि कुथः स्पृतः। अर्धार्धमङ्गुलैर्भाज्यो हलेषावेधतश्च यः ॥६१ षोडरीव तु तस्याधः पड्विंशति तथोपरि। वेधस्तरयाश्च कर्तव्यः प्रमाणेन पडङ्कुलः ॥६२ अङ्कुरुंश्चाष्ट्रभिस्तस्माद्वेधःस्यात् प्रातिहारिकः । तस्याधस्ताच चत्वारि वेधश्च चतुरङ्कुञः॥६३ अष्टाङ्करुमुरस्तस्य वेधादृध्वं प्रकल्पयेन् । मीवा दशाङ्कुछा चोर्ध्व हस्तप्राही ततः स्मृता II६४ साऽपि तज्होः शुभा कार्या तहंधस्त्रयङ्कको भवेत्। पश्च क्रुडं पुरस्तस्य शिरसोऽपि विभावनम् ॥६४ पृथुत्वं शिरसो धार्यं हम्ततलप्रमाणकम्। अङ्कुर्जान तथा चाष्टी उरसः पृथुता भन्ने ॥६६ वेधाद्वहिः प्रतीकारी पट्त्रिंशदृङ्खु हा भवेत् । मुतीक्ष्णलोह्फलका मृत्काष्ठादिविद्।रकृत्।।६७ न सीरं क्षीरवृक्षस्य न बिल्ब-पिचुमन्द्योः । इत्यादीनां हि कुर्वाणो न नन्द्ति चिरं गृही ॥६८ प्रक्षाक्ष्योनं तन कुर्यान् कीर्तिघ्नी ती प्रकीर्तिती। तयोः काष्टस्य तन् कुर्वन्ससस्यो नश्यति ध्रवम्।।६६ प्राञ्जला सप्तहस्ता च चतुरस्नाऽप्रवर्तृला । सालादिशुभकाष्टानां हलीपा विदुषां मता ॥७० अस्या वेधः सकर्णायाः कार्यो नववितस्तिभिः। नीचोच्चव्रथमानेन तज्ज्ञा एवं वदन्ति हि ॥७१

ऽध्यायः

चतुर्हरतं युगं कार्यं स्कन्धस्थानेऽद्वं चन्द्रवत् । मेषशृंग्याः कदम्बस्य सालाद्यन्यतमस्य वा ॥७२ शम्या वेथाद्बहिः कार्या दशाङ्कु उप्रमाणिका । तन्मानेन प्रणाली च तदन्तरदशाङ्गलम् ॥७३ प्रतोद्श्य समप्रन्थिवेँ णवश्च चतुष्करः। तद्में चापि कर्तज्यो यवाकारस्त लोहजः ॥७४ हीनातिरिक्तं कर्त्वत्र्यं नैव किश्वित प्रमाणतः । कुर्यादनडुहोऽदैन्याहैन्यात् नरकं ब्रजेन् ॥७४ यथा हढं यथाशोभं वाहकस्य प्रमाणतः। भूमेश्व कर्षणायालं तज्ज्ञाः सीरं वदन्ति हि ॥७६ योजनं तु हरूस्याथ प्रवक्ष्यामि यथा तथा। ष्येष्ठानक्षत्रसंयुक्तं पुण्येऽन्हि तद्विधीयते ॥७० अन्यत्र वा शुभे भे च तत्र कार्यं विपश्चिता। यत् कृत्यं हितं वापि पुण्यं वा मनसि स्कुरेन्।।७८ मातृश्राद्धं द्विजः कुर्याद्यथोक्तविधिना गृही। द्रव्य-कालानुसारेण कुर्वाणो धर्मतः कृषिम् ॥७६ प्रोहिस्य मण्डलं पुज्य-घूप-दीपै समर्च्य तत्। इन्द्राय च तथाऽश्विभ्यां मरुद्भ्यश्च तथा द्विजः॥८० कुर्याद्वलिहृतिं विद्वान् उद्ग्वे कश्यपाय च। तथा कुमार्ये सीतायै अनुमत्यै तथा बलिः॥८१ नम स्वाहेति मन्त्रेण स चेन्छन्नात्मनो हितम्। द्धि-गन्धा-ऽक्षतैः पुष्पैः शमीपत्रैस्तिलैस्तथा ॥८२

द्द्याद्बलिं वृषाणां च मध्त्राज्यप्राशनं तथा। सङ्ग्रुप्य सीरफालाग्रं हेम्रा व रजतेन वा ॥८३ प्रलिप्य मधु-सर्पिभ्यां कुर्याच तत्प्रदक्षिणम्। अग्न्युक्ष्णोर्मण्डलं कृत्वा कुर्यात्मीरप्रवाह्णम् ॥८४ पुण्य लःङ्गरु कल्याण कल्याणाय नमोऽस्त्रित । सीतायाः स्थापनं कृत्वा पराशरमृषि स्मरम् ॥८६ सीरा युञ्जन्ति इत्याचैर्मन्त्रं सीरं प्रवाहयेत्। द्धि-दुर्वा-ऽक्षतेः पुष्पे शमीपत्रेश्च पुण्यदैः ॥८६ सीतां पूज्य वृषौ भक्तया रक्तवस्रविषाणकौ। सप्तधान्यानि चादाय प्रोक्ष्य पूर्वामुखो हुली। तानि कृत्वोक्ष्णोः क्षेत्रं च किरन् भूमि कृपंद्दिः ॥८० न तिरुन यवैर्हीनं द्विजः कुर्वीत कर्पणम्। तिहिहीनं तु कुर्वाणं न प्रशंसनिन देवनाः ॥८८ तिलपात्रच्यतं तोयं दक्षिणस्यां पतेहिशि। तेन तृष्यन्ति पितरो यावन्न तिलविक्रयः ॥८६ विक्रीणीते तिलान्यस्तु मुत्तवाऽन्यद्वान्यसामकान् । विमुच्य पितरस्तं तु प्रयान्ति हि तिलैः सह ॥६० तुपाज्जलं यवस्थं च पात्रभ्यो भूतले पनत्। पयो-दधि-घृताद्येस्तु तर्पयेत्सर्वदेवताः ॥११ दैव-पर्जन्य-भू-सीरयोगान कृषिः प्रजायते । व्यापारात् पुरुषस्यापि तस्मात्तत्रोद्यतो भवेत् ॥६२

शालीक्ष-शण-कार्पास-वार्ताकप्रभृतीनि च। वापयेन सस्यवीजानि सर्वं वापि न मीदति ॥६३ चन्द्रक्षये उमतिर्विष्ठो यो युनक्ति वृषं कचित। तं पञ्चदशवर्षाणि त्यजन्ति पितरो हित्र ॥६४ चन्द्रक्षये तु योऽविद्वान् द्विजो भृड्क पराशनम्। भोक्तमांसाजितं पुण्यं भवेदशनदम्य व ॥१५ चन्द्रार्कयोम्तु संयोगे कुर्याद्यः स्त्रीनिपेवणम् । म्यूरेतोभोजनाम्तस्य तन्मासं पितरो हताः ॥६६ चन्द्रक्षये तु यः कुर्यात्तरम्तम्भनिकृत्तनम् । तत्पर्णसंख्यया तम्य भवन्ति भ्रणहत्यकाः ॥६७ वनस्पतिगते सोमे योऽन्वानं तु ब्रजेदृहिजः। प्रभ्रष्टद्विजकर्माणं तं त्यजन्त्यमराद्यः ॥६८ वासांमीन्दुप्रणाणे यो रजकम्याव्रतः क्षिपेत् । पिबति पितरस्तस्य मासं वस्त्रमलाम्य तन् ॥६६ सोमक्षये द्विजो याति त्यत्तवा यस्तु हुताशनम्। स देव-पितृशापाप्रिदम्धो नरकमाविगेन ॥१०० अप्रमी कामभौगेन पत्री तेलापभोगतः। कुहुश्च दन्तकाष्ट्रेन हिनस्त्यासप्तमं कुरुम् ॥१०१ चन्द्राप्रतीतौ पुरुषस्तु द्वादद्याद्मत्या यदि दन्तकाष्टम् । ताराधिराजः स्वदितस्तु तेन घातः कृतः स्यात्पितृ-देवतानाम् ॥१०२

तत्राभ्यज्य विषाणानि गावश्चेव तथा वृषाः। चरणाय विसृज्यन्ते आगतान् निशि भोजयेत्॥१०३

य उत्पाद्येह सस्यानि सर्वाणि तृणचारिणः। जगत् सर्व धृतं यैस्तु पूज्यन्ते किन ते वृषाः ॥१०४ चरणाय विसृष्टं तु यस्य गोदशकं भवेत्। यद्रपेण स्थि। धर्मः पूज्यन्ते किं न ते वृषाः ॥१०५ स्युः पाल्या यन्नतम्ते वै वाह्नीया यथाविधि । स याति नरकं घोरं यो वाहयत्यपालयन् ॥१०६ नाऽधिकाङ्गो न हीनाङ्गः पुष्पिताङ्गो न दृषितः। वाहनीयो हि शुद्रेण वाहयन्क्षयमश्नुते ॥१०७ वर्जयेदुद्रष्ट्रदोपांश्च वाहने दोहने नरः। पाल्या वे यत्नतः मर्वे पालयन्च्छ्भमाप्तुयात् ॥१०८ अन्नार्थमेतानुक्षाणः समर्ज परमेश्वरः। अन्नेनाप्यायते सर्व शैलोक्यं मचराचरम् ॥१०६ अग्निर्ज्वलि चान्नार्थं वाति चान्नाय मारुतः। गृद्धाति चाम्भमां सूर्यो रमानन्नाय रश्मिभः ॥११० अनं प्राणो बलं चान्नमन्नाजीवितम्च्यते। अनं च जगदाधारं सर्वमन्नं प्रतिष्ठितप् ॥१११ सर्वेषां देवतादीनामम् जीवः प्रकीर्तितः। तस्माद्त्रात्परं तत्वं न भतं न भविष्यति ॥११२ द्यौः पुमान्धरणी नारी अम्भो बीजं दिवश्च्यृतम्। च-धात्री-तोयसंयोगादत्रादीनां हि सम्भवः ॥११३ आपो मूळं हि सर्वस्य सर्वमप्मु प्रतिष्ठितम्। आपोऽमृतरसो ह्याप आपः शुक्रं बल्लं महः ॥११४

सर्वस्य बीजमापो हि सर्वमद्भिः समावृतम्। सद्य आप्यायना ह्याप आपो ज्येष्ठतरा हातः ॥११४ कि चित्रालं विनाऽन्नाच जीवन्ति मनुजाद्यः। न जीवन्ति विना ताभिस्तस्मादापोऽमृतंसमृताः ॥११६ दत्ताभिरद्भिरेतस्यां किं न दत्तं कर्ही युगे। यथान्नेन प्रदत्तेन सर्वं दत्तं भवेदिह ॥११७ अतोऽप्यन्नार्थभावेन कर्तव्यं कर्पणं द्विजः। बथोक्तंन विधादेन लाङ्गलादि प्रयोजनम् ॥११८ सीते सौम्ये कुमारि त्वं देवि देवाचिते श्रिये। शक्तिसुनोयथा सिद्धा तथा मे सिद्धिदा भव ॥११६ शक्तिमूनोर्विना नाम्ना सीनायाः स्थापनं विना । विनाऽभ्युक्षणरश्चार्थं सर्वं हरति राक्षसः ॥१२० वापने छवने क्षेत्रं खरे गन्त्रीप्रवाहण । एप एव बिथिइरेयो धान्यानां च प्रवेशने ॥१२१ देवतायतनोद्यान-निपातस्थान-गोत्रजान्। सीमा-श्मशान-भ्मिं च वृक्ष्न्छायां क्षितिं तथा ॥१२२ भूमिं निखातं यूपांश्च अयनस्थानमेव च। अन्यामपि हि चाऽवाह्यां न कुरेत्कृषिकृद्धराम् ॥१२३ नोषरां वाहयेद्भूमीं न चा उश्म-शर्करावृताम्। न गोचरां न प्रदत्तां न नदीपुलिनां तथा ॥१२४ यदासौ वाहयेह्नोभाद्वेषाद्वापि हि मानवः। क्षीयतेऽसौ चिरात्पापात् सपुत्र-पशु-बान्धवः ॥१२४

नरकं घोरतामिस्नं पापीयान् याति निश्चितम्। योऽपहृत्य परकीयां कृषिकु गहयेद्धराम् ॥१२६ स भूमिस्तेयपापेन मुचिरं नरके बसेत्। एकसङ्ख्यमपि स्वर्णं भूमिमङ्गु उमात्रिकाम् ॥१२७ तथेकामपि गां हत्वा सृष्ट्यन्तं नरकं वसेत्। न दृरे वाहयेत् क्षेत्रं न चैवात्यन्तिके तथा ॥१२८ वाहयेत्र पथि क्षेत्रां वाहयन्दुःखभाग्भवेत्। क्षेत्रेप्वेवं वृतिं कुर्याद्यामुष्टो नावलोकयेत् ॥१२६ न लक्ष्येत्पशुनीश्वो नभिन्द्याद्यां च शुकरः। वन्याश्च यन्नतः कार्या मृगादित्रामनाय च ॥१३० अत्राप्यपद्रवं राज्ञा तरफ्रगदिसमुद्भवम् । संरक्षेत्सर्वतो यत्राचस्मात् गृहात्यमौ करान् ॥१३१ कृपिकु मानवस्त्वेवं मत्वा धमं कृतेद्धराम्। अनवद्यां शुभां स्निग्धां जलवगाहनक्ष्माम् ॥१३२ निम्नां हि बाहयेदः भूमिं यत्र विश्रमते जलम्। वाहयेत्त् जलाभ्यर्णमवृष्टौ सेकमम्भवः ॥१३३ शारद्यमुजकर्भमी कङ्खादा वापयेढळी। अधित्यकासु कार्पामं वद्नत्यन्यत्र हेमकम् ॥१३४ वासन्तं प्रीष्मकालीयं वाप्यं स्निग्धेषु तद्विदा। केदारेषु तथा शालीञ्जलोपान्तेषु चेक्षवः ॥१३४ वृन्ताक-शाकमूलानि कन्दानि च जलान्तिके। वृष्टिविश्रान्तपानीयक्षेत्रेषु च यवादिकान् ॥१३६

गोधुमाश्च मसूराश्च खल्याः खलकुशास्तथा । समस्त्रिग्धेषु वाप्याश्च भूमिजीवान्विजानता ॥१३७ तिला बहुविधाश्चोप्या अतसी-शणमेव च। समस्त्रिखेषु वाष्यानि धान्यान्यन्यानि योगतः ॥१३८ कुल्ल्या मुद्रमाषाश्च राजमाषादिकास्तथा। बाष्या भूमिविशेषं तु भूमिजीवं विजानता ॥१३६ मृद्म्बुयोगजं सर्वं वापयेन्क्रपिकृत्ररः। सम्पश्येचरतः सर्वान् गोट्टपादीन् स्वयं गृही ॥१४० चिन्तयेत्सर्वमात्मीयं म्वयमेव कृपि व्रजेन्। प्रथमं कृपिवाणिज्यं द्वितीयं पशुपोपणम् ॥१४१ तृतीयं क्रीतविक्रीतं चतुर्थं राजसेवनम्। नखेर्विलिखने यस्याः पापमाहर्मनीपिणः ॥१४२ तस्याः सीरविदारेण किं न पापं क्षितेर्भवेत्। <del>रुणैकच्छेदमात्रोण प्रोच्यते क्ष्य आयुपः ॥१४३</del> असङ्ख्यकन्द्निर्नाशाद्सङ्ख्यातं भवेद्घम्। यद्वर्षे मत्स्यबन्धानां तथा सङ्घरिणामपि ॥१४४ अंहः कुक्कुटिकानां च तद्दिने कृषिकारिणाम्। वधकानां च यत् पापं यत् पापं मृगयोरपि । कद्याणां च यत् पापं तहिने कुषिकारिणाम् ॥१४५ वर्णानां च गृहस्थानां कृषिवृत्त्युपजीविनाम्। तदेनसो विशुद्धधर्थं प्राह सत्यवतीपतिः ॥१४६

द्वादशो नवमो वापि सप्तमः पश्चमोऽपि वा। धान्यभागः प्रदातत्र्यो सीरिणा खलके ध्रुवम् ॥१४७ अश्मर्यव्युढभूमौ च विंशांशी क्षेत्रभुग्भवेत्। एकैकांशाय कर्षः स्याद्यावदृशम-सप्तमी ॥१४८ या**मे**रास्य नृपस्यापि वर्णिभिः कृषिजीविभिः ॥१४६ सस्यभागः प्रदातव्यो यतस्तौ कृषिभागिनौ । ब्राह्मणस्तु कृपिं कुर्वन्वाह्येदिन्छया धराम् ॥१५० न किञ्चित् कस्यचिद्दद्यात्स मर्वस्य प्रभुर्यतः। ब्रह्मा व ब्राह्मग चास्यात्प्रमुस्त्वसृजदादितः ॥१५१ तद्रक्षणाय बाहुभ्यामसृजन् क्षत्त्रियानपि । पशुपाल्याशनोत्पत्त्यै ऊरुभ्यां च तथा विशः ॥१४२ द्विजदास्याय पण्याय पद्भचां शूद्रमकल्पयत् । यकिञ्चिज्ञगतीहात्र भू-गेहाश्च गजादिकम् ॥१५३ स्वभावेन हि विप्राणां ब्रह्मा स्वयमकल्पयत् । ब्राह्मणश्चेव राजा च द्वावप्येती धृतव्रती ॥१५४ न तयोरन्तरं कि भाग प्रजाधमां भिरक्षणे। तस्मान्न ब्राह्मणो दद्यात् कुर्वाणो धर्मतः कृषिम् ॥१४४ प्रामेशस्य नृपस्यापि कियन्त्रमप्यसौ बहिम्। अथान्यत् सम्प्रवक्ष्यामि कुषिकुच्छुद्धिकारणम् ॥१५६ संग्रुद्धः कर्षको येन स्वर्गलोकमवाप्नुयात् । सर्वसत्वोप्रकाराय सर्वयक्षोपसिद्धये ॥१४७

नृपस्य कोशवृद्धधर्यं जायते कृषिकुन्नरः। कुर्यात्कृषि प्रयत्नेन सर्वसत्वोपजीविनीम ॥१५८ पितृ-देव-मनुष्याणां पुष्टये स्यात् कृपीवलः। वयांसि चान्यसत्वानि श्चत्तप्गापीडिताः प्रजाः ॥१५६ उपयुञ्जन्ति सस्यानि क्षेत्रजातानि नित्यशः। पुष्ट्यर्थं मुष्टिमेकां वा द्दत्पापं व्यपोहति ॥१६० यस्य क्षेत्रस्य यावन्ति सस्यान्यद्नित प्राणिनः। तावन्तोऽपि विमुच्यन्ते पातकात् कृषिकारकाः ॥१६१ कृताग्निकार्यदेहोऽपि ब्राह्मणोऽन्यतमोऽपि वा । आद्दानः परक्षेत्रात् पथि गच्छन्न लिप्यते ॥१६२ क्षेत्री विमुच्यते दोषात् नियतं कृपिसम्भवात्। गृहीतं क्षेत्रिणो धान्यं निवेदयति वाण्वपि ॥१६३ अनिवेदिते तद्धं स्यात् पातकं कर्षुकस्य चा भावशुद्धावतो धर्मो ह्यनेन तहिशोधयेत् ॥१६४ मुष्टिं तु कल्पयन्धान्यं सर्वपापं व्यपोहति । यत्कि चिद्धिने दद्याद्भिक्षामात्रं च भिक्षवे ॥१६४ अन्नं सुसंस्कृतं वापि तेन सीरी विशुद्धचित । सीतायइां च यः कुर्यात् सिद्धसस्ये खळागते ॥१६६ अनन्तकृतपापोऽपि मुक्तो भवति कर्षुकः। खलयशं प्रवक्ष्यामि तत्कुर्वाणा द्विजातयः ॥१६७ विमुक्ताः सर्वपापेभ्यः स्वर्गीकस्त्वमवाप्नुयुः। चतुर्दिक्ष खले कुर्यात्प्राच्यमतिघनावृतिम् ॥१६८

सेकद्वारं पिधानं च विदध्याचैव सर्वतः। खरोष्ट्राजोरणांस्तत्र विशतस्तु निवारयेत् ॥१६६ श्व-शूकर-शृगालादिकाकोलूक-कपोतकान्। त्रिस ध्यं प्रोक्षणं कुर्यादानीताभ्यक्षणाम्बुभिः ॥१७० रक्षां च भस्मना कुर्याज्ञलधाराभिरक्षणम्। त्रिस-ध्यमचेयेत्सीतां पाराशरमृपि म्मरन् ॥१७१ प्रेत-भूतादिनामानि न वदेच तद्यतः। सृतिकागृहवत्तत्र कर्तः यं परिरक्षणम् ॥१७२ हरन्त्यरक्षितं यस्माद्रक्षांसि सर्वमेव हि । प्रशस्तद्निपूर्वाह्नं नाऽपराह्नं न सन्ध्ययोः ॥१७३ धान्योन्मानं सदा कुर्यात् सीतापूजनपूर्वकम् । यजेत खलभिक्षाभिः कालं गोहिण एव हि ॥१७४ भक्तया सर्व प्रदत्तं हि तत्ममस्तिमहाक्षयम्। खलयहो दक्षिणेया ब्रह्मणा निर्मिता पुरा ॥१७५ भागवेयमयीं कृत्वा तां गृह्णन्त्वीह मामिकाम्। शतकस्वादयो देवाः पितरः सोमपादयः ॥१७६ सनकादिमनुष्याश्च ये चान्ये दक्षिणाशनाः। एतानुद्दिश्य विप्रेभ्यो प्रद्यान् प्रथमं हली ॥१७७ विवाहे खलयहो च सङ्क्रान्तौ प्रहणेपु च। पुत्रे जाते व्यतीपाते दत्तं भवति चाक्ष्यम् ॥१७८ अन्येपामर्थिनां पश्चात्कारुकाणां ततः परम्। दीनानामप्यनाथानां कुष्ठिनां कुशरीरिणाम् ॥१७०६

क्षीबा-ऽन्ध-बिधरादीनां सर्वेषामपि दीयते। वर्णानां पतितानां च द्दद्भुक्तानि तर्पयेत् ॥१८० चाण्डालांश्च श्वपाकांश्च प्रीणात्युचावचांस्तथा । ये केचिदागताम्तत्र पूज्याम्तेऽतिथिवद्द्विजाः ॥१८१ स्तोकशः मीरिभिः सर्वैर्विणिभिगृहमेधिभिः। द्त्वा मृतृतया वाचा क्रमेणाथ विमर्जयेत ॥१८२ तत्कृत्वा स्वगृहं गत्वा श्राद्वमाभ्युद्यं चरेत्। शरद्धमन्त-वामन्त-नवान्नेः श्राद्धमाचरेत् ॥१८३ नो ऽदत्वान्न नदश्नीयादश्नंश्चंदघमश्नुते। कृपावुन्पादा धान्यानि खलयज्ञ समाप्य च ॥१८४ सर्वमत्वहिते युक्त इहामुत्र सुखी भवेत । कृषरन्यत्र नो धर्मो न लाभः कृषितोऽन्यतः ॥१८५ सुखं न कृपितोऽन्यत्र यदि धर्मेण वर्तते । अवस्रत्वं निरन्नन्वं कृषितो नेव जायते ॥१८६ अनातिथ्यं च दुःखित्वं गोमतो न कदाचन। निर्धनत्वमसत्यत्वं विद्यायुक्तस्य कर्हिचित् ॥१८७ अस्थानित्वमभाग्यत्वं न सुशीलस्य कर्हिचित्। बदन्ति मुनयः केचित् कृष्यादीनां विशुद्धये ॥१८८ लाभस्यांशप्रदानं च सर्वेषां शुद्धिकृद्भवेत्। प्रतिप्रहान चतुर्थाशं विणग् लाभात् तृतीयकम् ॥१८६ कृषितो विंशनि चैव दृदतो नास्ति पातकम्। राज्ञो दत्वा च षड्भागं देवतानां च विशकम्।।१६० 86

त्रयस्त्रिशंच विप्राणां कृषिकर्मा न लिप्यते।। कृष्या यथोत्पाद्य यवादिकानि धान्यानि भूयांसि मखान्विधाय। मुक्तो गृहस्थोऽपि पराशरः प्राकृ तम्या मया कश्चिद्वाद् शेपः ॥१६१ देवा मनुष्याः पितरश्च सर्वे साध्याश्च यक्षाश्च सकिन्नराश्च। गावो द्विजेन्द्राः सह सर्वसत्वः कृष्यत्रतृप्तानि मनाक् करोति ॥१६२ यश्चेतदालोच्य कृपि विद्ध्यात् लिप्येन पापेन स भूभवेन ॥ सीरेण तस्यातिविदारितापि स्याद्भृतधात्री वनदानदात्री ॥१६३ पट्कर्माणि कृषि ये तु कुर्युक्तांस्वा विधि द्विजा:। तेऽमरादिवरप्राप्ताः स्वर्गछोकमवाप्नुयुः ॥१६४ षट्कर्मिमः कृषिः प्रोक्ता द्विजानां गृहमेषिनाम् । गृहं च गृहणीमाहुस्तद्विवाहो मयोच्यते ॥१६४

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रं सुव्रतप्रोक्तायां स्मृत्यां कि विकर्मसीतायज्ञोपधर्मो नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥

## कन्याविवाहवर्णनम्।

।। अथ षष्ठोऽध्यायः ॥

अथ कन्याविवाहवर्णनम्।

म्बयं च वाहितैः क्षेत्रैर्धान्येश्च म्वयमर्जितैः। कुर्याद्विवाहयोगादि पश्चयज्ञांश्च नित्यशः ॥१ अष्ट्री विवाहा नारीणां संस्कारार्थ प्रकीर्तिताः। ब्राह्मादिकक्रमेणेतान्सम्प्रवध्याम्यतः पृथक ॥२ जात्यादिगुणयुक्ताय पंस्त्वे सति वराय च । क-याऽलड्कृत्य दीयेत विवाहो वैधसः स्मृतः ॥३ रेतो मज्जति यस्याप्यु मूर्गं च ह्वादि फंनिलम् । म्यान् प्रमॉझक्षणैरेनैर्विपरीतस्तु पण्डकः ॥४ यो यहो वर्तमाने तु ऋत्विजे कर्म कुर्वते। कन्याऽलड्कृत्य दीयेत विवाहः स त् दैविकः ॥४ वराय गुणयुक्ताय विदुषं सदृशाय च। कन्या गोद्वयमादाय दीयेताऽऽर्षः स उच्यते ॥६ कन्या चैव वरश्चोभौ संच्छया धर्मचारिणौ। म्यातामिति च यत्रोत्तवा दानं कायविविस्त्वयम् ॥७ एतावहंहि में द्रव्यमित्युक्तवा प्राग्वराय च। यत्र कन्या प्रदीयेत स वे दैत्यविधिः स्मृतः ॥८ यत्रान्योन्याभिलापंण उभयोर्वर-कन्ययोः। तयोस्तु यो विवाहः स्याद्रान्धर्व प्रथित<sup>,</sup> स तु ॥६ युद्धे हत्वा बलात् कन्या यत्राऽऽिज्ञचाऽपहृत्य च। उद्यते स तु विद्वद्विविवाहो राक्षसः स्पृतः ॥१०

सुप्रा वापि प्रमत्ता वा छलान् कन्या प्रगृह्यते। सर्वेभ्यः स तु पापिष्ठः पैशाचः प्रथितोष्टमः ॥११ आद्या आद्यस्य षट् प्रोक्ता धर्म्याश्चत्वार एव हि । चत्वारोऽन्ये द्वितीयम्य आग्रस्य च द्वयस्य च ॥१२ पश्वमश्च तथा पष्टः स्मृतौ तौ त्रि-चतुर्थयोः। द्वितीयम्यापि ये प्रोक्ता एतयोम्ते न चाष्टमः ॥१३ वैधसाद्यनुरूपेण द्वितीयः पर्योः म्मृतः । सर्वे सप्तममेकस्य द्वितीयस्यैव कीर्तिताः ॥१४ अन्त्यावत्यधमौ चोक्तावुद्वाह्ये शक्तिसूनुना । तथा युगस्वरूपेण प्रोक्तो दैत्यस्तु मानुपः ॥१४ तायन्ते प्राक्ततोऽधस्ताचतुरोऽऽद्यविवाहजैः। स्वात्मना द्विगुणान् वंश्यान् दश-सप्त-त्रयश्च षट् ॥१६ स्त्रीणामाजन्मशर्मार्थं वंशगुद्धौ प्रयत्नवान् । वरं हि वरयेद्विद्वाञ्चात्यादिगुणसंयुतम् ॥१७ जाति-विद्या-वयः-शक्तिरारोग्यं बहुपक्षता। अर्थित्वं वित्तसम्पत्तिरष्टावेते वरे गुणा ॥१८ जातिर्विद्या च रूपं च शीलं चैव नवं वयः। अरोगित्वं विशेषण पुंस्वे सत्यपि लक्षयेत् ॥१६ जातिं रूपं च शीलं च वयो नवमरोगिताम्। स्वाचारत्वं विशेषण संखक्ष्य वरमाश्रयेत् ॥२० सजाति रूप-वित्तं च तथाऽप्रवयसं दृढम् । सन्तोषजननं स्त्रीणां प्रज्ञावानाश्रयेद्वरम् ॥२१

न जाति न च विद्यां च वित्तं नाऽचरणं बियः। किन्तु ताः प्रीतिमिन्छन्ति तस्मात् प्रीतिकरं श्रयेत् ॥२२ पित्रा यत्र सगोत्रत्वं मात्रा यत्र सपिण्डना । न च तामुद्रहेत्कन्यां दारकर्मण्यनादृताम् ॥२३ कन्यायाश्च वरस्यापि यत्रोभयोर्भवेद्रतिः। तथा कन्यां वरो धीमान्यरयेद्वंशशुद्धये ॥२४ नाना मतानि सर्वेषां सतां सन्ति वरम्प्रति । सन्तानम्य विशुध्यर्थं जात्यादिषु च नाऽन्यतः ॥२४ द्रस्थानामविद्यानां मोक्षधमन्यायिनाम्। शूराणां निर्धनानां च न देया कन्यकाः बुधैः ॥२६ नाऽतिद्रे न चाऽमन्न अत्याद्यं चाऽतिदुर्वले। वृत्तिहीने च मूर्खे च पट्मु कन्या न दीयते ॥२७ वर्जयेद्तिरिक्ताङ्गी कन्यां हीनाङ्गरोगिणीम्। अतिलोम्रीं हीनलोम्रीमवाचमतिवाग्युताम्।।२८ पिता पितामहो भ्राता माता मातामहोऽपि वा। कन्यादाः स्युः क्रमेणेते पूर्वाऽभावे परः परः ॥२६ अधिकारी यदा न स्यात्तदाऽऽख्याय नृपम्य सा। तद्विरा च स्वयं गम्यं कन्यापि वरयेद्वरम् ॥३० पिङ्गलां कपिलां कृष्णां दुष्टवाकाकनिःस्वनाम्। रथूलाङ्ग-जङ्ग-पादां च सदा चाऽप्रियबादिनीम् ॥३१ त्यजेन्नग-नदीनान्नीं पिक्ष वृक्षर्श्वनामिकाम्। अहि-प्रेष्या-ऽन्त्यनाम्नी च तथा भीषणनामिकाम् ॥३२

स्वजातिमुद्धहेन् कन्यां सुरूपां लक्षणान्विताम् । अरोगिणीं सुशीलां च तथा भ्रातृमतीमपि ॥३३ सर्वावयवसम्पूर्णामसगोत्रां कुलोङ्गवाम्। हंस-मातङ्गगमनां स्मृदंगी स्लोचनाम् ॥३४ सलजां ग्रभनामां च पतिप्रीतिकरीमपि। श्वश्रु-श्वश्रु-गुर्वादिश्रश्रुपाकारिणी प्रियाम् ॥३४ अव्यङ्गा कुलजातां तामनभिशम्तवंशजाम् । प्रस्वेदशुनगरवां च श्रभमिच्युरसमुद्रहेत् ॥३६ विप्र. म्यामपरे इ तु राजा म्यामपरे तथा। वैश्यः स्वाश्व च**तुर्थ<sup>ै</sup> च क्रमेणे**वं समुद्रहेनु ॥३७ पितृतः सप्मीमेक मातृतः पश्चमीमपि। उद्घहेदिति मन्यन्ते कुलधर्मान् समाधिताः ॥३८ उक्तत्रक्षणकन्यायाः कृत्वा पाणिप्रदं विजः। धम्ये द्वाहेन केनापि समा अदध्यादधुनाशनम् ॥३६ दायासकाले वा दयानदृक्तं कर्म**कृद्**ि जै: । यदा वापि भवेन भक्तिः सम्पत्तिर्वा यदा भवेन ॥४० श्रतावृत्ती स्त्रियं गच्छेत्स्त्रीच्छ्या च वरं स्मरन । सर्वे तिद्चरया कुर्याद्यथोभयोर्भवेत्यृतिः ॥४१ भोज्या-ऽलङ्कार-वासोभिः पूज्याः स्यः सर्वदा स्त्रियः । यथा ता नैव शोचन्ति मित्यं कार्यं तथा नृभिः॥४२ आयुर्वित्तं यशः पुत्राः स्त्रीप्रीत्या स्युर्नु णां सदा । नश्यन्ते ते तदप्रीनौ तासां शापादसंशयम् ॥४३

श्चियश्च यत्र पुज्यन्ते सर्वदा भूषणादिभिः। देवाः पितृ-मनुष्याश्च मोदन्ते तत्र वंश्मनि ॥४४ स्त्रियस्तुष्टाः श्रियः साक्षाद्रष्टाश्च दृष्टदेवताः । वर्धयन्ति कुछं तुरा नाशयन्त्यपमानिताः । ४४ नाऽपमान्याः स्त्रियः सद्भिः पति-श्रशुर-देवरैः। भ्रात्रा पित्रा च मात्रा च तथावाधुभिरेव च ॥४६ श्चियाश्च प्रत्यस्यापि यत्रोभयोर्भवेदधृति । तत्र धर्मा-ऽर्थकामाः स्युस्तरधीना यनस्यमी ॥४७ षर्कमाणि नृगा तेषां येषां भाषां पानवतः। पतिलोकं तु ता यान्ति तपमा येन योगवित् ॥४८ पतिव्रता तु साध्वो स्त्री अपि दृष्कृतकारिणम्। पतिमुद्रशृत्य याति द्यां केकीव पनितोक्तगाम ॥४६ जीवन्वापि मृतो वापि पतिरेव प्रभु:स्वियाः। नान्यच देवतं तामां तमेव प्रभुमचेयेत् ॥४० मनसापि हि हुए। स्त्री यान्यभावा प्रियं पतिम् । सा याति नरकं घोरं तद्द्रोहाद्युतोऽपि च ॥५१ नियोज्य गृहकृत्येषु सवदा ता नृभिः स्त्रियः। गृहाथोसकचित्ताम्ताम्तदेवाईन्ति शोचितुम् ॥५२ स्त्रीणामपृगुणः कामो व्यवसायश्च पड्गुणः। **लजा चतुर्गृणा तामामाहारश्च तद्धकः ॥**५३ न वित्तं नेव जातिश्च नाऽपि रूपमपेक्षते। किन्तु ताभिः पुमानेष इति मत्वैव भुज्यते ॥५४

विकुर्वाणाः स्त्रियो भतुरायुष्य-धननाशकाः। अनायासेन तास्तस्य परासक्ता भवन्ति हि ॥४४ नारीणां च नदीनां च गतिर्न ज्ञायते वधैः। कुलं कूलप्रपाते च कारुक्षेगो न विग्रते ॥५६ चेटा-चारित्र-चित्राणि देवा नैव विदुः स्नियाम् । कि पुनः प्राणिमात्रास्तु सर्वथा नष्टबृद्धयः ॥५७ तस्मात्ताः सर्वथा रक्ष्याः सर्वोपायेर्नु भिः सद्। । श्वशुरेर्द्वराद्येस्ताः पितृ-भ्रात्रादिभिस्तथा ॥५८ विवाहान् प्राक् पिता रक्षे यौवने तु पतिस्ततः। रक्ष्युवर्धिके पुत्रा नास्ति स्त्रीणां स्वतन्त्रता ॥५६ स्वातन्त्र्येण विनश्यन्ति क्रुलजा अपि योपितः। अस्त्रातन्त्र्यमतः स्त्रीणां प्रजापतिरकल्पयन् ॥६० अशीचाश्च सशीचाश्च अमेग्या अपि पावनाः। दुर्वाचोऽपि सुवाचस्तास्तम्माद्न्वेषयेन्न ताः ॥६१ शौचं वाचं च मेध्यत्वं सोम-गन्धर्व-पावकाः। दुदुस्तासां वरानेतांस्तरमात्मेध्यतराः स्त्रियः ॥६२ भर्तारो वो भविष्यन्ति युष्मिचतानुसारिणः। यथेच्छाकामिनः सर्वे तासामिन्द्रो वरं ददौ ॥६३ तस्मात्तदिच्छया प्रीति पुमानिच्छेत्तया स्त्रियः। रश्रणीयास्ततस्तास्तु सर्वभावन योपितः ॥६४ सामाह मृक्थमित्याद्येदेवेन्यस्ता नृणां तनौ । अर्धकाया नराणां ताः स्त्रीणां नातः पृथक् व्रतम् ॥६४ न दिवापि श्वियं गच्छेदिच्छंस्तदिच्छ्रयापि च। न पर्वसु न सन्ध्यासु नाऽऽद्यर्तुचतुरात्रिषु ॥६६ वन्ध्याष्ट्रमे ऽधिवंत्तव्या नवमे च मृतप्रजा। एकाद्शे स्वीजननी सद्यस्त्रप्रियवादिनी ॥६७ नोद्क्यां न दिवा गन्छेत् सगर्भां च व्रतस्थिताम्। अधिगच्छेद्विद्वान्यम्तद्ययुः क्षयमेनि च ॥६८ न वक्त्रेऽभिगमं कुर्यान् पाणिवाही स्वयोषितः। कुर्याचेत्पितरम्तस्य पतन्ति नरकेऽशुचौ ॥६६ भार्याधीनं सुखं पुंसां भार्याधीनं गृहं धनम्। भार्याधीना सुखोत्पत्तिर्भार्याधीनः शुभोदयः ॥५० यत्र भार्या गृहं तत्र भार्याहीनं गृहं वनम्। न गृहेण गृहस्थः स्याद्भार्यया कथ्यते गृही ॥७१ गृही म्याद्गृहधर्मेण स वै पश्वमखादिकः। तद्धीनो न गृहस्थःस्यात्कुर्यात्तं यत्रतस्ततः ॥७२ पञ्चयज्ञविधानेन कुर्यात्पञ्च महामखान्। श्रौते वा यदि वा स्मार्त्तं पश्चयज्ञात्र हापयेन् ॥७३ कुर्युः पञ्चमहायज्ञान् सृनादोपापनुत्तये । पश्चसूना भवन्त्यत्र सर्वेषां गृहमेधिनाम् ॥७४ कण्डन्युदककुम्भी च चुर्झा पेपण्युपस्करः। यदाऽऽदी वेदमारभ्य स्नात्वा भत्तया द्विजोत्तमः ॥७४ अध्यापयेद्द्विजांचित्रुष्यान्स वै ब्रह्ममखः स्मृतः। यत् स्नात्वाऽहरहः सर्वान्देवांश्च मनुजान्पिवृन् ॥७६

तर्पयेद्मभसा भत्तया पितृयज्ञः स वै मतः। श्रीते वा यदि वा म्मार्त यज्जुहोति हुताशने ॥७७ विधिवन्नित्यशो विप्रः स तु दैवमग्वः स्प्रतः। दशम्बाशाम् यः कुर्याद्धृतगपादुबलि द्विजः ॥७८ इन्द्राद्भियस्तथाऽन्येभ्यः स व भृतमग्वो मतः। समायातातिथि भक्तया यद्रोजयति नित्यशः॥७६ अन्यानभ्यागनांश्चेव मा मनुःयेष्टिरुच्यते । एवं पञ्चमखान् कुर्वनमय्-मामा ३३५य-पायमें ।।८० स सन्तर्य पित्रन्देवानसन्त्यान स्वर्गसारन्यात् । गृहस्था य उपामीरन वाचं धेन् चतुम्तनीम् ॥८१ म्बर्गाकमां पितृणां च पूज्यमते तिथिवहिव । चत्वारम्तु म्तना एतं ये चतुर्वद्मंज्ञिता ॥८२ स्वाहाकारो वपट्कारो धातकारस्तथा स्वधा । देवानां भागधयो हो अन्ये च मनुजन्मनाम् ॥८३ पिनृणां च चतुर्थस्य इति वेदनिदर्शनम्। इति निर्वर्ध विविवत्नकलं कम नैत्यकम् ॥ ४ प्राणाग्निहोत्रविधिना भुञ्जीतान्नमघापहम्। अद्त्वा पोष्यवगस्य ह्यकृत्वाऽध्यापनाद्किम् ॥८५ असाक्षिकं च योऽश्नीयात्मोऽश्नीयात्किल्बिपं द्विजः। प्राङ् मुखादिकमेणाऽश्नन्नायुः कीर्ति श्रियो अनुतम् ॥८६ अविविविधिगत्यासु यत्तदश्नन्ति राक्षसाः। अथ प्राणापिहोत्रस्य श्र्यतां द्विजसत्तमाः ॥८७

वक्ष्यमाणो विधिः प्ण्य प्रेत्य चेह च पावनः। यो बिधिर्दवताभ्यम्त संसारबन्धनाशकृत् ॥८८ तद्विदस्तु दिवं यान्ति मुक्ता देवाहणादांप । उद्धरेद्यद्विदित्वाश्ननपूरमानेकविशानिम् ॥८६ सर्वेष्टिफलभाग्यायाद्वेधमं क्षयमक्षयम । य. कालाकालविद्वित्रा नैनःस्पर्शी स कहिचित् ॥६० सोऽख्रृष्टेना विशेत्तत्र यहत्वा नैति संसृती । दश पञ्चांगुलव्यामं नामिकाया बहि स्थितम् ॥११ जीवो यत्र विशृद्धेयत मा कला पांडशी ममृता। सर्वमेतत्त्रया व्यावं त्रहोत्यं सचराचरम् ॥६२ ब्रह्मविशंति विख्याता वंटान्ते च प्रतिष्टिता। न वेदं वेदमित्याहुर्वेदान्नाम परं पदम् ॥६८ तत्पदं विदिनं येन स विश्रो नेद्पारगः। आहुतिः सा परा ज्ञेया सा च शान्तिः प्रकीतिता ॥६४ गायत्री मा च विजया मा च मन्ध्या प्रकार्तिता। तजाप्यं तच वे जयं तद्वतं तद्पागितम् ॥६४ तां कलां यो विजानाति स कलाजो द्विज. स्मृत:। तत्तुरीयपदं शान्नं यस्मिल्लीनमिदं जगन् ॥६६ तज्ज्ञात्वा परमं तत्वं न भूय. पुरुषो भवन् । प्राणमार्गास्त्रयः प्रोक्तास्तिन्नो नाड्यः प्रकीर्तिनाः ॥६७ ईंडा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका । ईंडा च वैष्णवी नाडी ब्रह्माणी पिङ्गला समृता ॥६८

सुपुन्ना चेश्वरी नाडी त्रिधा प्राणवहाः समृताः। उत्तरं दक्षिणं ज्ञेयं दक्षिणोत्तरसंज्ञितम् ॥६६ मध्ये तु विपुवं होयं पुटइयविनिःसृतम्। संक्रांति-विपुवे चैव यो विजानाति विग्रहे ॥१०० नित्यमुक्तः स योगी च ब्रह्मबादिभिरुच्यते । मध्याह्रे चार्धरात्रं च प्रभातेऽस्तमये तथा ॥१०१ विपुवन्तं विजानीयात्पुटद्वयविनिःसृतम् । हृत्पुण्डरीकमरणीं मनो मन्थानमेव च ॥१०२ प्राणरज्ञा नयसेद्रिमात्माध्त्रयुः प्रतिष्ठितः। ज्वालयेत्पूरकेणा जींन स्थापयेत्कुम्भकेन तु ॥१०३ रेचकेणोर्ध्ववक्त्रंण ततो होमं करोति यः। यत्तद्भवद् स्थितं पद्ममधोनालं व्यवस्थितम् ॥१०४ तस्मिन्विकसिते पद्मे प्राणो वायुर्विमर्पति । वामहस्तवृते पात्रे दक्षिणे चाम्भसि स्थिते ॥१०४ सनाद्मुबरेढिप्रो अच्छिन्नामं तु पूरयेत्। पूरणान पूरकं प्राहुनिश्चलं कुम्भकं भवेत ॥१०६ निर्गच्छति शनैर्वायू रेचकं तं विनिर्दिशेत्। स्वाहान्तेः प्रणवाद्येश्च स्वस्वनाम्ना च वायुभिः ॥१०७ जीवात्मा योजितः पष्टः षडाहुत्या हु<mark>तं भ</mark>वेत् । जिह्वादत्तं प्रसेदन्नं दन्तेश्वेव न तत स्पृशेत् ॥१०८ दशनैः सृष्टमात्रेण पुनराचमनं चरेत्। मुख आहवनीयोऽग्निर्गार्हपत्यस्तथोद्रे ॥१०६

हृद्ये दक्षिणाग्निश्च गृह्याग्निश्चापि दक्षिणे। सभ्यश्चोत्तरतश्चिन्त्य इत्यग्निस्मरणक्रमः ॥११० प्राणाद्येवाग्निहोत्रादि चिन्तयेत्तद्वदेव तु । होतारं प्राणमित्याहुरुद्वानारमपानकम् ।:१११ ब्रह्माणं व्यानमित्येक उदानो अवर्युमित्यपि। समानं चेह यज्वानमिति ऋत्विक्क्रमं वृधः॥११२ अहङ्कारं पशुं कृत्वा प्रणवं युपमिन्यपि। बुद्धिरित्यरणिः पृथ्वी लोमानि च कुशाः स्मृताः ११३ मनो विभक्ता त्विजिह्ना इति तज्ज्ञाः प्रचक्षते । कृत्वा त्रिमात्रमोङ्कारं हुङ्कारं च तथा पुनः ॥११४ उत्तिष्ठ जननाथाऽग्ने हरिलोहितपिङ्गल। सप्तपरिधये तुभ्यं क्षुद्रह्निदैवतं च यन् ।।११५ विजिह्न जाठरायाऽग्ने स्वाहाप्राणाय व्यत्यय:। इन्द्रगोपकवर्णाय त्रिजिह्वायाग्निदेवतम् ॥११६ 🕉 स्वाहेति अपानाय स्वाहाकारान्तमुत्ररेत । गोक्षीरसमवर्णाय पर्जन्यं वह्निदेवतम ॥११७ स्वाहोदानाय सोङ्कारमनलाय परार्चिपे। ताडित्समानवर्णाय वाय्वप्रिद्वताय ते ॥११८ 🕉 स्वाहा च समानाय ॐ स्वाहा चाह वेधसे । तर्जनी-मध्यमा- अङ्गुष्ठेलेमा प्राणस्य चाहुतिः ॥११६ कनिष्ठा-ऽनामिका-ऽक्कुष्ठेंव्यानस्य परिकीर्तिता। मध्यमा-ऽनामिका-क्रुट्ठेरपानायाहुतिः स्पृता ॥१२०

मध्यमा-ऽनामिकास्त्वन्यामुद्दाने जुहुयादुबुधः । समाने सर्वेरुदुघुय आहृतिः स्यात्समानतः ॥१२१ जलं पीत्वा तु तृष्यन्ति रेचयेश्व शनैः शनैः । ततोऽन्यद्भव्यमश्नीयात्पूरणायोदरस्य च ॥१२२ विधि प्राणामिहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते। अयानेन तु भुञ्जन्ति तेपां मुखमपानवत् ॥१२३ यो ज्ञात्वा तु विधि भुङ्के यथोक्तमिद्माचरेत्। इहामुत्र च पूज्यत्वं ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१२४ त्रिः मप्तकुलमुद्धृत्य दातुरप्यक्षयं भवेत्। दातुरपि हि यन्पुण्यं भोकुश्चेव हि तत्कलम ॥१२५ दाता चैव तु भोका च तावुमौ स्वर्गगामिनौ। यो जानाति विधि चैमं सभवेद्ब्रह्मवित्तमः ॥१२६ एकं पिवति गण्डूषं त्यजेदधं धरातछे। स हतः पितृ-देवत्यमात्मानं नरकं व्रजेत् ॥१२७ रहस्यं सर्वशास्त्रेषु सर्वशास्त्रेषु दुर्लभम् । ज्ञानानामुत्तमं ज्ञानं न कस्यचित् प्रकाशयेत् ॥१२८ विप्राणाममिहोत्रस्य ये द्विजा नैव जानते। ज्ञानानि योऽप्रकास्यानि पुंसामविदुषां वदेत् ॥१२६ स प्रणाश्य फलं तेषामात्मानं नरकं नयेत्। योऽज्ञात्वा सप्रकाश्यानि पुंसामविदुषां बदेन् ॥१३० प्राणायामफलं हत्वा आत्मानं नरकं नयेतु। योऽस्नीयाद्विधिबद्विप्रः कृतपात्रपरिप्रहः ॥१३१

पूजितान्नमवाग् जुब्ठं सापोशानं ससाक्षिकम्। वाग्यतो न्यन्तपात्र च विप्र-क्षत्र-विशां क्रमात् ॥१३२ वाग्यतो न्यस्तपात्रस्तीन प्रासानप्राविप द्विजः। तम्य त्रिरात्रं पुग्याप्तिद्निऽपि कवयो विदुः ॥१३३ चतुस्तिकोणं वृत्तं च विप्र-क्षत्र-विशा क्रमान्। प्राहः परिहतं सन्तरतद्वीनात्रं तु राक्षसम् ॥१३४ गृह्णीयात्प्रागपोशानं तथा भुक्त्वा सकुत्वपः। अनप्रमष्टतं तत्स्याद्भक्तमत्रं द्विजन्मनाम् ॥१३५ काले भुक्त्वा समुत्थाय प्रेक्ष्य विष्रं समीक्ष्य च। अहःपति तत्र स्थित्व। चिन्तयेद्वह कुत्यकम् ॥१३६ भार्या भोजनवेलाया भिक्षां सप्ताउथ पश्च वा । द्त्वा शेषं समश्नीयात्मापत्य-भृत्यकः सह ॥१३७ निर्वर्त्य सक्छं सापि किचित्रियस्या सुवेन तु। स्वस्त्रीयरतिकार्येषु सापि स्यात्तत्परा पुनः ॥१३८ उपास्य पश्चिमा सन्ध्या हुत्वा चंत्र हुताशनम्। कि <del>वित्पश्चात्त्रमश्नीयात्सायं</del> प्रातरिति श्रुतिः ॥१३६ स्वाध्यायमभ्यसेतिकश्विद्यामद्वयं शयीत च। शयानो मध्यमी यामी ब्रह्मभूयाय कल्पते ॥१४० सुशयने शयीताथ एकान्ते च श्वियासह। गोपनं मेथुनादीनां वदन्ति मुनिपुङ्गवाः ॥१४१ भृतुक्ष्पासु पुत्रार्थी आधानविधिना द्विजः। प्रसाच भस्मना योनिमिति मन्त्रनिदर्शनात् ॥१४२

कृत्वाऽऽधानविधानं तु स्त्रीयोगमभ्यसेत्पुनः। मन्थेद्विकृतो योनौ विकाराद्विकृताः प्रजाः ॥१४३ ब्राह्म मुहूर्त उथाय प्रातः सन्ध्यामुपक्रमेत्। आसूर्यद्शैनान प्रातः सायं चैवर्क्षद्शीनात् ॥१४४ वहिःसन्ज्यामुपासीत सम्प्राप्तावम्भमः सदा । उपासिता वहिःसन्ध्या विशिटफलदा भवेत् ॥१४४ अनृतं मद्यगन्धं च दिवा मेथुनमेव च ॥ पुनाति वृपलस्यात्रं सन्ध्या बहिरुपासिता ॥१४६ सिन्दृरारुणभं भाति नभो यावद्वितारकम्। **उद्येऽस्तमये भानोस्तावत्सन्ध्येति शक्तिजः ॥१४७** आधानतो द्वितीये तु मासे पुंसवनं भवेत । सीमान्तोन्नयनं पष्ठं कार्यं मासे उप्टमे ऽपि वा ॥१४८ जातस्य जानकर्म स्याद्विधिवच्छाद्धपूर्वकम् । दिने चैकादशे नामकर्म स्यान च द्विजन्मनाम् ॥१४६ तुर्यं निष्क्रमणं मासे पष्ठेऽन्नप्रासनं तथा । चुड़ाकर्म तृतीयेऽच्दं कार्यं वा कुलधर्मतः ॥१५० सर्व स्त्रियां विमन्त्रं तु कार्यं कायविशुद्धये। यस्य नस्युर्द्धिजम्येताः क्रियाश्चेव कथंचन ॥१५१ स ब्रात्यःसन् परित्याज्यो द्विजो यस्माद् द्विजन्मनाम्। मुञ्जमीर्ण-शणानां तु त्रिवृता रशना स्मृता ॥१५२ कार्पास-शणमेषीर्णान्युपवीतानि वर्णशः । पलाश-वट-पीलूनां दण्डाश्च क्रमशः स्पृताः ॥१५३

कार्ष्णं च रौरवं वास्तमजिनानि द्विजन्मनाम्। शिरो ललाट-नासान्ताः क्रमाइण्डाः प्रकीर्तिताः ,॥१४४ अब्रणाः सत्त्रचो ऽदग्धा उक्ताः शुभकरा नृणाम् । गायच्या त्रिरृष्-जगत्या त्रयाणामुपनायनम् ॥१५५ गायज्यामविशेषो वा मुझादिष्त्रपरेषु च। तत्सवितुम्तां सवितुर्विश्वा रूपाणि वा क्रमान् ॥१५६ औपनायनिका मन्त्रा विशादीनामुदाहृताः। ब्राह्मणो विप्रगेहेषु नृपस्तेषृत्तमेषु च ॥१५७ वैश्यो विप्र-नृपेष्वेषु कुर्याद्भिक्षां म्ववृत्तये । एकाःनं न डिजोऽरनीयादुबह्मचारित्रते स्थितः ॥१५८ भिक्षावर्तं द्विजातीनामुपवाससमं मृतम्। प्रतिष्रहो न भिक्षा स्थान्न तस्या परपाकता ।१५६ सोमपानसमा भिक्षा अतो अनीत म भिक्षया। मिश्चया यम्तु भुङ्गीत निराहारः स उच्यते ॥१६० भिक्षामनभिशस्तेषु म्याचारेषु द्विजेषु च। भिक्षेत नित्यं क्रमशो गुरोः कुछं विवर्जयेत्।।१६१ स्वसारं मातरं चापि मानुष्वसारमेव च। भिक्षेत प्रथमां भिक्षां या चान्या न विमानयेत् ॥१६२ 'भवति भिक्षां में देहि' 'भिक्षां भवति देहि में'। 'भिश्रां में देहि भवति' क्रमेजैवमुदाहरेत् ॥१६३ द्वादशाब्दं व्रतं धार्यं पट्च्यव्दं तु श्रुतिम्प्रति । आदित्याब्दे त्यजेत्तद्वे दत्त्वा तु गुरुवे बरम् ॥१६४ 88

त्रयस्तु स्नातकाः प्रोक्ताः विद्यात्रतोपसेविनः। विद्यां समाप्य यःस्नायाद्विद्यास्नातक उच्यते ॥१६४ समाप्य च व्रतं यस्तु व्रतन्नातक उच्यते। यज्ञं समाप्य यः स्नाति स द्विनामाऽभिधीयते ॥१६६ द्वयं समाप्य यः स्नायात्स द्विनामाऽभिधीयते । अट्रैक-द्वादशाव्दानि सगर्भाणि द्विजन्मनाम् ॥१६७ मुख्यकालो व्रत ये बहुत्य उक्तो विपर्यये। द्विगुणाव्देषु कर्नव्या क्रमाद्यनतिर्द्विजे: ॥१६८ हीनगायत्रिका त्रात्या उक्तकालादनन्तरम् । नाध्याप्या नेव चोद्वाचा व्यवहारविवर्जिताः ॥१६६ न याज्या नार्यकार्येषु प्रयोज्यास्त इति श्रुतिः। स्रीवन्निर्लोम वक्त्रा ये निर्लोमहेह-वक्षसः ॥१७० उद्योरस्काऽनपयाश्च अदेश्यास्तेऽपि गर्हिताः। येऽजमं विहितं कुर्युः प्राप्तुयुस्ते सदा शुभम् ॥१७१ दीर्घायुष्यमदारिद्रंच सुप्रजास्त्रमरोगिता। अगर्हितत्वं लोकेऽत्र विदुरनिपिद्धकारिणः ॥१७२ क्षीणायुम्त्वं दरिद्रत्त्रमप्रजास्त्वं च रोगिता । गर्हितत्वं च लोकेषु विदुर्निपिद्धकारिणः ॥१७३ प्रातको यदि वा सायं नाद्यादन्नमनचितम्। नानाद्यमनपोशानं शुभप्रेप्सुद्विजन्मना ॥१७४ आपोशानं विना नाद्यानाद्यादन्नमनचितम्। अनाचं न दिवा सायं ग्रुभिम्छन् समस्तुते ॥१७४

षोडशाब्दानि विप्रस्य द्वाविंशतिन् पस्य च। चतुर्विशतिरन्यस्य त्रात्यास्ते स्यूगतःपगम् ॥१७६ उपनेया न ते विप्रैर्नाध्याप्याः शुद्रधर्मिणः। व्यवहार्या नैव याज्या इति धर्मविदो विदुः ॥१७७ स्त्रीणामुद्राह एको वै वेदोक्तः पावनो विधिः। स्ती-पुंसोर्यत्र विन्यासस्तयोगन्योन्यमुच्यते ॥१७८ स्वस्मिन्यस्माद्विभर्त्येपा पति, विभति सोऽपि ताम्। अतो भार्या च भर्ता चंत्यत्र वंदो निदर्शनम् ॥१७६ पतिर्विशति यज्जायां गर्भो भूत्वेह मातरम्। तस्यां पुनर्नवो भूत्वा दशमे मामि जायते ॥१८० जायोक्ता तेन भर्ता वै यदम्यां जायते पुनः ॥१८१ इयमाभवनं भार्या बीजमम्यां निपिच्यते। देवा ऊचुर्मनुष्यांश्च म्वभार्या जननी तु वः ॥१८२ आत्मना जायते ह्यात्मा सा चैत्र पतितारिणी। भार्या जाया जनन्येषा इति वेदे प्रतिष्ठिता ॥१८३ यस्मात्स त्राति पुन्नाम्नो नरकात् पुत्र उच्यते । सर्वा संसृतिमाहत्य स याति ब्रह्मणैकताम् ॥१८४ पिता जातस्य पुत्रस्य पश्येत्रेज्ञीवतो मुन्वम् । सर्व तेन फलं प्राप्तमैहिकामुष्मिकं च यत्।।१८५ किं दण्डैरजिनैस्तीथस्तपोभिः किं समाधिभिः। पुमांसः पुत्रमिष्युष्यं स वै लोके वदावदः ॥१८६

प्राणोऽन्नमस्मिन् शरणं हि वासो रूप्यं हिरप्यं पशवो विवाहाः। सम्वा च यज्वा कृपणश्च पुत्री ज्योतिः परं पुत्र इहाप्यमुत्र ॥१८७

स पुण्यकृत्तमो लोके यम्य पुत्राश्चिरायुपः ।
विशेषण हि धर्मज्ञाः स परं ब्रह्म विन्दित ॥१८८
पुत्रेण प्राप्यते म्यगो जातमात्रेण तु ध्रुवम् ।
तम्मादिन्छन्ति सर्वे हि पशवोऽपि वयांसि च ॥१८६
जायायाग्तद्धि जायात्वं यदम्यां जायते पुनः ।
पुत्रस्यापि च पुत्रत्वं यन्त्राति नरकार्णवात् ॥१६०
यः पिता स तु पुत्रः स्यान जायैव हि जनन्यपि ।
न पृथक्त्वं विदुम्तज्ज्ञाश्चयोश्चाऽपरयोरपि ॥१६१
अयं हि पत्थाः पुरुपम्य तस्य ध्रुवं भवेत्पुत्रजन्मेह यस्य ।
तद्वीक्ष्य चोध्वं पश्चो वयांमि पुत्रार्थिनो मातरमारुहन्ति ॥१६२

जनिष्यमाणानिच्छन्ति पितरः स्वकुछे सुतान् ।
कश्चिद्गत्वा गयायां नोऽवश्यं पिण्डान् प्रदास्यति ॥१६३
यक्ष्यत्यन्योऽश्वमेधंन नीलं मोक्ष्यति गोवृपम् ।
एष्टव्यं पितृभिः सर्वं पुत्रेभ्यः सकलं फलम् ॥१६४
शुद्धः शौर्यंकचित्तो वा प्राणान्मोक्ष्यति संयुगे ।
दानदो वा कुरुत्तेत्रे ज्ञानी वाथ भविष्यति ॥१६५
जीवनो वाष्यकरणात् क्षयाहे भूरि भोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥१६६
पुच्छे शिरसि यः शुक्तः शुक्तायाहोहितं वपुः ।
देवाद्यभीष्टो नीलोऽयमुत्स्रष्टः पावनो वृपः ॥१६७

रक्तो वा यदि वा शुक्तः मुविपाणः शुनेक्षणः । यो न हीनातिरिक्ताङ्गमं गोसहितमुत्मृजेत्॥(६८ दुहितापि तथा माध्यी श्रश्रयोगपान्तिकृत। पतित्रता च धर्मज्ञा पित्रोर्चुगतिकृद्भवेत्।।१६६ यः पिता स च व पुत्रस्तत्ममा दृद्धित।ऽपि च । पुत्रश्च दृहिना चोभी पितुः सन्तानकारकी ॥२०० तत्पुतः पावयेद्वंशान्त्रीन्वं मातामहादिकान । दोहित्रः पुत्रवत्स्वर्ग मुक्ती शास्त्रेश्वती समी ॥२०१ आधानाहिकसंस्काराः प्रोक्ता ये वै द्विजन्मनः । कर्तव्याश्च स्वशाखोक्ताः केचित्कुलक्रमेण च ॥२०२ चत्त्रारिंश्च ते सर्वे निपंकाद्याः प्रकीर्तिताः। मखदीक्षा च विविधा तथैवान्त्येष्टिकर्म च ॥२०३ कुलाचारोऽपि कर्तव्य इतिशास्त्रविदो विदुः । देशाचारस्तथा धर्म इति प्राह पराशरः ॥२०४ अयं हि परमो धर्मः सर्वेपामिति निश्चयः। हीनाचारश्च पुरुषो निन्द्यो भवति सर्वशः ॥२०४ क्लेशभागी च मततं व्याधितोऽल्पायरेव च। आचारे ब्यवहारे च दुराचारो विपर्ययः ॥२०६ नृणामाचरतो धर्मः स्यादधर्मो विपर्ययात । तस्मादाद्ये उनुवर्तेत व्यत्ययं तु विवर्जयेन् ॥२०७ आचारवन्तो मनुजा लभनते आयुश्च वित्तं च मुतांश्च सौख्यम्।।

धर्म तथा शाश्वतमीशलोकम् अत्रापि विद्वज्ञनपूज्यतां च ॥२०८ वेदाः सहाङ्गेम्सपुराणविद्याः शास्त्राणि वेद्यानि च तिहहीनम्। कुर्टुर्न वै तान्यपि संस्मृतानि नरं पवित्रं प्रवद्क्ति वेदाः ॥२०६ येऽधीतवेदाः क्रियया विहीनाः जीवन्ति वंदेर्मन् जाधमास्तान् । वेदास्त्यजेयुर्निधनम्य काले नीडं शकुन्ता इव जातपक्षाः ॥२१० आचारहीननग्देहगनाश्च वंदाः शोचिनत किं नु कृतवन्त इतिस्म चित्तं। यन्नोऽभवद्वपुषि चाम्य शुभप्रहीण स्थानं तदत्र भगवान् विधिरेव शोच्यः ॥२११

कर्तव्यं यक्षतः शोचं शोचमूला द्विजातयः। शौचाचारिवहोनानां मर्वाः म्युनिष्फलाः क्रिया ॥२१२ तत्सद्भिद्धिवियं प्रोक्तं वाह्यमाभ्यःत्तरं तथा। विण्मूत्रशोधनं वाह्यं चित्तशुद्धिस्तयाऽऽत्तरम् ॥२१३ मृद्भिरद्भिरनालम्यं तत्कर्तव्यं द्विजातिभिः। भावशुद्धः परं शोचमाहुराभ्यन्तरं वुधाः ॥२१४ गन्धलेपापदं वाह्यं शोचमाहुर्मनीपणः। यस्य पुंसम्तु तच्छाचं शोचम्तस्य किमन्यकैः ॥२१५

वाङ्-मनो-जलशौचानि सदा येषां द्विजन्मनाम्। त्रिभिः शौचैरुपेतो यः स स्वर्ग्यो नात्र संशयः ॥२१६ स्तियं रिरंसुद्रेविणं जिहीपूर्वधं चिकीपूर्मनुजः परस्य । विवञ्जरत्यन्तमवाच्यवाचं कथं स ग्रुद्धिं समुपैति शीचान १ ॥२१७ किं निष्कामस्य नारीभिः किं गनासोश्च भेपजेः। जितेन्द्रियस्य किं शौचर्निष्फलं मूर्यदानवन् ॥२१८ न गतिर्मूर्खदानेन न तारोऽम्बुनि चाश्मनः। तस्मात्तस्य न दातव्यं सह दात्रा स मज्जति ॥२१६ यथा भस्म तथा मूर्ग्वो विद्वान्त्रज्विलताग्निवन् । होतव्यं च समिद्धं उनौ जुहुयान को नु भस्मनि ॥२२० यथा शूद्रस्तथा मृग्वी शूद्रश्च भस्मवत्तथा। शूद्रेण सह संवासं मृर्थे दानं विवर्जयेत् ॥२२१ ब्रहीता यो न चंदिहान तं दाता गेहिको यथा। आत्मानं तारयेत्तं च नदी वतरणी द्विजः ॥२२२ यो मूर्खो विशदाचारः पट्कर्माभिरतः सदा। स नयन् म्वर्गमात्मानं वृद्धार्श्वेव न पीडयेत्। न विद्या न तपो यस्य ह्याद्तं च प्रतिप्रहम्। निपातयन् स दानारमात्मानमप्यधा नयेन ॥२२४ हेम-भूमि-तिलान् गाश्च अविद्वानाददाति यः। भरमीभवति सोउद्घाय दातु स्यान्निस्फलं च तत् ॥२२४ तस्माद्विद्वान्न।द्शाद्लपशोऽपि प्रतिप्रहम् । विषतत्वापरिज्ञानी विषेणाल्पेन नश्यति ॥२२६

सर्व गवादिकं दानं पात्रे दातव्यमचितम्।
विद्वद्भिनं त्वपात्रे तु गतिमिच्छद्भिरात्मनः ॥२२७
हस्ति-कृष्णाजिनाद्यास्तु गहिंता ये प्रतिम्रहाः।
सद्विप्राम्तान्न गृह्णीयुर्गृह्णास्तु पतन्ति ते ॥२२८
कृष्णाजिनप्रतिपाही हयानां शुक्तविक्रयी।
नवश्राद्धस्य यो भोक्ता न भृयः पुरुषो भवेत् ॥२२६
यो गृह्णाति कुरुक्षेत्रे न्नामं गां द्विमुर्ग्वी गजम।
नवश्राद्वान्नभुग्यन्न वज्यो निर्माल्यवद्द्विजाः॥२३०
एते यान्त्यन्धतामिन्नं यावन्मनुमहम्नकम्॥२३१
विष्णोश्च वर्षे श्रे रवेश्च जाता पृथ्वी च ग्राह्मश्च मुनीश गौश्च।
काले सुपात्रे विधिना प्रदत्ताः प्राप्नोति लोकत्रयमेतद्क्तम्॥२३२

वेद्विद्वान्सदाचारः सदा वसित सन्निधौ ।
भोजने चैव दाने च वर्जनीयो न सत्तमः ॥२३३
अत्यासन्नानधीयानान्त्राह्मणान्यो व्यतिक्रमेन् ।
भोजने चेव दाने च हिनस्त्यासनमं कुलम् ॥२३४
अनुचोऽपि निराचाराः प्रतिवासनिवासिनः ।
अन्यत्र हव्य-कव्याभ्यां भोज्याः स्युरुत्सवादिषु ॥२३४
प्राक्तप्रतिप्रहाभावे प्राप्तायां बृहद्गपितः ।
विप्रोऽशनन्त्रतिगृह्णस्वा यतस्तनोऽपि नाघभाक् ॥२३६
गुर्वादिपोष्यवर्गार्थं देवाद्यर्थं च सर्वतः ।
प्रत्यादद्याद्दिजाप्रयस्तु भृत्यथमात्मनोऽपि च ॥२३७

द्धि-क्षीरा-ऽऽज्य-मांमानि गन्ध-पुण्पा-ऽम्बु-मत्स्यकान्। शय्या-ऽऽमनाशनं शाकं प्रत्याग्व्येयं न कर्हिचित् ॥२३८ अपि दुष्कृतकर्मभ्यः समाद्याद्याचितम्। पनिनादिस्त इन्यभ्यः प्रनिष्ठाह्यममंशयम् ॥२३६ शक्तः प्रतिप्रहीतुं यो वेदवृत्तस्युमंबृतम् । लभ्यमानं न गृह्वाति स्वर्गस्त्रस्याल्पकं फलम् ॥२४० प्रतिब्रहमूगं वापि याचितं यो न यच्छति। तत्कोटिगुणव्रम्तोऽमो मृतो दासत्वमृच्छति ॥२४१ दाता च न समरेहानं प्रतिप्राही न याचते। उभी तो नरकं यातौ दाता चापि प्रतिप्रही ॥२४२ अपात्रम्य हि यहत्तं दानं म्वल्पमपि द्विजाः। ब्रहीता तत्क्षणाद्यानि भम्मत्वं चाप्यवारितः ॥२४३ बद्दन्ति कवयः कचिद्दान-प्रतिप्रहोप्रति । प्रत्यक्ष्रिङ्कमेवेह दातृ-याचकयोग्तः ॥२४४ दातृहस्तो भवेदृध्वं प्रहीतुश्च भवेद्धः। दातृ-याचकयोर्भेदी हस्ताभ्यामेत्र सृचितः ॥२४५ सून्यादीनां चतुर्णां च यथा निन्दितभूपतेः। न विद्वान् प्रतिगृङ्गीयात्र्यतिगृङ्गन्त्रजत्यधः ॥२४६ दुष्टा दशगुणं पूर्वात् सृति-चक्रयथ मद्यक्रत । वश्या निपिद्धनृपतिः प्रतिप्रहे परः क्रमात् ॥२४७ परपाकं वृथा मांसं देवानामिप दृपितम् । अनुपाकृतमांसं च नार्चं च लशुनादिकम् ॥२४८

न भोक्तव्यमभोज्यानं कन्द-मूलादिकं च यत्। न पातव्यमपेयं च द्विजेरत्यन्तगर्हितप् ॥२४६ सःयं युक्तं सदा ब्यान्छनैर्धमं समाचरेत । यमान्सनियमान्कुर्याद्वार्हम्थ्यं त्रतमाचरन् ॥२५० मातृ-पितृनुपाध्यायान् गुरून्विप्रान्सदाऽर्चयेत् । एतांच्छ्रं ष्ठांस्तथा चान्यान्नित्यं विप्राभिवन्दनम् ॥२५१ दमं सेवेत सततं दानं ददाच सर्वदा। दयां च मर्वदा कुर्यात्तिहना नरकाश्रयः ॥२४२ दाम्यन्स सर्वदाऽऽन्मानं मनो दाम्यं सदा द्विजैः। द्यध्वमिति चैवैपा श्रुनिर्वाजसनेयिकी ॥२५३ यन्विदं (यन्त्रिधा) कारकं कुर्यान्स्तनयित्तुर्ध्वनि दिवि । द्देहेति दमं दानं द्यामिति च शिक्षयेत ॥२४४ रसा रमः समा प्रवा देया अपि च नान्यथा। न रमेर्लवणं ब्राह्यं समनो हीनतोऽपि वा ॥२४४ तिला अपि समा देथा धान्यंरन्यंद्विजातिभिः। प्रपीड्यः नैव यंत्रद्वं त्रयुरेतन्मनीपिणः ॥२५६ तिलवत्सववम्नूनि सम्नेहानि द्विजातिभिः। अप्रपोड्यानि यंत्रपु ब्रुयुरेत मनीपिणः ॥२५७ विक्रयव्यपदेशंन दुग्ध-दृध्य।दिसपिपाम्। शुश्रुप्यात्र तिरम्कुयादुपास्यात्राववीरयेत् ॥२६८ लोमारकुर्याद्धजन्मा यः स तु <mark>शूद्रसमस्त्र्यहात्।</mark> न निन्दाच समम्यर्च्यात्र विकीणीत गर्हितान् ॥२४६

अदेयानि न वै द्दाद्स्य। ज्यानि न वै त्यजेत्। अभाष्याञ्चेव भाषेत्र हीनाङ्गाद्यांश्च न क्षिपेत् ॥२६० न संवदेच पित्राद्येः पतितार्येन संविशेत । न मति नीचवर्णाय दद्यादुन्छिप्टमेत्र च ॥२६१ मतिं शूद्रस्य यो दद्याद्यश्चेनं पर्युपासते । न किश्वितस्य चाख्येयं त्रतादि नियमादिकम् ॥२६२ आचक्षाणस्तु तद्धमं नरकाम्रौ प्रपच्यते । नाद्यादनं निषिद्धम्थं स्वप्याद्वा नार्द्धरात्रिषु ॥२६३ वेदविद्यावितानानि विक्रीणीत न कर्हिचित्। नापत्यानि ग्साद्यानि भुजूति चान्वये सति ॥२६४ नापः पिवत् स्वपाणि ध्यां न च कण्डनिक्रद्भवेत् । विदिक्-प्रत्यगुद्यस्तु शयीनाह्नि न सन्ध्ययोः ॥२६४ पादुकादि च पालाशं न वृक्षादिनिक तनम्। नोत्सृज्यं ष्ठीवनाद्यं च कदाचिद्वे गवादिपु ॥२६६ पद्भयां सपृश्यं गवाद्यं नो नोन्छिष्टं न च तद्रतिः । न छंध्यं वत्स तंत्र्यादि वाय्यमन्योनीन्तरा गतिः ॥२६७ न द्वयोर्विप्रयोर्नाम्त्योः सौर्भेय्योः पति-स्वियोः। विप्राग्न्योर्विप्रपिण्डानां नोघोक्ष्णां विष्णु तार्क्ष्ययोः ॥२६८ सौरभेयोर्जलाम्याध्य माहयी-जलयोगीप। भानु व्योमादिकानां तु न कुर्याद् तथा गतिम ॥२६६ भोजनादिषु नासकां पश्येत्र विगतां प्रकाम् । न गच्छेत्स्री रजोयुक्तां न चारनीयात्तया मह। न गन्छेर्त्झा रोगयुक्तां प्रमुखान्न तया सह ।,२७०

उत्तरीयं विना नैव न नम्नो ऽधः शयीत च ।
न गेहे चेत्र मार्गादो न निषिद्धककुत्रमुखः ।।२७१
नोषगङ्गं सुराचाँदि न च विष्ठागृहान्तिके ।
अतिकालातियाने च ग्रुभिमच्छन्वित्रक्रयेत् ॥२७२
क्रोष्ठेन्द्रचाप-भद्राद्या मृलनाम्ना न निर्दिशंत् ।
इन्द्रचापं धयन्ती गौर्न स्थातव्यं परस्य ते ॥२७३
वर्जयेद्धावनं चेत्र पाद्योः कांस्यभाजने ।
पेग्रुन्यं मर्मभदं च न वदेन्स्त्रेच्छभापितम् ॥२७४
प्राकृतं च कुशास्त्राणि पापण्डं हेतुकानि च ।
न श्रोतव्यानि विश्रेण यातनाकारणानि च ॥२७५
न करं मस्तके दद्यान्मस्तकं न करे तथा ।
न जानुनोः शिरो धार्यं नाऽप्रावृतशिरा भ्रमेत् ॥२७६

वंणाश्च बद्धाश्च कर्द्यचाराः
क्षीवाभिशम्ता गणिका तु या च ।
यो बृद्धजीवी गणदीक्षका ये
तेषां न भोज्यं द्यशनं द्विजातेः ॥२७७
क्रृगतुरा बृद्ध-चिकित्मकाश्च
या पृंश्चली यो च विराधि शत्रू ।
ब्रात्यांप्रमत्ता अबलाजिताश्च
अन्नाह्यमेपामशनं द्विजस्य ॥२७८
ये दाम्भिका ये च सुवर्णकारा
बच्छिष्टभोजी पतितश्च यश्च ।

ये पुत्रभार्या बहुयाजका ये विप्रेण चैषां न हि भोज्यमन्नम्। २७६ ये मोम शस्त्राम्य कृताम्य तक-श्रीराज्य मंसं खबणाजिनानि । श्रीमानि लाक्षा च निलान्फलानि विक्रंयरेपामशनं न भोज्यम् । २८० जीवन्ति वृत्या रमदानपानां कर्मारका येऽपि च तन्तुवायाः। राजा नृशंसो रजकः कृतन्तो भोज्याशना नव विहिंसकाश्च ॥२८१ ये चैलधावाश्च सुराष्ट्रतो ये पैशुन्यवाचो ह्यनृतंवदाश्च । ये बन्दिनो येर्जप च चाकि हाश्च विप्रम्य चंतेऽपि न भोज्यसम्याः । २८२ मध्वासव मधृत्लिष्ट दिध क्षीर रमीदनान्। मनुष्योपल घृपांश्च बुश मृत्युष्प वीकवः । २८३ कौशेय केश कुतपान्नीरं विपरगांस्तथा। शाकैकशफ पिष्याक गन्धानौपधिमृत्रकाः ।,२८४ विक्रीणन्ति य एतानि वरतू न मनुजाधमाः। तेषामन्नं न भोक्तव्यं तथोपपतिवेश्मनः ।,२८६ योऽपचस्य कद्र्यस्य भुञ्जीतान्नं द्विजाधमः।

तत्क्षणाच्छ्द्रवत्स स्थानमृतो विद्शूकरो भवेत्।,२८६

योऽत्रं वाद्ध्पिकस्याद्यादजापालादिकस्य च। अन्यस्यापि निविद्धाय सोजनन्तं नरकं ब्रजेत् ॥२८७ पाणिगृहीतभार्याया सत्यां यम्तु नराधमः। शुद्रीह्स्तेन भुञ्जीत पतितः स मदेव तु ॥२८८ त्यक्ता येनोडभार्या तु त्यक्तः स पितृ दैवतैः। त्यक्तो देवैः स पापीयांच्छद्राद्प्यधमः स्मृतः ॥२८६ यः शुद्री भजते नित्यं शुद्री तु गृहमेधिनी। वर्जितः पितृदेवेम्तु रौरवं यात्यमौ द्विजः ॥२६० यः शुद्रचां च स्वयं जातो ह्यन्यम्यां सोऽपि वै पुनः। अन्यस्यां च पुनः सोऽपि किमन्य प्रेत्य चिन्तनम् ॥२६१ सर्वान् भुञ्जीत नग्कान्त्रिशति दोकवर्जितान्। रौरवादीन्क्रमेणेव पापिष्ठी यावदम्बरम् ॥२६२ हेमन्तशिशिरत्वीश्च प्रोप्टपद्याः परम्य च। पञ्चस्त्रपरपक्षेषु कार्याः साम्निभिग्ष्टकाः ॥२६३ हेमन्ते शिशिरे चैका एकैकाथ तथा परा। प्रोष्टपद्यां द्विजास्तिम्रो ह्यटका इति केचन ॥२६४ दर्शश्च पौर्णमासश्च तयेवाऽऽप्रयणद्वयम् । चातुर्मास्यव्रतान्येव कार्याणि साग्निकेंद्विजे: ॥२६४ अनूचानकृतं कुर्युः सदेव व्रतचारिणः । अनूचानकुले जाताः सदैव त्रतचारिणः । अग्निहोत्ररता नित्यं माता पित्रादिपूजकाः॥२१६

प्रतिव्रहनिवृत्ताश्च जप होमपरायणाः। वृत्तवन्तश्च ये विप्राः स्नातकारने प्रकीर्तिनाः ॥२६७ सङ्कान्तिरर्कवारश्च व्यतीपाती युगाद्यः। शुभर्क्-दिन-योगेषु कार्याः साग्निभग्ष्टकाः ॥२६८ न शुद्राद्भिक्षितेनैतत्कर्तव्यं मर्म सद्द्विजः। चण्डालत्वमवाप्रोति यज्ञार्थं शूद्रयाचकः ॥२६६ लब्धं यज्ञाय यो विश्रो न दशहा कर्मणि। स वायसोज्य वा गृधः काको वाज्य प्रजायते ॥३०० शिलोंच्छवृत्तिर्विप्रः म्यादथ वैकाहिकाशनः। **5**यहाहिकाशनो वास्यात कुम्मीकु गूलघान्यकः ॥३०१ पूर्भपूर्वतरः श्रेयाम् तेषां सङ्घिः प्रकीर्तितः । सोमपः स्यान् त्रिवर्षाञ्चन्तत्पृर्वकृत्समाशनः ॥३०२ सोमेष्टिं पशुयज्ञं च कुर्वीत प्रतिवासरम्। इष्टिर्वेश्वानरी या तु कर्नव्येतदसम्भवे ॥३०३ सत्यामर्थस्य सम्पत्ती न कुर्याद्वीनदक्षिणम्। तत्कृतं च भवेद्वचर्थं प्राप्नुयात्पशुयोनिताम् ॥३०४ श्रद्धापृतं प्रदातव्यं पात्रे दानं समर्चितम् । याचिऽतेऽपि हि दातव्यं पूतं च श्रद्धया धनम्।।३०५ शुद्रामं ब्राह्मणोऽअन्वै मासं मासार्धमेव च। तद्योनावेव जायेत सत्यमेतद्विदुवृधाः ॥३०६ थाशूद्रस्थशूद्राम्नो मृतः श्वाचोपजायते । द्वादरां दश बाष्ट्रों च गृध्र शूकर पुल्कसाः ॥३०७

उद्रस्थितशुद्रान्नो ह्यधीयानोऽपि नित्यशः। जुङ्गन्त्रापि जपन्वापि गतिमृर्व्यां न विन्दति ॥३०८ अमृतं ब्राह्मणस्यात्रं क्षत्रियात्रं पयः समृतम् । वैश्यम्य चात्रमेवात्रं शृद्रात्रं रुधिरं स्मृतम् ॥३०६ आमं शूद्रम्य पकान्नं पक्तमुच्छिष्टमुच्यते । तम्मादामं च पकं च शूद्रस्य परिवर्जयेत् ॥३१० तम्माच्छूद्रं न भिक्षेरन्यज्ञार्थ सद्द्विजानयः। श्मशानमेव यच्छूद्रस्तम्मात्तं परिवर्जयेत ॥३११ कणानामथ वा भिन्नां कुर्याचेद्यृत्तिकर्शितः। मन्छ्द्राणां गृहे कुर्वन्न तत्पापेन लिप्यते ॥३१२ विशुद्धान्वयमञ्जातो निशृत्तो मांम-मद्यतः। द्विजभक्तिर्वणग्व<sup>र</sup>त्तम्मच्छद्रः मम्प्रकीर्तित ॥३१३ उद्क्यारपृर सङ्घुष्टं वाद्भिनं वाप्युद्क्यया । श्वम्ष्र्ष्टं शकुनोत्मृटं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥३१४ उच्छिटं च पदाग्प्रटं-शुक्तं च पतितेक्षितम्। पर्यूपितं चिरस्यं च कश-कीटाचुपाहतम् ॥३१५ पङ्तयुच्छिटं गवाद्यातं प्रयत्नेन विवर्जयेन्। नाश्रीरत्रेतदशनं शमिच्यन्तो द्विजातयः ॥३१६ शूद्राणामि भोज्यात्राःम्युःसीरि-नापिताद्यः। सम्तेहमशनं भोज्यं चिरस्थमपि यद्भनेत्।।३१७ अनाक्ता अपि भोज्याः स्युः सद्यःश्रितयवादयः । गर्भिण्यवत्मम् तक्या गवादेर्वर्जयेत्पयः ॥३१८

स्त्रीणामेकशफोष्टीणां तथारण्यकमाविकम्। प्रसूता ब्राह्मणी गौश्च महिष्योजास्तथैव च ॥३१६ दशरात्रेण शुद्धचन्ति भूमिसस्यं नवं पयः । शाकादिकं च विट्जातं कवकानि च वर्जयेन् ॥३२० मांसं कीटादिभिर्जुष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत्। ये बयः क्रव्यमभन्ति तथा विष्ठाभुजश्च ये ॥३२१ शुक-टिष्टिभ-दात्यूहाः कपोत-पिक-सारिकाः। सेधाद्याश्च पञ्चनखान् सिंहाद्यान्मत्स्यकांस्तथा ॥३२२ घर्मशास्त्रोदितानद्यात्सर्वाकारांश्च वर्जयेत् । भक्ष्यं प्राणात्यये मांसं श्राद्ध-यज्ञोत्सवेष्वपि ॥३२३ कृत्वा च विधिवच्छाद्धं पश्चात्तन् स्वयमश्नुते । नाद्यादविधिना मांसं मृत्युकालेऽपि धर्मवित् ॥३२४ यदंवाव्ययसम्पत्तिस्तदंवामनत्रयेद् द्विजान् । यत्र वा तत्र वा काले नाद्यं त्वविधिनाऽऽमिषम् ॥३२४ भ**क्षयत्ररके** तिष्ठेत्पञ्जलोमसमाः समाः । गृहस्थोऽपि हि यो नाद्यात्पिशितं तु कदा च न ॥३२६ स साक्षान्युनिभिः प्रोक्तो योगी च ब्रह्मछोकगः। न स्वयं च पशुं हन्याच्छाद्धकालेऽप्युपस्थिते ॥३२७ क्रव्यादैः सारमेयार्चह्तं मृगादिमाहरेत्। एतच्छाकवद्ब्यन्ति पवित्रं द्विजसत्तमाः ॥३२८ समर्थी यस्य यस्तु स्याद्शं द्त्वातु देहिनाम् । सतामिति निरातङ्को छोकदृष्टं निगद्यते ॥३२६

अन्नादेरपि भश्यस्य स्तेह मद्या ऽऽमिषस्य च । महाफला निवृत्तिःस्यात्प्रवृत्तिः स्वर्गमाधना ॥३३० एकोऽज्दशतमश्चेन यजेत पशुना द्विजः। नान्यस्तु मांसमभाति स्वर्गप्रापिम्तयोः समाः ॥३३१ हेमराजत-शङ्कानां पात्राणां वैणवस्य च । चर्मणो रज्जुवस्नाणां शुद्धिजीयेत वारिणा ॥३३२ रक्यादोनां यज्ञपात्राणां धन्यानां वाससामपि। अन्येपां चयम्पाणां प्रोक्षणान् शुद्धिरिष्यते ॥३३३ मार्जनान्मखपात्राणां हस्तेन मखकर्मणि ॥ अम्भोजपत्रकंरुणः गुद्ध्यतः कौशिकाविके ॥३३४ श्रीफलेंरंशुपट्टानां सारिष्टेः कुतपस्य च । मृष्मयानि पुनः पाकैः क्षौमाणि सितसर्रपैः ॥३३४ शुद्ध्ये त कामहस्तस्थं पण्यं यत्स्यात्प्रसारितम्। भैक्ष्यं च प्रोक्षणाच्छुद्धे त्सृष्टिः साक्षान्न यस्य तु ॥३३६ स्त्रीमुखं च सदा शुद्धं भूमिर्लेपविवर्जिता। अपरा दहनादौश्च गृहं मार्जन-लेपनै: ॥३३७ द्रवद्रव्याणि शुद्ध्यन्ति वह्निना प्रावनेन च। क्रव्यादाद्येह तं मासं सर्वदा ग्रुचि कीर्तितम् ॥३३८ तृप्तिकृत्सौरभेयाश्च स्वभावस्थं महीगतम्। वदन्ति सूरयो वारि पवित्रमिव सर्वदा ॥३३६ गौर्वह्नि-भानवच्छाया जलमश्वं वसुन्धरा। विप्रुषो मक्षिका वायुर्न दुष्यन्ति कदा च न ॥३४०

श्रुचिः प्रस्थापने वत्सो अजाश्वौ मुखतस्तथा।

श्रुचिः प्रस्रवणं वत्सम्तथाजाश्वौ मुखं श्रुची।

न तु गौर्मृखतो मेध्या न च गोमुखजा मलाः ॥३४१
सोम-भास्करयोर्भाभिः पथशुद्धिः प्रकीर्तिता।
ओष्ठाधरौ श्मश्रुकरौ सम्नेहौ भोजनाद्नु ॥३४२
नदुष्येच्छक्तिजः प्राह वाल-वृद्धौस्त्रियोमुखम् ॥३४३
स्नात्वा पीत्वा च भुत्तवा च मुत्त्वा तत्वा तथव च ।
गत्वा रथ्यादिके चेव शुद्धिराचमनेन तु ॥३४४
नापो मूत्र-पुरीपाभ्यां नाग्निर्दह्ति कर्मणा।
न स्नी दुष्यति जारेण न वित्रो वेदकर्मणा॥३४५

पद्माश्मलोहाः फल-काष्ट-चर्म-भाण्डस्थतोयैः स्वयमेव शौचात् । पुंसां निशास्त्रध्वनि चाऽसखानां स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता मदापि ॥३४६

नभसः पंचदश्यां तु पंचम्यां च तथाऽपरे । नभस्यस्य चनुर्दश्यामुपाकर्म यथोदितम् ॥३४७ तद्विदः केचिदिच्छन्ति नभसः श्रवणेन तु । हस्तेन वाथ पञ्चम्यामध्यायानां वदन्ति तन् ॥३४८ यच्छाखयोपनीतः स्यात् ब्रह्मचारी द्विजोत्तमः । तच्छाखाविहितं तस्य उपाकर्मादि कीर्त्यते ॥३४६ अतो वेदाधिकारित्वं वेदपाठस्य कीर्तने । अनुपाकृतविप्रादेवेंदाध्ययनदुष्कृतम् ॥३५० मुञ्जोपवीताजिनदण्डकाष्ठं त्याज्यं न तत्स्याद्वतत्वारिणापि । अक्टिब्टमेको व्रतलोपपापं संस्कारमन्यं पुनरर्हयेयुः ॥३४१ ओषधीनां तु सद्भावे म्बशाखाविहितं तु यत्। रोहिण्यां च सहस्तम्य उपाकर्माणि कुर्वते ॥३४२ न भवेदनुपाकर्मा ब्राह्मणः स्नातको ब्रती। कर्मच्युतो भवेदबात्यो बात्यानिष्कृतिकृच्छ्चिः ॥३५३ अथाऽतः स्याद्नध्यायो मृतगुर्वादिषु ज्यहम् । मित्रकादिष्वहोरात्रमधीत्यारण्यकः शुचिः ॥३५४ अष्टकासु तथाष्ट्रम्यां पृर्णिमाम्यां शशिक्षये । मन्वादी युगपक्षादाविंद्रचापोच्छयेषु च ॥३५६ चातुर्माम्ये द्वितीयायां चतुर्दश्यामहर्निशम्। अहो रात्रे नृपे संस्थे व्रतिनि श्रोत्रिये यतौ ॥३५६ अत्र ज्यह्मनध्यायमिच्छन्ति चापरे द्वयम्। अशौचे मृतकान्ते च यावच्ड्राद्धिस्तयोर्भवेत् ॥३५७ देशान्तरगते प्रेते श्रुतेऽपि स्यादहर्निशम । गुर्वादौ वा नृपत्यादौ इतिवासिष्ठजोऽब्रबीत्। प्रतिगृह्य त्वहोरात्रं भुक्तवा श्राद्धिकमेव च। नज्ज्ञः ब्र्युरनध्यायानृतुमन्धावहर्निशम् ॥३५६ पश्चार्यस्तरायातेरहोरात्रं विदुर्बुधाः। अकालगर्जिते बृष्टावि्रदाहे च सप्त सा ॥३६० मामेपु दुःखितानां च स्वरादीनां च निःस्वने । पतित-श्याब-शूद्रा-ऽन्त्यसिन्नधाने न कीर्त्तयेत्।।३६१

आत्मन्यशुचि देशे तु विद्यस्तनितरोहिते । मृथं च कलहे देशविष्ठ्वं लोकविष्रहे ॥३६२ पांश्चवर्षे उन्व्रमध्ये च दिग्दाह्-प्रामदाहयोः। नीहारे च भवंद्विद्वान्मन्ध्ययोक्तभयोरपि ॥३६३ धावंश्च न पठेद्विद्वान्पृतिगनधम्तथेव च। विशिष्टं चागते गेहे गात्रासृङ्निर्गमे तथा ॥३६४ भोजनायोपविष्टस्य ह्यत्थितस्यार्द्रपाणिनः। वान्तेऽऽचान्ते तथाऽजीर्णं महारात्रंऽतिमारुते ॥३६४ रजोब्रष्ट्री च यानादी आम्ब्हस्य तथा हिजः। एतानस्याश्च तन्काळाननाध्यायान्विदुर्बुधाः ॥३६६ यो वर्जयेदनध्यायान्वेदाध्ययनकृद्द्विजः। भवन्ति तस्य सफला वेदाः प्रोक्ताः फलप्रद्राः ॥३६७ ये चंतेषु पठंत्यज्ञाः पाठलोभेन लोभिताः। न शास्वतः भवेद्विद्या निष्फला चैव जायते ॥३६८ यः पठेद्विधिवद्वदान् व्रती चेन्द्रियसंयमी। ब्रह्मस्वमिह् छोकेऽपि ऐश्वर्यसुखभाग्भवेत् ॥३६६ जनानां ऋण्वतां मार्ग गष्ड्यन्यस्तु पठेद्द्विजः। निष्फलास्तस्य वेदाश्च वेद्विप्नवदोपभाक् ॥३७० यः पठेत्स्वरहीनं तु स्क्षणेन विवर्जितम्। सङ्कीर्णमाममध्ये तु स भवेद्वेदविष्ठवी ॥३७१ ये स्वाध्यायमधीयीरन् अनध्यायेषु लोभतः। वज्ररूपेण ते मन्त्रारतेषां देहे व्यवस्थिताः ॥३७२

नाक्रामेदमरादीनां च्छायां च परयोषिताम् ।
वान्त-ष्ठीवन-विण्मूत्र-कार्पासा-ऽस्थि-कपालिकाः ॥३७३
नावज्ञयाः कदापि स्युर्नृ प-विप्रोरगादयः ।
श्रियं कामं समाकांक्षेत्र स्पृशेन्ममं कस्यचित् ॥२७४
नित्यं वर्तेत चाजसं धर्माथौं च सद्।ऽर्जयेत् ।
न किच्चताडयेद्धीमान्सुतं शिष्यं च ताडयेत् ।
ताडयेन्नाभितोऽधस्तान्न तानन्यत्र ताडयेत् ॥३७५
आचारेण मदा विद्वान्वर्तेत यो जितंद्रियः ।
स ब्रह्मपरमाप्नोति वरेण्योऽमुत्र चेह च ॥२७६
आचारमूलं श्रुतिशास्त्रवित्तम्
आचारपाणीनि हि तिन्नयोग
आचारपुष्पाणि यशोधनानि ॥३७७

आचारवृक्षस्य फलं हि नाकस्तम्माच सुम्बादुरसश्च मुक्तिः। तम्मादनन्तं फलदं तु तत्वमाचारमेवाश्रय यत्नपूर्वम् ॥३७८ ये धर्मशास्त्र विहिनाश्च केचिद्धमां द्विजाग्योरिप ते च सर्वे। यत्नेन कार्याः पितृ-देवभक्तेः श्राद्धानि कार्याण्यथ तानि वक्ष्ये ३७६ यत्नेन धर्मो गृहमेधिविष्रैः प्रीतेन वाचा वपुपा च कार्यः। आयुःप्रजा श्रीभुंवि पूजितत्वं तस्माहभन्ते दिवि देवभोगान्३८०

> इति श्रीबृहत्पराशीये धर्मशास्त्रे सुब्रतप्रोक्तार्गः धर्मस्मृत्यां षष्ठोऽध्यायः समाप्तः ॥

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

अथ श्राद्धवर्णनम् ।

श्राद्धं वृद्धावचन्द्रभच्छाया-प्रहण-सङ्कमे । व्यतीपात-विपुवत्कृष्णपक्ष-पात्रार्थलव्यपु ॥१ अप्रका ह्ययने द्वं च श्राद्धम्प्रति यदा रुचिः। पुण्य श्राद्धम्य कालोऽयमृपिभिः परिकीर्तितः ॥२ युगादिव च कर्तत्र्यं मन्वन्तरादिकेऽपि च। श्राद्धकालो ह्ययं श्रोक्तो मन्वार्चेधर्मकर्तृभिः।।३ नवान्नं नवतोये च नवच्छन्ने तथा गृहे। नावेक्षवेपु चेहन्ते पितरा हि मघास्विव ॥४ काणः पौनर्भवो रोगी पिशुनो वृद्धिजीविकः । कृतघ्नो मत्मरो कूरो मित्रध्रुक् कुनखी गदी ॥४ विद्धप्रजननःश्वित्रि-श्यावदन्तावकीर्णिनः। हीनाङ्गश्चातिरिक्ताङ्गो विक्ठवः परनिन्दकः ॥ई क्रीवा-ऽभिशस्त-वाग्दुष्ट-भृतकाध्यापकास्तथा । कन्याद्षी वणिम्बृत्तिर्विनाग्निः सोमविक्रयी ॥७ भार्याजितोऽनपत्यश्च कुण्डाशी कुण्डगोलकः। पित्रादित्यागकुत्स्तेनो वपलीपति-तर्जकौ ॥८ अनुक्तवृत्तिस्त्वज्ञातः परपूर्वापतिस्तथा । अजापालो माहिषिकः कमंदुष्टाश्च निन्दिताः ॥६

यो ऽसत्प्रतिप्रहमाही यश्च नित्यं प्रतिप्रही। महसूचक-दृतौ च पि**तृ**श्राद्धे पु वर्जिताः ॥१० एकादशाहे भुञ्जन्तः शुद्रान्नरससंयुताः। गुरुतल्पगो ब्रह्मध्नो यस्य चोपपतिगृहे ॥११ प्रेतस्पृक् तैलिनर्णेक्ता बहुयाजक-याचकौ । वक-काकविडाला-ऽश्व-शूद्रवृत्तिश्च गर्हितः॥१२ वाग्दुष्ट-वालद्मकौ नित्यमप्रियवाक् च यः। आसक्तो चृतकामादावतिवाक् चैव दृपितः ॥१३ निराचारश्च ये विप्राः पितृ-मातृविवर्जिताः। विद्वांमोः पि हि नाभ्यन्योः पितृश्राद्धे पु सत्त्रमैः ॥१४ न वेदैं: केवर्लवीपि तपसा केवलेन वा । सहुत्तेंग्व मा प्रोक्ता पात्रता ब्राह्मणस्य च ॥१४ यत्र वेदास्तपो यत्र यत्र वत्तं द्विजामगे। पितृश्राद्धे पु तं यत्नाद्विद्वान्विप्रं समर्चयेन ॥१६ वेदशास्त्राथविच्छान्तः ग्रुचिर्धर्ममनाः सदा । गायत्रीब्रह्मचिन्ताकृत्पितृश्राद्धं पु पावनः ॥१७ रथन्तरं बृह्ज्ज्येष्टसामवित्त्रिसुपर्णकः। त्रिमध्रश्चापि यो विप्रः पितृश्राद्धं पु पूजितः ॥१८ मातामहश्च दौहित्रो भागिनेयोऽथ मातुरूः। मातृस्वस्त्रयतज्ञश्च तथा मातुलजोऽपि वा ॥१६ जामातः श्वशुरो बन्धुर्भार्याभ्राता च तत्सुतः। सुवृत्ताश्च सदाचाराश्चेते श्राद्धे पु पावनाः ॥२०

भृत्विग्रुरुपाध्याय आचार्यः श्रोत्रियोऽपरः। एते श्राद्धेषु वे पूज्याः ज्ञाति-सम्बन्धि-वान्धवाः ॥२१ अग्निहोत्री च यो विप्र आवसथ्याग्निकोऽपि च। पितृ-मातृपरावेतौ भोक्तव्यौ हव्य-कव्ययोः ॥२२ कृष्येकवत्तिजीवी यो भक्तो मात्रादिकेषु च। पट्कर्मनिरतः पूज्यो हब्य-कब्ये सदैव हि ॥२३ क्षत्रवृत्तिः सदाचारो मात्रादिभक्तितस्परः। शुचिः षर्कर्मयुक्तश्च हव्य-कव्येषु पृजितः ॥२४ युगानुरूपतो यस्तु विद्याचारदिसंयुनः। स पूज्योजनिभशन्तश्च षट्कर्मनिरतो द्विजः ॥२६ इत्युक्तगुणसम्पन्नान्त्रह्मणान्पूर्ववासरे। निमन्त्रयेत तान भक्त्या नियोगाब्यानपूर्वकम् ॥२६ सन्येन देवतार्थं तु पित्रर्थमपसन्यवान्। ततस्तेश्चरितव्यं स्यादुक्तं पितृत्रतं द्विजेः ॥२७ जितेन्द्रियस्त भाव्यं स्यादहोरात्रमतन्द्रितैः। तस्मिन्नह्नि प्रातवी यत्र श्राद्धमुपिश्वतम् ॥२८ निमन्त्रयेत तान्भत्तया तैश्च भाव्यं जितेन्द्रियै:। विप्रोर:-पार्र्व-पृष्ठस्थाः पितृ-मातामहादयः ॥२६ भुञ्जन्ति कमशः श्राद्धे तथा पिण्डाशिनोऽपि च। निमन्त्रितो द्विजः श्राद्धे न शयीत श्वियासह ॥३० अध्वानं न तु वै यायाम ब्र्यादनृतं वचः। नाधीयीत दिवा स्वापं म कुर्वीत न संबदेत्।।३१

न स्लेन्छ-पतितैः सार्धं न वदेश निपिद्धकम् ॥
प्राङ्ग्युत्वौ देविकौ विप्रो विप्राह्मय उदङ्गुत्वाः ॥३२
एकैको वोभयत्र स्याद्सस्पत्ताविति क्रमः ।
पात्रं वा देविकं कृत्वा विप्र एकस्तु पैतृके ॥३३
इति वा निवपेन्छ्राद्धं निधनश्चान्यदाचरेन् ।
गत्वारण्यममानुष्यमूर्ध्ववादुर्विगौत्यदः ॥३४
निरन्नो निर्धनो देवाः पितरो माऽनृणं कृथाः ।

न मेऽस्ति वित्तं न गृहं न भायां श्राद्धं कथं वः पितरः करोमि । वने प्रविश्येह रुतं मयोत्रैर् भुजो कृतो वर्त्मान मारुतस्य ॥३५ श्राद्धणंमेतद्भवतां प्रदृत्तं मह्यं द्यथ्वं पितृदेवताद्याः । आख्याय चोत्किष्य भुजावितस्ततो दिवा च रात्रं समुपोप्य तिष्ठेत् ॥३६ भवेत्ररस्तेन कृतेन तेपा-मृणेन मुक्तः पितृदेवतानाम् । निर्वित्त-निर्भाग्य-निराश्रयाणां श्राद्धस्य मार्गः कथितो मुनींद्रैः ॥३७

मयाऽऽख्यातं रुदित्वा वः पितरः श्राद्धदेवताः । श्राद्धर्णस्य विमुक्तोऽहं महिताः पितरो मया ॥३८

कृतोपवासस्तत्राह्मि श्राद्धर्णान्मुच्यते द्विजः। एतचापि न यः कुर्यात्पतरस्तेन वे हताः ॥३६ सम्पत्तावर्ध-पात्राणामेकैकस्य त्रयस्रयः। पित्रादेबांह्मणाः प्रोक्ताश्चत्वारो वैश्वदैविके ॥४० द्वी वापि देविके विप्नी चंकेको वा न दोपभाक्। स्यान्मातामहिकेऽप्येवमेकोऽपि वश्वदैविके ॥४१ नत्वेवेकं तु सर्वपामाभ्वलायनमतस्थित । पितणामर्चयेद्विप्रमत्रपिण्डा निदर्शनम् ॥४२ न मानामहिकं श्राद्धं श्रीनमुक्तं तु साम्निकः। अनिप्रकस्तु तत्कुर्यादिति केचिन्मतं विदुः ॥४३ सामिकरिप कार्यं म्याच्छाद्धं मानामहं हिजैः। षट्दैवत्यमिति ह्येके एकं तु पार्वणहयम् ॥४४ अपुत्रस्य पितृब्यस्य तत्पुत्रेर्ध्रातृजो भवेत् । स एव तस्य कुर्वीत पिण्डदानोदकक्रियाः ॥४४ पार्वणं तेन कार्य म्यात्पुत्रवद्श्रातृजेन तु । पिरुस्थानेषु तं कृत्वा शेवं पूर्ववदुचरेन ॥४६ श्राद्धं पत्यापि कार्यं म्याद्पुत्रायाम्तु योषितः। तस्यापि हि तया कार्यमेकत्वं हि तयोर्यतः ॥४७ भ्रातुर्ज्यष्ठस्य कुर्वीत ज्येष्ठो भ्राताऽनुजस्य च । दैवहीनं तु तत्कुर्यादिति धर्मविदो विदुः ॥४८ पितुः पुत्रेण कर्तव्या पिण्डदानोद्कक्रिया।। पुत्राभावे तु पुत्री च तद्भावे सहोद्रः ॥४६

मित्रादीनां च कर्तव्यं समीहन्ते यतोऽध्यमी। नावज्ञेयास्तु ते सर्वे कृते तु स्यान्महाफलम् ॥५० पितामहस्तदन्यो वा यस्य जीवन् भवेद्विजः । प्रत्यक्षास्तेऽपि वे पूज्याः संस्थित्यर्थं यतश्च तन् ॥५१ विद्यमानत्रयाणां स्यात्प्रत्यक्षः पूज्य एव सः । गौतमम्य मतं त्यंतदिति वासिष्ठजोऽत्रवीत ४२ विद्यमाने तु पितरि श्राद्धं कर्तुमुपस्थितः । पितृवत्पितृपित्रादेः कुर्यान्छाद्धमसंशयम् ॥५३ पुत्रिकायाः सुनः श्राद्धं निर्वपेन्मातुरेव सः। तित्पतुर्निवपत्यम्मात्तृतीयं तु पितुःपितुः ॥ ५४ अत एव द्विजः पुत्रीमुद्धहेन्न कथं च न। ब्होढुः पुत्रः पुत्रोऽसौ पुत्रोऽसौ मातुरेव हि ॥५६ पुत्रश्च दुहितुःपुत्रः समी तौ धार्मिके पथि । अर्थाहतौ च विप्रोक्तो तुल्यौ तौ शक्तिजो ज्ववीत ॥५६ मुख्यं यथा पितुःश्राद्धं तथा मातामहस्य च। पुत्र-दौहित्रयोलेकि विशेषो नोपपद्यते ॥५७ दौहित्रः पावनः श्राद्धे कालस्तु कुतपस्तथा। तथा ऋष्णास्तिला विद्वन्निति शास्त्रविदो विदुः॥६८ काम्यमाभ्युद्यं चैव द्विविधं पार्वणं समृतम् । यथाकामं तु काम्यं स्यादृद्धावभ्युद्ये समृतम् ॥५६ क्ष्त्रियायां तु यो जातो वैश्यायां च तथा सुतः। ब्राह्मणस्य पितुस्तौ तु निर्वपेतां द्विजाम्बनम् ॥६०

क्षत्रियस्य सुतश्चेव तथा वैश्यसुतोऽपि च। श्रुतान्नेन द्विजांस्तर्प्य श्राद्धद्वयं च निवेपेत् ॥६१ आमान्नन तु शूद्रस्य तूर्व्णां च द्विजपूजनम्। **कृ**त्वा श्राद्ध<sup>ं</sup> तु निर्वाप्य मजातीनाशयेत्तथा ॥६२ यः शूद्रो भोजयेद्विप्रांच्छृतपाकाशनेन तु । स तद्विप्रकृतनोभिलिप्यते शक्तिजोऽत्रवीन् ॥६३ शुद्रपाकं द्विजेभ्यश्च विभवान्धो ददानि यः। इमी भवति पाताल स युगानेकविंशतिम् ॥६४ भोजितेन तु विप्रेण यत्पापं नस्य जायते । तेनामौ लिप्यते मूढां य शूद्रो भाजयेद्विजान ॥६४ योऽहंमन्यो द्विजाप्रंचास्तु शूद्रश्रितेन भोजयेत । स गच्बेन्नरकं घोरं पुनरावृत्तिदुर्लभम् ॥६६ यत्किचित्किल्बपं विष्रं कृतपूर्वं तु तिष्ठति । तेनासौ लिप्यते पापी यः शूद्रो भोजयेद्द्विजान् ॥६७ शूद्रोच्डिष्टं तु यो भुङ्कं मतिपूर्वं द्विजाधम । क्रमित्वं याति विष्ठायां युगानि ह्येकविंशतिः ॥६८ शूद्रोच्डिष्टं तु यो भुङ्कं पश्चाहानि द्विजाधमः। स तद्विष्ठाकृमित्वं तु प्राप्नोति हि शतं समाः ॥६६ अतो न भोजयेद्विप्रान्निर्वपेन्नैव पूजयेत्। शुद्धान्नं भोजनाचुक्तं इति पाराशरोऽत्रवीत् ॥७० न भोजयेत् स्त्रियं श्राद्धे यद्यपि व्रतचारिणीम । पात्रं तस्यै समप्यं स्यादिति धर्मविद्रवित्। द्विजन्मानो न कुर्वीरंच्छ्राद्धमामाशनेन तु ॥७१

यदैव स्यः प्रवासस्था भार्या यत्र न सन्निधौ । व्यवधानेन भार्याया प्रहणे पुत्रजन्मनि । कुर्यादामाशनश्रद्धमिति पाराशरोऽत्रवीत् ॥७२ अम्रीकरणपिण्डांश्च कुर्यादामाशनेन तु । सतिलेई धिमध्याज्यमम्प्रक्तैः सक्क्षीरपि ॥७३ यवाद्यं संस्क्रतान्तेन दृष्यं वापि च निर्वपेतु। जलेन पयमा बापि न स्याद्श्राद्धक्रम्था ॥७४ आमान्त्रेन द्विजैः कार्यं न कद्राचिद्पि द्विजाः। श्रपयित्वा द्विजीकम्य तथापि पाकमाश्रयेत् ॥७४ न कुर्यात्परपाकेन नैकपाकेन तु द्वयम्। नैकश्राद्धे द्वयं कुर्याम च कुर्यात्परान्नभुक् ॥७४ पित्रादीनां सगोत्रा ये तथा मातामहस्य च। तेषामेकेन पाकेन कार्यं पिण्डविवर्जितम् ॥७६ केचित्मापिण्ड्यमिच्छन्ति समगोत्रतयाऽनघ । अपि मातामहो न स्याद्भिन्नगोत्रतया तथा ॥७७ पृथकर्तुमशक्यं स्याद्रथ-पात्राद्यसम्भवे। अवश्यं तत्र कर्तव्यमेकदेवमतः श्रयेत् ॥७८ येषां नोद्वाहसंस्कारा ह्यन्यसंस्कार संस्कृताः। साङ्कल्पिकं भवेत्तेपां श्राद्धं कार्यं मृतेऽहनि ॥७६ केचित्सापिण्ड्यमिच्य्रन्ति ब्रह्मसंस्कारवत्तया। आद्यो हि ब्रह्मसंस्कारस्तस्मात्पण्डः प्रदीयते ॥८०

पर्वस्वपि निमित्तेषु कर्तव्यं पिण्डसंयतम्। पितणा त्रिविधा यस्माइतिः प्रोक्ता मुनीश्वरैः ॥८१ वैश्वदेवः सदा कार्यो श्राद्धे च समुपन्धिते। पाकशुद्धचर्य मेवंतत्रृर्वमेव विधीयते ॥८२ वैश्वदेवोप्रतश्चैव श्राद्धकाले विशेषत:। पाकशुद्धिम्तु विद्योया भुक्तोन्छिष्टं तु वर्जयंतु ॥८३ सम्प्राप्ते पार्वणश्राद्धं एकोहिट तथेव च। अयतो वंश्वदेवः स्यान् पश्चादेकादशेऽहनि ॥८४ एकोहिए विशेषण प्रागेव ह्यमिपूजनम् । कालस्तु कुतपस्तम्य गैहणः पार्वणस्य च ॥८४ वामतश्चासनं दद्यात्पितृकार्येषु सत्तमः। दैविकं दक्षिणं तद्वदिति पाराशरोऽत्रवीन् ॥८६ आसने चामनं द्याद्वामे वा दक्षिगंऽपि वा। पितृकार्येषु वामं तु द्वे कर्मणि दक्षिणम् ८० पितृश्राद्धेषु यो दद्याहक्षिणं दर्भमामनम्। नाश्नन्ति पितरस्तस्य मार्धानि वत्मराणि पद् ॥८८ तम्माद्वामत एवात्र पितृकर्मणि चासनम्। दैविके दक्षिणं तद्वदिति वासिष्ठजोऽत्रवीत् ॥८६ कुत्र काले च कर्तव्यं श्राद्धं तत्पैतृकं प्रभो !। वदम्य निश्चयं तत्र विवद्न्त्यपरेऽत्र तु ॥६० पञ्चदशमुदूर्ताह्मतत्यागर्धदिनं समृतम् । अपरार्धं स्मृता रात्रिस्तन्मध्यः कुतपो मतः ॥६१

यथा यथा च हस्वत्वं पुंसः स्थानेन सम्भवेत्। तथा तथा पवित्रः स्यात्कालः श्राद्धार्चनादिषु ॥६२ छायेयं पुरुषम्येवं तत्पादाधो भवेग्या । आधानश्राद्धदानादेः स कालोऽक्षयकुतम्मृतः ॥६३ अयुतं तु मुहर्तानामधं ह्यष्टदशाधिकम्। त्रिंशद्भिस्तरहोरात्रमिति माध्यन्दिनी श्रुतिः ॥६४ मध्याह्नं तुगते सूर्ये न पूर्वे न च पश्चिमे । तुल्यात्रसंस्थिते चैव सोष्टमो भाग उच्यते ॥६५ दिवस्याष्ट्रमेभागे मन्दो भवति भास्करः। स कालः कुतपो ज्ञयस्तत्र दत्तं तु चाक्षयम् ॥६६ मध्याह्वचितो भानुः कि श्विन्मन्द्गतिर्भवंत् । स कालो रोहिणो नाम पितृणां दत्तमक्षयम्।।६७ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन रोहिण तु न लङ्कयेत्। अकाले विधिना दत्तं न देव-पितृगामि तत्।।६८ अब्दवृद्धिर्भवेद्यत्र तत्राऽऽब्द्रमुभयात्मकम् । श्राद्धं तत्र च कुर्वीत मासयोगभयोरपि ॥६६ नवन्ध्यं दिवसं कुर्यान्मासयोकभयोरपि । पिण्डवर्जमसङ्कान्ते सङ्कान्ते पिण्डसंयुतः। षष्टिभिर्दिवसैर्मासिक्षशद्भिः पक्ष उच्यते ॥१०० संक्रान्तिरहितः पक्षस्तत्र कार्यं विपिण्डिकम्। सिनीवाली मतिकम्य यदा सङ्क्रमते रविः। युक्तः साधारणैर्मासैः स काल उत्तरो भवेत्।।१०१

सङ्क्रान्तिवर्जितः कालः समन्तः पापसम्भवः। रक्षसां भागवेयोऽमी उत्मवादिविवर्जितः ॥१०२ तत्र नैमित्तिकं कार्यं श्राद्वं पिण्डविवर्जितम् । नित्यं तु सतनं कार्यमिति पाराशरोऽब्रवीन ॥१०३ अहोभिर्गुणिनैयरस्यात्तःकार्यं यत्र सर्वदा । तिथि-नक्षत्र-योगाश्च जानकर्मादिकाश्च ये ॥१०४ नैमित्तिकाश्च ये चान्ये कार्याम्तेऽपि मलिन्जुचे । तीर्थस्नानं गजच्छायां द्विमुखीं गोप्रदानवन ॥१०५ मलिम्लुचेऽपि कर्नव्यं सपिण्डीकरणादिकप्। आप्रयणममावास्यामप्रकाष्रहसङ्कमम् ॥१०६ अधिमासेऽपि कार्यं स्यादिति पाराशरोऽत्रवीत्। नित्यं च नित्यशः कार्यमिटीः काम्याश्च वर्जयेत् ॥१०७ वार्षिकं पिण्डवर्जं स्याद्रन्यम्मिन्पिण्डसंय्तम् । इष्टिरामयणं श्राद्धनन्वाहायं च मर्वदा ॥१०८ कर्तव्यं सततं वित्रैरिष्टीःकाम्याश्च वर्जयेत । देवे कर्मणि सम्प्राप्ते तिथिर्यत्रोदितो रविः। सा तिथिः सकला ज्ञेया विपरीता तु पैनुके ॥१०६ वृद्धिमिह्वसे कार्यं श्राद्धमाभ्युदिकं द्विजे: । क्षीयमाणे दिने कार्यं त्राद्धं विद्वन । क्षयाह्निकम् ॥११० मित्रे चैव सगोत्रे च पितृ-मातृसहोद्रे । आसनं नैव दातव्यं भोक्तव्या एवमेव ते ॥१११ ब्राह्मणं न सगोत्रं च पूजयेत्वितृकर्मणि । नोपतिष्ठति तत्तेपां कि तु स्याम निराशता ॥११२

म्बगोत्रं भोजयेद्यस्तु पितृश्राद्धेषु वै द्विजः। इताः स्यु. वितरस्तेन न भुक्तमुपनिष्ठते ॥११३ श्राद्धं कुर्वन्द्विजोऽज्ञानान् स्वगोत्रं यन्तु भोजयेत्। स छ रिनृदेवस्सन्नरकं प्रतिपद्यते ॥११४ तमान्त्र गोत्रिणं त्रिप्रं भोजयेद्विधिपूर्वकम् । ज्ञातिमत्वेन भोज्याम्ते उत्थितम्तु द्विजोत्तमेः ॥११४ दक्षिणाप्रवणे देशे श्राद्धं कुर्यात्त् पैतृकम्। पितृणां पावनो देशः स प्रोक्तोऽक्षयतृपिकृत् ॥११६ देशे काले च पात्रं च विधिना हविषा च यत्। तिलेर्दभैंश्च मन्त्रेश्च श्राद्धं स्याच्छद्धयान्वितम् ॥११० तैजसानि तु पात्राणि ह्यच्यार्थं भोजनाय च । मृत्पापाणमयान्येके अपराण्यपरे विदुः ॥११८ पलाश-पद्य-पत्राणि अनिषिद्धानि यानि च। तानि श्राद्धेषु कार्याणि पितृ-देवहितानि च ॥११६ वृद्धिश्राद्धे पु मन्यन्ते मृण्मयानि तु केचन । शौनकम्य मतं होतद्यया कार्यं तु मृग्मयम् ॥१२० एकद्रव्याणि कार्यागि पात्राणि भोजनार्घयोः। त्रीणि पेनुकपात्राणि द्वे देवे वश्वदैविके ॥१२१ एकस्य वैश्वदेवानि पैतृकाण्येकवस्तुनः । इति वा तानि कार्याणि भेदमेकत्र वर्जयेत ॥१२२ वटा-ऽश्वत्था-ऽर्कपत्रेषु कुम्भी-तिन्दुकयोरपि । कोविदार-करब्जेषु न भुझीत कदाच न ॥१२३

सुरभी-नागकर्णाद्यैः करवीर-करञ्जकैः । बिल्वैर्यस्त्वचेयेद्विद्वान् पितृन् श्राद्धे प्वगर्हितैः। तद्भक्षत्तेऽपुराः श्राद्धं निराशेः पितृभिर्गतैः ॥१२४ सर्वाणि रक्तपुःगाणि निविद्धाण्यपराणि च। वर्जये । पितृकार्येषु केनकी कुमुमानि च ॥१२५ गो-रम्भा-भृङ्गराजाद्येमेहिकाकुटजकैरपि । समर्चयेद्दिजान् श्राद्धे हव्य-कव्योदिनेर्द्धिजः ॥१२६ न द्याद्गुग्गुलं श्राद्धे द्विजानां पितृदेवते । धूपाभावे गुडो देयो घृतदीपं हिजोत्तमाः ॥१२७ कुडूमाद्यं चन्द्रनं च देयं गन्धविमिश्रितम्। अर्घ्वं च तिलकं कुर्याहैव पित्र्ये च कर्मणि ॥१२८ निराशाः पितरो यान्ति यस्तु कुर्यात्त्रिपुण्डकम् । पवित्रं यदि वा दभै करे कृत्वा द्विजान्नरः ॥१२६ समालभेद् द्विजानइस्तन्छाद्धमासुरं भवेत्। गन्धाश्च विविधा देयाः कर्पूरागर्माभिताः ॥१३० शक्ता बद्धाणि देयानि तर्भावे च निष्क्रयम्। दीपश्च सर्पिपा देयस्तिलतैलेन वा पुनः १३१ नकाष्ट्रतेळेरन्येस्तु कदाचित् सापपाऽऽतसे<sup>.</sup> ॥१३२ देशधर्मं समाश्रित्य वंशधर्मं तथापरे। सूरयः श्राद्धमिच्छन्ति पार्वणं च क्षयान्हापि ॥१३२ स्रोणामपि पृथक् श्राद्धं ते मन्यन्ते र्वधर्मतः। मातामहस्य गोत्रेण मातुस्तेन सपिण्डताम्।।१३३

मातामह्या सहेन्छन्ति मातुस्तेऽपि सपिण्डताम्। स्त्रीणां स्त्रीगोत्रसम्बन्धात्पुंगोत्रेण नृणां यतः ॥१३४ सपिण्डी करणे काले श्राद्धद्वयमुपस्थितम्। देवाद्यं प्रथमं कुर्यात्यितृगां तदनन्तरम् ॥१३४ देवाद्यं पावेणं प्रोक्तं प्रेतप्राद्धमथापरम् । एकर्त्वं तु नतः पश्चात्क्वःचा विश्वांश्च भोजयेत् ॥१३६ पितृगामर्थ्यपात्राणि प्रेनपात्रमथापरम् । प्रेतगत्रं तु नस्क्रस्त्रा पितृपात्रोषु योजयेत् ॥१३७ ये समाना इति द्वाभ्यां पूर्ववच्छेषमाचरेत्। सपिण्डीकरणं यस्य कृतं न स्याद्द्विजन्मनः ॥१३८ अदेवं तम्य देयं स्यात्यिण्डमेकं तु निर्वपेन् । सपिण्डीकरणं चेतित्वयाश्चेव श्रयाह्निकम् ॥१३६ एकादशाहिकं त्वाद्यं मासि मासि च मासिकम्। वर्षे वर्षे च कर्तत्र्यं मृतेऽह्नि च तत्पुनः॥१४० नाऽर्त्रस्य सपिण्डत्वं केचिदिन्छन्ति तद्विदः। विशेषतोऽनपत्यम्य सत्यप्यत्राधिकारिणि ॥१४१ विद्यमानः पिता यम्य सवेद्यदि विपद्यते । तदन्तरा सपिण्डत्वं वदन्ति श्राद्धवादिनः ॥१४२ आभ्यद्यिकसम्पत्तावर्चा प्रागेत्र कारयेत्। कुर्यात्परिजनेनैतत्स्त्रयं वापि द्विजोत्तमः ॥१४३ सन्यसन्सर्वकर्माणि तन्छ।द्वाय च तहिनम्। अग्निदाहदिनं चैके केचिन्मृतदिनं विदुः ॥१४४

विदेशस्थं श्रुताहस्तु दृष्णा वा द्वादशी सिता। संप्रामे संस्थिताना च प्रेतपक्षे शशिक्षये।।१४५ अप्नि-सर्पादिमृत्यूनां पण्मासोपरि सिक्कया। तेषां पार्वणमेवोक्तं क्षयाहेऽपि च मक्तमेंः १४६

चन्द्रक्षया-ऽनाशक-संयुगेषु यः प्रेतपक्षे मृतवान सिषण्डः । सिषण्डनानन्तरमाहिद्कानि भवन्ति तेपामिह पार्वणानि ॥१४७

अग्नि-सर्पादिमृत्यूनां पण्मासोपरि मत्कियाः।) क्षयाहिकानि कार्याणि ब्रु युर्धर्मविदो जनाः ॥ / १४८ अञ्दादृध्रै चरम्त्येके क्रःवा च वेष्णवं बलिम्। बिष्यचर्नं विना नार्वाग्प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥१४६ विद्युता वृक्षपातेन सर्पण महिपण वा। इत्यादिकेन मृत्युः स्यात्तिथौ यत्र च नत्र वं ॥१५० तिन्निमित्तस्य तृष्न्यर्थं मासि मामि क्षयाह्निकम् । कर्तव्यमवधी यावत्ततः कुर्गीत सिक्रियाम् ॥६५१ अनाशकमृताना च क्षयाहे पि च पार्वणम् । सन्न्यासवद्धि मन्यन्ते केचिद्विदुरद्विकम् ॥१५२ एकोद्दिष्टमदेवं स्यात्तर्थेकार्घ्यपवित्रकम्। आवाहना-ऽग्नोकरणहीनं तद्पमव्यवत् ॥१५३ पूर्वीत्तरष्ट्रवं देशे श्राद्धं स्यान्मातृपूर्वकम् । सित-पितादिपिएंन चर्चिते मूतले च तन् ॥१५४ उद्दिष्टकतुकालस्य तत्प्रागेव विधीयते। आभ्युद्यिकदेवानि पूर्वाह्रं स्युरितिस्पृतिः ॥१५५

तिछाक्षतोदकेर्युक्तान्यासनानि प्रदक्षिणात्। परिहृत्यादि पृष्ठेन कृत्वा च शान्तिपूर्वकम् ॥१५६ त्रीह्यो यव-गोव्मा अक्षताश्चह्ताः स्पृताः । अक्षतामलके पिण्डान्द्धि-कर्कन्धुमिश्रितैः ॥१५७ नान्दीमुखं स्यो देवस्यः प्रदक्षिणकुशासनम् । पितृभ्यस्तन्मुखंभ्यश्च प्रदक्षिणमिति स्मृतिः ॥१५८ कर्कन्ध्रभिर्यवैः पुष्पैः शमीपजैस्तिर्रुस्तथा । तेभ्यो ह्यर्चः प्रदातन्यः पितृभ्यो देवनैस्सह ॥१५६ मातामहानामप्येवं पट्देवत्यं श्रिये द्विजः। माङ्गल्यपूर्वकं मर्वं गन्धाद्यपि च धारयेत्।।१६० तृप्रिकृत्पित्-मातृणां धपो देयश्च गुग्गुलः । घृताभिघारधृपो वा यथा म्यात्परिपूर्णता ॥१६१ दीपाश्च बहवो देयाः विप्रं प्रतिवृतेन च । तैलेन येन केनापि नवनीतेन चेव हि ॥१६२ मालत्या शतपत्र्या वा मिल्लका-कुन्द्योरिप। कतक्या पाटलाया वा स्रजो देया न लोहिता: ॥१६३ वासांसि च यथाशक्तया द्यानंभ्योऽपि निष्क्रयम्। परिपूर्ण यथा तत्स्यात्तथा कार्यं भनेदिनि ॥१६४ सुवेप-भूपणेन्तत्र सालङ्कारेन्तथा नरैः। कुङ्कमाचनुलिपाङ्गं भांव्यं तु ब्राह्मणै: सह ॥१६४ स्त्रियोऽपि स्युम्तथाभृता गीन-नृत्यादिहर्पिताः। दुन्दुभीनाद्हृष्टाङ्गा मङ्गलध्वनिकारिकाः ॥१६६

सोमसदोऽग्निष्वात्ताश्च तथा वर्हिपदोऽपि च। सोमपाश्च तथा विद्वंन्तयेव च हविर्भुजः ॥१६७ आज्यपाश्च तथा वत्म तथाह्यन्ये मुकालिनः। एते चान्ये च पितरः पृज्याः मर्व द्विजातिभिः ॥१६८ वसवश्च तथा रुद्र।स्तर्यवादितिसृतवः। देवता अपि यज्ञेषु स्वायम्भुवा हि कीर्तिताः १६६ एते च पितरो दिव्याम्तथा वैवस्वताद्यः। एतत्वीत्रप्रोत्राश्च असंख्याः पितरः म्मृताः ॥१७० एते श्राद्धेषु मन्तर्या उत्पन्नानैर्द्धिजातिभिः। सन्तर्पिता इमे मर्जान्त्रीणयन्ति नृणां पितृन् ॥१७१ प्रागेत्र केतितान्त्रिप्रान् स्नातान्काले समागनान् । द्त्वार्घान् कृतसच्छीचानाचान्तानुपवेशयेन् ॥१७२ ये स्पृशन्तस्तु स्वान्यद्भिगचामन्ति पिवन्ति च। <mark>तेपां न जायते शुद्धिराचम</mark>ञ्य<mark>सृजा हि ते ॥</mark>१७३ सर्वाणि स्वानि वस्त्राणि कायच्छिद्राणि चात्मनः। तैराचारतर्भवे व्हृद्धिरद्युचिम्त्वन्यथा भवेत् ॥१७४ व्याहृत्य वैष्णवास्मन्त्रान स्मृत्या च वेद्मातरम्। शान्तस्त्रान्तो द्विजात्त्रुच्छत्यस्प्ये श्राहमिख्य ॥१७५ करवे करवाणीनि पृष्ट्। ब्रू युद्धिजाह्यतः। अनुजाये बचो द्यंतन कुराय कियतां कुरा ॥१७६ ततो दर्भामनं दद्यादेवेस्यः सयवं पुनः। दक्षिणं जानु मन्त्रास्य दक्षिणं च तथःसनय ॥१७७

पात्रद्वयमतोत्यार्थं तेजसं चेकवस्तुजम् । सापं च सपित्रत्रं तत्समम्यच्यं विधानतः ॥१७८ प्राक्मुखोऽमरतीर्येषु रान्नो देव्योदकं क्षिपेत् । यवोसीति यवांन्तत्र तूर्णां पुष्पाणि चन्दनम् १७६

यवोऽमि पुण्यःमृतः मिश्रितोऽसि
समस्तथान्यप्रमुरम्यमुत्र ।
महत्मनुष्य-पितृवंशनृष्ये
क्षितावतीणोऽमि हिनोऽसि पुंसाम् ॥१८०
उत्पाद्यपूर्वकमिमानमृतेन वेधा
भूयः प्रसन्नमनमा तदुपामितःसन् ।
चिश्लेष तान्वकगलोकहिताय शिक्ताः
तेनामृता वकणदेवनका वभूवः ॥१८१
अनीतवान्विधिमान्वकणस्य लोकान्
अन्नप्रभूत्भुवि यवान्सुरलोकनृष्ये ।
तत्पष्टपकहिवषा पितृदेवतानां
नृष्ना वसन्ति दिवि ते वरदानवाचः ॥१८२

तनः सर्व्यं करं न्यस्य विश्रदक्षिणजानुनि । देवानावाहयिष्येऽहमिति वाचमुद्दीरयेत् ॥१८३ आवाह्येत्यनुज्ञातो विश्येदेवास आगतम् । विश्येदेवाः शृगुतेममिति मन्त्रद्वयं पठेत् ॥१८४ सोमेन सह राज्ञेति केचित्पठन्त्यदोऽपि च । व्याहृत्य मन्त्रमावाह्य हाते दत्वा पवित्रकम् ॥१८४ अर्चयेत्तं द्विजं पूर्पोर्दद्याद र्यं करे पुनः। विश्वेभ्यस्वेप देवभ्यस्तुभ्यमर्घ्यः प्रदीयते ॥१८६ या दिव्या इति मन्त्रंण पाणौ विप्रस्य तं क्षिपेत्। अपसब्यमतः कृत्वा निर्वर्त्य वैश्वदंविकम् ॥१८७ आपो भूमिगताः केचिद्रादित्येत्यभिमन्त्रय च। पुनस्ताभिः कराभ्यां च कुर्वन्ति मुखमार्जनम् ॥१८८ उद्दर्भ गन्ध-धृपांश्च वासांसि चन्द्नं स्रजः। द्त्त्राऽपसन्यवद्भूत्वा द्द्यात्पितृकुशासनम् ॥१८६ सोदकान्द्रिगुणं भूग्नान्सितलात्मकुशानपि। गोकर्णमात्रकान्सात्रान्प्रदद्याद्वामपार्श्वनः ॥१६० चतु यैतं मगोत्रं च पितृनाम च श्रमवत्। उचार्यं परयोग्तद्वदिदं तुभ्यं कुशासनम् ॥१६१ पित्रर्थमर्घ्यपात्राणि सम्पूज्य दक्षिणामुखः। तिलोसीत्येनद्चार्य यवस्थाने तिलान्श्रिपेत् ॥१६२ भूलप्रसन्यजानुः सन्पितृतीर्थेन चाऽत्वरः। पितृध्यानमनाः कुर्यात्पितृकार्यमरोपतः ॥१६३ आवाह्यिप्ये पित्रादीननुज्ञाऽऽवाह्येति च। उशन्तरत्वेति प्रोदीर्य तथाऽयन्तु न इत्यपि ॥१६४ अन्येऽयपहतासुरा इत्याद्पि पठन्ति हि । अन्नविद्नव्यपोहार्थं वक्तव्यमिति केचन ॥१६४ प्राग्वद्विप्रार्चनं कार्यं प्राग्वदर्ग्यप्रसेचनम्। प्राग्वनमंत्रं समुशार्य प्राग्वश्च मुखमार्जनम् ॥१६६

एते तिलाम्त विधिना शशिलोकतम्त प्राहत्य भोजनहितेन ग्रुभाय धन्याः। क्षिप्त्वा मलानि पुरुषस्य च तर्पणाद्यंर् ये ध्नन्ति तेषु भुवि सत्सु कुतो भयं स्यान् ॥१६७ तिलोऽसि तारापनिदेवनोऽसि हितो उम्यशेषितृ-देवतानाम्। कर्तांसि तृप्तिं परमां पितृणां मुक्त स्ततस्त्वं विधिसम्भवोऽसि ॥१६८ अर्घ्यपात्राणि सर्वाणि कृत्या तान्याद्यपात्रके। पितृभ्य स्थानमसीति न्युव्जं कुर्याद्बश्च तत् ॥१६६ यस्तूद्धरेत्तद्ज्ञानादर्घ्यपात्रं तु पतृकम् । नद्धि श्राद्धमभोज्यं स्यात्कद्धैः पितृगर्गेर्गतैः ॥२०० आश्रिय प्रथमं पात्रं तिवृत्ति पिनरो नृणाम् । श्राद्धे तम्मान्न तद्विद्वानुद्धरेस्त्रथमं सुधीः ॥२०१ वाचयेत्परिपृगं तु वासो दत्वा विधानतः। नत्त्रा सर्वान्द्रिजान्युच्छेत्करिष्येऽम्नाविति द्विजः ॥२०२ अक्तंतत्परिपृणं तु ब्रू युरेते द्विजातयः। सनिर्पि पात्रमादाय सपिधानं विधानतः ॥२०३ कुरुष्त्रेति ह्यनुज्ञाना जुद्दोत्यग्नी ततः पुनः । भोजने पितृविप्राणामिति मःत्रमुद्दीरयेत ॥२०४ अग्निशब्दं चतुर्थ्यकवचनान्तं समुबरेत्। कव्यवाहनशब्दं च सोमं पितृमदित्यपि ॥२०४

पंक्तिमूर्धन्यमेवात्र पृच्छेदिति हि केचन । पितृश्राद्धे प्रधानस्त्रात्मामस्त्येनाथ वा पुनः ॥२०६ तृष्णीं यत्र तु होमादौ प्रजापनिस्तु तत्र तु। तृतीयं मनसा द्याद्यमायाम्त्रित वा पुनः ॥२०७ अहन्येवारिंमम्तिस्मन्वा संवादोभून्मनोर्गिरः। अह्ट्या बाग्यतो बाणी अभूग्रज्ञे प्रजापते: ॥२०८ अग्नाबाहुतयः प्रोक्तास्तिम्न एव मनीपिभिः। अग्निवद्विप्रपात्रेषु पश्चात्तज्जुहुयाद्द्विजः ॥२०६ अग्नीकरणशंषं तु पितृपात्रेषु दापयेत्। प्रतिपाद्य पितृणां तु दद्याद्वै वैश्वदैविके ॥२१० यश्चाग्नीकरणं दद्यात्पितृविप्रकरेषु च। तेनोच्छंपितमेनत्म्यात्समाप्तिस्तावतेत्र तु ॥२११ पितरः करवक्त्राश्च वन्हिवक्त्राश्च देवताः। अतःपाणौ न तद्दंयं पात्रं देयं कुशान्वित ॥२१२ वैश्वदेविकविप्राणां पात्रे वा यदि वा करे। अनग्निकस्तु तद्द्यात्प्रथमं वश्वद्वविके ॥२१३ हुतशेपमरोपाणां पात्रे द्याद्द्विजोत्तमः । पुच्छेत्सर्वा श्र यत्कृत्यं मामान्येन द्विजोत्तमान् ॥२१४ द्त्वाऽग्नोकरणं चान्यत् विप्राणां तृपिकृद्धविः। परिवेष्यमिति ब्रूयुस्तनो विधिरनन्तरम् ॥२१५ प्रागम्नोकरणं दद्याद्दवा चान्यतु तृशिकृत्। एकीकृतं तु अञ्जानाः प्रीणयन्ति नृणां पितृन् ।।२१६

परिवेष्य ह्विः सर्वं तर्श्यं यच वे शृतम्। अभिमन्त्र्य ततः पात्रे आपोशानप्रदानवत् ॥२१७ अन्नपूगस्य पात्रस्य कर्तव्यमभिषंचनम्। अपो दत्वा तु सङ्कल्यमेप श्राद्धविधिर्वरः ॥२१८ वर्जितानि न देयानि पितृशीति विजानता। ह्विष्याणि प्रदेयानि वक्ष्यमाणानि वर्जयेत् ॥२१६ निष्यावान् राजमापांश्च कुल्लियान कोरदृपकान् । मसूरान् शीतपाकं च पुलाकं शणमर्कटाः॥२२० आढव्यः सितसिद्धार्थं वहानि रिवन्नधान्यकम्। पिण्याकं परिदःधं च मथितं च विवर्जयेत ॥२२१ नापि नीरस-निर्गन्धं करञ्जं सर्वसक्तुकम्। अप्रोक्षितं च यत्किञ्चत्पर्युपितं विवर्जयेत ॥२२२ लोहिनान्यक्षनियांमान्त्रत्यक्षलवणानि च। **कृ**तकृष्णानि लवणं सर्वाः पलाण्डुजातयः ॥२२३ कृष्णजीरक-वंशाम्रास्तृणानि च विवर्जयेन्। कुम्भिका-यूप-पालङ्काः कट्फलं तण्डुलोयकम् ॥२२४ नीलिका च सितच्छत्रा शोभाञ्जन-कुसुम्भिकाः। कोविदार-करञ्जो च मुमुखां मृलकं तथा ॥२२४ कूष्माण्डं गौरवृन्ताकं बृहत्याश्च फलानि च । करीरफल-पुष्पाणि विडङ्गं मरिचानि च ॥२२६ जम्भारिका सुजम्बीरा सुपवी बीजपूरकाः। जम्ब्बलायूनि पिष्पल्यः पटोलं पिन्डमूलकम् ॥२२७

मसूराञ्जनपुर्यं च श्राद्धे दत्वा पतद्यधः । विपन्छद्महतं मांसमस्यव चिरसंस्थितम् ॥२२८ निहरं श्राद्धे ऽपि वर्ज म्याद्विड्वराह-चकारयोः। स्वायम्ब्रुवादिभि सर्वेर्मृनिभिर्यर्मद्शिभि.॥२२६ निपिद्धानि न देशानि पितृणामहिनानि च। एकेन किञ्चित् अपरेण किञ्चित किञ्चित्र किञ्चित्र पर्रम्नीन्द्रैः। श्रा<mark>द्धे निषिद्धं ह्</mark>यशनादि विद्वन्मर्वं पितृणा ननु किञ्च देयम ॥२३० सौबीर-तिकैछवणादिकैम्तस्यात्रस्य शुद्धिर्भवतीह यस्तु । तुर्रीजपूरान्मरिचादियोगात्मिद्धं प्रदेयं ननु दुष्यतीह।।२३१ श्राद्धे तु यस्य द्विज दीयमानं पित्रादिकम्ये इ भवेन्मनु ज्यैः। यद्वस्तु यस्येह मनम्यभीष्टमामीत्पुरा तथ्य तदेव देयम् ॥२३२ दातुश्च यस्मिन्मनमोऽभिलाप श्रद्धा भनेत्तत्र तु दीयमाने । श्राद्धे ऽपि देयं विथिवत्तरेव तहत्तमक्षय्यमिति प्रवादः ॥२३३ आनीतमन्भो निशि यत्कथित्रत् य पाणिद्तं भनतीह विद्वन्। हेमाम्बुनिक्षेपहरिस्पृतिस्यामच्जिद्रतामेति पराशरोक्तिः ॥२३४ यत् श्लीरसारैक्षवखण्डयोगाच्याखाभिवेयं भवतीह विद्वत् । प्राण्यङ्गश्रुपान्मरिचादियोगान पाकस्य मिद्धि प्रश्रदन्ति तज्ज्ञाः ॥२३४

त्रीहयो यत्र-गोधूमा मुद्गा मापास्तिलास्तथा।
नीवारः श्यामकाद्यं च अक्टउसम्भवानि च ॥२३६
आरण्यकालशाकादि प्रतिपिद्धापराणि च।
माहेयीक्षीरमध्त्रादि खड्गादिपिशितानि च॥२३७

शर्करा-गुड-खण्डादि संगुद्धं श्लीद्रमेव च ।
पितृश्राद्धे हित्रमुंख्यं यद्वा तद्वाप्यलामतः ॥२३८
यदेहिनामत्र शरीरपुर्ण्यं धाता समर्जाशननाम किष्मित् ।
तत्मवंवान्यात्रमिति द्यादि त्रेधा मुनोन्द्रेण पराशरेण ॥२३६
शामावर्ट्यादि ककन्युजाति यत्किश्चिद्धांमम्तुपमारमूतम् ।
आरण्यजं वः कृ पेमन्भवं वः मन्यं तदुक्तं मुनिनाऽशनेषु ॥२४०
काण्डोद्धवं यत्वशनेषु किश्चिन् पङ्कोद्धवं वः स्थलमन्भवं वः ।
यतुष्वसारं बहुसारमिस स्वर्गणि धान्यानि च शूकवन्ति ॥२४१
यत्सर्वसारं सतुषं च भक्ष्यं निःशूकश्कान्वतमत्र किश्चित् ।
आण्यायनं देहश्कृतां च सद्यस्तत्योक्तमत्रं द्यशनेन सद्भिः ॥२४२

प्रतिश्रुतं च भुक्तं च कटुतिक्तं च यत्तथा।
केचिद्चुरदेयानि यन् खातप्रतिरोपितम्।।२४३
तुण्डिकेरान्यलावृनि लिङ्गाल्यानि च यानि तु।
श्राद्धे नित्यमदेयानि प्राह् सत्यवतीपितः।।२४४
सोङ्कारया वै गायत्र्या दशावितंतया जलप्।
पूतं तु तेन तन् प्रोक्ष्यं सर्वमन्नं विशुद्धये।।२४५
शुद्धवत्योथ कूप्माण्ड्यः पावमान्यस्तरत्समाः।
पूतं तु वारिणेताभिरन्नशोधनमुत्तमम्।।२४६
तद्धिष्णोरिति मन्त्रेण गायत्र्या च प्रयत्नवान।
प्रोक्षयेदशनं सर्वं शूद्रहष्ट्यादिशुद्धये।।२४०
गृहाग्नि-शिशु-देवानां यतीनां ब्रह्मचारिणाम्।
तान्नन्न दीयते किष्वद्यावत् पिण्डान्न निवंपेत्।।२४८

कांश्चिकं द्धि तकं च शृतं चाशृतमेव वा ।
पूर्वाह्ने न प्रदानव्यं एकोहिन्देऽथ पावणे ॥२४६
आपिण्डदानतां द्याद्यार्सिकं चिन्द्रगृद्धवामरे ।
तेनैव पितगे यात्ति श्राद्धं गृहत्ति नैव च ॥२५०
परिवेपयेत्ममं मर्वं न कार्यं पंक्तिभेदनम् ।
पंक्तिभेदी वृथापाकी नित्यं ब्राह्मणनिन्दकः ।
आदेशी वेदविकंता पञ्चंते ब्रह्मघातकाः ॥२५१

यद्येकपङ्क्यां विपमं ददानि स्तेहाद्भयाद्वा यदि चार्थलोभात्। वेदेश्च दृष्टं ऋषिभिश्च गीतं तद्ब्रह्महत्यां मुनयो वदन्ति ॥२५२

देवान्पितृन्मनुष्याश्च वहिमभ्यागतांम्तथा।
अनभ्यच्य तु भुझानो वृथापाक इति म्यृतः ॥२५३
पृथ्वी ते पात्रमित्येतन्ग्रीरपीति पिधानकम्।
एतद्वे ब्राह्मगरयास्ये जुरोमि चामृतेऽमृतम् ॥२५४
इदं विष्णुदिति ह्येतन्मन्त्रमुक्षार्य चापरे।
द्विजाङ्गुष्टं च तत्रान्ने निवेशयन्ति तद्विदः ॥२५५
जप्त्वा व्याहृतिभिः साम्रां गायत्री मधुमतीरिति।
सङ्गल्यान्नमपोशानं त्रूयाच मधुमध्विति ॥२५६
आपोशानं प्रदेचान्नं न तत्संकल्ययेद्द्विजः।
सङ्गल्यान्नमदेके याति निराशैः पितृभिर्गतैः ॥२५७
आपोशानोदके विप्रपाणौ तिष्ठति यो द्विजः।
सङ्गल्यं कुरुतेऽज्ञानात् स्युस्तस्य पितरो हताः॥२५८

जप्त्रा वै वैष्णवान्मन्त्रान्त्रिप्रान्त्र्याद्यथासुखम् । भुञ्जीरन्वाग्यतास्तेतु पितृ-देवहिनैपिणः ॥२५६ अत्युष्णमशनं कार्यं वचो वाच्यं पितृष्वदः। शूद्रं च शूकर-ध्वाङ्क्ष-कुक्कुटानपनाययेत्।।२६० भुञ्जते ब्राह्मणा यावत्तावत्युण्यं जपेज्ञपम्। पावमान्यानि वाक्यानि पितृसूक्तानि चैव हि ॥२६१ ततस्तृप्रान् द्विजानपृ कंन् प्रास्थेत्ययनुशासनम् । <del>तृपारमे</del>ति द्विजा त्रू युम्तद्त्रं विकिरेद्र्वि ॥२६२ सक्तःसकुत्वपो द्त्वा शपमन्नं निवेद्येन्। यथानुज्ञा तथा कृत्वा पिण्डांस्त रुनु निर्वपेत् ॥२६३ यग्रद्धक्तं द्विजैरत्रं तत्तदादाय विसरः। स्थालीपाकं निलोपेतं दक्षिणाशामुखस्ततः ॥२६४ अवनिज्य तिलान्दर्भानिपण्डार्थमवनीतले । तस्मिश्च निर्वपेतिपण्डान गोत्रनामकपूर्वकान् ॥२६४ ये देवलोकं पितृलोकमापुः प्राप्तास्तर्थेवं नरकं नरा ये । अग्नौ हुतेन द्विजभोजनेन तृष्यन्ति पिण्डैभूवि तैः प्रदर्तः २६६ यद्त्रं लेपरूपं तु क्रमात्तेषु च निक्षिपेन्। प्रक्षाल्य मलिलं तत्र अवनेजनवत्युनः ॥२६७ निवृत्तानर्चयेत्पिण्डान् पुष्प-गन्यविलेपनैः । दीप-वासः प्रदानेन पिनृनर्च्य समाहितः।।२६८ वासो वस्नदशां द्द्याद्विधिवन्मस्त्रपूर्वकम्। केचिऽदत्राऽविकं लोम केचिन्मतं न तस्विति ॥२६६

पश्वाशद्वार्विको यस्तु दद्याङ्णोम स्वमंशुकम् । तद्वश्यं प्रदेयं म्याद्विधिसम्पूर्णनाकृते ॥२७० पित्रत्रं यदि वा दर्भं करात्तत्र विनिःक्षिपेत्। प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य प्राक्षणादिकमाचरेन् ॥२७१ निर्वपन्त्यपरे पिण्डान् प्रागेव द्विजभोजनान् । खाद्येयुः शकुन्तास्तान्पिनृणां तृप्तितत्पराः ॥२७२ मातामहानामप्येवं विप्रानाचामयेदथ। वाचयेत द्विजान्स्वस्ति द्याचैवाक्षयोद्कम् ॥२७३ दक्षिणा हेम देवानां पितृगां रजतं तथा । शक्त्या द्यात्वधाकारं व्याहरेन्छाद्वकुद्द्विजः ॥२७४ तिष्ठन्पिण्डान्तिके त्रूयाद्वाचिष्क्वे स्वधामिति । वाच्यतामिति विशोक्तिः प्रवदेद्वोत्रपूर्वकम् ॥२७५ स्वधोच्यतामिति ब्र्यादस्तु स्वधेति तहचः। **उनै बहन्तीम्बार्य जलं पिण्डेषु सेचयेत् ॥२७**६ याः काश्चिद्देवताः श्राद्धे विश्वशब्देन जल्पिताः । मीयतामिति च म्याद्विप्रैरुक्तमिदं जपेत् ॥२७७ दातारो नोऽभिवर्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च। श्रद्वा च नो माज्यगमद्रहु देयं च नोऽस्त्विति ॥२७८ न्युब्जपिण्डार्घ्यपात्राणि कृत्वोत्तानानि संश्रवात् । श्चिप्तवा पिण्डेष्ट्रतो विप्रान्पितृपूर्वं विसर्जयेत् ॥२७६ वाजे वाजे इति शुक्तवा आमावाजस्य तान् बहिः। त्र्यात्प्रदक्षिणीकृत्य क्षमध्त्रमित्थिकृत्यपि ॥२८० ५२

पिण्डानां मध्यमं पिण्डं पितृन्ध्यायन् समाहितः । प्राशयेत्पुत्रकामां तु भार्या तच्छाद्धकृत्रमः ॥२८१ स्तुपा वापि सगोत्रा वा पुत्रकामा द्विजाइया । आधत्त पितरो गर्भं व्याहरेयुर्द्विजातयः ॥२८२ महारोगगृहीतो वा तद्रोगोपशमाय च। घ्नन्तु मे पिनरो रोगमित्युक्त्वा प्राशये<mark>बरु</mark>म् ॥२८३ अन्यानप्सु हुताशे वा क्षिपेत्पिण्डान्द्विजाय वा। अजाय वा प्रदद्याच पश्चाद्विप्रविसर्जनम् ॥२८४ उद्घारं पैतृकादेके पाकान्मातामहाय च। एकेनैव हि चैकेऽपि षट्दुवत्यादिति श्रुतिः ॥२८४ उद्घारं पितृकादेके पाकान्मातामहाय तु । एकेनैव हि गच्छन्ति भिन्न गोत्रास्तथा द्विजाः ॥२८६ निद्ध्यः पृथगुद्धृत्य पात्रे पिण्डार्थमोदनम् । तथा पाकमपीच्छन्ति भिन्नगोत्रतया द्विजाः ॥२८७ आविद्के ऽक्षय्यस्थाने तु वक्तव्यमुपतिष्ठताम् । अभिरम्यतां स्वधास्थाने विप्रोक्तिरभिरताः स्मह् ॥२८८ ऊर्ध्वन्तुप्रोष्ठपद्यास्तु प्रतिपदादिकाश्च याः। पुण्यास्तास्तिथयः सर्वा दशापि सहपश्वभिः ॥२८६ तेषां चतुर्दशी प्रोक्ता ये शक्षेण हता नराः। पितृभे च त्रयोद्श्यां गयाश्राद्धादिकं फळम् ॥२६० न तत्र पातयेत्पिण्डान् सन्तानेप्युः कदाचन । पिण्डदानेन कवयो वंशक्षयं वदन्ति हि ॥२६१

सन्तानेप्सुस्रयोदश्यां न पिण्डान् पातयेत्ररः। पातयेत्तमनिच्छंश्च प्राह सत्यवतीपतिः ॥२६२ मघायुक्तत्रयोदश्यां पिण्डनिर्वपणं द्विजः। स सन्तानो नैव कुर्यादित्यन्ये कवयो विदुः॥२६३ यः सङ्क्रमे भानुदिने च कुर्याद्योपणं पारणकं द्विजनमा । पिण्डप्रदानं पितृभे च तद्वज्ज्येष्ठो विपद्येत सुतो ऽनुजो वा २६५ पुत्रदा पश्चमी कर्त्स्तथैवैकादशी तिथिः। सर्वकामा त्वमावास्या पञ्चम्यूर्ध्वं शुभाः म्मृताः ॥२६५ अनं क्षीरं घृतं क्षीद्रमैक्षवं कालशाकवत्। एतेस्तु तर्पितैर्विप्रेस्तर्पिताः पितरो नृणाम् ॥२६६ देशः पर्व च कालश्च हविः पात्रं च सिक्तयाः। पितृ-दैविकचित्तत्वं योगश्चेत्पितृभादि्भिः॥२६७ शौचं च पात्रशुद्धिश्च श्रद्धा च परमा यदि। अम् तत्तृप्तिकुच्छाद्ध एतत्त्वलु न चाऽमिषे ॥२६८ यस्तु प्राणिवधं ऋत्वा मांसेन तर्पयेन पितृन्। सोऽविद्वाश्चंदनं दम्ध्या कुर्यादङ्गारविक्रयम् ॥२६६ क्षिप्तवा कृपे यथा किञ्चिद्वाल आदातुमिच्छति। पतत्यज्ञानतः सोऽपि मासेन श्राद्धकृत्तथा ॥३०० सर्वथाऽम्नं यदा न स्यात्तदैवामिपामाश्रयेत्। ब्राह्मणश्च स्वयं नाद्यात्तच स्वादिहतं यदि ॥३०१ अथान्यत् पापमृत्यूनां शुद्धचर्यं श्राद्धमुच्यते । कृतेन तेन येषां तु प्रदत्तमुपतिष्ठति ॥३०२

दन्ति-शृङ्कि-गर-व्याल-नीराग्नि-बन्धनैग्तथा। विद्यन्निर्वात-वृक्षेश्च विष्रेश्च स्वात्मना हताः ॥३०३ व्रणसञ्जात हीटेश्च म्लेच्बेश्चेव हतास्तथा । पापमृत्यव एवेते शुभगन्यर्थमुच्यते ॥३०४ नागयणबलिः कार्यो विधानं तस्य चोच्यते। उर्ध्व पण्मासतः कुर्यादेके उर्ध्वं तु वत्सगत् ॥३०४ तेपां पापवयपोहार्थं कार्यो नारायणो विलः। थौतवामाः शुचिः स्नात एकादृश्यामुपोवितः ॥३०६ गुङ्गक्षे तु सम्पूज्य विष्णुमीशं यमं तथा । नदीतीरं शुचिर्गत्वा प्रद्यादश पिण्डकान् ॥३०७ श्रोद्रा-ऽऽज्य-तिल्रंसयुक्तान् ह्विपा दक्षिणामुखः। अभ्यच्य पुरप धूपाद्यैन्तन्नाम-गोत्रपूर्वकान् ॥३०८ विष्णुध्यानमनाः कुर्यात्ततः स्तानम्भसि श्चिपेत्। निमन्त्रयेत विप्रांश्च पंच सप्ताऽथ वा नव ॥३०६ द्वादृश्यां कुतपे म्नातान्धीतवस्त्रान्समागतान् । कृष्णाराधनकुद्रक्तया पादप्रश्चालितांच्छुभान् ॥३१० दक्षिणाप्रवणे देशे शुचिस्तानुपवेशयेत्। ही दैवे तु त्रयः पित्र्ये प्राङ्मुखोदङ्मुखान्द्विजान् ॥३११ आमना-ऽऽवाह्नाह्यै च कुर्यात् पार्वणवद्दिजः। भोजयेद्धक्य-भोज्येश्च श्रीद्रेक्षवाज्य-पायसैः ॥३१२ तृतान ज्ञात्वा ततो विप्रांस्तृप्ति पृच्छेद्यथाविधि । भोज्येन तिलमिश्रेण हविष्येण च तान् पुनः ॥३१३

पश्च पिण्डान्प्रदद्याद्धे दुवं रूपमनुस्मरन्। विष्णु-ब्रह्म-शिवेभ्यश्च त्रीन्पिण्डांश्च यथाक्रमम्।।३१४ यमाय सानुगायाथ चतुर्थं पिण्डमुतसृजेत्। सतं सन्वित्य मनसा गोत्र-नामकपूर्वकम् ॥३१४ विष्णु स्मृत्वा क्षिपेत्पिण्डं पश्वमश्व ततः पुनः। दक्षिणाभिमुखश्चेव निर्वपेश्पञ्च पिण्डकान् ॥३१६ आचम्य ब्राह्मणःपश्चारत्रोक्षण।दिकमाचरेत्। हिरण्येन च वासोभिगीभिर्मम्या च तान्द्विजान् ॥३१७ प्रणम्य शिरसा पश्चाद्विनयेन प्रसाद्येत्। तिलोद् कं करे दस्वा प्रेतं संस्मृत्य चेतसि। गोत्रपूर्व क्षिपेत्पाणी विष्णुं वुद्धौ निवंश्य च ॥३५८ बहिर्गरवा निलाम्भम्तु नस्मैद्यात्ममाहिनः। मित्रभृत्येर्निजैः साद्धं पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥३१६ एवं विष्णुमते स्थिन्ता यो दद्यात्नापमृत्यं । समुद्धरित तं प्रेतं पराशरवचो यथा ॥३२० सर्वेषां पापमृत्यूनां कार्यो नारायणो वलिः। तस्मादृध्वं च तेम्यो हि प्रदत्तमुपतिष्टति ।।३२१ एवं श्राद्धैः समस्तान्यः सन्तर्पयति वे पितृन्। द्दत्यनुत्तमांस्तस्य पितरम्तर्पिता वरान् ॥३२२ विद्या-तपोमुखान्पुत्राः पूज्यत्वमथ योपितः । सौभाग्यैश्वर्य-तेजश्च वलं श्रैष्ठ्यमरोगताम् ॥३५३

यशः शुचित्वं कुष्यानि सिद्धि चैवात्मवाञ्जिताम् । यशश्च दीर्घमायुश्च तथैवानुत्तमां मतिम् ॥३२४ अथान्यिकि चिदाख्यामि पितृणां तु हिताय वै। क्रुतेन म्वल्पकेनापि प्राप्नुवन्ति विधेः फलम् ॥३२४ उच्छिपुस्य विसर्गार्थं विधिम्तात्कालिको हि यः। श्राद्धज्ञैर्विहितं यत्प्राक् पितृगां हित काङ्क्षिभः ॥३२६ आदाय सर्वमुच्डिष्टमवनेजनवद्वुधः। तत्रेव निश्चिपेन भूमौ निल-दर्भसमन्वितम् ॥३२७ नरकेषु गता ये वे अपमृत्युमृता मम । एतदाप्यायनं तेषां चिरायास्त्वित चोचरेत्।।३२८ करस्य मध्यता देवाः करपृष्ठेतु राक्षसाः। पात्रस्यालम्भनादौ च तस्म।त्तं न प्रदर्शयेत् ॥३२६ द्भाश्च स्वयमानेया दक्षिणाप्रवणोद्भवाः। तर्पणासुज्ञिता ये वे इत्यासांश्च विवर्जयेत् ॥३३० न कुशं कुशमित्याहुईभमूलं कुश स्मृतः। ब्रिना दभां इति प्रोक्तास्तद्यं कुतपः स्मृतः ॥३३१ हरिता यज्ञिया दर्भाः पीतकाः पाकयाज्ञिकाः। सकुशाः पितृद्वेवत्याच्छित्रा वै वैश्वदेविकाः।।३३२ द्भमूले स्थितो ब्रह्मा द्रभमध्ये जनार्दनः। दर्भाग्ने शङ्करस्तरथी दर्भा देवत्रयान्त्रिताः ॥३३३ अह्न्येकादशे श्राद्धे प्रतिमासं तु बत्सरम्। प्रति संवत्सरं कार्यमेकोहिष्टं तु सर्वदा ॥३३४

एकस्य प्रथमं श्राद्धमर्वागब्दाश्च मासिकम्। प्रतिसंवत्सरं चैव शेपं त्रिपुरुषं स्मृतम् ॥३३४ सपिण्डीकरणाद्ध्वं प्रतिसंवत्सरं सुतैः । माता-पित्रोः पृथकार्यमेकोहिष्टं क्षयाहिन ॥३३६ सपिण्डिकरणादृध्वं प्रतिसंवत्सरं द्विजः। एकोहिष्टं प्रकुर्वीत पित्रोरप्यत्र पार्वणम् ॥३३७ चतुर्दश्यां तु यच्छ्राद्धं सिपण्डीकरणे कृते। एकोहिप्टविधानेन तत्कुर्याच्युखपातिते ॥३३८ पित्राद्यस्त्रयो यस्य शस्त्रपातास्त्वनुक्रमात्। सम्भूतैः पार्वण कुर्यादष्टकानि पृथक् पृथक् ॥३३६ सपिण्डीकरणादृध्वं पितुर्यः प्रपितामहः। स तु लेपभुगित्येव प्रलुप्तः पितृपिण्डतः ॥३४० सपिण्डीकरणादृध्वं कुर्यात्पार्वणवत्सदा । प्रतिसंवरसरं विद्व=द्वागलेयो विधिः स्मृतः ॥३४१ सपिण्डता तु कर्तव्या पितुः पुत्रैः पृथक् पृथक्। स्वाधिकारप्रवृत्तत्वादितरः श्राद्धकर्तृवन् ॥३४२ तीर्थश्राद्धं गयाश्राद्धं श्राद्धं वा परपन्थिकम्। सपिण्डीकरणे कुर्यादकृते तु निवर्तते ॥३४३ यस्य संवत्सराद्वीक् सपिण्डीकरणं भवेत्। प्रतिमासं तस्य कुर्यान् प्रतिसंवत्सरं तथा ॥३४४ अर्वाक् संवत्सराद्वद्धौ पूर्णे संवत्सरेऽपि च। ये सपिण्डीकृताः प्रेता न त् तेपां पृथिक्कया ॥३४४

एकपिण्डीकृतानां तु पृथक्त्वं नोपपद्यते। सपिण्डीकरणादृध्वं मृते कृष्णचतुर्दशीम् ॥३४६ अर्वाग्संबत्मगद्भ मृते कृष्णचतुर्दशीम् । य सपिण्डोकृताम्तेपां पृथक्तेवनोपपद्यते । प्रथम्बकरणे तस्य पुतः कार्या सपिण्डता ॥३४० स्त्रियं श्राश्त्रा पतिर्मात्रा तयासह सपिण्डयेन्। तत्मद्भावे पितामद्या नन्मात्रा चापरे विदुः ॥३४८ नान्यया तु पितामह्या मातामद्यास्तथाऽपरे। उद्कं पिण्डरानं च महभन्नी प्रदीयते ॥३४६ अपुत्रा ये मृताः केचिन्त्रियो वा पुरुपाऽपि वा । तेपामपि च देयं स्यादेकोहिष्टं च पार्वणम् ॥३५० अपुत्राश्च मृता ये च कुमाराः संस्कृता अपि । तेषां समानता न स्यान्न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५१ भर्त्रा सपिण्डता स्त्रीणां कार्येनि कवयो विदुः। स्वम्ना सहापरे तस्यास्तन्मात्रा चापरे विदुः ॥३४२ अनुपत्येषु प्रतेषु न स्वधा नाभिरम्यताम्। एकोहिष्टेषु सर्वेषु न स्वधा नाभिरम्यताम् ॥३५३ मित्र-बन्ध्-सपिण्डभ्यः स्वी-कुमारस्य चैवहि । दद्याद्वै मासिकं श्राद्धं संवत्सरं तु नान्यथा ॥३५४ अप्रत्ययगतश्चेव कुछ-देशव्यवस्थया । यो यथा क्रियया क्यु स तयैव हि निर्वपेत्।।३५५

दाहर्गार्थं दृश्यते रूढिर्मानवं लिङ्गमेव च। दृढोकृत्वा च विद्वद्भिर्छोकरूढिर्गरीयसी ॥३५६ विकल्पेषु च सर्वेषु स्वयमेकैकमादित । अङ्गीकरोति यं कर्ता म विधिस्य नेतरः ॥३४७ बर्न हि याजयेदास्तु वर्णवाह्यांश्च नित्यशः। म्हेच्डांश्च शौण्डिकांश्चेव स विप्रो वहुयाजकः ॥३६८ यश्च भेर्येण दुष्टात्मा गो-सुवर्णापहारकः। सङ्गृहीतासवर्णिखः स विघ्रो गण उच्यते ॥३५६ वर्तते यश्च चौर्यण सुवर्णनोपहारकः। सङ्ब्रहीतसवर्णस्त्र स वित्रो गौण उच्यते ॥३६० मृते भर्नरि या नारी रहम्यं कुन्ते पतिन्। तम्य वैस्नावयेद्गर्भं सा नारी गणिका स्मृता ॥३६१ अन्यद्त्ता तु या कन्या पुनरन्यत्र दीयते । अपि तस्या न भोक्तत्र्यं पुनर्भूः सा प्रकीर्तिता ॥३६२ कौमारं पतिमुत्सृज्य यात्त्रन्यं पुन्तयं श्रिता। पुन, पत्युर्गृ हं गच्छेत्पुनर्भूः मा द्वितीयका ॥३६३ असत्यु देवरेषु स्त्री बान्धवैर्या प्रदीयते । सवर्णाय सपिण्डाय मा पुनर्भृम्हतीयका ॥३६४ प्राप्ते द्वाद्शा वर्षे ज्ञ या रजो न विभर्ति हि। भारितं तु तया रेतो रेतोधाः सा प्रकीर्तिता ॥३६४ या भर्तुर्व्यभिचारेण कामं चरति कित्यशः। तत्या अपि न भोक्ट्यं सा भवेत्कामचारिणी ॥३६६

पति हित्वा तु या नारी गृहादन्यत्र गच्छति । वरेषु रमते नित्यं स्वैरिणी सा प्रकीर्तिता ॥३६७ भर्तुः शासनमुल्लंध्य स्वकामेन प्रवर्तते । दीव्यन्ती च हसन्ती च सा भवेत्कामचारिणी ॥३६८ पति विहाय या नारी सवर्णमन्यमाश्रयेत्। वर्तते ब्राह्मगरवेन द्वितीया स्वैरिणी तु सा ॥३६६ मृते भर्तरि या याति श्लुत्यिपासातुरा परम्। तवाहमिति सम्भाष्य तृतीया स्वेरिणी तु सा ॥३७० देश-कालाद्यपेक्ष्यैव गुरुभिर्या प्रदीयते। उत्पन्नसाहसाऽन्यस्मे चतुर्थी स्वैरिणी तु सा ॥३७१ आसु पुत्रारनु ये जाता वज्यांस्ते हव्य-कव्ययोः। तथैव पतयस्तासां वर्जनीयाः प्रयत्नतः ॥३७२ श्राद्धं तेश्च न कर्तव्यं प्रतिलोमविधानतः। वैश्वश्राद्धं पितृश्राद्धं प्रतिलोमविधानतः। वर्णाश्रमवहिःस्थास्ते संकीर्णजन्मसम्भवाः ॥३७३ मातृणां च पितृणां च स्त्रीयानां पिण्डदाः स्पृताः । उपपतिसुतो यस्तु यश्चैव दीधिपूपतिः ॥३०४ परपूर्वपतेर्जाताः सर्वे वर्ज्याः प्रयत्नतः। अजापालादिजाताश्च विशेषेण तु वर्जयेन् ॥३७४ मृतानुगमनं नास्ति ब्राह्मण्या ब्रह्मशासनात् । इतरेषु च वर्णेषु तपः परममुच्यते ॥३७६

भर्तुश्चित्यां समारोहेद्या च नारी पनिव्रता। अहन्येकाद्शे प्राप्ते पृथिकपण्डे नियोजयेत् ॥३७७ श्रीतश्च स्मार्तमंत्रश्च दम्पत्यावेकतां गतौ। एकमृत्युगतौ चेव वहावंकत्र तो हुतौ ॥३७८ एकत्वं च तयोर्यस्माज्ञातमाद्यावसानिकम्। एकादशाहिकं श्राद्धमेकमेव स्मृतं वुधैः ॥३७९ आरु भर्तुश्चितिमंगना या प्राप्नोति मृत्युं बहु सत्वयुक्ता। एकादशाहे तु तयोविंघेयं श्राद्धं प्रथ ऋवर्गमपेक्ष्य सद्भिः ॥३८० एकत्वमिच्छन्ति पतिप्रहीणा एकादशाहादिवु ये नृनार्यः। ते स्वर्गमार्गं विनिहत्य कुर्युः स्त्रीसत्त्रघातान्नरकेऽधिवासम्॥३८१ समानमृत्युना यस्तु मृतो भर्ता च योषिताम्। तस्याः सपिण्डता तेन पिण्डमेकत्र निर्वपेत् ३८२ स्तीपात्रं पनिपात्रे तु सिचयेदेकमेव हि। श्राद्धे त्रिपुरुषे त्रीणि तत्प्रत्यक्षं पितृन्प्रति ॥३८३ पत्या सह परासुत्वात्तंनैवाश्याः सपिण्डता । पितामद्यापि चान्यत्र ह्येतदाह पराशरः ॥३८४ अन्यप्रीतौ न चान्यम्य तृप्तिः कुत्रापि दृश्यते । एवं धीमानमुत्रापि तस्मान्नेकत्वमाश्रयेत ॥३८४ एकत्वाश्रयणे धर्मी नार्या लुप्तो भवेद्ध्य वम् । तस्याः सुकृतसामर्थ्यात्पत्युः स्वर्गमिहेष्यते ॥३८६ भर्त्रा सह मृता या तु नाकलोकमभी सती। साऽऽधश्राद्धे पृथिषपण्डा नैकत्वं तु वृधैः स्मृतम् ॥३८७

पतिमृत्युः स्त्रियो मृत्युर्निमित्तमेव जायते। निर्निमित्तो न वैमृत्युर्मृत्युना चैकता भवेत् ॥३८८ भर्त्रासह मृता भार्या भर्तारं सा समुद्धरेत्। तस्याः पतित्रताधर्मः पिण्डेक्येन हतो भवेत् ॥३८६ बलीयस्वेन धर्मस्य तुच्छत्वाचागसस्तथा। धर्मेण लज्यते पापमेकत्वे समता तयोः ॥३६० नैकलं तु तयोरस्माद्वक्तव्यं श्राद्धकर्मणि । पृथगेवहि कर्तव्यं श्राद्धमेकादशाहिकम् ॥३६१ यानि श्राद्धानि कार्याणि तान्युक्तानि पृथक् पृथक्। कर्तव्यं यैस्तु तेऽयुक्ता विशेषं च निवोधत ॥३६२ औरसाद्याः स्मृताः पुत्रा मुनिभिद्वीदशैव तु । यथा जात्यनुसारेण वर्णानामनुमारतः ॥३६३ पिण्डप्रदाः क्रमेग स्युः पूर्वाभावे परः परः । यस्माद्यो जायते पुत्रः स भवेत्तस्य पिण्डदः ॥३६४ तस्मात्तस्मादपीहन्ते मृताः प्रेनत्वमागताः । तस्माद्बश्यमेवं हि श्राद्धं कार्यं विधानतः ॥३६४ शुद्रस्य दासिजः पुत्रः कामतस्तु स पिण्डदः। जात्या जातः सुतो मातुः पिण्डदः स्यात्सुतोऽपि चा।३६६ जनकस्य न किच्चित्स्याद्थीत्कामप्रवर्तनात्। वायुभूताश्च पितरो दत्ताभिकांक्षिणः सदा। तस्मात्तंभ्यः सदा देयं नृभिर्धर्मरतैः सदा ॥३६७

ये खाण्ड-मांस-मधु-पायस-सर्पिरन्तेर-देशे च कालसहिते च सुपात्रद्त्तेः। प्रीणन्ति देव-मनुजान्पितृवंशजातान तेपां नृणां तु पिनरो वग्दा भवन्ति।।३६८ मया श्राद्धविधिः प्रोक्तो वर्णानां पितृतृप्तिकृत्। एवं दास्यति यः श्राद्धं वरान्सर्वानवाग्स्यति।।३६६

इति श्रीवृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुवृतप्रोक्तायां संहितायां श्राद्धाधिकारो नाम सप्तमोऽध्यायः समाप्तः।

## अष्टमोऽध्यायः ॥ अथ शुद्धिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्ष्यामि शुद्धि पराशरोदिताम् । सूतके वाष्यशौचे वा यथावत्तां निवोधत ॥१ प्रसवं सूतकं प्राहुरशौचं शावमुच्यते । यावत्कालं च यन्मात्रं तथा तावित्रगद्यते ॥२ केषां चित्तेन वै मासं केषां चिन्मरणान्तिकम् । सद्यः शौचास्तथा चान्ये अन्ये चैकाहिकाः स्पृताः ॥३ त्रि-षद्-दश-दशद्वाभ्यां दशापि सह पश्वभिः । तान्येव त्रिगुणान्याहुर्दिनान्येव मनीषिणः ॥४

वक्ष्यमाणं निबोधध्वमुक्तक्रममिदं द्विजाः । शक्तिजो यन्युनीनां च प्राग् ब्रवीत्कलिधमवित् ॥५ विष्णुध्यानरतानां च सदैव ब्रह्मचारिणाम् । गृहमेधिद्विजानां तु तथैव वृतचारिणाम्।।६ वेदतत्वार्थवेत्तृणां नित्यस्नानकृतां तथा । अतःसंसर्गिणामेषां नाशौचं नापि सूनकम् ॥७ संसगं वर्जयेद्यत्नात्संसर्गो दोपकारणम्। कुर्यानानादिसंसर्गं वर्जने स्याद्किल्विपी ॥८ वदन्ति मुनयः प्राच्याः संसगी दोषकारणम् । असंसर्गः स्वकर्मस्थो द्विजो दोषनं लिप्यते ॥६ दानोद्वाहेष्टि-संप्रामे देशविप्नवकादिके। सद्यः शौचं द्विजातीनां सृतकाशौचयोरपि ॥१० दातृणां वृतिनामेके कवयः सत्त्रिणामपि । सद्यः शौचसदोषाणामृचुर्धमविदः कलौ ॥११ सर्वमंत्रपवित्रस्तु अग्निहोत्री षडङ्गवित्। राजा च श्रोत्रियश्चेव सद्यः शौचाः त्रकीर्तिताः ॥१२ देशान्तरगते जाते मृते वाऽपि सगोत्रिणि । शेषाहानि दशाहार्वाक् सद्यः शौचमतः परम् ॥१३ सत्यप्येकनिवासे तु सद्यः शौचं विशोधनम्। पिण्डनिर्वर्तने जाते मृते वापि सगोत्रजे ॥१४ सद्यः शौर्च विधातव्यमर्वाक् च दश जन्मनः। बान्धवाद्यु विज्ञेयमन्यदृष्वं विधीयते ॥१४

नाऽऽशौच-सुतके स्यातां नृपतीनां कदा च न । यज्ञकर्मप्रवृत्तस्य ऋतिवजो दीक्षितम्य च ॥१६ पृथक्षिण्डमृते बाले निर्दशंऽन्यत्र च श्रुते। जाते वापि च शुद्धिः स्यात्सद्यः शौचाद्संशयम् ॥१७ सवेदः सामिरेकाहाद् ब्राह्मणः गुद्धिमाप्नुयात्। तथैकाहो नृपे संरथे तथैव ब्रह्मचारिणि ॥१८ दुर्भिक्षे राष्ट्रभङ्गे च आपत्काल उपस्थिते। उपसर्गान्मृते वापि मद्यः शौचं विधीयते ॥१६ गो-विप्रार्थविपन्नाना माहवेषु तथैव च। ते योगिभिः समा ज्ञेया सद्य शौचं विधीयते॥२० विप्रे संस्थे बताद्वांक् श्रोत्रिये च तथा द्विजे । अनुचाने गुरौ चैव आचार्ये चापि संस्थिते ॥२१ असंस्कृतिक्यां राज्ञि श्रोत्रिये निधनं गते। त्रिरात्रमप्यशौचं स्यात्तथैवोदकदायिनः ॥२२ विद्वाननिमको विप्रस्तिरात्राच्छुद्धिमाप्नुयात्। मनीषिणः परे ह्र युरसिपण्डे अहं मृते ॥२३ मेतीभूतं च यः शूद्रं त्राद्यणो ज्ञानदुर्वलः। नियतं हानुगच्छेत त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२४ षड्यं नवरात्रं च शवस्पृशां विशुद्धिकृत्। **त्र्यहं चैव विशुद्धचर्थं** धर्मशास्त्रविदो विदुः ॥२४ अनाथं ब्राह्मणं प्रेतं ये वहन्ति द्विजातयः। पदे पदे बन्नफलमनुपूर्व लभन्ति ते ॥२६

अञ्जुचित्वं न ते बां तु पापं वा ऽञ्जभकारणम्। जलाव-गाहनात्तेषां सद्यः शौचं विधीयते ॥२७ असगोत्रममम्बन्धं प्रेतीभूतं तथा द्विजम्। ऊढ्वा दम्ध्या द्विजाः सर्वे स्नानान्ते ग्रुचयः स्मृताः ॥२८ एकरात्रं वदन्त्येके मद्यः स्नानं तथाऽपरे। गोप्राहादिमृतानां च मुनयः शुद्धिकारणम् ॥२६ ह्तः शूरो विपद्येत शत्रुभियंत्र कुत्रचित्। म मुक्तो यतिवत्मद्य प्रविशेत्परवेधसि ॥३० संन्यासो युद्धसंस्थश्च सम्मुखं शत्रुभिर्नरः। सूर्यमण्डलमेक्ताराविति प्राहुर्मनीषिगः ॥३१ पराङ्कुले हते सन्ये यो युद्धाय निवर्तते। तत्पदानीष्टितुल्यानि स्युरित्याह पराशरः ॥३२ वदने प्रविशेद्येषां छोहितं शिरसः पतत्। सोमपानेन ते तुल्या बिन्दवो रुधिरस्य वै ॥३३ सन्यासेन मृता ये वै प्रधने ये तनुत्यजः । मुक्तिभाजो नरास्तेस्युरिति वेदोऽपि कीर्त्तयेत् ॥३४ सद्यः शौचं विधातव्यं शुद्धिरेवं विधीयते। नोष्यन्ते ते मृता लोके सो ब्रह्मवपुर्गमाः ॥३४ सन्ध्याचारविहीनानां सूतकं ब्राह्मणे ध्रुवम्। अशीचं वा दशाहं स्यादिति पाराशरोऽजवीत ॥३६ राज्ञां तु द्वादशाहः स्यात्पक्षो वैश्वस्य पावनः ! वृषभरव तथा मासस्त्र्यहादेष्वपि धर्मतः ॥३७

क्षपा च पक्षिणी सद्भिर्मातुलादिपु कीर्तिताः। गर्भस्रावे च पाते च रात्रयो माससम्मिताः ॥३८ स्रावं गर्भस्य विद्वांसो मासादर्वाक् चतुर्थकान्। पातमूर्ध्वं वदन्त्येके तत्राधिक्यं च मृतकम् ॥३६ भ्रणि-व्यमनि-रोगार्त-पराधीन-कर्यकाः। तृष्णावन्तो निराचाराः पितृ-मातृविवर्जिताः ॥४० स्त्रीजिताश्चानपत्याश्च देव-ब्राह्मणवर्जिताः । पग्द्रव्यं जिघृक्षन्तः सद्यः मृतकिनः सदा ॥४१ सृतके मृतशौचे वा अन्यदापद्यते यदि । पूर्वेणैवतु शुद्धेचत जाते जातं मृते मृतम् ॥४२ एक पिण्डाश्च दायादाः पृथक्दार-निकेतनाः। जन्मन्यपि मृते वापि तेषां वै सूतकं भवेन् ॥४३ भृग-वह्नि-प्रपाते च देशान्तरमृतेपु च। बाले प्रेते च सन्यम्ते मद्यः शौचं विधीयते ॥४४ अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिर्गताः। न तेषामग्रिसंस्कारो नाशीचं नोदकक्रिया ॥४४ विवाहोत्सव-यज्ञंपु कर्तारो मृत-सूतके। पूर्वसंकल्पितानर्थान्भोज्यान्तानत्रवीन्मनुः ॥४६ शिल्पिनः कारकाश्चेव दामी-दासास्तर्थेव च। इत्यादीनां न ते म्यातामनुगृहनित यान् द्विजाः॥४७ पिता पुत्रेण जातेन दद्याच्छाद्धं यथाविधि । पितणां विधिवहानं दत्तं तत्राप्यनन्तकम्। तत्राप्यनन्तकं दानं कर्तव्यं पुत्रजन्मनि ॥४८

प्रसवे च द्विजातीनां न कुर्यात्सङ्करं यदि । दशाहान्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥४६ अतिमानाद्तिकोधात्स्नेहाद्वा यदि वा भयात्। उद्वध्य म्रियते यन्तु न तस्याग्निः प्रदीयते ॥६० न स्नायात्रोदकं दद्यात्रापि कुर्यादशौचताम्। सर्पेण शृंगिणा वापि जलेन चामिना तथा ॥५१ न स्नानादौ विपन्नस्य तथाचेवात्मवातिनः। अर्वाक् दिहायनाद्गिन न द्द्यानपृतकस्य च ॥४२ किन्तु तान्निखतेद्भा कुर्यान्नेवोदककियाम्। सर्पादिप्राप्तमृत्रूनां वह्निदाहादिकाः क्रियाः ॥५३ षण्मासे तु गते कार्या मुनिः प्राह पराशरः। शास्त्रहृं बुधैः कार्यमस्थित्वयनादिकम्।।५४ तत्कृत्वा तूक्तद्विसः शुद्धिमह्ति धर्मतः। अन्याय रुतविप्राणां ये वोडारो भवन्ति हि ॥ १४ अग्निराश्चेंव ये तेषां तथोदकादिदायिनः। उद्गन्धनमृतम्यापि यश्जिन्द्याद्रज्जुपाशकम् ॥५६ ते सर्वे पापसंयुक्ताः प्रायश्चित्तस्य भाजनाः ॥५७

यः सूतकाशौचिवशुद्धिकृत्स्यादारूयाय कालं तम नुक्रमेण। पराशरस्यान्बुजनिः मृता या वाच्यास्ततो निष्कृतयो द्विजास्ते ॥५८

सूनकाशीचयोक्कः द्युद्धिपन्थाऽनुपूर्वशः । सर्वेनसां विद्युध्यर्थं प्राश्चित्तं यथानवीन् ॥५६

मनुर्वा याज्ञवल्क्यस्तु वसिष्ठः प्राह निष्कृतिम् । सा क्रुतादि युवण नां सति धर्म चतुष्पदे ॥६० मानमा वाचिका दोपास्तथा वे कार्यकारिताः। धर्माधीना नृणां सर्वे जायन्ते तेऽप्यनिच्छताम ॥६१ तेपामुपरताक्षाणां प्रत्यहं शुभमिच्यताम् । शक्तिजो निष्कृति प्राह युगधर्मानुरूपतः ॥६२ विकृतव्यवहाराणां पापो निष्कृतिकृदुद्विजः। कित विष्रः कथं रूपैरिनि वाच्या भवेद्धि सा ॥६३ तद्र्षं च प्रवक्ष्यामि यावद्भिः सा द्विजैर्भवेत । यथाविधाश्च विप्रास्युगिति विद्वन् प्रकीत्येते ॥६४ पर्पद्शावरा प्रोक्ता ब्राह्मगर्वेदपारगैः। मा यद्रुपा स धर्मः स्यान स्वयम्भूरित्यक्टनयन ॥६५ वेद-शास्त्रविदो विप्रा यं ब्रु युः सप्त पंच वा । त्रयो वाऽपि म धर्मः स्यादेको वाऽध्यात्मवित्तमः ॥६६ संयमं नियमं वाऽपि उपवामादिकं च यन्। तद्भिरा परिपूर्ण स्यामिष्कृतिव्यावहारिकी ।'ई अ न लक्षेणापि मूर्खाणां न चैवाऽधर्मवादिनाम्। विदुषां नापि लुब्धानां न चापि पक्षपातिनाम् ॥६८ श्रुता-ध्ययनसम्पन्नः सत्यवादी जितेद्रियः। सदा धर्मरतः शान्त एकः पर्वन्यमहति ॥६६ न सा वृद्धैर्न त रणैन सुरूपेर्धनान्वितः। त्रिभिरेकेन पर्षेत्र स्यादु द्विद्विद्विद्वापि च ॥५०

वयमा लघवोऽपि म्युर्वृद्धा धर्मविदो द्विजाः। शिशवोऽपि हि मध्यस्थाः मर्वत्र ममदर्शनाः ॥७१ न सा बृद्धै भविद्विप्रैर्वे द्वा स्यूर्धर्मवादिनः। यत्र सत्यं स धमः स्याच्न्छलं यत्र न गृह्यते ॥७२ नसा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न बदन्ति धर्मम्। धर्मो बृथा यत्र न सत्यमन्ति सत्यं न तज्ञन्न हृदानुविद्धम् ॥७३ निष्कृतौ व्यवहारे च व्रतस्याशंसने तथा। धमें वा यदि वाउधमें परिपत्प्राह तद्भवेत ॥७४ स्त्रीणां च वाल-वृद्धानां क्षीणानां कुशरीरिणाम्। उपवासाद्यशक्तानां कर्नव्योःनुप्रहश्च तः ॥७४ ज्ञात्वा देशं च कालं च व्ययं सामर्थ्यमेव च। कर्नव्योनुष्रहः सद्भिर्मुनिभिः परिकीर्तितः॥७६ लोभान्मोहाद्भयानमैच्याद्यपि कुर्युग्नुब्रहम्। नरकं यान्ति ते मृढाः शनधा वाष्तवाचिनः ॥७७ प्रविश्य पर्षद्ं ते व सभ्यानामप्रतः स्थिताः। यथाकालं प्रकुर्युस्ते प्रायश्चित्तं तदीरितम् ॥७८ किन्त्वयं याचते देवा वद्नतोऽत्र द्विजातयः। सर्व कुर्वन्ति नियमं गतपातं न संशयः॥७६ प्रसादो द्विविधो ज्ञेयो दैव्यश्चासुर एव च। क्रीडयापि च तत्रैव देयाम्तथैव ते द्विजाः ॥८० व्यवहारे गोसमैम्तु प्रब्रुयाद्वापि वैरतः।

यथाकृतं च तत्पापं तत्त्रधैव निवेदयेन ॥८१

यस्तेपामन्यथा त्र्यात्म पापीयान्न संशयः। मत्यमसत्यमेवात्र विपर्यस्तं वदेद्यतः ॥८२ स एवानृतवादी म्यात्मोऽनन्तं नरकं ब्रजेत् । ज्योतिषं व्यवहारं च प्रायश्चित्तं चिकित्मितम् ॥८३ अजानन् यो नरो ब्र्यात्माहमं किमतः परम् १। व्यवहारश्च तः प्रोक्तो मन्वाद्यैर्धर्मवादिभिः ॥८४ प्रजाभिनेतु सर्वाभिमान्यश्चैव तु मानव । तच्छोधकप्रमाणानि लिखितादीनि तंर्विना ॥८५ जलादोनि च दिञ्यानि साख्योक्तशपथानि च। अन्ये जनपदाचारा कुलवर्मस्तथापरः । परिपद्त्राह्मणेर्मेध्या निर्णेत्व्या यथाविवि ॥८६ जन्मजान्यनुमारेण देश-कालाद्धिमंत.। कर्तव्यः सत्तमेः सर्वेर्माननीयश्च वादिभिः॥८७ गो-ब्राह्मणहतादीनां तथा दम्भादिकारिणाम्। तातकुच्छं ण शृद्धि स्यादिति पाराशरोऽज्ञवीत्।।८८ भोजयेद्बाह्मणान्पश्चात्सवृपा गौश्च दक्षिणा। जायन्ते पापनिर्मुक्ताः शक्तिसूनोर्यथा वचः ॥८६ अनाशकान्निवृत्ता ये ब्रह्मचर्यात्तथा द्विजाः। . बंडालिकास्ते विज्ञेयाः सर्वधमविवर्जिताः ॥६० मर्वत्र प्रावशन्तो ये ये च बेडालिकैः समाः। तेषां सर्वाण्यपत्यानि पुल्कसं: सह पातयेन् ॥६१

स्त्रीणां च बाल-वृद्धानां क्ष्यीणां कुशरीरिणाम् । उपवास।द्यशक्तानां कर्तव्योऽनुब्रहश्च तैः ।।६२ ज्ञात्वा देशं च कालं च वयः सामर्थ्यमेव च । कत योऽनुब्रहः सङ्किर्मनिभिः परिकीर्तितः ॥६३ ब्रह्मध्नश्च म्रापश्च म्तेयी गुवङ्गनागमः । एतेपां निष्कृति त्र्याद्तस्यंमर्गिणामपि ॥१४ द्वादशान्दं च विचरेन ब्रह्मध्नस्तरकपालधृक्। सत्रत्र ख्यापयन्कर्म भिक्षां विष्रेषु संचरन् ॥६५ ह्या सेतुं समुद्रम्य स्नात्या वं लवणांभिम । ब्राह्मणेषु चरन् भिक्षां स्वकर्म ख्यापयन्च्छ्रचिः॥६६ मुण्डितस्तु शिखावर्ज्यः सर्वोपीनो निराश्रयः। चीर चीवरवामा व त्रिः स्नायी मन् ग्रुचिर्वती । ६७ संयताक्षश्चरेच्द्रान्तश्च्छत्रोपानद्विवर्जितः । ब्रह्मन्तोऽस्मीत्यहं वाचिमति सर्वत्र वै वदेत्।।६८ गवां च विंशति दद्याइक्षिणां वृपसंयुताम्। ब्राञ्जणेभ्यो निवेद्यैताः द्युचिराख्याय भूपतेः ॥६६ पूर्वोक्द्रस्यवायानां प्रायश्चित्तमिदं स्मृतम् । ब्राह्मणानां प्रसादेन तीर्थेषु गमनेन च ॥१०० गोशतस्य प्रदानेन शुध्यन्ति नात्र संशयः। अवभृथे प्रवमेधस्य स्नात्वा शुद्धिमवाप्नुयान् ॥१०१ आख्याय नृपतेर्वाऽपि तेन संशोधितः शुचिः। महापापानि सर्वाणि कथयित्वा महीपतेः ॥१०२

निष्कृतिं तद्भिरा द्यादन्यथा तेऽपि नत्ममाः। रोगार्ताङ्गं द्विजं वापि मार्गे खंदसमन्वितम्। हृष्टा कृत्वा निगतंकं ब्रह्मध्नः शुद्धिमा न्यान् १०३ असंख्यानं धनं दहवा विप्रेभ्यो वापि ग्रध्यति । अरण्ये निर्जने जप्ना शुध्येहें वहमंहिताम ॥१०४ सुरापम्य प्रवक्ष्यामि निष्कृति श्रोतुमद्य । सुरादस्तु सुरां तप्तां पयो वा जलमेव वा ॥१०५ तातं गोमृत्रमाज्यं वा मृतः पीत्वा विद्युध्यति । जटी वा चेलवामी वा ब्रह्महत्याव्रतं चरेत् ॥१०६ यद्यज्ञानान पिवद्विश्रो द्विजातिर्वा सुरां पुनः । पुनः संस्कारकरणान्छद्वेचदाह पराशरः ॥१०७ स्तेयं कृत्वा सुवर्णम्य शृद्धैय सर्वं द्विजातये। समार्यं, मुमलं राजं ख्यापयेरातेयकर्मकृत् ॥१०८ शक्ति चोभयतम्तीक्ष्णामायमं दण्डमेव च। खादिरं लगुडं वापि हन्यादेकेन तं नृपः ॥१०६ जीवन्नपि भवेच्छुद्धो मुक्तो वा तेन पाप्मना। मृतश्चेत्रेत्य संगुध्येदिति पाराशरोऽत्रवीत ॥११० अयः प्रतिकृतिं कृत्वा वह्निवर्णां च तां धमेत्। गुर्वगनागमं तस्यां लोहमय्यां तु शाययेत् ॥१११ वृषणौ पुनरुत्कृत्य नैर्क्युत्यामुत्सृजेत्तनुम्। स मृत: शुद्धिमाप्नोति नान्यतस्तस्य निष्कृतिः ॥११२ वृहत्पराशरस्मृतिः ।

संवत्सरं चरेत् कुच्छ्रं प्रजापत्यमथापि वा। चान्द्रायणं चरेद्वापि त्रीन्मासान नियतंद्वियः ॥११३ त्रते त क्रियमाणे वे विपत्तिः स्यात्कर्थचन । स मृतोऽपि भवेच्ड्रुद्ध इति धर्मविनिर्णयः ॥११४ अनिर्दिष्टस्य पापस्य तथोपपातकस्य च । तच्छुभ्यैपावनं कुर्याचांद्रं त्रतं समाहितः ॥११५ तिष्ठेन्मासं पयोऽशित्वा पराकं वा चरेद्वतम्। अनिर्दिष्टस्य पापस्य गुद्धिरेपा प्रकीर्तिता ॥११६ ब्राह्मणः क्षत्रियं हत्वा गवां द्यात्सहस्रकम् । वृषेणैकेन संयुक्तं पापादस्मात्प्रमुच्यते ॥११७ त्रीणि वर्गाणि शुद्धन्यर्थं ब्रह्मध्नस्य ब्रतं चरेत्। चान्द्रायणानि वा त्रीणि कुच्छाणि त्रीणि वा ऽऽचरेत् ।।११८ वैश्यं हत्वा द्विजश्चेवमव्दमेकं व्रतं चरेत्। गवां ह्येकशतं द्याचरेचान्द्रायणानि च ॥११६ कुच्छाणि त्रीणि वा कुयोद्वचनाद्विदुपामसी। ये हन्यरप्रदुष्टां स्त्रीं चातुर्वर्णां हिजातयः। शुद्रहत्या ब्रतं ते तु चरन्तः शुद्धिमाप्नुयुः ॥१२० शूद्रां ये चानुलोम्येन निह्न्त्यव्यभिचारिणीम । मुनयः शुद्धिमिच्छन्ति चन्द्रव्रतेन केचन ॥१२१ व्यभिचारात् ते हत्वा योपितो ब्राह्मणाद्यः। तिल्घेनुं वस्तमविं क्रमाइसुर्विशुद्धये ॥१२२

साध्वीना तु नरो दत्वा गवां चैव सहस्रकम्। चीर्णन गुद्धिमाप्नोति योपाहत्याव्रतं चरेत् ॥१२३ अथ गोन्नस्य वक्ष्यामि निष्कृति श्रोतुमर्हथ । यथा यथा विपत्तिः स्याद्वां तथोपपद्यते ॥१२४ गोघाती पंचगव्याशी गोष्ठशायी च गोन्गः । मासमेकं व्रतं चीत्वां गोप्रदानेन शुद्धचित ॥१२५ एकपादे तु लामानि इये श्मश्रनिकृत्तनम्। पाद्त्रये शिखावर्जं सशिखं तु निपातने ॥१२३ सशिखं वपनं कू वा द्विमन्ध्यमवगाहनम्। गवा मध्ये वसेंद्रात्री दिवा गाः समनुब्रजेन ॥१२७ तिष्टन्तीभिश्च निष्ठेत ब्रजन्तीभि सह ब्रजेन । पिवन्तीभिः पिवेत्तोयं संविशन्तीभिश्च संविशेत ॥१२८ शृंग-कर्णादिसंयुक्तं चर्मोत्कृत्य तदावृतः। विप्रोक सु चरेद्विक्षा स्वकर्म ख्यापयन्त्रती ॥१२६ गौष्नम्य देहि मे भिक्षामिति वाचमुदीरयेत । मासमेकं व्रतं कृत्वा गोप्रदानेन गुद्धचित ॥१३० चौर व्याद्रादिकेभ्यश्च मर्वप्राणः समुद्धरेत । गर्तप्रपात-पंकाच तथान्याद्पकारतः ॥१३१ भोजयेद्बाह्मणान्पश्चात्पुष्प धूपादिपूर्वकम्। द्बाद्वां च वृषं चंकं ततः शुद्धचित किल्विपात् ॥१३२ मुनयः केचिदिच्छन्ति विचित्रासु विपत्तिपु । यथासम्भवतन्तासु पृथक् पृथक् विनिष्कृतिम् ॥ (३३

शस्त्र-वस्तारम-मृत्पिण्ड यष्टि-मुष्टि-प्रधावनम् । योक्त्रेण नारणं रोधो वन्धनं विद्यद्ग्रयः ॥१३४ मह-पङ्क-प्रपातश्च दद्धव्याबादिभक्षणम्। क्षुत्त्रट्-रोगचिविस्मा च नथाऽतिदोह-वाहने ॥१३४ मृत्युस्थानानि चंतानि गवामति प्रधावनम् । प्रब्रुयात्रृथगेतेषु श्रायश्चित्तं पराशरः ॥१३६ उपेक्षणं च पङ्कादी तथीपविषमक्षणे। वक्ष्यमाणक्रमेर्गतच्ड्रणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१३७ शस्त्रेण त्रीणि कुच्छाणि तद्वै वा समाचरेत । अश्मना हं चरेत्कुच्छं मृत्पिण्डे नापि कुच्डकम् ॥१३८ यष्टचाघाते चरेत्कुच्छं माक्षानमुख्या तु तचरेत्। योक्त्त्रण पादमेकं तु तारणे पादमेव च ॥१३६ रोधने कुच्ड्रपादे हे कुच्ड्रमेकं तु बन्धने । कृपपाते चरेत्कुच्छमधं वाप्यां समाचरेत् ॥१४० गोशत्कृत्पिण्डवाते च प्राजापत्यं चरेद्द्विजः। क्षुत्तड् रोगचिकित्सामु कुच्छमुत्प्रेक्षणे चरेन् ॥१४१ पतितां पङ्कलग्नां वा अवलिप्तां च यो नरः। स्वस्य चान्यस्य चोपेक्ष्य सार्धं कृच्छ्ं चरेच्छ्रिचः ॥१४२ एका चेद्रहमिर्वद्धा क्ष्रेडिता चेन्म्रियेत गीः। पादं पादं चरेयुस्ते इति पाराशरोऽत्रवीत ॥१४३ सुबद्धां येऽवलिंशाङ्गां पश्यन्तो नोपकुर्वते । घातनोत्प्रेक्षणं प्रोक्तं चरेयुस्ते व्रतं नराः ॥१४४

या गर्तादी विपद्यं त क्ष्रेडिता मम्प्रपत्य वा। पादे क्ष्वंडिनयोक्कं तत्कर्ता व्रतमाचरेन ॥१४५ प्रबद्धा रज्जुरोपण गोर्विपद्यंत यस्य सः। व्रतपादं चरेच्छु द्वेच किचिदद्याच दक्षिणाम् ॥१४६ योगामपालयत दुह्याद्ति वा वाहयेद्रवृपम् । यदि म्रियेन तहोप तदा कृच्छा हु माचरेन ॥१४० घासं यो न क्षुत्रार्तस्य तृपार्नस्य न वा जलम्। स्वीकृतस्य न चेद्द्याःम तत्पादव्रतं चरेन् ॥१४८ या तु बद्धा चिकित्मार्थं विशल्यकरणाय च। औष यादिप्रदानाय पिपत्ती नाम्ति पातकम् ॥१४६ विद्युत्पातादि-दाहाभ्या कुण्डम्य पननादिभिः। गोभिर्भिपत्तिमापन्नस्तत्र दोपो न विद्यते ॥१४० पालयन्पश्यनोऽरण्ये गौस्तु व्याचादिभिर्हना । अकुर्वतः प्रतीकारं कुच्छाधं तम्य पावनम् ॥१५/ श्वन शून्त्रेषु पालेषु तथान्यारण्यगामिषु । पाले संभापयत्युवैर्हन्यात्तत्र न दोपभाक् ॥१५२ गिभ गो गर्भशल्या तु तद्गर्भ तु विशल्यतः। यत्रतो गौर्विपद्यं त तत्र दोपो न विद्यते ॥१५३ गर्भस्य पातने पादं हो पादौ गात्रसंभवे। पादोनं ब्रतमाच्ये हत्वा गर्भमचेतनम् ॥१५४ अङ्ग प्रत्यंगभूतेन तहर्भे चंतनान्विते। द्विगुणं गोन्नतं कुर्यादेपा गोध्नस्य निष्कृतिः ॥१४४

वस्त्रास्त्रतासने गौश्च गलदामकदोषतः। पादयोर्वधने चैंव पादोनं ब्रतमाचरेन ॥१४६ घण्टाभरणदोषण गौश्चहंघमवाष्त्रयात्। चरेदर्ध ब्रतं तत्र भूपणार्थं च यत्कृतम् ॥१४७ गोविपत्ति-वधाशङ्की कुर्याद्यो नेव निष्कृतिम्। सतद्वोरोमतुल्यानि नरकाण्याविशेत्समाः ॥१५८ यःस्नात्वा पापसम्भीत विप्राराधनतत्वरः। तद्वत्तां निष्कृतिं कुर्याद्वतेनाः सोऽश्नुते शुभम् ॥१५६ अन्यन्त्राणित्रधस्याथ प्रवक्ष्यामि विशोधनम् । गजादिवधगुद्धचर्थं यद्धतं या च दक्षिणा ॥५६० हिन्तनं तुरगं हत्वा वृपभं ग्वरमेव च । वृषान्यं वा शतगुणं वृषं द्द्याद्यथाक्रमम्।।१६१ क्षणाहोनिष्क्रयं कृत्वा परगोवधकुन्नरः । तस्याथ निष्कृति कुर्याद्वधशुद्धिमपेक्षया ॥१६२ हंसं श्येनं कपि गृधं जल-स्थलशिखण्डिनम्। भासं च हत्वा स्युगीवः शुद्धैय देयाः पृथक् पृथक्।।१६३ हंस-सारस-चक्राव्ह-मयूर-मद्गु-**कुक्**कुटान् । आटी-पारावत-क्रोंच-शुकहा नक्तभोजनात् ॥१६४ मेपा-ऽजध्नो वृपं दद्यात्प्रत्येकं शुद्धये द्विजः। मनोपिणो वदत्त्येनां प्राणिनां वधनिष्कृतिम् ॥१६४ क्रोंच-सारस-हंसादिशिखि-सारसदुक्कुटान्। शुक-टिट्टिभसंघघ्नो नक्ताशी बकहा शुचिः ॥१६६

पारावत-कपोतघ्नः सारि-तित्तिर-चापहा । त्रिसंध्यांतर्जले प्राणानायम्य स्याच्छ्रचिर्द्धिजः ॥१६७ काकं गृधं च श्येनं च अन्यं क्रव्यादपक्षिणम्। हत्वा म्यादुपवासेन शुद्धिमाह पराशरः ॥१६८ मार्जारं मूषकं सपं हत्वाऽजगर-डिण्डिभी। शकराभोजनं दण्डमायमं च ददन शुचिः ॥१६६ मेपं च शशकं गोधां हत्वा कूमँ च शहकम । वार्ताकं गृंजनं जम्बा ऽहोरात्रोपोपणाच्छ्चिः ॥१७० वृकं च जंबुकं हत्वा तरक्षक्षीं तथा द्विजः। त्रिरात्रोपोपितः ग्रुद्धेचत्तिलप्रस्थप्रदानतः ॥१७१ द्विजः शाखामृगं हत्वा सिंहं चित्रकमेव च। कृत्वा सप्तोपवासान्स द्याद्बाह्मणभोजनम् ॥१७२ महिषोष्ट्रगजाऽश्वानां हत्वा चान्यनमं द्विजः। त्रिः स्नात्वा चोपवासेन शुद्धः स्यादुद्विजपूजनात् ॥१७३ वराहं यदि वा रोहं हत्वा मृगमकामतः। अफालकृष्टभोजी सन् नक्तंनेकेन शुद्धचित ॥१७४ अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि अस्पृश्यस्पर्शनादि्षु । अभक्ष्यभक्षणादौ च निष्कृतिं श्रोतुमर्ह्थ ।।१७५ उद्क्या ब्राह्मणी सृष्टा मातंगपतितेन च । चान्द्रायणेन शुद्धेयत द्विजानां भोजनेन च ॥१७६ कापाळिकादिकां नारीं गत्वाऽगम्यां तथा पराम्। भुक्त्वा विप्रस्तिहनं स्याच्छुद्धिःचंद्रव्रतेन तु ॥१७७

कामतस्तु द्विजः कुर्यादुक्तस्त्रीगमनं यदि । चंद्रवृतद्वयं शुध्ये प्राह् पाराशरो मुनिः ॥१७८ दुग्धं सलवणं सक्तून् सदुग्धान्निशि सामिपान् । दन्तच्छित्रान्सकृद्ंतान्युयक् पीतजलानि च ॥१७६ योऽचादुच्छित्रसाज्यं तु पीतरोपं जलं पिवेत्। एकंकशो विद्युद्धचर्थं विप्रः चंद्रवृतं चरेत् ॥१८० वासांसि धावतो यत्र पतन्ति जलविन्दवः। तदपुर्यं जलम्यानं नरकस्य शिलान्तिकम् ॥१८१ तत्र पीत्रा जलं विष्रः श्रान्तस्तृट्परिपीडितः । तदेनसो विशुद्धचर्यं कुर्याचान्द्रायणं व्रतम् ॥१८२ नटीं शैंॡिपकीं चैव रजकीं वेणुवादिनीम्। गत्वा चान्द्रायणं कुर्यात्तथाचर्मोपजीविनीम्।।१८३ गां नृपं चैव वैश्यं च शूद्रं वाप्यनुलोमजम्। क्षत्त्रियादिष्त्रियं गत्वा विष्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८४ ब्राह्मणान्नं दद्चजुदः शुद्रान्नं ब्राह्मणो दद्न्। द्वावप्येतावभोज्यात्री चरेतां शशिनो वृतम् ॥१८५ विप्रेणामंत्रितोऽविप्रः शृद्राहृतश्च योऽश्तुते । आमंत्रयितृ-भोक्तारी शुद् श्येतामेन्द्वेन तु ॥१८६ मामानार्पा च यो गच्छंन्मात्रा सह सगोत्रजाम्। मातुलस्य सुतां चैव विप्रश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८७ पीतरापं जलं पीत्वा भुक्तरोपं तथा घृतम्। अस्वा मृत्र-पुरीपे तु द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥१८८

सूनिहस्ता ब गोमांसमस्त्रामग्रमकामनः। पीत्वा चंद्रवृतं कुर्यात्पावनं शुद्धिदं परम् ॥१८६ साप्तिः सत्यंचयज्ञानयो न कुर्जीत द्विजाधमः। परपाकरतो नित्यं आत्मत्राकविवर्जितः ॥१६० अदाता च सदा लुख्यः म्वपचः पिकीर्तितः। यो द्विजोऽन्यान्नमश्राति स कुर्यादैन्द्रवं वृतम् ॥१६१ गणिका-गणयोग्ननं यद्ननं वहुयाजकम्। सीमान्तोन्नयने भूरःत्रा द्विजश्चान्द्रायमं चरेन ॥१६२ अजानन् सम्यगरनीयात्पुत्रजनमनि यो द्विजः । मोऽभक्ष्यमममश्नाति द्विजश्चान्द्रायणं चरेन् ॥१६३ महापातिकनामात्रं योद्याद्ज्ञानतो द्विजः। अज्ञानात्तप्तकुरु छुं तु ज्ञानाबान्द्रायगं चरेन् ॥१६४ प्रपात-त्रिय-बह्न यम्यू-प्रवज्योद्धन्यनाशकान् । च्युनो हत्र ह्ता च प्रत्यवासनिकाः स्मृताः ॥१६४ केचि रेतद्विशु रूथथमि न्छन्ति वृतमे र्वम् । दक्षिगां सन्दर्भा गां च दग्ध हिजभोजनम् ॥१६६ गृहद्वारेऽतिथौ प्राप्ते तस्याइत्वा समस्त्ते। अभोज्यमरानं तच भुक्त्या च न्द्रायगं चरेत् ॥१६७ सब्यहम्तिस्थिते दुर्भे यो द्विजः समुपरपुगेन्। असृस्यानेन तुल्यं च पीवा चान्द्रायणं चरेन ॥१६८ भु स्त्वा शय्यागतः पीत्वा विप्रश्चान्द्रायणं चरेत्। अभक्ष्येग समं तद्वे प्रायश्चित्तं समं भवेत् ॥१६६

आसनारूढपादः सन्वस्नस्यार्धमधः कृतम् । धरामुखेन यो भुंक्तं द्विजश्चान्द्रायणं चरेत्।।२०० उद्घृत्य वामहस्तेन यरिकचित्पिवते द्विजः। सुरापानेन तत्तुल्यं पीत्वा चान्द्रायणं चरेत् ॥२०१ स्पृष्टेन तेन संस्नायाद्यदि तच्छतमश्वते । चरन् चान्द्रायण शुद्ध्ये त्रीणि कुच्छाणि वा द्विजः ।२०२ अश्नीयाद्येन खुष्टेन उच्छिष्टं चाश्नुते हि सः। चरेचान्द्रायणं शुद्धेय त्रीणि कुच्छाणि च द्विजः ॥२०३ चान्द्रायणं नवश्राद्धे पाराको मासिके मतः। न्यूनाब्दे पादऋच्छ्रं स्यादेकाहः पुनराब्दिके ॥२०४ स्नानमन्येषु कुर्वीत प्राणायामं जपं तथा । यः स्वेरिणीनां च पुनर्भुवां च यः कामचारिद्विजयोषितां च। रेतोधृतां पाकमनाय द्याद्विप्रः स चंद्रव्रतकृष्ट्युचिः स्यात् ॥ वेश्मन्यज्ञातचांडालो द्विजातेर्यदि तिप्रति। ब्रह्मकूर्चं चरेन्मासं त्रिः स्नायी नियतेन्द्रियः २०६ स्नेहांश्च घृतनेलादीन्त्रस्वाणि चासनानि च। बहि: कुत्वा दहेद्गेहं संशुद्धो भोजयेद्द्विजान्।।२०७ गोविंशति वृषं चैकं तेभ्यो दद्याच दक्षिणाम्। इमं च निष्क्रयं ब्रुयुः केऽपि चौद्रायणत्रयम्।।२०८ अल्पपापस्य शुदुष्यर्थं चरेत्सांतपनं वतम् । इमं च निष्क्रयं दद्यादित्येके मुनयो विदुः ॥२०६

महापातक शुध्यर्थ मर्वा निष्कृतयो नरै:। नृप-प्रामेशविदितैः कुर्वाणैः शुद्धिराप्यते ॥२१० सुरामूत्र-पुरीपाणां लीढा त्वेकमकामतः। पुनः संस्कारकरणाच्छद्धंचदाह पराशरः ॥२११ अभक्ष्यभक्षणो विष्रस्तथैवापयपानकतः। त्रतमन्यत्प्रकुर्गीत वदन्यत्ये द्विजोत्तमाः ॥२१२ कुशा-ऽन्जा-ऽश्वत्थ-पालाश-बिल्वोदृन्बरवारिणा । पीतेन जायते शुद्धिः षडात्रण न संशयः ॥२१३ द्रोण्यम्यूशीर-कुम्भाभः श्वस्पृष्टं केशवारि च। पीत्वारण्ये प्रपातोऽयं पंचगव्यं निवच्यचिः ॥२१४ भाण्डस्थितमभोज्यान्नं पयो-द्धि-घृतं पिबन । द्विजातेमपवास स्याच्छद्रो दानेन शुध्यति ॥२१५ तत्तोयपीतजीणांगः तप्तकृष्यं चरेद्द्विजः। वांते तु तज्जले सद्यः प्राजापत्यं समाचरेन् ॥२१६ रजकार्यंबुपानेन प्राजापत्यं बुधै स्मृतम् । वान्ते जले तद्धं तु शूद्रः स्यात्पादकुच्रुकृत् ॥२१७ चाण्डालकूपपानेन महदेनः प्रजायते । गोमूत्रयावकाहाराः सुद्धं ययुर्दिवसैक्षिभिः ॥२१८ घृतं द्घि तथा दुग्धं गोष्ठे वाऽशीचसृतके। अभिचारस्य तद्भुस्त्वा मुस्त्वा वा शूरभोजनम् ॥२१६ द्रुपदां वा तिजो जप्त्वा मानस्तोकमथापि वा। श्च्रधातिपीडितः पश्चादिति प्राह पराशरः ॥२२०

सूतकात्रं द्विजो भुस्त्वा त्रिरात्रोपोषणाच्छ्रचिः। तोयपाने त्वसौ कुर्यात्पंचगत्र्यस्य चाशनम् ॥२२१ द्रोणाढकं तर्धं वा प्रस्थं प्रस्थार्धमेव वा। घृतमुच्डियुरसंस्र्रष्टं प्रोक्षणाच्छ्रचितामियात् ॥२२२ चमपकं शृतं पकं अन्नं काकाद्यपाहतम्। तद्यासस्थानसंयागात्यूतं हेमाम्युसिचनात् ॥२२३ केचिद्वदन्ति तज्ज्ञास्तु तस्याग्निनावचूडनम्। केचित्प्रणवयुक्तंन वारिणा प्रोक्षणं बिदुः ॥२२४ केश-कीटकसंदुष्टं अन्नं मक्षिकयापि च। मृद्गस्मवारिणा तत्र क्षेप्तत्र्यं गुद्धिकारणम् ॥२२४ उद्क्या ब्राह्मणी स्पृष्टा क्षत्रिण्यापि ह्युद्क्यया। अर्ध कुच्छं चरेत्पूर्वा तद्र्धमपरा चरंत्।।२२६ प्राजापत्यं विशःपत्या विट्पन्नी पादमाचरे। शुद्राखुरा चरेत्कुच्छ्रं शूद्री दानेन शुद्धचित ॥२२७ ब्राह्मण्या ब्राह्मणी स्पृष्टा वेर्क्योर्क्यया च ते । चरेतां पादकुच्छ्रे द्वे कृते स्नाने विशुद्धचित ॥२२८ ब्राह्मणी क्षत्रियां स्ट्रपृत्वाह्मणीवनमाचरेत्। अपरा क्षत्रियायास्तु वक्तव्यमेवमन्ययोः ॥२२६ रजस्त्रला तु संस्रृष्टा श्व-विट्-शुद्रैश्च वायसै:। स्नानं यावन्निराहारं पंचगव्येन शुद्धचित ॥२३० उदक्या ब्राह्मणी स्पृता मेद-मातंग-भिल्लकैः । गोमूत्रयावकाहारा षड़ात्रेण च शुद्धचित ॥२३१

उच्छिष्ठो ब्राह्मणः स्पृष्ट्रा द्विजातिस्त्री रजस्वलाम्। प्राजापत्येन संशुद्धश्वचीर्णकृष्ठ ण वा पुन । २३२ वदन्ति कवय केचिदेतहोपविश्रद्धये। प्राणायामशतं चास्य पंचगव्यस्य भक्षणात् ॥२३३ उच्छिप्रो ब्राह्मण स्पृष्टो ब्राह्मण्युदक्यया चरेत्। प्राजापत्यं च गायत्रीमयुतं नियतं सकृत् ॥२३४ क्षत्रिण्यादिभिकचित्र्ष्टे संस्पृष्टो व्रतमाचरेत्। अनुन्द्रिष्टम्तु तत्त्वर्शे स्नानकर्म यतः स्मृतम् ॥२३४ रजकादिकसंस्पर्शे द्विजनमोदस्ययोषित । प्राजापत्यं चरेद्विप्रा अन्याश्चरेयुरंशतः॥२३६ उरक्या ब्राह्मणी गत्वा क्षत्रियो वश्य एव च। त्रिरात्रोपोषितः प्राश्य गव्यमाज्यं शुचिर्भवेत् ॥२३७ क्षत्रिणीं चैव वैश्यां च जानन् गत्वा तु कामतः। चरेत्सान्तपनं विप्रस्तत्पापस्य विमोक्षकृत ॥२३८ वंश्या च क्षत्रियो गत्वा वैश्यश्च शूद्रिणी तथा । प्राजापत्यं चरेतां ताविति प्राह पराशरः ॥२३६ उच्जिष्टा ब्राह्मगी स्प्रुग शुना वा वृषलेन वा। अशुद्धा वा भवेत्तावद्यावन्नस्यादुपोषणम्। शुद्धा भगति सा तावद्यावत्पश्यति शीतगुम् ॥२४० विप्रोष्य स्वजनी वश्या महिष्युष्टीमजा खरीम्। प्राजापत्यं चरेद्रत्वा ह्येकैकस्य विशुद्धये ॥२४१

शुद्री तु ब्राह्मणो गत्या मासं मासार्धमेव वा । गोमूत्रयावकाहारो मासार्धेन विद्युध्यति ॥२४२ नृपोऽप्यम्बजनां गत्वा प्राजापत्यं समाचरेत्। वैश्यपत्रीमसौ गत्या कृत्या सांतपनं हाचिः ॥२४३ शुद्धीं तु क्षत्रियो गत्वा गोमूत्रयावकाशनः। दशभिक्षितसैः शुद्धेच उर्पयःसोऽध्येवमेव हि ॥२८४ उत्तमागमनेऽनार्याः सर्वे ते स्युः करामिना । महापर्थं च संत्राज्याः खरयानेन योपित ॥२४४ चाण्डालीमेव भिहानामभिगम्य सकृतिखयम्। चाण्डाल-मेद्-भिह्नानामभिगम्य स्त्रियं नरः। शुद्धेच पयोत्रतं कुर्यान्मामार्धमवमर्वणम् ॥२४. पतितां च द्विजायश्वाभी प्राजापत्यं चरेद्द्विजः। तैलिकस्य क्षियं गत्वा तथा मद्यकृत:क्षियम् ॥२४७ अज्ञानाभिगतौ स्त्रीगां पुंसामनुलोमजस्य च । इमां निष्कृतिमेच्छन्ति घृतयोनि च केचन ॥२४८ पितृत्य-श्रातृजायां च मातृष्वमारमेव च। भगितीं चैव धात्रीं च गत्वा कुच्छ ममाचरेत ॥२४६ षण्मामान केचिदिच्छन्ति संगम्यैता विगुद्धये । कुच्रु धर्मविदो विप्राः शुद्धि तत्त्रार्थवेदिनः ॥२५० गुरुपन्नी द्विजो गरत्रा मातृष्वसृ-दुहितृपु। क्षिपेच्छुध्यर्थमात्मानं मुममिद्धे-हुताशने ॥२५१

उपाध्याय-नृपा-ऽऽचार्य-शिष्य-योपिद्गमी नरः। पण्मासान्कुः ज्वरणान्छुद्धिमाह पराशरः ॥२५२ कृतचाण्डालसंम्पर्शः शकृनमृत्रकरो द्विजः। षड्रात्रोपोरणान्खुद्रंयद्भुत्तवा ऽऽचान्तो नवद्युभिः ॥२४३ उध्वीन्छिष्टम्य संगुद्धेचे केचित्प्राजापतिव्रतम्। वराकं पञ्चगव्यं च कचित्राहुमनीषिणः । २५४ उच्छिपो ब्राह्मणः स्पृपु उच्छिप्टेन द्विजेन तु । आचम्यंव तु शुःयेतां बिष्णुनःमानुकीर्वनात् ॥२५५ क्षत्रियेण तु संग्रुरो बाह्मणा नक्तभोजनात्। वैश्वेन चैव संस्पृटा नक्ताशी पंचगव्यपः ।,२५६ श्रृद्रेण तु च संस्पृहो एकरात्रोपवासकृत्। उच्डिउँ: पुनरेतेनु प्रोक्तं द्विगुणमर्हति । २५७ उच्डिङ शुद्रमंस्युटः शुना वापि द्विजोत्तमः। उपोष्य पंचगव्येन हाद्धिः स्यादपरे विदुः । २५८ अनुचित्ररोऽपि यत्म्परात्मित्ताति वर्णी विशुद्धये । उच्डिप्टः तम्य संस्पर्शे चरेत्प्राजापतित्रतम् । २५६ रजकाद्यन्यज्ञैः स्ट्रष्टः शुद्धेचतस्यार्धमाचरन्। उद्दया ब्रह्मणी कुच्छात्प्राजापत्याद्थापरे । २६० उद्क्या ब्राह्मणी स्र्टा शुना वा वृपलेन वा। तावत्तिष्ठेन्निराहारा स्नात्वा कालेन शुद्धचित । २६१ उद्भया सूतिका म्लेच्छ दंशर्शेऽस्तमिते रवी। दिवाहृताम्बुनास्नात्त्रा शुद्धश्रद्धिप्राप्रिसन्निधौ ॥२६२

वदन्त्यपां पवित्रत्वं दिवा सूर्ये।शु-मारुतेः। चन्द्यित्वा पवित्रचं मन्दार्करश्मि-वायुभिः। मुनयो धर्मवेत्तारो रात्रौ चंद्रांगु-रश्मिभः ॥२६३ सकृत्र ब्राह्मणः प्रारय षडहं पंचगव्यकम्। हेम्रो द्वाच पण्मासान्द्रवा गां च विशु द्यति ॥२६४ पंचाहेन नृपः शुद्धेयत्यंचमासान्द्रद्य गाः । चतुभिर्दिवसैर्वैश्यश्रतुर्मासान गवा सह ॥२६४ ज्यहेण तु चतुर्थस्तु ददनमासत्रयं च गाम । सकृत्मपर्शाद्भवेच्छुद्ध एतदाह पराशरः ॥२६६ रक्तं निःसार्य बिप्रस्य कामनोऽकामतोऽपि वा । गायत्र्यष्टमहस्त्रेण जातेन तु भवेन्छ्रचिः ॥२६७ यो यस्य हरते भूमिं हेम गामश्रमेव वा। स तं यत्रात्प्रसाद्यापि तदुक्तः शुद्धिमाप्नुयान् ॥२६८ आख्याय भूभृते वापि तेन संशोधितः शुचिः। द्रव्यदण्डाद्विमुक्तिर्वा तपसा वा शुचिर्नरः ॥२६६ निराहाराजायते च एतदाहुमनीपिण । विनिर्गता यदा शूद्रादुदक्यान्ते व्यवस्थिताः ॥२७० तदा द्विजैस्तु द्रष्टव्य इतिधर्मविदो विदुः। दुःस्वप्रदर्शने चेव वान्ते वा क्षुरकर्मणि। मैथुने कटघूमे च सद्यः स्नानं विधीयते ॥२७१ चितां च चितिकाष्टं च यूपं चण्डालमेव च। स्षृष्टा देवलकं चैव सवासा जलमाविशेत् ॥२७२

श्व-जंबुक-वृकारौश्च यदि दृष्टो भवेन्नरः। सचैलो जलमाविश्य दत्वाज्यं गुद्धिमहीत ॥२७३ शुनो घाणावलीढस्य नम्वैर्विलिम्वितस्य च । यतीनां दर्शनं कार्यमिप्रना चोपचूलनम् ॥२७४ अवज्ञां तु गुरोः कृत्वा नक्तं तस्य च भोजनम् । नक्षत्रदर्शनं त्यन्य इति प्राह पराशरः ॥२७५ कुमारी तु शुना स्पृष्टा जम्बुकेन वृकेण वा । यां दिशं ब्रजते सूर्यम्तां दिशं सा विलोकयेन ॥२७६ दिवसे तु यदा मामे शुना खुटो भवंदद्विजः। विप्रं प्रदक्षिणीकृत्य घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२०० चातुर्वण्यांत् या नारी कृताभिगमनापि च। प्रक्षाल्य नाभितो ऽधम्ताद।चान्तम्तु श्रुचिनरः॥२७८ विप्रे मैथुनिनि स्नानं कचिद्राज्ञि शिरोविना। नाभि यावन् विशास्त्रइहिगशौचोऽन्स्यजः शचिः ॥२७६ अभिगच्छन्सुतार्थं च ऋतावृत्तौ स्त्रियं द्विजः। न च कुर्वीत स स्नानं नाभेरधस्तु शोधयेन् ॥२८० त्वङ्कारं तु गुरोः कृत्वा हंकारं तु गरीयसः। प्रसाचैतावनश्नस्यात्स्रात्वा शुद्धो द्विजोत्तमः ॥२८१ विवादे शास्त्रतो जित्वा जयो यस्य न जायते। श्मशाने जायते तस्य तमोभावेन दुष्कृतम् ॥२८२ ताडियत्वा तृणेनापि स्कन्धे वाऽऽबन्य रज्जुना। कलहादिप निर्जित्य तं प्रसाच विश्वध्यति ॥२८३

अवगूर्य चरेन् कुच्छुमतिकृच्छुं निपातने। कृच्छाति कृच्छोऽसृक्पाते कृच्छोऽस्यान्तरशोणिते ॥२८४ प्रेतमृद्रा च दम्ध्वा च शुद्धिः स्नानाद्दिजन्मनाम् । उपवासेन चैंकेन ब्रह्मकूर्चं च पावनम् ॥२८४ प्रेतीभूतं च यः शूरं ब्राह्मणो ज्ञानदुर्बलः । अनुगच्छेत्रीयमानं त्रिरात्रमञ्चिभवेत् ॥२८६ त्रिरात्रे तु ततः पूर्गे नदीं गत्रा समुद्रगाम । प्राणायामशनं कुःवा घृतं प्राश्य विद्युव्यति ॥२८७ अंगुल्या दन्तकाष्ठं च प्रत्यक्षलवणं तथा। मृत्तिकाभक्षणं चैंव तुल्यं गोमांसभक्षणम् ॥२८८ कुत्वा उन्यतममेतेपां शुध्यर्थमात्मनो हितम्। चरेच्द्रशिव्रतं विप्र इति प्राहुर्मनीपिणः ॥२८६ केचिद्वदन्ति मुनयः कुच्छ्रं सान्तपनं तथा। तदर्धं पादऋच्क्रं वा प्राहुरन्ये द्विजोत्तमाः ॥२६० अर्धोिच अष्टो द्विजोऽज्ञानाद्यात्यघं नहि किंचन। भुत्तवाऽनाचन्य वा कुर्याद्विण्मूत्रं केह निष्कृतिः ? ॥२६१ नक्तोपवासी बाह्यं तु अन्यत्र द्विगुणं चरेत्। अष्टोत्तरशतं जस्त्रा गायत्र्याः शुद्धिमर्हति ॥२६२ अर्धोच्छिष्टो द्विजः सृष्टः श्चना वा वृपलेन वा। नक्षत्रदर्शनेऽभ्रीयात्रंचगन्यपुरस्तरम् ॥२६३ अर्धोच्डिप्राध्य विप्राद्याः श्वोच्डिप्रष्टैः शूद्रसंख्राः। उपवासेन शुद्धेचयुः पंचगव्यस्य पानतः ॥२६४

श्व-काकी-काकसंस्पृष्टो भुञ्जानो ब्राह्मणश्च यः। तद्श्रस्य परित्यागं कृत्वा स्नानेन शुध्यति ॥२६५ विना यज्ञोपवीतेन भोजनं कुरुते यदि। अथ मूत्र-पुरीप वा रेत सेचनमेव वा ॥२६६ त्रिरात्रोपोपितो विप्र. पादकुच्छ तु भूमिपः। अहोरात्रोपितो वश्यः ग्रुद्धिरेपा पुगतनी ॥२६७ विप्रः क्षुत्कृत्य निष्ठीव्य कृत्वा चानृतभापणम् । वचनं पतितः कृत्वा दक्षिणं श्रवण स्पृतन् । २६८ विप्रस्य दक्षिणं कर्णे नित्यं वसति पावकः। अंगुष्ठं दक्षिणे पाणी तम्मात्तंन च स स्र्गेत् ॥२६६ प्रक्षणं शशिनोऽर्कस्य ब्रद्धश-विष्णुसंस्मृतिम् । गायज्याः शत साहस्रं सर्वेपापहरं स्मृतम् ॥३०० गायत्र्यष्टसहस्रं तु ब्रह्महत्याविशोधनम् । शुद्रवयं द्विजाग्यस्य गायत्र्यप्टमहस्रकम् ॥३०१ राज्ञः पंचसहस्रं तु स्याद्विशश्च तद्र्धकम्। योगेन गतशीलस्तु यदि वा स्यात्मदा नरः ॥३०२ विप्रश्र सम्मताचारम्तावुभौ सर्वदा शुची। मक्षिकां मन्ततीर्धारा विशुपो ब्रद्मविन्दवः। स्त्रीमुखं बालवृद्धौ च न दुष्यन्ति कद्।चन ॥३०३ आत्मस्रीह्यात्मबालश्च आत्मवृद्धन्त्रथेव च । आत्मनः शुचयः सर्वे परेपामशुचीनि तु ॥३०४

उत्पन्नमातुरे स्नानं दशकृस्त्वस्त्वनातुरः।
स्नात्वा स्वात्वा स्वृशेदेनं ततः शुद्रेचत्स आतुरः॥३०६
विवाहोत्सव-यज्ञेषु संप्रामे जलसंप्रवे।
पलायने तथारण्ये स्पर्शदोपो न विद्यते॥३०६
आद्यसङ्गी समो दोपी सङ्गसङ्गी तद्र्यतः।
तत्सङ्गी तृनीयभागी तुनीयस्तु न दोपभाक्॥३०७
आद्यस्प्रपृभवत्स्नानं द्वितीयस्यापि तत्मृतम्।
शिरः प्रोक्षणमन्येपामन्यत्राऽऽचमनं स्मृतम्॥३०८
पलाश-शिशिपाकाष्टदन्तभावनकृत्वरः।
दिवाकीर्तिसमस्तावद्यावद्वां नंव पश्यति॥३०६

पद्माश्म-लोहं फल-काष्ठ-चर्म-भाण्डस्थतोयः स्वयमेव शौचात्। पुंसां निशाम्बध्वनि नि.सखानां स्त्रीणां च शुद्धिर्विहिता सदेव ॥३१०

स्नानं स्ष्रष्टेन येन स्यात्काष्ट्रा येदि तत्स्पृशेत । नावारोहणवत् स्पर्शे तत्रोपस्पर्शनाच्छुचिः ॥३११ स्लेच्ब्र-ल्ताशनास्पर्शे क्षेत्रं वा यदि वा स्थेत्रे । उपस्पृशेत् शिरः प्रोक्ष्य संगुद्धो जायते द्विजः ॥३१२ वस्त्रसंस्पर्शने तस्य सचलाङ्गावगाहनम् । अङ्गस्पर्शेनवत्तस्य वदन्ति द्विजसत्तमाः ॥३१३ चाण्डालोदकसंस्पृष्टः शुद्धः स्नानेन जायते । तथा तद्वाण्डसंस्पर्शे स्नानमाहुर्मनीपिणः ॥३१४

उद्क्या स्पर्शने स्नानमंशुकेनान्तराऽपि वा। तत्रष्ट्रेडिप भवेत्स्नानं तुल्याः सर्वा रजस्वछाः ॥३१५ संस्पर्शे मेद-भिल्लानां तथैव ब्रह्मघातिनाम । पतितानां च संम्पर्शे स्नानमेव विधीयते ॥३१६ रजस्वलादिसंस्पर्शे उपस्पर्शनमेव च। उद्स्यायास्त्रितीयेऽह्नि केचिदाचमनं विदुः ॥३१७ प्रथमेऽहिन चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघानिनी । वृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थे तु विशुध्यति ॥३१८ पुरुद्दतः पुरा देत्यं त्रिशीर्पाक्यं जघान यत्। तद्वधं ब्रह्महत्यायाः स्त्रीणां स प्रदर्गे फलम् ॥३१६ आसां तत्प्रभृति स्त्रीणामस्पृश्यत्वं सदा भवेत्। अंशेर्दिनत्रयं ह्यंतच्छक गुर्वादिकल्पितम ॥३२० शबराश्च पुलिन्दाश्च केंवतीश्च नटास्तथा। एतान् रजकसन्तुल्यान केचिदाहर्मनीपिणः ॥३२१ रजक्याद्यभिगम्यत्वे वैश्या गो-मृत्र यावकम्। चरन्ति षड्गुणाहोभिः कृन्छं वा द्विगुणं भवेत ॥३२२ ब्रह्म क्षत्रिय विङ्जाता शूद्रास्तेऽनुक्रमेण तु । क्रमातिक्रमतश्चान्ये म्लेच्छान्त्यवर्णमंभवाः ॥३२३ भोज्याशनास्तु सच्छ्द्रा अभोज्यान्नाः परे म्मृताः। आमाशनानि भोज्यानि शृतमुच्त्रिष्टमुच्यते ॥३२४ दास नापित गोपाल कुलमित्रा ऽर्घसीरिणः। भोज्याना नापितश्चेव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥३२४

पर्युषितं चिरस्यं च भोष्यं स्नेहसमन्वितम्। यव गोधूम माषाणां स्नेह गोरसविक्रयः ॥३२६ आपद्गतो द्विजोऽश्रीयादुगृह्वीयाद्वा यतस्ततः। न स लिप्येत पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥३२७ ज्ञापितं शूद्रगेहेऽन्नं कटु पक्वं च यद्भवेत्। नीत्वा नद्यन्तिकं तद्वें प्रोक्ष्य भुंजन्न दोषभाक् ॥३२८ गायत्र्योङ्कारपृताभिः केचिद्द्भिश्च प्रोक्षणम्। मन्यन्ते विष्णुमन्त्रंण कलिधमं समाश्रिताः ॥३२६ आमं मांसं घृतं क्षीद्रं स्नेहाश्च फलसम्भवाः। म्लेन्ज्रभाण्डस्थिता हाते निष्कान्ताः शुचयः समृताः ॥३३० आभीरभाण्डसंस्थानि पयो दिध घृतानि च। तावत्पृतं हि तद्भाण्डं यावत्तत्र तु तिष्ठति ॥३३१ पूर्तानि सर्वपण्यानि कारुहस्तस्थितानि च। अदत्तानि च भक्ष्याणि यन्नतस्तु द्विजातिभिः ॥३३२ सर्वस्वोपस्करैर्युक्ता शय्या रक्तांगुकानि च। पुष्पाणि चैव शुश्यन्ति प्रोक्षितानि च संशयः ॥३३३ अलेपं मण्मयं भाण्डं भाण्डसंचयमेव च। प्रोक्षणादेव शुध्येत सलेपमग्नितापनात् ॥३३४ कास्यं च भस्मना शुध्येत् मद्यमांसविवर्जितम्। सुरा मूत्र **पु**रीषाभ्यां शृष्यते ताप लेपनैः ॥३३४ अलिप्तं मद्य मुत्राद्यैस्ताम्रमम्लेन शुध्यति । रजसा स्त्री मनोदुष्टा नद्यश्च वेगस्युताः ॥३३६

अवंगमि यद्भूरि सरिद्वारि हृदे च यत् ॥ । सकृदम्पृश्यसंस्पृष्टं न दृष्यित च तत् हृदः ॥३३७ सत्येन पूयते वाणी धर्मः मत्येन वर्धते । तस्मात्सत्यं हि वक्तव्यमात्मशृष्ये द्विजातिभिः ॥३३८ रथ्याकद्मतोयानि नावः पथि तृणानि च । मारुतार्केण शृष्यन्ति निशि चंद्रर्क्षमारुतः ॥३३६ यथामम्भवमुक्तानि प्रायश्चित्तानि सत्तम । उक्तानुक्तानि सर्वाणि ज्ञातव्यानि द्विजानिभिः ॥३४० प्रायश्चित्तं न यत्प्रोक्तं धर्मशास्त्रप्रवक्तृभिः । द्विजैस्तत्र प्रकल्यं स्याद्धमेशास्त्रार्थचन्तर्कः ॥३४१

> उक्ता मया निष्कृतयः समासान् संशुद्धये वर्णचतुः यस्य । व्रतानि तेषां विहितानि यानि वक्ष्याम्यतम्तानि निवोययेति ॥३४२

इति श्री बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रं मुत्रतप्रोक्ताया मनुम्मृत्यां प्रायक्षित्तनिर्णयो नाम अष्टमोऽध्यायः।

## नवमोऽध्यायः।

## ।। अथ व्रतोपवामविधिवर्णनम् ॥

त्रतात्यथ प्रवक्षामि ह्यैन्द्वादिक्रपेण तु । पापक्षयः कृतेर्यैः स्याद्धमार्थे तु महोद्यः ॥१ चन्द्रवृध्या उरनीयात् प्रासान् शुम्ले कृष्णे च हासयेत्। चन्द्रक्षयं न भोक्तव्यं यवमध्यं शशिव्रतम् ॥२ विपरीतक्रमेणाश्नन्नाद्वादाय हामयेन्। वर्धयेदन्यपक्षे तु पिपीलीमध्यमेन्द्रवम् ॥३ अष्टावष्ट्री समरनीयात्सव्रती प्रतिवासरम् । अष्टवासिकमित्येतचान्द्रायणमथापरम् ॥४ शतद्वयं तु पिंडानां चत्वारिशस्ममन्वितम्। मासेनैवोपभुजीत चांद्रायणमथापरम् ॥५ चतुरः प्रातरश्नीयात्सायं प्रासांश्च तावता । शिशुचांद्रायणं तज्ज्ञै. प्रोक्तं पापप्रणोदनम् ॥६ मध्यन्दिने यदश्नीयादृष्टी प्रासान् दिनंप्रति । चान्द्रायणं यतीनां तु वृतज्ञैः परिकीर्तितम्।।७ शिखण्डसम्मितान् प्रासान् चन्द्रवृतो प्रयोजयेत्। दोपः स्यादन्यथाभावे नस्मादुक्तं समाश्रयेत् ॥८ एकभुक्तेश्च नक्तेश्च तथैवाऽयाचितैरपि। उपवासैश्रतुर्भिश्च कृच्छः षोडशभिर्दिनैः।।६

उष्णं जलं पयः सर्पिरेकैकं च ज्यहं पिवंत । वायुभक्षस्त्र्यहं तिब्ठेत्तप्तकुच्छोऽयमुच्यते ॥१० पलमेकं जलं पीत्वा पलमेकं तथा पयः। पलमेकं तथाज्यस्य मानमेतत्प्रकीर्तितम् ॥११ एतत्तुत्रिगुणं तज्ज्ञेर्महासांतपनं ग्मृतम् । प्राजापत्यं च **कुच्छ**ं च पराकित्तगुणो महान ॥१२ पद्मोदुम्बर-राजीव-बिल्वपत्रं कुशोदकम् । प्रत्येकं प्रत्यहं पाश्य पर्णकुच्छ् प्रकीर्तितः १३ प्रत्येकं प्रत्यहं गव्यं मूत्रं शक्तत्पयो दिध । घृतं कुशोदकं पीत्वा उपवासश्च तत्समः ॥१४ एभिः सप्राशनेहकं दिव्यं सान्तपनं द्विजै:। समाहेन तु क्रुच्छोऽयं मुनिभिः परिकोर्तितः ॥१५ एतत्तु त्रिगुणं तज्ज्ञैर्महासान्तपनं स्मृतम् । प्राजापत्यं च ऋच्छ्रं च पराकित्रगुणो महान्।।१६ एकभुक्तं च नक्तं च अयाचितविशेषण । पादकुच्छोऽयमु(इष्टः खिघ्नं प्राजापतिवृतम् ॥१७ अयमेवातिकृच्छुः स्यात्पाणिपूता(रा)न्नभोजनः । कुच्छातिकुच्छ्रः पयसा दिवसानेवविशतिः ॥१८ दिनैर्द्वादशभिः प्रोक्तः पराकः समुपोषितैः। एक-द्व-चर्-त्र्यहादीनि नक्तं चैव यथाश्रुतम् ॥१६ सम्प्राश्य तिलिपण्याकं तकं तोयं कुशोदकम्। पश्चमे ह्युपवासः स्यात्सीम्यकुच्छोऽयमुच्यते ॥२०

चान्द्रायणे च कुच्छे च त्रिकालं स्नानमाचरेत्। स्नानद्वयं तु कर्तव्यं वतेष्ववापरेषु च ॥२१ शक्ति ज्ञात्वा शरीरस्य स्नानं कर्यं तथा वतम् । असामर्थ्ये तु कायस्य याच्यः पर्षद्नुप्रहः ॥२२ ब्रह्मकूर्चं प्रवक्ष्यासि वृतानामुत्तमं वृतम् । कृतेन येन मुच्यन्ते प्राणि**नः** सर्वकिल्विपे. ॥२३ नीलिकायाम्तु गोमूत्रं कृष्णायाः शकृदुद्धरेत् । पयस्वितिसुवर्णायाः पीतायाश्च तथा द्धि ॥२४ कपिलाया घृतं तद्वन्महापातकनाशनम्। अभावे सर्ववर्णायाः कपिलायाः समुद्धरेन ॥२४ पलानि पञ्च मूत्रस्य अङ्कुरार्धं तु गोमयम्। क्षीर सप्तपलं प्राह्मं तथा दध्नः पलत्रयम् ॥२६ घृतं चाष्ट्रपलं बाह्यं पलमेकं कुशाम्भसः। मन्त्रेः सर्वाणि चैतानि अभिमन्त्र्याथ मिश्रयेत् ॥२७ गायज्या चैव गोमृत्रं मत्धद्वारेति गोमयम्। आप्यायस्वेति वै क्षीरं द्धिकाव्णस्तथा द्धि ॥२८ तेजोऽसि श्क्रमित्याज्यं देवस्य त्वा कुशोदकम्। निष्त्रं पंचगव्यं च पात्रेषु क्रमतः पिवेतु ॥२६ मध्यमेन पलाशस्य तत्पत्रण पिवेद्द्विजः। द्वितीयं पद्मपत्रोण ब्रह्मपत्रोण चापरे ॥३० चतुर्थं ताम्रपाञेण तत्पिबेद्वतऋद्द्विजः। आलोड्य प्रणवेनैव निर्मथ्य प्रणवेन च ॥३१

44

उद्घृत्य प्रणवेनैव प्राशयेत्प्रणवेन तु । विष्णुं संस्नापयेद्भक्तया पंचगवयेन चार्चयेन ॥३२ कूष्माण्डेर्जुहुयानमंत्रेः पश्चगव्यं हुताशने । सञ्याहृत्या च गायज्या तथेव प्रणवेन च ॥३३ ब्रह्मकूर्चिमदं प्रोक्तं वृतं पंचित्नात्मकम्। पश्चगव्यं च सम्प्राश्य पंचरात्रोपवासकृत् ॥३४ नकेन वा समश्नीयाद्यावच्छक्त्या दिनानि च । पाश्वाहिकं पारणकं वृतम्यास्य प्रकीर्तितम् ॥३४ निर्देहेत्सर्वपापानि ब्रह्मकूर्चमिदं स्मृतम् । अन्ये वद्नित कत्रय उपवासविना वृतम् ॥३६ जप-होमादि कर्तव्यं देवनार्चनमेव वा। प चगव्यं च होतव्यं प चगव्यं समरिनयात् ॥३७ ब्राह्मणान् भोजयेत्तावद्यावत्कुर्यादिदं वृतम् । यत्वगिक्षगतं पापं विद्यते पुरुषस्य च ॥३८ बद्मकूची दहेत्मवं समिद्धोऽप्रिरिवेन्धनम् ॥३६ यावन्ति पापानि भवन्ति पुंसां देवादकामादपि कामतो वा। उकानि तेपां मुनिना वृतानि शुध्यर्थमेतान्यपराणि चेवम् ॥४० धर्मार्थमेतानि कृतानि पुंसां दसुर्दिनौकस्त्वित्रमुक्तसिद्धिः। अत्रापि पूज्यत्वमरोपलोकैस्तेजःशरीरी विचरन् विभाति ॥४१ यस्यास्ति भीतिः पुरुपस्य पापादि च्छेच कर्तुं क्षयमेनसां च। प्रीत्येव तं च वतदानजव्यं प्रोहिश्यमेतम् तदन्यतम्तु ॥४२

वद्नित दानं मुनयः प्रधानं कञ्जौ युगे नान्यदिहास्ति कि श्वित्। विशोधनं सर्वमिहापि पूज्यं वदामि तस्माद्थ दानधर्मान्।।४३

इति बृहत्पागशरीये धर्मशास्त्रे मुवतप्रोक्तायां संहितायां ऐन्द्रवादिवतनिर्णयो नाम नवमोऽध्यायः ॥ ६॥

## दशमोऽध्यायः।

।। अथ सर्वदानविधिवर्णनम्।।

दानानि विधिना साथ जगौ यानि पराशरः।

त्यासम्य तानि वक्ष्यामि श्रृयतां द्विजसत्तमाः ॥१

दानेन प्राप्यते स्वर्गो दानेन सुखमश्नुते।

इहामुत्र च दानेन प्रच्यो भवति मानवः॥२

न दानान परमो धर्मिश्रपु लोकेषु विद्यते।

तस्मादानं प्रदातव्यं यथाशत्त्या सदा नरैः॥३

मुमुश्रवोऽपि योगीशा भिश्रादानोपजीविनः।

अत्रं तोय-समायुक्तं पृथगेते तथैव च ॥४

तोयमत्रं च वाच्छन्ति किं पुनः सानुरागिणः।

सर्वोपस्करसंयुक्तं गृहं च गृहमानुकम्॥६

वृषादियुक्तं सीरं च वृपमेकं तथैव च ॥

गृह्याप्रिना प्रदानेन गोप्रदानं तथैव च ॥६

सौरभेयीं द्विवक्त्रां च तिलघेनुमतः परम्। घृतधेनुं पयोवेनुं हेमधेनुं सुविस्तरम् ॥७ कुःणाजिनप्रदानं च वाजिम्यंद्रनमेव च। एकवाजिप्रदानं च तथा तथा परिप्रहः ॥८ सुखासनानि यानानि हरित गर्थ तथा गजम्। एकहस्तिप्रदानं च कन्यादानफलं तथा ॥१ भूमिदानफलं चैव तुलापुरूपमेव च। हेम-रूप्यप्रदानं च मणिकादिसमन्वितम ॥१० त्रपु-सीसक-ताम्रादिसर्वधातुप्रदानवन् । नक्षत्र-तिथि-योगेषु यद्यत्तद्दानजं फलम् ॥११ विद्यादानफलं चैव प्राणदानं तथैव च । अभयादिकद्वानानि प्रतिप्रहे यथा विधिः ॥१२ इष्टा पूर्ती फलोपेती सर्व विस्तरनो मया। शक्तिसूनोः श्रुतं पूर्वं क्रमात्कथयतः शृणु ॥१३ गोहिरण्यादिदानानां सर्वेषामप्यनुत्तमम । अन्नदानमपेक्षन्ते सर्वेऽपि हि दिवौकसः ॥१४ अन्नार्थं मातरिश्वायमन्नार्थं च तथाऽनलः। अन्नार्थं सविता देवो वाति ज्वलति भासते ॥१४ अन्नकामः ससर्जेदं विधिरप्यिखलं जगत्। अन्नात्परतरं तत्वं न भूतं न भविष्यति ॥१६ द्वाद्हरहस्तस्माद्त्रं विप्राय मानवः। श्रुतं वा यदि वा चामं स स्वर्गे सुख मेधते ॥१७

शोभनान् संभृतान् कुम्भान् पकान्नपरिपृरितान् । अपूर्पेमोदकाद्येश्व दत्वा दिवि सुखं वसेत् ॥१८ मणिकं कल्रशान्त्राऽपि यः पूरयति शक्तितः। सुशुभाद्गिर्द्धिजीकरत् संपूर्णाशो दिवं त्रजेत् ॥१६ द्विजान् यः पाययेत्तोयं अन्यानिप पिपासितान्। प्रपां तु कारयेद्गीप्मे देवलोकमवाग्नुयात् ॥२० यद्वातृणादिकं दद्याद्वर्पासु च प्रतिश्रयम्। पादाभ्यक्नं तथेधांसि शीते प्रावरणानि च ॥२१ उपानन् पादुके चैव ददत्कामानवाप्नुयात् । मप्तधान्यसमायुक्तं सर्वं म्नेहसमन्वितम् ॥२२ सर्वोपस्करसंयुक्तं सर्वाछंकारभूषितम्। हिरण्य-गो-वृषा-ऽरवेश्च तूली-शय्योपधानकैः ॥२३ वरस्रोभूषणैयुक्तं सकारयं ताम्रभाजनम् । कण्डण्यादिसमायुक्तं द्दत् पात्राय मानवः ॥२४ पक्वेष्टकचितं कृत्वा सर्वलक्षणसंयुतम्। मृष्मयं वा तथा सद्यः कृत्वा चाश्ममयं तथा ॥२४ दत्वा स्थानमवाप्नोति प्राजापत्यमसंशयम् । प्राकारा यत्र सौवर्णा गृहाण्युबैस्तराणि च ॥२६ माणिक्य-गारुडर्वञ्रं मैंक्तिकेर्भूषितानि च। देवकन्यासहस्रेण स वृतो गीत-नृत्यकैः ॥२७ सेव्यमानोऽप्सरसङ्घैः प्राजापतिसमं वसेत्। अनड्राहो च घूर्वाहो बलवन्तो सुरुक्षणौ ॥२८

तहणौ सुविषाणौ च घंटाभरणभूषितौ ।
अदुष्टावेकवणौं तु मिरारौ दक्षिणान्वितौ ॥२६
य आहूय द्विजाग्याय दद्याद्धत्तया तु मानतः ।
सोऽनडुद्रोमतुल्यानि स्वर्गे वर्षाणि तिष्ठति ।
अप्सराभिर्वृ तो नित्यं सेत्र्यमानः सुरासुरैः ॥३०
एकोऽपि हि वृपो देयो धूर्वहः शुभलक्षणः ।
अरोगश्चापिरिक्ठिष्टो यम्मात्म दशगोसमः ॥३१
एकेन दत्तेन वृपेण यस्माद्भवन्ति दत्ता दश मोरभयाः ।
माहेय्यतो यद्धरणीसमानात्तसमद्व्यपान् पूज्यतमोऽस्ति नान्य ॥

गृष्टिदानं प्रवक्ष्यामि यथा देयं द्विजातिभिः। यो विधिर्दक्षिणायाश्च तथा मर्व निवोधत ॥३३ एकरात्रोषितः स्नातो गोदाता पश्चगव्यपः। पश्चामृतेन संस्नाप्य सम्पूज्य गरुडध्वजम् ॥३४ सवत्सां वस्त्रसंयुक्तां सितयज्ञोपवीतिनीम्। सुविषाणां सुरूपां च सर्वछक्षणसंयुनाम् ॥३४ हेमकल्पितशृंगां च सुरूप्यचरणाप्रकाम् । पयस्विनी सुशीलां च हिरण्योपरिसंस्थिताम् ॥३६ प्रसङ्गुखाय विप्राय गृष्टि तां च उद्ङ्गुखीम्। त्विममां प्रतिगृह्णीयाः प्रीतोऽस्तु केशवोऽनया । इति दृत्वोद्कं हस्ते पदान्यष्टी विसर्जयेत् ॥३७ व्यावर्तेत ततःपश्चात्प्रणम्य शिरसा द्विजम् । अनेन विधिना घेतुं यो विप्राय प्रयच्छति ॥३८

स विष्णुप्रीणनाद्याति विष्गुलोकमसंशयम्। आत्मनः पुरुषान् सप्त प्रागधस्ताश्च सप्त च। आत्मानं सप्तजनमोत्थात्पापाद्विमोचयेन्नरः ॥३६ पदे पदे तु यज्ञम्य गोर्वत्मभ्य च मानवः। फलमाप्नोति विप्रेन्द्राः शुश्रादंतत्पुरा हरेः ॥४० सर्वकामसमृद्धात्मा सर्वछोकेषु पृजिनः। नाम्नाप्यघौघहन्ता च यावदि द्राश्चतुर्दश ॥४१ इक्ष्वाकुणा तथा चान्येंबेंहुधा वसुधाधिपैः। यैयां नृभिरियं दत्ता जम्मुम्तेऽपि च विष्टपम् ॥४२ पश्यन्ति दीयमानां ये ये भवन्त्रनुमोदकाः। तेऽपि पापाद्विनिर्मुक्ता विष्णुलोकमवाप्तुयुः ॥४३ पादृह्वयं मुखं योऽन्यां प्रसवन्त्याः प्रदृश्यते । तदा च द्विमुखी गौः म्यादया यावन्न मूयते ॥४४ क्षोणीतुल्या तदा सा गाँ. सर्वेकका मुनीश्वरै:। मापि प्राग्विधिना देया मकांस्यदोहना द्विजा: ॥४४ एकत्र पृथिवी सर्वा मशैल-वन-कानना। तस्या गौर्ज्यायसी साक्षादेकत्रोभयतोमुखी ॥४६ गोर्वत्सस्य च लोमानि यावत्मंख्यानि सत्तमाः । तावत्सङ्ख्यामि वर्पाणि ध्वं ब्रह्मजने वसेत्॥४७ अरोगामपरिह्धिष्टां घेनुं गामथ वापि च। द्त्वा स्वर्गमवाप्नोति यावदाभृतसंक्षयम् ॥४८

तिलघेतुं प्रवक्ष्यामि प्रीणनाय हरेरिमाम्। यथा तुष्यति गोविन्दो दत्तया नु गवाऽनघ ॥४६ ब्रह्मादिवर्णहा गोघनः पितृ-मातृसुहृद्धधान्। अग्निदो गुरुहा चेव त्येव गुरुतल्पगः ॥५० सर्वपापसमायुक्तो युक्तो यश्चोपपातकैः। सर्वेः पापेः प्रमुच्येत तिल्धंन्वा प्रदत्तया ॥५१ अनुलिप्ते महीपृष्ठं वस्नाजिनसमावृते। धर्मज्ञाः केचिदिच्छन्ति कुतपे च तिलास्तृते ॥५२ आम्तीर्य त्वाविकं भूमौ तत्र कृष्णाजिनं पुनः। तिलांस्तु प्रक्षिपेत्तत्र **कृ**ष्णाढकचतुष्टयम् ॥५३ कुर्यादुत्तरतोऽभ्यर्णे आढकेन तु वत्सकम्। सर्वरत्नेरलङ्कुर्यात्मीरभेयी सवत्मकाम् ॥५४ कार्ये हेममये शृङ्गे चरणा राजताम्तथा। मिष्टान्नरसनां कुर्याद्गंधवाणवनी शुभाम्। आस्यं गुडमयं तस्याः सास्ना सूत्रमयी तथा ॥५५ ताम्रपृष्ठेक्षपादा च कार्या मुक्ताफलेक्षणा । प्रशास्तपत्रश्रवणा फलदन्तवती तथा ॥४६ शुभ्रस्रद्ध्ययलाङ्गूला नवनीतम्तनान्विता । नारिङ्गैबींजपूरेश्च जम्बीरेर्नारिकेलकैः॥५७ बद्रा-ऽऽम्रकपित्थेश्च मणिमुक्ताफलाचिताम्। सितवस्युगच्छनां सितच्छत्रसमन्विताम् ॥६८

इत्राग्वधां च तां कुर्यात् श्रद्धया परयान्वितः। कांस्योपदोहनां दद्यात्कशवः प्रीयतामिति ॥४६ क्यांच गृष्टिविद्वहान् इमामप्युत्तरामुखीम्। सम्यगुवार्य विधिना दत्वतेन द्विजोत्तमः । ६० सर्वपापेर्विनिर्मुक्तः पितरं सपिनामहम्। प्रितामहं तथा पूर्व पुरुपाणां चतुष्टयम् ॥६१ पुत्रपौत्रमधम्ताचेत्तथेव च चतुष्ट्यम्। द्विजेन्द्राम्तारयन्त्येनान निलंधनुष्रदा नराः ॥६२ यश्च गृह्वाति विधिवत्पुरुपान् सोऽपि तावन । चतुर्दश तथा ये च द्दतश्चानुमोदकाः ॥६३ दीयमानां च पश्यन्ति तिल्धेनुं च ये नगः। शृष्वंति ये च तां भत्तया दीयमाना द्विजातमाः ॥६४ तेज्यशेषाघनिर्मृक्ताः प्रयानित विष्णुलोकताम् । प्रशानताय सुशीलाय तथाऽमत्सरिणे बुधः । तिलधेनुं नरो द्वाहंद्स्नाताय धर्मिणे ॥६४ त्रिरात्रं सतिलाहारस्तिलघेनुं ददाति यः। एकरात्रं पुनर्भक्त्या तिलानित प्रयत्ननः ॥६६ दातुर्विशुद्धपापस्य तस्य पुण्यवतो द्विजाः। चान्द्रायणाद्रप्यधिकं शम्तं तत्तिलभक्षणम् ॥६७ एवं प्रतिप्रहीतापि आद्तं विधिना द्विजः। स तारयति वातारमात्मानं च न संशय: ॥६८

प्रतिप्रहसुदीप्ताग्निद्रग्धवित्रसुखंग्ताः।
न स्फुरन्तीह मन्त्राश्च जप-होमादिकेयु च ॥६६
न दानं दीयते तस्य न नं कर्मणि योजयेतु।
निष्फलं तन्द्रनं कर्म सृतस्यौपयदानयतु॥७०
अथातः संप्रवक्ष्यामि धृतयेनुमपपि हिजाः।
ये न सा विधिना देया नं प्रवक्षास्यणेषतः। ७१

वदामि धेनुं घृतपूरकलयां विधि च वम्त्रीत च यः प्रकलया।
तस्याः प्रदानेन फलं हि यच क्रिया च पात्रं त्वनण्वं यच ॥७२
गोक्षीर-मर्पिमेयु-खण्ड-दध्ना संस्ता य विण्णं द्युमवाण्णि च।
संपूज्य पुष्पेश्च विलेख गन्ध(दत्यान्त्रवंद्यं)दत्या नवद्यं च मधूप-दीपम्॥
घृतं च विहुर्घ तमेव सोमो घृतं च गृयां पृतमेव वारि।
प्रदेहि तस्मान घृतमेव विद्वन । धृत प्रदत्त मकलं प्रदत्तम्॥
घृतेन गव्येन तु पूर्णकुम्भं प्रवत्त्यते गो करकेन वत्म ।
हिरण्यगर्भा मणि-रत्नशोभा कुरुष्य कर्परमुचारनामाम्॥७५
थेके च कुष्णागरुदारवं च सौवणनेत्रे पटसृत्रमास्ता।
धौमं च पुन्छं गुड-दुग्धवक्तं जिह्वा च तम्या वरशर्कगयाः॥७६

द्राक्षो श्रेश्चेव स्वर्जूरं रन्ये स्वादुफरोरिष । उरस्तस्याः प्रकर्तत्र्यं पृष्टं ताम्नं च धीमता ॥७७ इक्षुयष्टिमयाः पादाः शफा रोप्यमयान्तथा । धा यश्च सप्तभिः पार्श्व स्त्रोमानि मितमर्पपैः ॥७८ कांस्यदोहा प्रवर्तत्र्या मितवस्नागृता तथा । सितच्छन्नसमायुक्ता सितचामरभूषिता ॥७६ वत्सस्य कुर्यादिति भूषणानि प्रोक्तानि सर्वाण्यपि यानि धेनोः।
अङ्गानि सर्वाणि च तद्दस्य छत्रं सत्रक्तं च तथेव विप्राः॥८०
गृहाण चैनां मम पापहृत्यं दुस्तारसंमारपयोधिपोत ।
संसारतारो भव भूमिदेव ! स्रगं प्रदेह्यक्षयमङ्ग विद्वन् ॥८१
विष्णुः सुरेशो घृतरिमरस्याः प्रीतोऽस्तु दानेन वरं ददातु ।
व्याहृत्य चैतन्नि नहस्तनोयं दत्त्रा क्षमस्येति च वाण्विधेया ॥८२
दात्रा द्विजेनात्र तु पूर्वमुक्तं संप्राप्त्य सिर्पर्त्रतमात्मशुष्यं ।
कार्यं प्रमुकोऽखिलकि विवर्षस्त प्राप्नोति कामान् घृत-दुग्धिमन्नान् ॥

घत-क्षीरवहानदो यत्र पायसकर्द्माः। तेषु छोकेषु विवेन्द्र म पुण्येषूपजायते ॥८४ पितुक्ध्रं तु य सम पुरुषाम्तस्य येज्ययः। तेषु तान् द्विजलोकेषु स नयदनिकेल्बिपः ॥८५ सकामानां प्रियं गृष्टिः कथिता तव सत्तम !। विष्णुलोकं नरा यान्ति सकामा घृतधेनुदाः ।८६ जलबेनुं प्रवक्ष्यामि प्रीयते दत्तया यया । देवदेवो हृपीकेशः सर्वेशः सर्वभावनः ॥८७ जलकुम्भं द्विजश्रेष्ठ सुवर्णरजतस्थितम्। रत्नगर्भमशेषेसु प्राम्यैर्वान्यैः समन्वितम् ॥८८ सितवस्त्रयुगच्छन्नं दृर्वा-पञ्जवशोभितम् । कु उ-मांसो-मुरोशीर-वालकामलकेर्यृतम् ॥८६ प्रियंगुपप्रसंयुक्तं सितयज्ञोपवीतिनम्। सोपानत्कं च सच्छत्रं दर्भविष्टरसंस्थितम ॥६०

## सर्वदानविधिवर्णनम्।

ऽध्यायः ी

च नुभिः संबृतैः पात्रैहिनलपूर्णेश्चतुर्दिशम् । स्थिगतं द्धिपात्रेण घत-क्षौद्रवता मुखं ॥६१ उपोषितः समभ्यर्च्य वास्द्वं सुरेश्वरम्। पुष्प-भूगोपहारेश्र यथाविभवसंभवम् ॥६२ तस्मि । कुम्भे जिखेद्धेनुं मवत्मां यक्षकर्दभः। प्रतिष्ठा तत्र कुर्वात मंत्रीवेदचतुष्ट्यैः ॥६३ मङ्गल्य जलघेनुं च समभ्यच्यं जनार्दनम्। पूजयेद्वन्सकं तद्वत्कृतं जलमयं वुधः ॥६४ अत्रोचुरपरे कचित्पूजयंत घृतवत्मकम्। पश्चारान तु कुम्भाग्य चतुर्थारान चापरे। एवं सम्यूज्य गोविन्दं जलघेनुं सवत्सकाम् ॥६४ सितवस्वयरः शान्तो वीतरागो विमत्सरः। दद्याद्विप्राय तां विष्रः प्रीतये जलशायिनः ॥६६ जलशायी जगुज्ज्योतिः प्रीयतां केशवो मम । इति चोबार्य विप्रेन्द्रो विप्राय प्रतिपाद्येत् ॥६७ अपकाशनिना स्थेयमहोरात्रमतः परम्। अनेन विधिना द्त्वा जल्धेनु द्विजोत्तमाः ॥६८ सर्वाह्नादमवानोति यदात् ध्यायति मानवः। शरीरारोग्य-दीर्घायुः प्रशस्यः सर्वकामुकः ॥६६ नृणां भवति दत्तायां जल्धेन्वां न संशयः। इमामपि प्रशंसन्ति जलधेनुं द्विजोत्तम ! ॥१००

ये नरास्तेन वे यान्ति विष्णुलोकमसंशयम्। हेमा-ऽऽज्याम्भ-तिलैविद्वन् धनुर्यद्यपि कल्पिता । तथापि ते च भक्ष्याः स्युर्धर्मशास्त्रमताहताः ॥१०१ भक्षणीयं च यहस्तु धन्वंगेषु प्रकल्पितम् । तस्यादृश्यं तद्गभ्येति वेद्मन्त्रः प्रतिष्ठितम् ॥१०२ पुनः संवृतमन्त्रेषु तदाकुंचनमुद्रया । कृते विसर्जने तेगं वस्त्रह्यं पुनर्भवेत ॥१०३ अथान्यत्संवक्ष्यामि दानादा मुत्तमं परम्। यहत्वा मानवो यानि मायुज्यं परवेधमः ॥१०४ धेनुर्देया सुवर्णस्य कारयित्वा द्विजानये । यां दस्वा प्राङ् महोपाला ब्रह्मण. सदनं गताः ॥१०४ सा चतुर्भिस्नीभिर्वापि शृद्धवर्णपलैर्डिजः। पलाभ्यामपि च द्वाभ्यां पलेनैकेन वा पुनः ॥१०६ हीनं तु नैव कर्तत्र्यं सत्यां सम्पदि सद्द्विजाः। हीनं तु कुर्वतो दानं दानुस्तन्निष्फलं भवेत्।।१०७ चतुर्था शेन घेन्वास्तु हैमं वत्सं प्रकल्पयेत्। सर्वरत्नेरलङ्कर्यात् वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥१०८ राजतं वत्सकं कुर्याद्त्र युरन्ये च तद्विदः। अलङ्काराश्च सर्वेऽपि गोवद्रत्नैः प्रकल्पयेत् ॥१०६ सकाशाद्वासुदेवस्य यां शुश्राव युधिष्ठिरः। द्त्वा प्राप्तो हरेलोंकं सा मयेयमुदीरिता ॥११०

मुक्ताफलराका कार्या प्रवालकविपाणिका । पद्मरागाक्षियुग्मा च घृतपात्रस्तनान्त्रिता ॥१११ कर्पूरा-ऽगरुखाखाटा शर्करारदना समृता । मिष्टान्नमुखसंयुक्ता शंखश्टंगांतरा तथा ॥११२ जात्यशुक्तिललाटा च द्राक्षादिरसना तथा। सुपद्मयुग्मपार्श्वा सा भ्रीमसाम्नावती तथा ॥११३ इस्बंबिगुंडजानुश्च पश्चगव्यगुदा समृता। नारीकेलेश्च कर्नव्यो कर्णा पृष्ठं च कांखकम् ॥११४ सत्रदृसूत्रलाङ्गुला सः तथान्यसमावृता । फल-पुष्पोपसम्पन्ना ब्रुत्रोपानत्ममन्बिना ॥११४ सुवर्णधेनुमार्याय विशाय प्रतिपाद्येत्। अभ्रमेधसहस्रस्य दत्वा फलमवाप्नुयान् ॥११६ कुळानां हि महस्रंतु स्वर्गं नयत्यसंशयम्। किमन्यैर्बहुभिद्निरछं हेमगवाऽनया ॥११७ हेमधेनुप्रदानेन कृतकृत्यो हि वर्तते। हिरण्यगर्भो भगवान् प्रीयतामिति कीर्तयेत् ॥११८ उपवासी विशुद्धात्मा दत्वा सोम-रविष्रहे । दीयमानां च पश्यन्ति ये नरा हेमगामिमाम् ॥११६ पश्यमानां च शृष्वन्ति तेऽपि यान्ति त्रिविष्टपम्। यत्रास्ते छिखिता गेहे स्वर्णदानस्य संस्तुति.। रक्षो भूत-पिशाचाद्यास्ततो नश्यन्ति सद्द्विजाः ॥१२०

एता मयोक्तास्ताः वत्स । मर्वा गृष्ट्यादिका विस्तरतोऽत्र गावः । इक्ष्वाकुभूभुः प्रभृतिक्षितीशा जग्मुर्दिवं या विधिवन दस्ना ॥१२१ कृष्णाजिनस्य दानस्य प्रवक्ष्यामि शुभं विधिम्। प्रमाणं च विधिर्यस्य यस्मे विप्राय दीयते ॥१२२ वेशास्यां पूर्णिमायां च कार्तिक्यामथ वापि च। उभयोन्तत्प्रदातव्यं गवि-सोमप्रहेऽपि च ॥१२३ अक्टिरमन्छिद्रमलोमकं च स्त्राणरंघं सशकं सशेकम्। साण्डप्रदेशं सविपाणवक्त्रं शस्तं प्रदाने सितकृष्णचम ॥१२४ एवमेतद्विधं चर्म गृहीत्वा द्विज पावनम्। कल्पयेद्धंनुवत्तव हेमशृंगादिकं तथा ॥१२४ श्रुक्ते हेममये तस्य शफाश्च रजतस्य च । मुक्ताफलैश्च लाङ्गूलं कुर्यात शाट्यं विवजयेत ॥१२६ अनुलिप्ते महोपुष्ठे प्रसृते कुतपंऽशुके । तत्र प्रसारयेन्मार्गं तिलेस्तद्पि पूरयेन ॥१२७ वदन्ति तद्विदः सर्वे चतुर्द्रोणेम्तु पूरयेत्। पुंसो नाभिप्रमाणं तु अपरे कवयो विदुः ॥१२८ नाभिमात्रं वदन्त्यन्ये राशि कुर्यादिति द्विजः। तिजैश्च पूरयेत् पश्चाद्जिनं च समन्ततः ॥१२६ हेमनाभं च तं कुर्यात् हेन्ना कर्पेण त् द्विजः । शक्त्या वापि प्रकर्तव्यं मनःशुद्धिर्यथा भवेत् १३० सौवर्णं क्षीरपूर्णं तु पात्रं प्राच्यां निधापयेन्।

राजतं द्धिपूर्गं तु तथा दक्षिणतो द्विजः ॥१३१

ताम्रमाज्यभृतं पात्रं पश्चिमायां दिशि ममृतव । श्रीद्रपूर्णं तथा कांस्यं चनर्दिक्ष क्रमेण त ॥१३२ शक्त्या वापि च कर्तन्यं वित्तरााठ्यं विवर्जयेत्। द्याद्वेदविदे चेव बाह्मणायाहितामय ।।१३३ परिधाप्याऽहते वस्त्रं अलङ्कृत्य च भूपणैः। चतस्रो गृष्ट्यः कार्या इत्यत्ये कवयो विदः ॥१३४ वरन्ति सुनयो गाथां मार्गमाहान्ध्यवेदिनः। नानाविधांश्च विद्वांसः पुराणार्धविज्ञो विदुः ॥१३५ यस्तु कृष्णाजिनं दद्यात्मयुरं शृंगमंयुतम् । तिलः प्रच्छाद्य वासोभि सर्वगत्नेग्लङ्कतम् ॥१३६ ससमुद्रगुद्रा तेन मशैल-वन-कानना । चतुरसा भवेहता पथिवी नात्र मंगयः ॥१३७ कृष्णाजिने तिलान् दन्त्रा हिरण्य-मधु-सर्पिपा । ददानि यस्तु विप्राय सर्वं तरित दुष्कतप् ॥१३८ यः कृष्णाजिनमाम्तीर्य हेमरत्रयुतेस्ति है । वसावृतं सोपवासो विष्णोरायतने तथा ॥१३६ बैशाख्यां पूर्णिमायां वा कार्तिम्यां वा समाहितः। द्याद्वित्रे तरोयुक्तं सद्धत्ते च यतेन्द्रिये ॥१४० आहिताम्रौ समन्ताने प्रद्याद्भूरिदक्षिणप्। याबन्यजिनलोमानि तिला वस्नस्य तन्वतः ॥१४१ ताबन्त्य इसहस्राणि दाता विष्णुपुरे वसेत्। विशेषमपरे त्रु युर्विपुवायनयोर्द्धयोः ॥१४२

तर्त्रणं बहिलीम प्राग्मीवं तु प्रमारयेत्। चतसृषु तथा दिश्च सुवर्ण-रजनानि च ॥१४३ निधाय शक्स्या पात्राणि श्लीराद्ये. पृरितानि च । तस्य पश्चात्ममिद्धाप्तिं परिसंमुद्य तं पुनः ॥१५४ पर्युक्ष्य च परम्तीयं महाव्याहृतिभिम्तथा। साज्यान् हुत्वा तिलांग्तत्र विप्राय प्रतिपाद्येत् ॥१४४ नामि स्पृशन्नदीनोयं मार्गं गृह्णाम्यहं त्विद्व । धीमान् दद्याद्विजेन्द्राय वाचियत्वा प्रतिव्रहम् ॥१४६ पश्चाद्वसादिकं दद्यादेपा प्रतिप्रहे स्थितिः। यमगीतामथो गाथामुदाहरन्ति तद्विदः। दातृणां सत्तमानां तु विशेषप्रतिपत्तये ॥१४७ गो-भू-हिरण्यमंयुक्तं मार्गमेकं ददाति यः। स सर्वपाप कर्मापि सायुज्जं ब्रह्मणो ब्रजेत ॥१४८ प्रोक्तंन चैतेन मुनीश मार्गं द्यादृद्धिजेन्द्रे विधिना प्रयुक्तन्। पापानि इत्वा स पुरातनानि प्रयाति वेधोवपुर्वेव योगी ॥१४६ सुखासनं च यो द्धाःज्ञवनाख्यमथोत्तमम्। देवयानैर्दिवं याति स्तृयमानः सुरामुरैः ॥१५० यो रथं हयसंयुक्तं हेमपुष्पेरलङ्कृतम्। कृतरज्जुं च पट्टाद्येर्नेत्रपट्टकृतैरपि ॥१५१ तत्सर्वं स्थिगितैर्वस्त्रेः पट्टिपट्टालकेः शुभैः। मुक्ताफलैस्तथानेकैर्मणिभिश्वोपशोभितम् ॥१४२

## हस्तोद्कदानविधिवर्णनम्।

ऽध्यायः ]

हयौ चैव शुभैवंसौभूषितावत्यलङ्कृतौ। तौ भूषणेरलड्कृत्य मुखयन्त्रसुशोभितौ ॥१५३ सपर्याणौ कशायुक्तौ बोवाभरणभूपितौ। शुभवक्षणसंयुक्तौ तरुणी तत्र योजयेत् ॥१५४ रवि-सोमग्रहे दद्याच्छुभे वाऽन्यत्र पर्वणि । अयनयोर्डिजामचाय स प्राप्नोत्यर्कलोकताम् ॥१५५ वसेद्रविसमं तत्र सेव्यमानः स दवतैः। एकं वापि हयं दत्वा मर्वाछङ्कारभूपितम् ॥१५६ सुलक्षणं युवानं च सोऽश्विलोकमवाप्नुयात्। दद्यादश्वरथं यस्तु हेमरत्नविभूषितम् ॥१५७ दिव्यवस्तपरिच्छन्नं नेत्रपट्टादिभिः शुभैः। सौवर्णेरधचन्द्रश्च राजतेर्वा विभूषितम् ॥१५८ शुभम्काफलेरन्येनीलवसादिभिस्तथा। गजी सुरुक्षणोपेती सुशीली नीरुजावपि ॥१५६ शुभदन्ती सुरूपी च हेमलङ्कारधारिणी । दिञ्यवस्त्रः परिच्छन्नी कर्णशंखावलम्बिनौ ॥१६० पट्ट-नेत्रादिकक्षौ तौ विशिष्टमणिमण्डितौ। ईहग् रथं च संयोज्य पताकाभिर्विभूपितम् ॥१६१ शोभितं पुष्पमालाभिः शङ्ख-दुन्दुभिनिःस्वनेः। चतुर्वेदाय विप्राय त्रिवेदाय तथा पुनः ॥ १६२ शुचये च द्विवेदाय श्रोत्रियाय कृतेष्टये। अलङ्कृत्य समालाभिः परिधाप्य मुवाससी ॥१६३

त्रस्य हस्तोदकं द्यात्त्रीयतां केशवो मम। एवं हस्तिरथं दद्यात्समभ्यर्च्य द्विजातये। निहत्य सर्वेपापानि विष्णुलोके महीयते ॥१६४ वसेचतुर्भृ उस्तत्र सेन्यमानश्रतुर्भृजैः। अनन्तकालमातिष्ठेच्छङ्क-चक्र-गदाधरः ॥१६४ पश्यन्तीह रथं ये तु दीयमानं नरा द्विज !। तेऽपि विष्णुपुरं यान्ति वासिष्ठजवचो यथा ॥१६६ एकमपीह यो ददाद्धितनं च सभूषगम्। सवस्रं हेमरदनं नखैरजतकल्पितः ॥१६७ मणि-मुक्ताफलेर्युक्तं सुवर्ण-रजतान्वितम्। पूर्वोक्ताय तु विप्राय चतुर्वेदाय वा द्विजाः ॥१६८ यो दद्याद्विधिवत्सोऽपि सदा विष्णुपुरं वसेत्। विधिवग्रश्च गृह्वाति सर्वमेव प्रतिप्रहम् ॥१६६ दातृलोकमवाप्नोति पराशरवचो यथा। अलड्कृत्य तु यः कन्यां ब्राह्मोद्वाहेन यच्छति ॥१५० अन्योद्वाहेन केनापि गजदानशतं लभेन्। गजदानस्य यत्पुण्यं तस्माच्छत्गुणं फलम् ॥१७१ कन्यादा विधिवत्सर्वे प्राप्नुवन्ति ह्यसंशयम्। पुत्रदानं च वाब्छन्ति केचिद्वत्स मनीपिणः ॥१७२ कन्यादानात्परं ब्र्यु पुत्रदानं शतोत्तरम्। मूर्मि सस्यवती दद्यात् यस्तु विप्राय मानवः॥१७३

स मूल-शूकतुल्यानि विष्णु छोके सदा वसेत्। पड्भिस्तु सहितान् विप्रान्वंशानुभयतो दश। तानेव द्विगुणान्याहुरिति केचित्रिवर्तनम् ॥१७४ दशहरतेर्भवेद्वंशश्चतुर्भिस्तेस्तु विस्तरः। दैर्घ्यंऽपि दशभिवंशैगोचर्म परिकीर्तितम् ॥१७५ अपि गोचर्ममात्रेण भूमिं द्याद् द्विजातये। विष्णुलोकमवाष्नोति केचिदाहुर्मनीषिणः ॥१७६ पश्चहस्तकदण्डानां चत्वारिंशद् दशाहता। पञ्चभिर्गुणिता सा तु निवर्तनमिति म्मृतम् ॥१७७ बालबत्सक्षेनूनां सहस्रं यत्र तिप्रति। तहै निवर्तनं ज्ञेयं इति केचिद्वदन्ति हि ॥१७८ ताम्रपट्टं पटे वाऽपि हेम्बयित्वा च शासनम्। **प्रामं वि**प्राय वा द्याद्दशसीरक्षिति पुनः ॥५७६ सीरस्येकस्य वा द्वात्तस्य पुग्यं किमुच्यते। भूम्यंशुक्रणिकातुल्याः समा विष्णुपुरे वसेत् ॥१८० भूमिदानात्परो धर्मह्यैलोक्येऽपि न विद्यते । पादैकमात्रदानेन तस्य विष्णुपुरे स्थितिः ॥१८१ तस्य दानात्परो धर्मस्तद्भृतेः पातकं परम्। तस्मात्तां यत्नतो दद्याद्धरणं च विवर्जयेत् ॥१८२ इहैव भूमिदानस्य प्रत्यक्षं चिह्नमीक्ष्यते। क्षितिदः स्वर्गतो भ्रष्टः क्षितिनाथः पुनर्भवेत् ॥१८३

भुनक्ति च पुनर्भोगान् यथा दिवि तथा भुवि । गजैरश्वैर्नरेर्युक्तो हेम-रत्नविभूषितः ॥१८४ वरस्त्रीगणसंसेव्यः स्तूयमानः स्वबन्धुभिः। **ब्रुत्रालङ्कारसंयुक्तो गीतवाद्योत्सवादिभिः ॥**१८५ इत्यादि भूमिदानस्य चिह्नं ते वत्स ! कीर्तितम्। वित्तेनाऽपि हि यः कीत्वा भूमि विप्राय यच्छति।।१८६ यावत्तिष्ठति सा भूमिस्तावस्वर्गे महीयते। गृहभूमिं च यो दद्याद्यादाश्रममात्रकम् ॥१८७ गृहोपकरणं दत्वा गृहदानफलं लभेत्। ह्स्तमात्रां च यो द्याद्भूमि विप्राय मानवः ॥१८८ किष्कुमात्रां च यो द्दाद्भुमि वेद्विदे नरः। तस्यापि हि महापुण्यं दद्यादंगुलमात्रकम् ॥१८६ नैतस्मात्परमं द।नं किचिद्स्ति धरातले। पुण्यं फलं प्रवक्ष्यामि विशेषण तु तच्छृणु ॥१६० यत्र हैमानि सद्मानि मणिभिर्भूपितानि च। प्राकारा यत्र सौवर्णाश्चतर्द्वाराः सतोरणाः ॥१६१ दिव्याश्चाप्सरसो यत्र तासां सङ्ख्या ह्यनेकशः। सुपर्वाणौकसा युक्तौ बीवाभरणभूषितौ ॥१६२ दृष्ट् व कामदेवोऽपि भवेत्कामातुरः क्षणात् । सुकेशा सुललाटाश्च बालचन्द्रोपमभ्रवः ॥१६३ सुनासा-कर्ण-गण्डाश्च शुभोष्ठाधरपह्नवाः। सुग्रीवा भुजपाल्यप्राः पीनोत्तुङ्गस्तनास्तथा ॥१६४

सुमध्योरुनितम्बाश्च सुत्रण्यश्च शुभोरुकाः। सुजानु-जङ्ग-गुल्फाश्च सुपादाः सुनखास्तथा ॥१६५ केन रूपेण ता वर्ण्या भवन्त्यप्सरसो द्विजाः। वैष्णज्यो गणिकास्सर्वा दिव्यम्बन्बस्नभूषणाः ॥१६६ दिव्यानुलेपलिप्ताङ्गा दिव्यालङ्कारभूषिताः। मन्मथोऽपि हि ता दृष्ट्याभवेत्कामातुरः स्वयम् ॥१६७ मुनीनामपि चेतांसि या रृष्ट्रा चुक्षुभुः क्षणान् । वण्यन्ते ताः कथं देवयो या लक्ष्मीप्रतिमोपमाः ॥२६८ वैष्णवाप्सरसां सङ्घेर्वु तश्चामरघारिभिः। गीयमानश्च गन्धर्वेस्नूयमानश्च देवतैः ॥१६६ वसेडिब्णुपुरे तावद्यावडिब्ल्ग्रजः क्षितौ । पुण्यं च भूमिदानस्य कथितं तव वत्सक ! ॥२०० मेर्रुधरित्री कुलपर्वताश्च पाथोऽर्णवः स्वर्गतलादिकादिः। देयानि सर्वाणि च मर्वकामैः प्रोक्तानि दानानि पुराणविद्धिः ॥२०१ आत्मतुल्यं सुवर्णं वा रजतं द्रव्यमेव च। यो ददाति द्विजाप्रंचभ्यस्तस्याप्येतत्फलं भवंत् ॥२०२ ब्रह्महत्यादिपापैम्तु यदि युक्तो भवेन्नरः। स तन्पापविनिर्मुक्तः प्रोक्तं विष्णुपुरे वसेन् ॥२०३ तुलापुरुष-भूमी च दीयमाने च ये नराः। पश्यन्ति तेऽपि यान्ति द्यां ये च स्युरनुमोदकाः। २०४ गुडं वा यदि वा खण्डं लवणं चापि तोलितम्। यो द्दात्यात्मना तुल्यं नारी वा पुरुषोऽपिवा ॥२०४

पुमान्त्रशुम्नवत् स स्यान्नारी स्यात्पार्वतीसमा ।
सौभाग्यरूपसंयुक्तो भुन्नीताऽन्ते त्रिविष्टपम् ॥२०६
हिरण्यं दक्षिणायुक्तं सवस्तं भूपणान्वितम ।
अलड्कुत्य द्विजाप्रंयं तं परिधाप्य च वाससी ॥२०७
खण्डादि तोलितं पश्चाद्विप्राय प्रतिपादयेन् ।
सर्वकामसमृद्धात्मा चिरकालं वसेहिवि ॥२०८
उष्ट्रं खराजौ मिल्पं च मेषमश्वं करेणुं महिषोमजां च ।
ब्रूयुः खरोष्ट्रीमिवकां मुनीन्द्राः हेमादियुक्तं सकलं च दानम् ॥२०६
वराणि रत्नानि च हैम-रूष्यं शुभानि वासांसि च कांत्यताम्रे ।
उपाधिमात्रं करमादि कृत्वा हेमादिदानं द्विज दीयते हि ॥२१०

केचिद्रद्नित चेतानि कृत्वा हममयानि च।
सर्वोपरम्युक्तानि देयानि हेमधेनुवत्।।२११
अर्चयित्वा हृषीकेशं पुण्येऽहि विधिपृर्वकम्।
अिर्मुद्धं सुवणं च विप्रायाह्य यच्छति।।२१२
स मुक्तवा विष्णुलोकं तु यदाऽऽगच्छिति संस्रुतौ।
नदाऽसौ तेन पुण्येन धनयुक्तो द्विजो भवेन्।।१३
यो रूप्यमुक्तमं द्याद्धिने ब्राह्मणाय च।
सोऽतीव धनसंयुक्तो रूपयुक्तश्च जायते।।२१४
माणिम्यानि विचित्राणि नानानामानि यो नरः।
तथा ताम्नं च काम्यं च त्रपु वा सीमकादिकम्।।२१४
यो द्याद्भित्तो विप्रः सोमलोकमवाष्त्रयात्।
स सम्भुष्य तु तं लोकं रूपवानिह जायते।।२१६

घृतं ददाति यो विप्रः सोऽत्यन्तं सुखमश्नुते । भोजनाभ्यञ्जनार्थं वा भवेत्सोऽपि सुखी नरः ॥२१७ सततं तैरुदानेन भोजनाभ्यञ्जनाय च। स्निम्धदेहोऽतितेजस्वी रूपयुक्तः प्रजायते ॥२१८ मृगनाभि च कर्परं तगरं चन्दनादिकम्। गन्धद्रव्याणि यो द्याद्धनी भोगी स जायते ॥२१६ ताम्बूलं पुत्रमालाश्च पुष्पस्याभरणानि च । यो द्याद्वंपवानभोगी धनयुक्तः स जायते। सुमतिर्वीर्थवांश्चेव धनयुक्तश्च सर्वदा ॥२२० शिशिरतौं च यो द्यादनलं सेन्धनं नरः। स समिद्धोदराप्रिः सन् प्रज्ञामूर्ययुतो भनेत ॥२२१ यो दद्यादुदुर्छभानां च नित्यमेधांसि मानवः। श्रियायुक्तो भवेदत्र सङ्ग्रामे चापराजितः ॥२२२ अथ किं बहुनोक्तेन दानधर्मविवेचने। यद्यदिष्टतमं यस्य तत्तस्मै प्रतिपाद्येत् ॥२२३ तिलान् दभाश्च नित्यार्थं तृणान्यास्तरणाय च । भुक्तवा स तु सुखं स्वर्गे जामश्रात्र भवेद्भवि ॥२२४ गुडमिश्चरसं खण्डं दुग्ध-खर्जूर-खाद्यकान्। फलानि दत्वा सर्वाणि स्वादृनि मधुराणि च ॥२२५ सर्वाणि फलशाकानि लवणानि तथा द्विज ! । स्थाल्यादिगृहपाकं च द्त्वा गोत्राधिको भवेत्।।२२६

कूष्माण्डं त्रपुषं दत्वा वृन्ताकादि पटोळकान् ।

शुभानि कन्दमूलानि सुहृष्टः पुत्रवान् भवेत् ॥२२७
बद्रा-ऽऽम्र-किपत्थानि खर्जूर-दािष्टमानि च ।
चिश्वाश्चामलकं दत्वा पुत्रवानिह जायते ॥२२८
या नारी द्विज ! चैतानि द्विजे भक्तयोपपातयेत् ।
सर्व तस्या भवेत्तद्वि धनुदानसमन्त्रितम् ।
सुपुत्रा सुभगा पुष्टा पावतीवेह जायते ॥२२६
योऽिथेने तृण-काष्टानि ब्राह्मणायोपपादयेत् ।
सर्व दत्तं भवेत्तस्य धनुदानसमं फल्पम् ॥२३०
भोजनाच्छादने दत्वा दत्वा चोपानहो द्विजः ।
स्वर्गलोकं तु सम्मुज्य पूर्णकामोऽत्र जायते ॥२३१

याः पण्यनार्योऽतिसकामपुंसं कामोपभुक्त्यं निजदत्तदेहाः । गीवाणचेतोहरूपवत्यः पौरंदरास्ता गणिका भवन्ति ॥२३२

गृहं वा मिठकं वाऽपि शयना-ऽउसन-विष्टरम् । द्त्वा च कशिपुं विद्वान् विप्रान् यः पाठयेन्नरः ॥२३३ महीदानादिकं व्यास ! विद्यादानं शताधिकम् । विद्यार्थिनां च विप्राणां पादाभ्यङ्गमुपानही ॥२३४ यो दशति द्विजश्रेष्ठ ब्रह्मलोकं स गच्छति । आदावारभ्य वेदांस्तु शासं वाऽन्यतमं द्विजः ॥२३६ अध्यापयेद्द्विजान् शिष्यान् विद्यादानं तदुच्यते । उपाध्यायं निवेश्यामे तस्य कृत्वा च वेतनम् ॥२३६

विद्यां भक्त्या प्रयच्छेदाः परब्रह्मण्यसौ विशेत्। विद्यार्थिने च विप्राय यो द्याङ्गोजनं द्विजः ॥२३७ पादाभ्यक्नं तथा स्नानं सोऽपि विद्याराभाग्भवेत् । यः स्वयं पाठयेद्विप्रान् स्नात्वा भक्तया च स द्विजः ॥२३८ साक्षान् ब्रह्म समभ्येति भूयो नायाति संसृतौ । भ्रुचं वा यदि वार्धं च पादं पादार्धमेव च ॥२३६ अध्यापयति तस्याऽपि नास्ति शिष्यस्य निष्कृतिः। मन्त्रह्पं च यो दद्यादेकं वाऽपि ग्रुभाक्षरम्। तस्य दानस्य वै शिष्यो निष्कृति कर्त्मक्षमः ॥२४० यद्विप्र शिष्यप्रतिपादितेन विद्याप्रदानेन न तुल्यमस्ति । दानं धरित्र्यामविनाशि किंचितम्मात्प्रदेगं सततं नदेव ॥२४१ रोगार्तम्योपधं पथ्यं यो ददाति नरो यदि । अन्यस्यापि च कस्यापि प्राणदः स तु मानवः ॥२४२

रोगार्तस्योपधं पथ्यं यो ददाति नरो यदि ।
अन्यस्यापि च कस्यापि प्राणदः स तु मानवः ॥२४२
किं रत्नेर्भूपणेर्द्त्तैगोंभिर्वासोभिरेव च ।
किं वित्तेर्भूपणेर्द्त्तैगोंभिर्वासोभिरेव च ।
किं वित्तेर्भूपणेर्वस्वरत्नैगोंभिरतुरंगमैः ।
आदत्तैः प्राणहीनेन प्राणदानमतोऽधिकम् ॥२४३
अत्रं प्राणो जलं प्राणः प्राणधीषत्रमुच्यते ।
तस्मादौपधदानेन दाता सुरसमो द्विजाः ॥२४४
प्राणदानं च यो द्यात्सर्वेपामपि देहिनाम् ।
स याति परमं स्थानं यत्र देवश्चतुर्भुजः ॥२४५
यो द्यान्मधुरां वाचमाश्वासनकरीमृताम् ।
रोग-क्षुधादिनार्तस्य स गोमेधफलं लभेन् ॥२४६

क्कीबा-ऽन्ध-बधिरादीनां रोगार्त-कुशरीरिणाम् । तेषां यहीयते दानं द्यादानं तदुच्यते ॥२४७ ये यच्छन्ति द्यादानं सानुकम्पेन चेतसा। तेऽपि तहानधर्मेण विष्णुङोकमवाप्नुयुः ।।२४८ अथान्यःसंप्रवक्ष्यामि तिथि-मासगतं द्विज । । यत्प्रदाने मुनिश्रेष्ठ । विशिष्टं फल्लमिप्यते ॥२४६ मासे मार्गशिरे दःनं पूर्णचन्द्रतिथौ नरः। विधिना तत्प्रवक्ष्यामि यत्प्रद्रानं महत्फलम् ॥२५० कांस्यस्य पात्रमङ्किष्टं छवणप्रस्थपूरितम्। हिरण्यनाभं वसंण कुपुम्भेन च छादितम्।।२५१ स्नातः स्नाताय विप्राय सवस्यं प्रतिपाद्य च । सौभाग्य-मृप-छावण्ययुक्तो भवति वै नरः ॥२५२ गौरसर्पपकल्केन पौष्यामुरसादितो नरः। स पुनरभिषेक्तज्यः कुन्भेन गव्यसर्पिपा ॥२५३ सर्वगन्धोद केंस्तीर्थे. फल-रत्नसमन्वितेः। ससुवर्णमुखं कृत्वा प्रद्यात्तद् द्विजन्मने ॥२५४ घृतेन स्नापये द्विण्णुं भक्तया सम्पृ तयेद्धरिम्। घृतं च जुदुयाद्वहौ घृतं दद्याद्द्विजातये।।२४४ <mark>छत्रं वासोयुगं दद्या</mark>त्सोपवासः समाहितः। कर्मणा तेन धर्मज्ञः पुष्टिमाप्नोत्यनुत्तमाम् ॥२५६ माध्यां कुर्वन् तिछैः श्राद्धं मुच्यते सर्वपातकैः। शुभं शयनमास्तीर्य फाल्गुन्यां सद्द्विजातये ॥२५७

रूप-द्रविणसंयुक्तो भार्या रूपवती लभेत्। नरः प्राप्नोति धर्मज्ञ प्रमाणं राजवेश्मनि ॥२५८ नारी च शुभभर्तारं रूप-सौभाग्यसंयुतम् । प्राप्नोति विपुलान्भोगान्नात्र कार्या विचारणा ॥२४६ पौर्णमासीवु चैतासु मासर्क्षसंयुतासु च। एतेपामेव दानानां फलं दशगुणं लभेन ॥२६० महापूर्वासु चैतासु फलमक्ष्य्यमश्नुते। द्वादश्यां शुक्रपक्षस्य चेत्रं वस्त्रप्रदो नरः ॥२६१ अक्षयान् लभते भोगान्नाकलोकंऽविनश्वरे। इत्येतस्कथितं विप्र फलं चैत्रस्य सत्तम ॥२६२ द्याद्धे मं च वैशाखं हादश्या यो नरः सिते। शुक्ले ब्रुत्रोपानहीं च विष्णुलोकमवाग्नुयान् ॥२६३ आस्तीर्य शयनं दत्वा प्रणम्य भोगशायिनम् । आषाढशुक्रहादश्यां श्वेतद्वीपमवाप्नुयात् ॥२६४ श्रावणे वस्रदानेन विष्णुसायुज्यमृन्छति। गोदः प्रयाति गोलोकं मासे भाद्रपदे द्विजः ॥२६४ प्रीणयेदभशिरसं यश्च दःवा तथाश्विने । विष्णुलोकमवाप्नोति कुलमुद्धरते स्वकम् ॥२६६ कंबलम्य प्रदानेन कार्तिक्यां भोगमाप्तुयात्। प्रदानं लवणानां तु मार्गशीर्ष महाफलम् ॥२६७ धान्यानां च तथा पौवं दारूणामप्यनन्तरम् । फाल्ग्रने सर्वगन्धानां भवेहानं महाफलम् ॥२६८

भगर्क्संयुता चैत्रे द्वादशी तु महाफला। मासे तु माधवे शुद्धादशी करसंयुता ॥२६६ वायव्येन युता शुक्ले शुची मूलेन वैष्णवी। नभस्याश्विनयोः पुण्या श्रावण्यज्ञर्क्षसंयुता ॥२७० पौष्णर्क्षसंयुता चोर्जे मार्गे च कृत्तिकायुता। सहस्ये तिष्यकोपेता तपस्यादित्यसंयुता ॥२७१ पश्येद्गुर्वर्क्संयुक्ता द्वादशी पावना समृता। नक्षत्रयुक्तास्वेतासु दत्तं दानाद्यनंतकम्।।२७२ मेपं च मेपसंकान्तौ गोवृपं वृपसङ्कमे। शयना-ऽउसनदानं च मिथुनोपगमे तथा ॥२७३ कर्कप्रवेशे सक्तृ हि प्रद्याच्छर्करां तथा। सिंहप्रवेशे पात्राणां तेजसानां तथेव च ॥२७४ कन्याप्रवेशे वस्त्राणां सुरभीणां तथैव च। तुलाप्रवेशे धान्यानां बीजानामपि चोत्तमम्।।२७४ कीटप्रवेशे वस्त्राणां वेश्मनां दानमेव च। धनुःप्रवेशे शस्त्राणां यानानां तु तथैव च ॥२७६ भषप्रवेशे सर्वेषामन्नानां दानमुत्तमम्। कुम्भप्रवेशे दानं तु गवामर्थ तृणस्य च। मीनप्रवेशेऽम्लानानां माल्यानामपि चोत्तमम्।।२७७

दानान्यथैतानि मया द्विजेन्द्राः प्रोक्तानि कालेषु नरः प्रदाध । प्राप्नोति कामान्मनसा विमृष्टान् तस्मात्प्रशंसन्ति हि कालदानम्।।२७८

अशौचे सूतके चैव न देयं न प्रतिप्रहः। सतोरपि तयोर्देया सदा चाभयदक्षिणा ॥२७६ रात्रों दानं न दातव्यं दातव्यमभयं द्विजै:। इमानि त्रीणि देयानि विद्या-कन्याप्रतिप्रहः ॥२८० देवानामतिथीनां च गवामपि च पूजनम्। रात्रावपि हि कर्तव्यमिति पाराशरोऽत्रवीत् ॥२८१ शुचिः सन्नशुचिवांऽपि दद्याद्गृह्वीत चोभयम्। अभयस्य दानकालोऽयं यदा भयमुपस्थितम् ॥२८२ अन्यप्रतिप्रहो विद्वन् प्राह्यश्व शुचिना द्विज । अशौचे सूतके वाऽपि न तु प्राह्मा भवन्ति ते ॥२८३ अभ्यक्तेन च धर्मेझ ! तथा मुक्तशिखेन च। स्नात्वाऽऽचम्य पयः स्पृश्य गृह्वीत प्रयतः शुचिः ॥२८४ द्रव्यस्य नाम गृह्णीयाहाता तथा निवेद्येत्। तोयं दत्वा तथा दाता दाने विधिरयं स्मृतः ॥२८५ प्रतिप्रहीता सावित्रं सर्वं मन्त्रमुदीरयेत्। सार्ध्यं द्रव्येण तत्सर्वं तद्द्रव्यं च सदैवतम् ॥२८६ समापय्य ततः पश्चात्कामं म्तुत्वा प्रतिग्रहम् । प्रतिवही पठेदुचैः प्रतिगृह्य द्विजोत्तमात् ॥२८७ मन्दं पठेच राजन्यो उपांशु च तथा विशः। मनसा च तथा शूद्रात्कर्तव्यं स्वस्तिवाचनम् ॥२८८ सोङ्कारं ब्राह्मणो ब्रूयान्निरोङ्कारं महीपति:। उपांशु च तथा वैश्यः स्वस्ति शूहं तथैव च ॥२८६

न दानं यशसे दशान्त भयान्न।पकारिणे। न नृत्यगीतशीलेभ्यो हासकेभ्यश्च धार्मिकः ॥२६० पात्रभूतोऽपि यो विप्रः प्रतिगृह्य प्रतिमहम्। असत्सु विनियुञ्जीत तस्मै देयं न तद्भवेत् ॥२६१ सञ्चयं कुन्ते यस्तु समादाय इतस्ततः। धर्मार्थं नोपयुञ्जीत न तं तस्करमर्चयेत्।।२६२ यस्मेदित्सा द्विजाय स्यादुररीकृत्य तं नरः। दानं च हृदि सञ्चित्य जलमध्ये जलं क्षिपेत्।।२९३ वदन्ति मुनयो गाथां परोक्षे दानसःफलम्। परोक्षमक्षयं दानं प्रत्यक्षात्कोटिशो भवेत् ॥२६४ पात्रं मनसि सिचत्य गुणवन्तमभीप्सितम्। अप्सु ब्राह्मणहस्ते वा भूमौ वापि जलं क्षिपेत्।।२६४ दानकाले तु सम्प्राप्ते पात्रे चासन्निधौ जलम्। अन्यविप्रकरे दद्याहानं पात्राय दीयते ॥२६६ विष्णुर्भूर्वरुणो यत्र गृह्णंत्वाह करोदकम्। तहःनं ब्रह्मसम्प्राप्तमक्षय्यमिति विष्णुगीः ॥२६७ लक्ष्मीभ्रष्टाय यहतं दरिद्रायार्थिने द्विजाः। तद्श्यं समुद्दिष्टमिति पाराशरोऽज्ञवीत्।।२६८ राज्यश्रष्टं च राजानं भूयो राज्ये निवेशयेत्। विष्गुलोकं चिरं भुत्तवा भूयो भूमिपतिर्भवेन् ॥२६६ प्रतिश्रुत्य द्विजायार्थं यो न यच्छति तं पुनः। न च स्मारयते विप्रस्तुल्यं तदुपपातकम्।।३००

प्रतिश्रुत्य च यत्कि चिद्दि जेभ्यो न प्रयच्छति । स वै द्वादश जन्मानि शृगालयोनिमाप्नुयान ॥३०१ गृष्ट्यादीनथ बश्यामि यथालक्षणलक्षितान्। मानं भूमितिलादोनां यथावत्तन्निबोधत ॥३०२ अजातदन्ता या तु स्याद्गर्भदन्तसमन्विता । वर्पाद्रशीक चतुर्थाच वित्मकेति निगद्यते ॥३०३ सुशीला च सुवर्णा च नोरोगा च पयस्विनी। सवत्सा प्रथमं सूता गृष्टिगींगभिधीयते ॥३०४ अरोगा याऽपरिक्रृटा प्रसववत्यथ सूतिका। सूता याऽतिपयोयुक्ता सा गौ. सामान्यतः स्पृता ॥३०५ पूर्वोक्तगुणसंयुक्ता प्रत्यव्रप्रसवा तथा। साथ गौर्वनुस्त्युक्ता वसिष्ठजवचो यथा ॥३०६ पश्वगुञ्जो भवेन्मापः कर्षः षोडशभिश्च तैः। तैश्चतुर्भिः पलं प्रोक्तं दाने मानं च पुण्यदम् ॥३०७ भद्रं नरेकहस्ताभिः प्रसृतीभिश्रतसृभिः। मानकं तैश्रतुर्भिश्र सेतिकेति प्रकीर्तिता ॥३०८ ताभिधतसृभिः प्रस्थश्रतुर्भिराढकश्च तैः। द्रोणश्चनुर्भिन्तेम्को धान्यमानमिति समृतम् ॥३०६ तिलप्रसृतिभिर्भाण्डं चनुर्भिर्यत्प्रपूर्यते । तैश्चतुर्भिश्च कर्षो हि तैश्चतुर्भिश्च वै पलम् ॥३१० पलैश्च तैश्चरुभिः स्यात् श्रोपाटी तचतुष्ट्यम् । करकं चतसृभिस्ताभिश्चतुर्भिस्तैर्घटः स्पृतः ॥३११

इत्यन्येमुनिभिः प्रोक्तं घृतगौरितलगौः समाः। किञ्च वो बहुनोक्तेन दानस्य तु पुनः पुनः ॥३१२ दीयते यहरिद्राय कुटुम्बिने तद्क्षयम्। सुकृद्वधाय विप्राय भक्तया परमया वसु ॥३१३ दीयते वेदविदुषं तदुपतिष्ठति यौवने। अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि दानानि निष्फलानि तु ॥३१४ तथा निष्फलजन्मानि यथावत्तनिबोधत । वृथा जन्मानि चत्वारि वृथा दानानि पोडश ॥३१४ पृथक् तानि प्रवक्ष्यामि निबोध त्वं द्विजोत्तम !। अपुत्रस्य वृथा जन्म ये च धर्मबहिष्कृताः ॥३१६ दरिद्रस्य वृथा जन्म व्याधितस्य तथैव च। अपुण्यस्थाने यदत्तं वृथा दानं प्रकीर्तितम् ॥२१७ (पण्यस्थानेषु यहत्तं वृथा दानं तदुच्यते ।) आरूढपतिते दानं अन्यायोपार्जितं च यत् । व्यर्थमबाह्मणे दानं पतिते तस्करेऽपि च ॥।३१८ गुरोरप्रीतिजनके कृतव्ने प्रामयाजके। ब्रह्मबन्धी च यहानं यहत्तं वृषलीपती ॥३१६ वेदविक्रयिणे चैव यस्य चोपपतिर्गृहे। स्त्रीजिते चैवं यहत्तं व्यालग्राहे तथैव च ॥३२० परिचारक तु यहत्तं वृथा दानानि पोडश। तमोवृत्तश्च यो दद्याद्भयात्कोधात्तर्थेव च ॥३२१ विद्वन्न दानं तत्सर्वं भुङ्क्ते गर्भस्य एव हि।

ईर्ष्यया मन्युना दानं यहानमर्थकारणात् । यो द्दाति द्विजातिभ्यो बालभावे तद्श्नुते ॥३२२ स्त्रयं नीत्वा च यहानं भक्तया पात्रे प्रदीयते । अप्रमेयगुणं तद्धि उपतिष्ठति यौवने ॥३२३ यत्सद्विप्राय बृद्धाय भक्तया च परया वसु। दीयते वेदविदुषे तदुपतिष्ठति वार्द्धके ॥३२४ तस्मात्सर्वास्ववस्थामु सर्वदानानि सत्तमाः। दातव्यानि द्विजातिभ्यः स्वर्गमार्गमभीप्सता ॥३२४ भूमेः प्रतिप्रहं कुर्याद्भूमिं कृत्वा प्रदक्षिणाम्। करे गृह्य तथा कन्यां दास दास्यो तथा द्विज: ॥३२६ करं तु हृदि विन्यस्य धर्म्यो ज्ञंयः प्रतिप्रहः। आरुह्य च गजस्योक्तः कर्णेऽश्वस्य सटासु च ॥३२७ तथा चैकशफानां च सर्वेपामविशेषतः। प्रतिगृह्वीत गां शृङ्के पुच्छे कृष्णाजिनं तथा ॥३२८ कर्णजाः पशवः सर्वे ब्राह्माः पुच्छे विचक्षणैः। प्रतिप्रहं तथोष्ट्रस्य आरुखंव तु पादुके ॥३२६ ईपायां तु रथोऽक्षे वा छत्रं दण्डे विधारयेत्। द्रमाणमथ सर्वेषां मूळे न्यस्तकरो भवेत् ॥३३० आयुधानि समादाय तथाऽऽमुच्य विमूषणम्। धर्मघ्वजस्तथा स्पृष्टा प्रविश्य च तथा गृहम् ॥३३१ अवतीर्य तु सर्वाणि जलस्थानानि यानि तु । उपविश्य च शय्यायां स्पर्शयित्वा करेण वा ॥३३२ ধূত

द्रव्याण्यन्यानि चादाय स्पृष्ट्या वा ब्राह्मणः पठेत्। कन्यादाने तु न पठेत् द्रव्याणि तु पृथक् पृथक् ।।३३३ प्रतिप्रहाद् हिजश्रेष्ठ त्रथैवान्तर्भवन्ति ते। द्रव्याणामथ सर्वेषां द्रव्यसंश्रयणाद्यरः ।।३३४ वाचयेज्जन्नसादाय ॐकारेण प्रतिप्रहम्। प्रतिप्रहस्य यो धम्यं न जानाति द्विजो विधिम्। स द्रव्यस्तेयसंयुक्तो नरकं प्रतिपद्यते ।।३३४

अथापि वक्ष्यामि वियेविंशेषान् वाजिप्रदाने च प्रतिप्रहे च। दात्र-महीत्रोरपि येन पुण्यं स्वर्गाय जायेत शृणुष्वमेतत् ॥३३६ गृह्णीत योऽखं विधिवद्द्विजेन्द्राः कुर्याद्सौ पञ्चदिनानि पूर्वम्। पञ्चोपचारैहत विष्णुपूजां कूप्माण्डमन्त्रीर्घृ त-दुग्धहोमम् ॥३३७ यद्वाम इत्यादि मरूत्वतीयं सोङ्कारभूरादिभिरन्वितं च। प्रत्येकमष्टी जुहुयाद् द्विजाग्यः सौर्येण मन्त्रेण च तद्वदृष्टी ॥३३८ षष्ट्या प्रयुक्तं त्रिशतं जुहोति कुर्याच गायत्रिजपं सहस्रम्। पश्चात्स गृह्णन् तुरगं द्विजाग्युत्तया स्वमात्मानमजं नयेत् ॥३३६ दाताऽपि चतद्वतमाविद्ध्याद्द्विजाम्य्वत्प्राक्तनपापशुष्यै । द्वावप्यम् सूर्यजनं लभेते सर्वत्र पृज्यो द्विज वृन्दमध्ये ॥३४० अश्वप्रतिप्रहिविधि च प्रतिप्रहं च जानाति योऽरबस्य पुराणगाथाः। स एव धन्यः स च पूजनीयः इहैव लोके द्विज-देवमान्यः ॥३४१ विशेषपुज्यप्रतिपादनाय तिथी प्रदत्तं द्विज यत्र यत्र । प्रागुक्तमेतत्पुनरुच्यते यत्तच्छ्रयतामत्र हि कथ्यमानम् ॥३४२

श्रावणे शुक्रपक्षे तु द्वादश्यां प्रीयते हरिः। गोप्रदानेन विप्रेन्द्र वदन्त्येतन्मनीषिणः ॥३४३ पीपे शुक्के तथा वत्स द्वाद्वश्यां घ्तधेनुकाम । घतार्चः प्रीणनायालं प्रद्धात्फलदायिनीम् ॥३४४ तथैव माघद्वादश्यां प्रदत्ता तिलगौर्द्विजाः। केशवं प्रीणयत्याञ्ज सर्वान् कामान् प्रयच्छति ॥ ३४४ ज्येष्ठे मासि सिते पक्षं द्वादश्यां जलधेनुकाम्। द्त्त्रा विप्राय विधिना प्रीणयत्यम्बुशायिनम् ॥३४६ यत्र वा तत्र वा काले यद्वा तद्वा प्रदीयते। विशेषार्थमिदं प्रोक्तं नान्यस्काले निषेधनम् ॥३४७ विष्णुमुद्दिश्य विप्रेभ्यो निःस्वेभ्यो यत्प्रदीयते। भवेत्तदक्षयं दानं मुत्तमत्वात्परैरिदम् ॥३४८ काले पात्रे तथा देशे धनं न्यायार्जितं तथा। यहत्तं ब्राह्मणश्रेष्ठे तदनन्तं प्रकीर्तितम् ३४६ चन्द्रे वा यदि वा सूर्ये दृष्टे राही महामहे। अक्षय्यं कथितं सर्वं तद्प्यकें विशिष्यते ॥३४० द्वादशीसु च शुक्रासु विशंपात् श्रवणेन च। यत्र यदीयते किञ्चित्तर्नतं प्रजायते ।।३४१ विशंषाद्वधयुक्तेषु पक्षान्त्येषु च सर्वदा । तृतीयासु च सर्वासु शुक्कासु च विशेषतः ॥३४२ वैशाखं शुक्रपक्षं तु विशेषादपि मानवः। आषाढी कार्तिकी चैव फाल्गुनी तु विशेषत: ॥३५३

तिस्रश्चेताः पौर्णमास्यो दाने वित्र महाफलाः। व्यतीपातेषु सर्वेषु समर्क्षेषु द्विजोत्तम ! ॥३५४ महसङ्क्रमकालेषु तीव्ररश्मेर्विशेषतः। तुला-मेषप्रवेशोषु योगेषु मिथुनस्य च ॥३४४ रवर्महाफलं दानं तेभ्योऽपि स्यान्महाफलम् । यदा भानुः प्रविशति मकरं द्विजसत्तमाः ॥३५६ आषाढऽध्युनं चैव पौषं चैत्रे तथैव च। द्वादशीप्रभृति प्रोक्तं पुण्यं दिनचतुष्टयम् ॥३५७ मिथुनं च तथा कत्यां धन्विनं मीनमेव च। प्रवेशे भास्करे पुण्यं कधितं द्विजसत्तमाः। षडशीतिमुखं नाम दाने दिनचतुष्टयम् ॥३४८ अच्छिन्ननाले यहत्तं पुत्रे जाते द्विजोत्तमाः। संस्कारे चेव पुत्रस्य तदक्षय्यं प्रकोर्तितम् ॥३५६ इष्ट्यश्च विविधाः प्रोक्तास्ताश्च कार्या यथोदिताः । सर्वा अपि हि सद्वित्रैरिष्टधर्ममभीप्सुभिः ॥३६० सत्सद्ममेविद्विजनाकलिबसिद्धचर्यमुक्तानि कियन्ति विप्राः। दानानि वक्ष्याम्यय पूर्त्तंधर्मं स्याद्येन पुंसां विहितेन पुण्यम् ॥३६१ ब्रह्मेश-हरि-सूर्याणां स्कन्देभास्या-ऽश्विनां तथा। मातृणां च ब्रहाणां च गृहाणि कारयेन्नरः ॥३६२ इष्टकादशकं वाऽपि यश्चापेयति विष्णवे । अनेन विधिना कुर्याद्विष्णुलोकमवाप्नुयात्।।३६३

एवं यः सर्वदेवानां मन्दिरं कारयेन्नरः। स याति वैष्णवं लोकं प्राप्यं योगशतैः कृतैः ॥३६४ समाचरति यो भग्न सुधाभिधवलं यदि। कुरुते देवहरम्यं च विशिष्टेर्छेप-चित्रकः।।३४ सम्मार्जयति यश्चापि यतो यश्वानुलेपयेन् । प्रदोपं तत्र यो दद्यारस याति विष्णुलोकताम्।।३६६ पूजयेद्विधिना यस्तु पश्चोपचारसंयुतः। स विष्णुलोकमभ्येति यावदाभूतसम्प्रवम्।।३६७ यावन्त्यश्रंष्टकास्तत्र चिता देवस्य सद्मनि। तावन्त्रब्द्सहमाणि तत्कर्ता स्वर्गमाविशेत् ॥३६८ सन्निहत्य-तडागानि पुष्करिण्यश्च दीर्घिकाः । तथा कूपाश्च वाप्यश्च कर्तज्या गृहमेधिमिः ॥३६६ खातमात्रं प्रकतव्यमकाहिकमपि क्षितौ। यावत्पीत्वा जलं गौस्तु तृपार्ता वितृषा भवेत् ॥३७० पिबन्ति सर्वसत्वानि तृपार्तान्यम्भसामिह । वर्षाणि बिन्दुतुल्यानि तत्कर्ता दिवमावसेत ॥३७१ उपकुर्वन्ति यावन्ति गण्डूषाणि क्रियासु च । कुर्वन्ति स्नान-शौचादि तयैवाचमनान्यपि ॥३७२ तावत्सङ्ख्यानि वर्षाणि स्रक्षाणि दिवि मोदते। अपां स्रष्टा वसेत्स्वर्गे सेन्यमानोऽप्सरोगणैः ॥३७३ आरामाश्चापि कर्तव्याः शुमवृक्षैः सुशोभिताः । अश्वतथोदुम्बर-प्रक्ष-चूत-राजाद-नीवरै: ॥३७४

जम्बू-निम्ब-कदम्बैश्च खजूरैर्नारिकेलकैः।
बकुलैश्चम्पकैर्ह् द्येः पाटला-ऽशोक-किंशुकैः।।३७६
दुमैर्नानाविधेरन्यैः फल-पुष्पोपयोगिभिः।
जाती-जपादिपुष्पेस्तु शोभिताश्च समन्ततः।।३७६
भलोपयोगिनः सर्वे तथा पुष्पोपयोगिनः।
आरामेषु च कर्तत्र्याः पितृ-देवोपयोगदाः।।३७७
गाथामुदाहरन्त्यत्र तद्विदः कवयोऽपरे।
बक्षरोपकलोकानां उक्ता या पुष्पवाटिकाः।।३७८

अश्वत्थमकं पिचुमन्द्मकं न्यप्रोधमकं दशचिचिणीश्च। पर्चन्यकं तालरातत्रयं च पञ्चात्रवृक्षेनेरकं न परयेत् ॥३७६ कपित्थ-विल्वामलकीत्रयं च पंचाम्वापी नरकं नयाति ॥३८० यावन्ति खादन्ति फलानि वृक्षात्क्षुद्वह्निद्ग्धास्तनुभृद्गणाद्याः। वर्षाणि तार्वान्त वसन्ति नाके वृक्षेकवापास्त्रिद्शौत्रसेन्याः ॥३८१ यावन्नित पुष्पाणि महीरूहाणां दिवौकतां मूर्घ्न धरातले वा । पतन्ति नावन्ति च वरसराणां कल्पानि वृक्षौद्वयमारुहन्ति ॥३८२ यत्कालपक्वम्धुरेरजस्रं शाखाच्युतेः स्वादुफलैर्नगाद्याः । सर्वाणि मत्वानि च तर्पयेयुःतं श्राद्धदानेन च वृक्ष्नाथान् ॥३८३ उद्दिश्य विष्णुं जगतामधीशं नारायणं यः सुकृतं करोति । आनन्यमाप्नोति कृतं तु तस्मादनन्तरूपो भगवान्पुराण. ॥३८४ दानानि सर्वाण्यभिधाय विद्वन्निष्टं च पूर्तं गृहमेधिकर्म। कुर्वन्ति शान्ति मनुजाः शुभाय वक्ष्यामि तस्माद्थ सर्वशान्तिम् ॥३८४ उक्तानि सर्वदानानि इष्टापूर्तञ्ज सत्तमाः । अतः परं प्रवक्ष्यामि गणेशादिकशान्तयः ॥३८६

इति बृहत्पराशरीये धर्मशास्त्रे सुवतप्रोक्तायां स्मृत्यां दानवर्मेषु पूर्तविनिर्णयो नाम दशमोऽध्यायः ॥ १०॥

. . . . . . . . . . . .

## अथैकादशोऽध्यायः।

## अथविनायकशान्तिविधिवर्णनम्।

शान्तीनामथ सर्वासां प्रहशान्तिः परा रमृता ।
प्रहेभ्योऽपि गगेशस्तु तस्य शान्तिरथोच्यते ॥१
यदि पुङ्कृतकर्माणि भवन्ति फलदानि हि ।
तदा धर्मोऽ-र्थ-कामास्तु संनिध्येरन्सदा नृणाम् ॥२
तन्तृभिः क्रियमाणानां सर्वेषां कर्मणाममुम् ।
विद्नार्थमसृजद्ब्रह्मा शङ्करश्च विनायकम् ॥३
तेनोपहतपुंसां तु कर्म स्यान्निष्फलं कृतम् ।
स्त्रीणामपि तथा सर्वं क्रियमाणं तु निष्फलम् ॥४
जलावगाहनं स्वप्ने क्रव्यादारोहणं तथा ।
स्तरोष्ट्र-स्लेन्छसंसर्गो मुण्ड-काषायवाससम् ॥५
पश्यन्त्यात्मनमेवेह सीदन्तं प्रतिवासरम् ।
यानि कुर्वन्ति कर्माणि तानि स्युः क्लेशदानि च ॥६

राजपुत्रो न राज्याप्त्या वराप्त्या न तु कन्यका। अन्तर्वत्नी अपत्याप्त्या आचार्यत्वेन च द्विजः ॥७ अधीयानास्तु विद्याप्त्या कृपिकृत् सस्यसम्पदा । विणग्वर्तनलाभेन युज्यते निर्धनश्च सन् ॥८ तस्मात्तदुपशान्त्यर्थं समभ्यन्यं गणश्वरम्। स्नपनं कारयेत्तस्य विधिवत्पुण्यवासरे ॥६ चतुर्थ्या शृह्णपक्षे तु अयने चोत्तरे शुभे। पुण्यार्थं सर्वसिध्यर्थं कुर्याच्छान्ति विनायकीम् ॥१० स्वासनासीनं संस्थाप्य आर्क्तार्षभचर्मणि। सितसप्पकल्केन साज्येनाच्छादितस्य च ॥११ विलिप्तशिरसस्तस्य गन्धेः सर्वेस्तथोषधेः। अष्टी वा चतुरो वापि स्वस्तिवाच्यान् द्विजान् शुभान् ॥१२ एकवर्णे श्रुतुर्भिश्च पुनिभः कुम्भैश्च यज्ञलम् । समानीतं क्षिपेत्तत्र वक्ष्यमाणमृदस्तथा ॥१३ अश्वेमस्थान-वल्मीक-हद-सङ्गममृत्तिकाः। रोचनां गुग्गुछं गन्धान् तस्मिन्नंभसि तान् क्षिपेत्।।१४ एतद्वे पावनं स्नानं सहस्राक्षमृपिरमृतम् । तेन त्वां शतधारेण पावमान्यः पुनन्त्वमुम् ॥१५ नवभिः पावमानीभिः कुम्भं तमभिमन्त्रयेत्। शकादिदशदिक्पाला ब्रह्मश-केशवाद्यः ॥१६ आपस्ते घ्नन्तु दौर्भाग्यं शान्ति दद्तु सर्वदा । सुमित्रियान इत्याद्यैर्मन्त्रैरेकेऽभिषचनम् ॥१७

वदन्ति वदतां श्रेष्ठा दौर्भाग्यस्योपशान्तये। समुद्रा गिरयो नद्यो मुनयश्च पतित्रताः ॥१८ दौर्भाग्यं व्नन्तु मे सर्वे शान्ति यच्छन्तु सर्वदा। पाद-गुल्फोरु-जङ्घा-ऽऽन्त्र-नितम्बोदर-नाभिषु ॥१६ स्तनोर-बाह्-हस्ताय-ध्रीवा-अंसाङ्गसन्धिपु । नासा-ललाट-कर्णश्रु केशान्तेषु च यत स्थितम्।।२० तदापो ब्नन्तु दौर्भाग्यं शान्ति यच्छन्तु सर्वदा। स्नातस्य मत्तके दर्भान् साज्येन परिगृद्य च ॥२१ जुहुयात्सार्षपं तैलमौदुम्बरस्रुवेण तन् । मितश्च सम्मितश्चेव तथा सालकटङ्कटौ ॥२२ कूष्माण्डो राजपुत्रश्चंत्यन्तेस्वाहासमन्वितः। नामभिश्च बल्लि द्यान्सन्त्रैर्नमः स्वधान्वितैः। चतुष्पथं समाश्रित्य शूर्पे कृत्वा कुशांस्तथा ॥२३ निधाय तेपु दर्भेषु शुक्राऽगुक्कांश्च तण्डुलान् । ओद्नं पललोपेतं पकामान्मत्स्यकानपि ॥२४ तथा मांसं च कुल्मापान् तथैव त्रिविधां सुराम्। पूरिकाण्डेरकापूपान्फलानि मूलकं स्नजः ॥२४ गणेशमातुः पार्वत्याः कुर्यादुपस्थिति पुनः । दूर्वा-सर्पष-पुष्पैश्च पूर्णमर्घाञ्जलि क्षिपेत् ॥२६ सौभाग्यमम्बिके देहि भगं रूपं यशोऽपि च। स्त्रियं पुत्रांश्च कामांश्च तथा शौर्यं च देहि मे ॥२७

गणेशमातर्हे बाले यत्किश्विन्मदभीष्मितम्।
एकनाम्नैव तद्देवि देहि गौरि ! वरान् वरान्।।१८
ततस्तु वाससी शुक्ले परिधायाऽहते शुभे।
सितचन्दनलिप्राङ्गः सितस्रग्भूषणान्वितः।।२६
तानन्यांश्च द्विजान् सर्वान् भोजयेद्विविधाशनैः।
वस्नुयुग्मं गुरोर्द्यात्तेषु तस्य वराशिषः।।३०

एतेन सम्पूज्य गणाधिनाथं विघ्नोपशान्त्ये जननीं तथास्य । समार्तोक्तसम्यिविधिना सकामान्त्रप्नोति चान्यान्मनसा यदिच्छेत्।३१ स्नात्वा विधायार्चनमित्रकायाः सम्पूज्य लोकान्सखित्रन्धुमिश्रान् । आचायेत्रद्धान्वनिताः कुमारीः प्रध्यस्तिविद्यः श्रियमेति गुर्वोम् ॥३२ स्मृत्युक्तमन्त्रैर्विधिवत्प्रयुक्तैर्नित्यं शिनानः दनपूजनं च । कृतान्तरायान्विनिहत्य सर्वान् कुर्याद्थातो ब्रह्यागमेनम् ॥३३

इति विनायकशान्तिविधिवर्णनम्।

।। अथ प्रहशान्तिविधिवर्णनम् ॥

मुनीनां व्यासमुख्यानां शक्तिसूनुः पुरोऽत्रवीत् । शुभाय प्रहपूजाया वदतस्तन्निवोधत ॥३४ यद्वर्णा यत्सुता विद्वन् जाता देशेषु येयु च । तेषां तद्धिदेवत्यं समिधो दक्षिणा च या ॥३५ यस्य यत्र च दिग्भागे मण्डलं स्यादिवस्वतः । होमकर्मणि ये विप्रा या संख्या समिधामिष ॥३६

अप्रिकुण्डप्रमाणं तु प्रमाणं समिधामपि । सर्वमेव यथोदेशं वह्यामि द्विजसत्तम ॥३७ रक्तः कश्यपजो भातुः श्कुो ब्रह्मपुतः शशी। रक्तो रौद्रमुतो भौमः पीतः सोममुतो बुधः ॥३८ पीतो ब्रह्ममुराचार्यः शुक्को शुक्रो भूगृहहः । कृष्णः शनी रवेः पुत्रः कृष्णो राहुः प्रजापतिः ॥३६ कृष्णः केतुः कुराानूःथः कृष्णा पापास्त्रयोऽप्यमी। कालिङ्गोर्को यामुनः सोम आवन्त्यो भौम उच्यते ॥४० मागवो बुव इत्युक्तः सैन्धवस्तु बृहस्पतिः। सैन्धवो दानवाचार्यः सौर्तरः सौराष्ट्रदेशजः ॥४१ राहुः सिंहलदेशोत्थो मध्यदेशभवोग्निजः। जन्मदेशा इमे प्रांका महजातकवेत्नभिः ॥४२ शम्भुं रिवमुमां चन्द्रं स्कन्दं भौमं हरिं बुधम्। ब्रह्माणं च गुर्ह विद्यात्च्छकं शुक्रं यमं शनिम्।।४३ कालं राहुं चित्रगुपं केनुमित्यधिदेवतम्। एतद्विज्ञाय यः कुर्यात्तरसर्वं सफलं भवेत् ॥४४ अर्कस्वर्काय होतव्यः सर्वव्याधिविनाशनः। सुधांशवे च सोमाय पळाशः सार्वकामिकः ॥४५ खदिरश्चार्थलाभाय मङ्गलाय विवेकेभिः। स्वरूपकृद्रामार्गी होतव्यश्च बुवाय वै ॥४६ प्रभाप्रद्रस्तथाश्वतथो होतन्योऽमरमन्त्रिणे । कर्जासीभाग्यकृद्दृवां देत्यामात्याय सद्द्विजैः ॥४७

शमी पापोपशान्त्यर्थं होतव्या मन्द्रगामिने । दीर्घायुर्धम्कदुद्वा होतत्र्या राहवे द्विज ॥४८ धर्मविद्यार्थहृदुद्भः सद्विप्रैवन्हिसूनवे । द्धिक्षीराऽज्ज्यसंमिश्राः समिधः ग्रुभगृद्धये ॥४६ प्रादेशमात्रकाः सर्वा अष्टावष्टोत्तरं शतम्। अष्टाविंशतिरेकेंकं संख्येषा प्रतिदेवतम् ॥५० वृद्धौ तु फलभूयस्त्वमुक्तादन्यत्तु राक्षसम्। नवभवनकं लेख्यं चतुरस्रं तु मण्डलम् ॥५१ प्रहास्तत्र प्रतिष्ठाप्या वक्ष्यमाणक्रमेण तु । मध्ये तु भास्करः स्थाप्यः पूर्वदक्षिणतः शशी ॥५२ दक्षिणेन धरासूनुबुंधः पूर्वोत्तरेण तु । उत्तरम्यां सुराचार्यः पूर्वस्यां भृगुनंदनः ॥५३ पश्चिमायां शनिः कुर्याद्राहुर्दक्षिणपश्चिमे । पश्चिमात्तरतः केतुरिति स्थाप्या प्रहाः क्रमात् ॥५४ पटे वा मण्डले लेख्या ईशान्यां दिशि पावकात्। ताम्रोऽर्कः स्फाटिकश्चन्द्रो रक्तचन्दनकोऽपरम् ॥५४ सोमसूनु-सुराचार्यों स्वर्णशोभी प्रकीर्तितौ । राजतो भृगुपुत्रश्च कार्ष्णश्च स शनैश्चरः ॥४६ राहुश्च सेसकः कार्यः कार्यः केतुश्च कांस्यजः। सर्वानेतन्मयान्कृत्वा समभ्यर्च्य सदा गृहे ॥४७ लेखयेद्वर्णकैः स्वैः स्वैविधिवत्पिष्टकेन वा ॥ महाणां साधिदैवानां प्रतिष्ठापनमन्त्रकान् ॥५८

वदन्ति मन्त्रत्वार्थवेदिनो द्विजसत्तमाः । आदित्यं गर्भमित्युक्तमिं दूतमनेन च ॥५६ एताभ्यां स्थापयेदकं ज्यम्बकमिति च शङ्करम्। अफ्वन्तरीति शीतांशुं श्रीश्च ते इति पार्वतीम् ॥६० स्योनाष्ट्रथिवीति भौमं च यद्कंदेति वा गुहम्। इदं विष्णुविधि स्थाप्य तिहरणोरिति वै हरिम ॥६१ इन्द्र आसां सुराचार्य माब्रह्मन्निति वेधसम्। इन्द्रं देवीर्भु गोसूनुं सजोपत्यमराधिपम् ॥६२ शन्नो देवी रवेः सुनुं यमाय त्वा तथा यमम्। आयं गौरीति राहुश्च कालं कार्पीरमीति च ॥६३ ब्रह्मयज्ञेति केतुं च चित्रं चित्रावसोरिति । ब्र्युरेतानि मंत्राणि मूलमन्त्रस्तथापरे ॥६४ आकृष्णेन च तीव्रांशोरिमन्देवा निशाकरम्। अग्निर्मूर्घेति भृसूनोरुद्बुध्यध्वं बुधस्य च ॥६४ बृहस्पतेरिति गुरोरन्नात्परिश्रुतो भृगोः। शन्नो देवी शनेर्गस्तुः काण्डात्काण्डात्परम्य च ६६ केतुं कुण्वन्नग्निमूनोरिति मन्त्राः प्रकीर्तिताः। वेदमन्त्रैर्विना कश्चिद्विधिर्नास्ति द्विजन्मनाम्। कर्तव्याः स्वम्बमन्त्रीश्च स्त्रैः स्वैश्च प्रतिदेवतम् ॥६७ सघृता सयवार**च**ापि होतव्यारच द्विजैस्तिलाः। मध्यमानामिकामूळलग्नाङ्गुष्ठचतसृभिः ॥६८

यावन्तोऽङ्गुलिभिर्शाद्यास्तिलास्ताद्भिराहृतिम्। हस्तमात्रं पृथ म्ह्येन वेधोऽपि तावतेव तु ॥६६ बाहुमात्रं वद् त्ये के एके चाऽरितमात्रकम्। चतुरस्रं खनेत्कुण्डं एकयोनिसमन्वितम्।। ७० शुभमेखलया युक्तं सुशान्तिकरमुत्तमम् । होमार्थं मण्डपं कुर्याबतुद्धरिं सतोरणम् ॥७१ चतुर्दिक्ष ध्वजाः कार्या नानावर्णाः शुभःवहाः। तथा तत्रोदकुम्भाश्च दूर्वा-पह्नवसंयुताः ॥७२ पुनर्नवीकृतं सद्म मण्डपाभाव आश्रयेत्। षट्कर्मनिरताः शान्ता ये न दग्धाः प्रतिप्रदैः ॥७३ नियोज्यास्तेऽप्रिकार्यादी स्फुरन्मंत्रा द्विजोत्तमाः। प्रतिप्रहामिद्ग्यस्य जप-होमादि कुर्वतः ॥७४ यस्य मन्त्राण्यवीर्याणि तत्कृतं कर्म निष्फलम्। ओदनं सगुडं भानोः पायसं शशिनस्तथा ॥७४ हविष्यं भूमिपुत्रंस्य क्षीरान्नं च बुधस्य च। षष्टिक्यं ब्रह्मपुत्रस्य दध्ना तु भार्गवस्य च । पूर्णं हिवः शनैर्गंतुर्मं।सं राहोः श्रुताश्रुतम्।।७६ चित्रान्त्रमप्रिसूनोश्च भोज्यानामभिशायजाः। कृतहोमस्तथाऽन्येऽपि ये सद्वृत्ता द्विजोत्तमाः ॥७७ यथावर्णानि वासांसि देयानि कुसुमानि च। देया गन्धाश्च सर्वेषां देयो धूपश्च गुग्गुल: ७८

धेतुः शङ्को वृषाः स्वर्णं वासांस्यश्वः सिता च गौः। अविश्न्छागलकश्चेव क्रमशो दक्षिणाः स्मृताः ॥७६ प्रखं प्रतिमासं च प्रत्यन्दं वा विधानतः। वर्णिभिश्च प्रहाः पूज्या राजभिश्च सदैव हि ॥८० दुःखितो यस्त् यस्य स्यात्रुज्यस्तस्य स यत्नतः। वेधसेते नियुक्ताः प्राक् स्वभक्तं पूजयिष्यथ ॥८१ वरं यच्छिति संहुश विष्रा वहिन् पास्तथा। असन्तुरा दहन्त्येते तस्मात्तानचयेत्सदा ॥८२ प्रहाधोनमिदं सर्वमुत्पत्ति-प्रलयात्मकम्। जगत्यभाव-भावौ च तस्मात्र्रज्यतमा ब्रहाः ॥८३ सानुकुछेर्परेयांनि कुर्यात्कर्माणि मानवः। सफलानि भवन्त्यस्य निष्फलानि स्युरन्यथा ॥८४

कुर्वन्ति चेतद्विधिना ग्रहाणामातिश्यमद्धं प्रतिवासरं ये । आरोग्यदेहा धन-धान्ययुक्ताः दीर्घायुषः स्त्रीसहिता भवन्ति ॥८४

इति प्रह्शान्तिविधिवर्णनम्।

।। अथ गृद्ध-काक-तिर्थंग्-यमल-शान्तिवर्णनम् ॥

वसत्त्वकस्मात्सदनेष्वतोऽद्भुतं वयोविशेयुर्यदरण्यवासिनः । विशेषतो गृध्र-कपोत-विच्छलारतयैव चोलूकसकाक-वायसाः ॥८६ तरक्षु-गोमायु-मृगारि-भृक्षका दिवाष्यकस्मादकुतोऽपि निर्भयाः । विशन्ति यत्ते तदतीव चाद्भुतं गृहे पुरे शान्तिकमेव सिद्धये ॥८७

अथाद्भतानि जायन्ते वर्णानां गृहमेधिनाम्। नानाविधानि तेषां तु प्रशान्स्यै शान्तिरुच्यते ॥८८ यस्याद्भृतानि जायन्ते मृत्युं तस्य वदेद्द्विजः। धन-धान्यक्षयं चापि भार्या-पुत्रक्षयं तथा ॥८६ भयं वा जायते शत्रो राज्ञो वा जायते भयम् । शान्तिरतत्र विधातव्या यथोक्ता मुनिपुङ्गवैः ॥६० यदि गोधूमशाखायां यवशाखोपजायते। यवे गोधूमशास्त्रा स्यादेवं सर्वाशनेषु च ॥६१ सर्पपे तिलशाखा चेत्तिलशाखासु सर्पपम् । माषे मुद्रस्तु मुद्गेस्यादस्मृतृष्टिभवेद्यदि ॥६२ अम्भ प्रपूर्णकुम्भेषु ज्वलद्ग्निमवेक्ष्ते । उद्दर्तनं च कूपानां मत्तो वा मधुजालकम् ॥६३ विधिवद्वायुलिङ्गश्च निर्वाप्य पयसं चक्रम्। महावाताय सनतं हृद्यं तु प्रशाम्यतु ॥६४ त्रि-पञ्च-सप्त वा हुत्वा सर्वत्र ह्यत्र तुल्यता। श्चियो गावो महिष्यो वा सुती वत्सौ पण्डकौ। द्वौ द्वौ यत्र प्रजायेते शान्तिस्तत्र विधीयते ॥६४ वृपवद्गोद्वयं नर्देन् वडवाऽश्वं यदामहेन्। अश्वनरी प्रसृते ऽहि प्रस्वेदः प्रतिमासु च ॥६६ मृरङ्ग-पटहादीनामकुतोऽपि ध्वनिर्यदि । गृद्ध-काक-कपोताचा विशेयुर्यदि वा गृहे ॥६७

यवपिष्टेन निर्वाप्य विधिवद्वारुणं चरुम्। मन्त्रैर्वरुणदैवत्यैर्जुहुयाद्वरुणाय तम् ॥६८ महावरुणदेवाय जलानां पतये तथा। अन्येर्वरुणदैवत्येर्मन्त्रीश्च जुरुवाचरम् ॥६६ जुहुयादाहुतीस्तिस्रो मन्त्रेश्च वरुगाय तम्। अन्नस्य तुल्यतां क्रःवा स्वाहान्तेवेरुणदेवतैः ॥१०० इन्द्रचापेक्षणं रात्रौ शस्त्रःज्यलनं तथा । गजा-ऽश्वराफवस्नान्तर्जछनं च प्रतिक्षणम् ॥१०१ स्थुणाप्ररोहणं यत्स्याद्भाण्डस्थान्नप्ररोहणम्। विद्युन्निर्घातवज्राणां पतनं वा भवेद्यदि ॥१०२ मृहाकुं काकसंसगं विपरीतप्रदर्शनम्। शुभाय चरुराग्नेयो निर्वाप्यो विधिवदृद्धिजै: ॥१०३ अग्नये त्वग्निराजाय महावैश्वानराय च। हृद्ये मम यश्चैतत्तत्सर्वं च वदेद्बुधः ॥१०४ प्रहशान्तिश्च सर्वत्र शनेः पूजा विशेषतः। दक्षिणा सदृषा गौस्तु वस्त्रयुग्मं द्विजातये। प्रदद्याद्दोषशान्त्यर्थं सर्वोत्पातेषु वै द्विजः ॥१०४ एतेषु चान्येष्वपि चाद्भुतेषु जातेषु सावित्रज्ञपं सहस्रम्। होमं विद्ध्यादपि विष्णुमन्त्रे ब्रह्मेशमन्त्रीरपि वा द्विजोत्तमः॥१०६

इति-अद्भुतशान्तिवर्णनम्।

## बृहत्पराशरस्त्रति:।

।। अथ मद्रपूजाविधिवर्णनम्।।

अभिधास्येऽथ रुद्राणां शान्तियां गृहुभेविनाम् । प चाङ्गानां विवानं तु यत्कृतं हन्ति पातकम् ॥१०७ ब्राह्मगो निधिनत्स्रात्ना सर्वोपद्रवनाशनम् । कुयांद्विधानं कद्राणां यजुर्विधाननिर्मितम् ॥१०८ इपत्वादिषु म त्रोपु खं ब्रह्मात्तेषु या क्रिया। दशप्रण त्युक्तं र भूर्भु गःस्मरितोति च ॥१०६ आर्पं छन्द्रश्च दैवत्यं न्यासं च विनियोगतः। पराशरोदिनं वक्ष्ये शेषं मुनिविभाषितम् ॥ ११० मनो ज्योतिर्वोध्यग्निर्मुर्वानं चैव मर्माणि। मानातो के इतिहातत्त्रथमं पश्चकं स्मरेत् ॥१११ याते मद्रति चुडायां शिरोऽस्मिन्महत्यणेते। असङ्ज्याताः सहम्राणि ललाटे विन्यसेद्द्विजः ॥११२ चक्षुरोवि यसेद्रे तु त्र्यम्बकं तु यजामहे। मानस्तोक इति ह्यतन्नासिकायां न्यसेरुब्धः ११३ अवतत्यधनुव मन्ये नीलप्रीवाय वा गले। नमन्ते आयुधरयेत स्मरेन्मन्त्रं प्रकोष्ठके ॥११४ वित्यसेद्वारतुमत्त्रोऽयं ये तोर्थानीति हस्तयोः। नमो उत्तु विकिरेभ्यो वै हृ र्ये मलनाशनम् ॥११४ नाभ्यां विद्वान्न्यसेत्मत्रं नमो हिरण्यबाहवे। गुह्ये मन्त्रस्तु संस्मर्य इमा रुद्वाय इत्यपि ॥११६

मानोमहान्त इत्यूर्वोः एप ते मद्र जानुनोः। अव रुरमितिह्यंतज्ञङ्घयोर्मन्त्रमुचरेत् ॥११७ सन्यं च पादयोर्त्यस्य वामं न्यस्योक्तमध्यतः। अघोरं हृदि वित्यस्य मुखं तत्त्रहृतं न्यसेत्। ईशानं मुहिर्न विन्यम्य हंसं नाम सदाशिवम्। हंम इंसेति यो ब्र्यात् हंमोनाम सदाशिवः। एवं न्यामिवधि कुःवा ततः सन्पुरमाचरेत्। कवर्च मध्यवोचहै तदुपरि बिल्मिनेत्यपि । नेत्रं तु नीलप्रीवाय प्रमुख धन्वतोऽस्रकम् ॥११८ य एतावन्त एतेन विर्ध्युर्दिक्प्रबंधनम् । ॐ मोमिति नमस्कारं ततो भगवते पुनः ॥११६ मदायेति विधानक्षो दशाक्षरं ततो न्यसेत्। प्रणवं विन्यसेन् मूर्धितं नकारं नासिकान्तरे ॥१२० मोकारं तु ललाटे तु मकारं मुखमध्यतः। गकारं कण्ठदेशे तु वकारं हृदये न्यसेत् ॥१२१ तेकारं द्रक्षिणं हस्ते रुकारं वामतो न्यसेत्। द्राकारं नाभिदेशे तु यकारं पादयोर्त्यसेत्।।१२२ त्रातारमिद्रं त्वन्नोऽग्ने सुगःपन्थामिति हापि । तत्त्रायामि वृदेहाने नियुद्धिरित्यपीरयेत् ॥१२३ वयं सोमं तमीशानमस्मे रुद्रा इति स्मरेत्। स्योना पृथिवीतिना होतत् द्विजः कुर्वीत सम्पुटम् ॥१२४

सुत्रामादि दिशां पालान्त्राच्यादिषु स्मरेद्थ । रौद्रीकरणमेतढ्ढै कृत्वा पापैः प्रमुच्यते ।।१२४ यक्ष-रक्षः-पिशाचाद्याः प्रेत-भूत-प्रहादिकाः । दुष्टदैवत्य-शाकिन्यो रेवत्यो वृद्धकाश्च याः ॥१२६ सिंह-न्याचादयोऽऽरण्या ये दुष्टश्वापदा द्विजाः। म्लेच्छा वन्धक-चोराद्या यमदृता वृकाद्यः ॥१२७ रौद्रभूतमिमं सर्वे द्विजं पश्यन्ति वह्निवत्। दैदीप्यमानमर्चिभिद्ष्टदिग्बन्धकारकम् ॥१२८ द्द्यमाना द्वीयांसःसप्तधामसु धामभिः। प्रणश्यन्ति हि ये दुष्टा द्विजास्ते म्द्ररूपिणः ॥१२६ **पश्चास्यं** सौन्यमात्मानं सर्वाभरणभूषितम्। मृगलांच्य्रनमूर्थानं शुद्धस्फटिकसन्निभम् ॥१३० फणासहस्रविस्फूर्जेदुरगेन्द्रोपवीतिनम् । सप्तार्चिवज्ङवलद्भालं जटाजूटकिरीटिनम्।।१३१ सहस्रकरवद्श्राजन् खट्वाङ्गाङ्गविभूषितम् । ब्रह्माण्डखण्डवस्त्रारं नृकपालकधारिणम् ॥१३२ दैदीप्यमानं चन्द्रार्कज्वलद्गितिनेत्रिणम्। ञैलोक्यग्रुतिऋद्गास्वत्स्कन्धकापालमालिनम् ॥१३३ दीप्रनक्षत्रमालावदश्रमालाधरं द्विजः। नि:शेषवारिसम्पूर्णं कमण्डलुधरं त्वजम् ॥१३४ जगद्वाधिर्यमुमादं दण्ड-डमस्थारिणस्। केयूरबद्धनानेन्द्रमूर्द्धं मणिबराजितम् ॥१३४

मेखळाकिकिणीमालायुक्तारावविराजितम्। घर्घराव्यक्तनिर्गच्छद्रम्भीरारावनुपुरम् ॥१३६ सहेमपट्टनीलाभव्याघ्रचर्मोत्तरीयकम्। विद्युह्नताप्रभागङ्गा घृतमृद्धं सुराचितम् ॥१३७ समल्भुवनाभारधरणोक्षासनस्थितम्। त्रैलोक्यवनितामौलिनतदेहार्द्धपार्वतिम् ॥१३८ लक्षसूर्यप्रभाभारवत्त्रेलोक्यकृतपाण्डुरम् । अमृतप्लुतहृष्टाङ्गं दिव्यभोगसमाकुलम् ॥१३६ दिग्दैवतैः समायुक्तं सुरासुरनमस्कृतम्। नित्यं शाश्वतमञ्यक्तं व्यापिनं नन्दिनं ध्रुवम् ॥१४० द्विजो ध्यात्वैवमात्मानं सम्यक् रुद्रश्वरूपिणम्। सम्प्रध्वस्तान्तरायः सन् ततो यजनमारभेत् । १४४१ अनुलिते सुलिते च देशे गोचमेमात्रके। स्थण्डिलेऽम्बुजमालिख्य मन्त्रैः प्रक्षाल्य तत्पुनः ॥१४२ तत्र पूजा प्रकर्तत्र्या नमश्च शम्भवाय च । मानो महान्तमिति च सिद्धमन्त्रं स्मरेद्बुधः ॥१४३ स्वललाटे पुनर्ध्यायेत्तंजोरूपं शिवं द्विजः। दशाक्षरेण मन्त्रेण दद्यात्पाद्यादिकं पुनः ॥१४४ न्यासमन्त्रेश्च सोङ्कारमिनस्तोक इतीत्यपि। शम्भवायेति मन्त्रण दद्याद्गं धोदकादिकम् ॥१४५ पुष्प-घूप-प्रदीपादि यथालाभं निवेद्यकम्। दशाक्षरेण तेनैव नमः क्रुर्यात्पुनर्द्विजः ॥१४६

शिखा तस्य तु रुद्रस्योत्तरनारायणं द्विजः। शिरः पुरुपपूक्तं च शिवसङ्कल्पकं च हृत् ॥१४७ क्षवचं चाप्रतिरथं नेत्रं विश्राट् बृहत्पिबन् । शतरुद्रोयमन्त्रेण देवस्यास्त्रं प्रवरुपयेन् ॥१४८ पञ्चाङ्गानि समरेदप्रप्रणवं च जपेद्दृद्विजः। उद्दृतृत्य प्रगवेनेशं विकिरिद्रं विसर्जयेत् ॥१४६ हरूक्यो हिजो यश्च यत्कुर्यात्तद्धि सिध्यति । अक्षतान्त्रा तिल्लान्यापि यवान्त्रा ममियोऽपित्रा ॥१५० शम्भवायेति जुहुयात्मर्वा स्तानाज्यसि ककान् । पञ्चपञ्चाथ षर् पर् वा अष्टावटी तथापि वा ॥१५१ दशदशैकादश वा जुहुयात्माधको द्विजः। द्विजः स्व शरमंतुष्टः श्रुचिः स्नातो यते द्वियः ॥१५२ जप-तर्पण-होमादौ रतो यो वत्मरं जपन । दशानामश्रमेधानां फडं प्राप्नोति वे द्विज: ॥१५३ सौवर्णपृथिवीदानपुण्यभाक् जायते नरः। महापापोपपापेश्च मुक्तो रुद्रत्वमृच्छति ॥१४४ एकाद्शगुणान् स्ट्रानाबृत्य याति सद्धताम्। रुद्रजापी शुचि: पुण्यः पाङ्क्यः श्राद्धभुग्वरः ॥१५५ पूर्वजानां शतं सेकं ताडयेदुद्रजाप्यकृत्। एकतो योगिनः सर्वे ज्ञातिभिः सह तद् अतैः ॥१५६ एकतो रुद्रजापी तु मान्यः सर्वेस्तु देवतैः। पात्रमत्र पवित्रं तु नाधिकं रहजापिनः ॥१४७

तस्मे दत्तं च तद्भुक्तं सदा नश्याय कलयते। वेदाङ्गवेहिनामतः शिवभक्तः सदाधिकः ॥१६८

इति रुप्रजाविधिवर्णनम् ।

।। अथ मद्रशान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः मिद्धिकाम सन्कन्दमृत्काराशन । गोनुत्रयावयक्षीरद्विशाकाऽऽज्यभाजनः ॥१५६ हविष्यमोजनो बाऽसौ विष्रो योत्पन्नमोजनः। जपहोम।दि बुर्वाणां यथोत्तफरमाग्में त्।।१६० शिरसा सह स्ट्राणां जातेईशशतेर्ध्वम् । सर्वे मन्त्रा भवन्त्यस्य ब्राह्मणस्योक्तकारिणः ॥१६१ सिद्वा म त्रा हिजे द्रम्य चिन्तितार्थफलप्रदाः। रुद्रस्थैवास्य सर्वे ते भवन्त्रीश्वरनोदिताः ॥१६२ एका रश गुभानकुम्भ न् आहत्य विधिसम्मितान्। सहिण्यान्सवस्तांश्च फःपुष्पोपशोभितान् ॥१६३ गन्धोदकाऽश्रतेर्युक्तान् पूजयेद्रद्रभक्तिकृत्। अधे हाद्राहरैश्र एके हमभिमंत्रयेत्। एवं संपूज्य तान्कुम्भान् नमस्कृत्याभिमन्त्र्य च । पूजयेद्धक्तितो रद्रानेकादश महागुणान् ॥१६४ एकादशाहमात्मानमन्यं वा हित काम्यया। विनायकोपसृष्टं च स्नायात्काकपदाहतम् ॥१६४

धृतत्रत्सां काकवन्ध्यां स्नापयेश तथाऽऽतुराम् । जपदेतत्सकृद्धिप्रः सर्वदोषेविमुच्यते ॥१६६ अनड़ाहं च वसं च द्याद्वेनुं च दक्षिण।म्। भोजयेद्विदुषो विप्रान्समाप्ती कर्मणो द्विजः ॥१६७ भक्त्येकादशवस्त्राद्यैयथाशक्त्या समचयेत्। अथ वा चरुभिक्षाशी शिरोरुद्रसहस्रकम् ॥१६८ जपद्रोप्ठे तथारण्ये सिद्धक्षेत्रं शिवाल्ये। अन्यागारे समुद्रे च नदी-निर्भर-पर्वते ॥१६९ जपेदन्यत्र वा विद्वान् शुचौ देशं मनोरमे । धीरो दृढव्रतो मौनी त्यक्तकोधो यतेन्द्रियः ॥१७० धौतवासास्त्वधःशायी रुद्रलांके महीयते । नमो गणेम्य इत्यस्य मन्त्रस्य ब्राह्मणोऽयुतम् ॥१७१ ज'त्वा च श्रीफलेर्डु त्वा सवकार्येषु सिद्धिभाक्। नमोऽस्तु नीलमोवायेत्येतनमंत्रण सप्तधा ॥ आवर्त्योद्कमामः इयं विपार्तं अवणे क्षिपत् । विषण मुच्यते सद्यः कालदृष्टोऽपि जीवति ॥१७२ विषस्याभिभवो न स्यान्न एस्य तस्य कर्हिचित् । प्रहमस्तं ज्वरमस्तं रक्षः शाकिनिद्षितम् ॥१७३ ब्रह्मराक्ष्सप्रस्तं च अन्यदोपोपगृहितम्। प्रमुख धन्वन इति भस्मना सर्पपैन्तथा ॥१७४ ताडयेन्मुञ्च मुञ्चेति शीघ्रमेत्र विमुश्वति । नमः शम्भव इत्यस्य मन्त्रस्य चायुतं द्विजः ॥१७४

जप्त्वाखादिरसमिधो हुत्वा विप्रः सहस्रकम्। तीक्ष्णैतेलल्हतं सम्यञ्जन्त्रान्ते चामुकं हन ॥१७६ फर्फर्कारेण जुहुयात्क्षयो रोगश्चिराद्भवेत्। जलमध्ये शतावत रचयो वृष्टिर्निगद्यते ॥१७७ नाभिमात्रे जले विप्रः प्रविश्य जुद्ध्याज्जलम् । कुर्यादेकार्णवां धात्रीं मन्त्रमाहात्म्यतो भूराम् ॥१७८ नम श्वभ्य इत्यमुना मन्त्रण तु सहस्रकम्। <mark>लवण मध्वाहुतीनां तु राजा शीव्रं वशी भवेत ॥१७६</mark> द्विगुणा पठाशसमिधं महावाणी प्रजायते । त्रिगुणा नवपद्माना पाताले सिध्यति ध्रुवम् ॥१८० चतुर्भुणेन मन्त्रेण वरदा श्रीः प्रवर्तते । समुद्रगानदीकुरे पुलिने वा पवित्रके ॥१८१ खड्गोपरि श्रीफ ठाना हत्वा त्रिशन शतानि च । खड्विद्याधरो विप्रः शिवाज्ञात प्रजायते ॥१८२ अणिमाद्यष्टगुणं हत्या जपेन्मन्त्रसहस्रकम् । अणिमादिकसिद्धीनां पतिरेव भेदिष्ठिजः ॥१८३ छन्दोदैवतमार्पयमथात शतरिवये। ज्ञानेन कर्मसम्यक्त्वं द्रिजानां येन जायते ॥१८४ आद्यानुवाके रुद्राणामाद्यायां च ऋचि द्विजः। छन्दो गायत्रमन्यासु अनुष्टप् तिसृषु समृतम् ॥१८६ पङ्क्तिम्तिसृपु विजया अनुष्टुभ् सप्तसु स्मृतम् । द्वयोश्च जगती विप्रा उक्तमाद्यानुवाकयोः ॥१८६

अदानुवाके प्रथमा बृहती जगती तथा। अनुष्टप् च तृतीयायां इयोह्मिट्रप् समृता द्विज ॥१८७ अपराम् तथान्ष्टप् अनुवाकद्वयं स्मृतम्। रुद्रः सर्वासु दैवत्यं विनियोगो यथोचितः ॥१८८ यजायतादिपट्के च शिवसंव हामात्रकम्। कद्रम्तु देवना पर्मु विनियोगो जपादित्र ॥१८६ सहस्रशीयो इत्यादि हिमुगाष्ट्रपु देवना । पुरुषो यो जगद्वीजमृपिर्नारायणः स्मृतः ॥१६० छन्दः सर्वापु वाऽतुष्टप् विनियोगो जपादिषु । अद्भ्यः सम्भूत इत्यादी उत्तरनारायगन्दृषिः ॥१६१ आञ् शिशान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते। पूर्वानुवास्ये देवत्यं त्रिष्टम् छंदं प्रकीर्तितम् ॥१६२ एतन्नाम्ना मुनिस्तत्र देवता अमरेश्वरः । आशु शिराान इत्यादिरप्रतिरथ उच्यते। त्रिष्टम् छन्दो जपादौ च विनियोगो यथोचितम् ॥१६३ इयम्ब हमिति चैत्रात्र वसिष्ठस्यापंमुच्यते । दैवत्योमापतिर्द्धत्र छन्दस्त्रियम् प्रकी तित ।।१६४ विभ्राट् बृह्च इत्यादी सूर्यो देवतपुरुवते । एतःसिबन्य सकलं द्विजाग्यो रुद्रजाप्यकृत् ॥१६५ यद्यदारभते तत्त्र यथोक्तफलदं भवेत्। वेदाध्यायस्य दातृगां श्रद्धया द्रविणस्य च ॥१६६

प्रजानामायुषः कोर्तेर्भूयस्वं म्द्रजापिनः। इमं सन्त्रं पवित्रं च रहस्यं पापनाशनम्।।१६७ स्द्रविधि।विधिश्रेष्टं कुर्योद्विप्रः शिवेरितः। शेवागमविशेपज्ञो वेद-वेदाङ्गपारगः।।१६८

कुर्याद्यदेवं विभिवद्विधानं शम्भोरजस्तं प्रथितं द्विजेन्द्राः । प्राप्नोति लोकं म शितस्य माक्षाद्त्रःपि सम्याचिद्रववत्युपृत्यः॥१६६ मन्त्राणि सर्वाणि च सद्क्षित्रस्य निर्द्राकतृणि भवन्ति तस्य । यःसाधयेत्रोक्तविधानविज्ञो मात्राभिपृत्त्यः सतु शाभुवन्त्यात्॥२०० मन्त्रां त्रितेत्रां जुरुयात् हुताशे यो विल्वपत्रीर्युत-दुर्ग्यमिष्ठैः । निह्त्य मृत्युं श्रियमेति धात्र्यां प्राप्नोति पश्च चिद्रवलोकमेव ॥२०१

> पश्चभागश्च पड्जातः पञ्चे द्रं पश्चवारुणम् । षड्जाति च जपित्वा तु सर्वपापे प्रमुच्यते ॥२०२

> > इति रुद्रशांतिविधिवणंनम्

।। अथ तडागादि प्रतिष्ठाविधिवर्णनम् ॥

अथातः सम्प्रवक्षामि तडागादिविधि शुभम् । कृतेन येन तेपां तु प्रतिष्ठा सम्प्रजायते ॥२०३ अस्मन्नामस्य ततेन पृच्छते रघुपुङ्गवे । तडागाद्युत्सवे प्रोक्तो विधिः साऽयं प्रकीर्तितः ॥२०४ दीर्घिकासु तडागेषु सन्निहत्यासु यो विधिः । तं वसिष्ठोऽवदत्सम्यक् दशरथस्य पृच्छतः ॥२०४

तस्माच श्रुतवान् शक्तिः श्रुश्रावातः पराशरः । तत्त्रसादेन तत्त्रोक्तो यो विधिः सम्प्रचक्षते ॥२०५ तडागादिनिपानानां यावस्रोत्सर्जनं कृतम्। तावत्तत्परकीयं तु स्नानादीनामनहकम् ॥२०७ अप्रतिष्ठित रेवानां न कार्यं पूजनं नरैः। अप्रतिष्रितखातानामपेयं तोयमुच्यते ॥२०८ तदुन्सर्गः प्रकर्तव्यो निजवित्तानुसारतः । वित्तशाट्यं प्रहेयं स्यादित्युवाच पराशरः ॥२०६ तद्विधिज्ञः शुन्तिः शान्तो ब्राह्मणो धर्मवृद्धये । तदर्थं वरणोयोऽसौ चतुभिर्वाह्मणैः सह ॥२१० आचार्यस्तत्र हर्तव्यः पूर्तवर्मविवृद्धये । विपरीतमतिर्यःस्यात्तत्कृतं कर्मनिष्फलम् ॥२११ तडागपालिपप्ठे तु मण्डपं तत्र कारयेन्। पूर्वोत्तरप्लवे देशे शुचिः ग्वस्थः समाहितः ॥२१२ चतुरस्रं चतुर्द्वारं दशहस्तप्रमाणकम्। स्वामिहस्तप्रमाणेन तोरणानि च कारयेत् ॥२१३ पातका विविधाः कार्या नानावर्णाः समन्ततः। शुभपल्लवसंयुक्ता द्वारेषु कलशाः स्पृताः ॥२१४ यथावणै यथाकष्ठं यथाकार्यं प्रमाणतः । तथा यूपान्त्रवक्ष्यामि वर्णानां हितकाम्यया ॥२१४ पालाशो ब्राह्मणः प्रोक्तो न्यप्रोधो भूभुजः स्मृतः । वैल्वो वैश्यस्य यूपःस्याच्ड्रद्रस्यौदुम्बरः स्पृतः ॥२१६ः

शिरः प्रमाणो विष्रस्य आकण्ठं क्षत्रियस्य च। डर:प्रमाणो वैश्यस्य शुद्रस्य नाभिमात्रकः ॥२१७ वेदिका पादमूले तु यूपम्तत्र निखन्यते । यूपस्य दक्षिणं भागे तोरणं तत्र कारयेत्।।२१८ ब्रह्मस्थानं च तन्मध्ये अष्टौ भागाः प्रकीर्तितः। तेषामुत्तरतः सोमं कुवेरं कुविदङ्गतम् ॥२१६ धनदं धन्वनागेति ईशावास्येति शङ्करम्। आकृष्णेनेत्यादिमन्त्रेश्च स्वैः स्वैः कलयास्तथा ब्रहाः ॥२२० त्रातारमिन्द्रमितीन्द्रं मग्निं दृतं च पावकम्। अग्निः पृथुरित्यादि धर्मराजं द्विजोत्तमः ॥२२१ तद्विष्गोरिति वै विष्णुं नमः सूतेति नैर्झृ तिम्। सप्तर्षयस्तु इत्यादि मन्त्रैः सप्तश्नृपींस्तथा ॥२२२ वरुणस्योत्तंभनमसि वरुणं च प्रपूतयेत्। एवं द्वाविंशतिस्थानानि मन्त्रोक्तानि पृथक् पृथक् ॥२२३ इमं मे, त्वन्नः, सत्वन्नस्तत्वायामि ह्युदुत्तमम् । समुद्रोऽसि समुद्रेति त्रीन् समुद्रान् निमीनपि ॥२२४ दशभिर्वारुणैर्मन्त्रैराहुतीनां शतद्वयम्। शतमर्थं शतं वापि विशत्यष्टोत्तरं शतम् ॥२२४ गोसहस्रं शतं वापि शतार्धं वा प्रदीयते । अलाभे चैव गां द्यादेकामपि पयस्विनीम् ॥२२६ अरोगां बत्ससंयुक्तां सुरूपां भूषणान्विताम् । सौक्र्या राजतास्तामाः कांस्याः सोसाध्र शक्तितः ॥२२७

मत्स्या नक्रादयः कार्या विविधावर्तवृत्तयः। गो-वत्तो वस्त्रगद्धो च आग्नेय्यां दिशि संक्षितौ ॥२२८ वायव्याभिमुखौ तत्र कारयेद्वारिमध्यतः। वस्त्रयुग्मानि विषेश्यो मुद्रिका-छत्रिकादयः ॥२२६ भक्तया चैताः प्रदातव्याः प्रमाद्य यत्रतो द्विजाः। विप्रान् सन्तोष्य देयानि दानानि विविधान्यपि ॥२३० हेमपु रासंयुक्तां शब्यां द्य च शक्तितः। आसनानि प्रशस्तानि भाजनानि निवेद्येत् ॥२३१ एतत्प्रदक्षिणोक्तत्य स्वास्मना च विपश्चितः। प्रसाद्येत् द्विजान् सर्वान्त्रां अन्द्रतंपलं नरः ॥२३२ कृताञ्जलिपुटो भूरमा विप्राणामप्रत स्थितः। ब्र्यादेवं, भवन्तोऽत्र सर्वे विप्रवपुर्धराः ॥२३३ ते यूयं तारयध्वं मां संसारार्णवतो द्विजाः। आगता सम पुण्येन पूर्तकर्मप्रसाधकाः ॥२३४ कूर्मश्च मकरश्चैव सौवर्णस्तत्र कारयेत्। मोनाश्च रासभाश्चेव ताम्रा दर्दु रकाः स्मृताः ॥२३४ जलकुञ्जर-गोधाश्च सैसास्तत्र प्रकल्पयेत्। अन्येऽि जलजास्तत्र शक्तितस्तान्त्रकल्पयेत्।।२३६ इमं पुग्यं प्रशस्तं च तडागादिविधि नरः। वापी-कूप-तडागादौ कारयेत् ब्राह्मणैर्युधैः ॥२३७ खातयित्वा तडागादि स्वभावाच्छाठ्यवर्जितः। मानवः क्रोडित स्वर्गे यावदिन्द्राश्चनुर्दश ॥२३८

एतद्विधानं विद्धाति भक्तया खातेषु सर्वषु तडागकेषु । सोऽमुत्र कामै परिपृर्ण हेहो भुङ्के धरित्र्यामिह सर्वभोगान् ॥२३६ वदन्ति केचिद्वरूगम्य लोकं प्रयाति भोगाः वरूगस्य भुङ्क्ते ॥ भुक्तवा चिरं तत्र पुनर्धरित्र्यां नरे द्रत मेति पराशरोक्तिः ॥२४०

इति तडागादिप्रतिष्ठाविधिवर्णनम्।

।। अथ लक्ष-होमविधिवर्णनम् ॥

अथ'तः सम्प्रवक्ष्यामि द्विजेन्द्राः श्र्यतामितः। लक्षहोमविधि पुण्यं कोटिहोमविधि ततः ॥२४१ स्वयं ,र्यमुराच प्रागमत्तातं पितः महः। त्तमिमं सन्प्रवक्ष्यामि श्रूयतां पापनाशनम्।.२४२ ये चेह ब्राह्मणाः कार्या भूमिर्वा यत्र मण्डपम्। सिमधो याश्च ये मन्त्रा अन्यच तत्र यद्भवेत् ॥२४३ लक्षहोमिममं विप्राः क॰यम नं निवोधत। युग्माश्च ऋ त्येजः कार्या ब्राह्मणा ये विपश्चितः ॥२४४ नियमत्रतसंपन्ना सहिताः पार्थिवेन तु । नित्यं जपरता ये च नियोज्यास्तादृशा द्विजाः ॥२४५ कन्द-मूल-फ ग्रहारा द्धि-क्षीराशिनोऽपि च। प्रागुरीच्यां समे देशे स्थाण्डलं यत्र कारयेत् ॥२४६ तत्र वेदी १ कुर्ीत पञ्चहस्तप्रमाणिकाम्। दक्षिणोत्तर आयामे त्रिंश्तु पूर्वपश्चिमे ॥२४७

कुण्डानि खनितव्यानि अङ्कुलान्येकविशतिः। निधापयेद्धिरण्यं च रत्नानि विविधानि च ॥२४८ सिक्तोपरि दानव्या तत्राप्यप्ति समिन्धयेत्। महांश्चेव सनक्षत्रान् दिशि प्रच्यां समर्चयेत् ॥२४६ अवद्ानविधानेन स्थालीपाकं समर्पयेतु। आज्यभागाहुतीहु त्वा नवाहुत्या च होमयेन्॥२५० अग्नि सोमं तथा सूर्यं विष्णुं चैव प्रजापतिम्। विश्वेदेवान् महेन्द्रं च मित्रं स्विष्टकृतं तथा ॥२५१ दिध-मधु-घृताक्तानां समिधां चेव याज्ञिकाः। होमयेच सहस्रं तु मंत्रेश्चैव यथाक्रमम्।।२४२ चतुर्विशति गायज्या मानस्तोकेति पट् तथा। त्रिंशन् प्रहादिमन्त्रैश्च चत्त्रारश्चैव वेष्णवैः ॥२५३ कूष्माण्डेर्जुंहुयात्पश्च विकिरेद्वाथ षोडश । जुहुयादशसहस्राणि जातवेदस इत्यृचा ॥२५४ तथा पञ्चसहस्राणि जहुयादिन्द्रदैवतेः। हुते शतसङ्म्रं तु अभिपेकं विधापयेत् ॥२४४ पुग्याभिषके यत्रोक्तं तत्प्रदाय शुभं भवेत्। अथ षोडशभिः कुम्भैः सहिरण्यैः समङ्गर्छैः ॥२५६ सर्वोषधिसमायुक्तैर्नानारत्नविभूषितैः। अभिषेकं ततः कुर्यात्मानमन्त्रैर्यशोचितैः ॥२४७ समा ते तु ततस्तस्भिन् पृथाना दक्षिणाः स्युताः। गजा-अवरथ-यामानि-भूमि-यद्मदुगानि 🖚 ॥२६८

अनं च गोशतं हेम मृतिजां चैव दक्षिणा।
वृषेणैकादरानाथ द तज्या दश धनवः ॥२४६
स्वशक्त्यातः प्रदातव्यं विक्तशाक्यं न कारयेत्।
एवं कृते तु यिकिश्वित् प्रह्पीडासमुद्भवम् ॥२६०
भौममाकाशगं वापि अरिष्टं यच जायते।
तत्सवं लक्षहोमेन प्रशमं याति निश्चितम् ॥२६१
शान्तिभवति पृष्टिश्च बलं तेजः प्रवद्धं ते।
वृष्टिभवति राष्ट्रं च सर्वोपद्रवसंक्ष्यः॥२६२

इति लक्षहोमविधिवर्णनम्।

।। अथ कोटिहोमविधिवर्णनम् ॥
अथातः सम्प्रवश्यामि कोटिहोमविधि द्विजाः ।
श्रूयतामादरेणेषः सर्वकामफलप्रदः ॥२६३
सानुष्ठाना द्विजाः प्रोक्ता भृत्विजो यागकर्मणि ।
विधिज्ञाश्चेव मन्त्रज्ञाः स्वदारनिरताश्च ये ॥२६४
वरणीया विशेषेण प्रह्यागिक्तयाविदः ।
एकाङ्गविकलो विप्रो धन-धान्यापहारकः ॥२६४
सर्वोङ्ग विकलो यस्तु यजमानं हिनस्ति सः ।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वेदाङ्गविधिकोविदाः ॥२६६
प्रकर्तेत्र्या विशेषेण प्रह्यज्ञविदो द्विजाः ।
कार्यश्चेव प्रयत्नेन प्रह्यज्ञश्च वे द्विजोः ॥२६७
४६

अध्येता चैव मन्त्राणां ऋचामष्टोत्तरंशतम्। स एव ऋत्विग् विज्ञेयः सर्वेकामफलप्रदः ॥२६८ आवाहनीयो यत्नेन प्रणिपत्य मुहुर्मुहुः। व्रहाः फलन्तु नागाश्च सुराश्चेव नरेश्वराः ॥२६६ एवं कृते तु यत्किञ्चित् प्रह्पीडासमुद्भवम्। तत्सर्वं नाशयेदुदुःखं कृतघ्नसौहृदं यथा ॥२७० अस्मान्छत्गुणः प्रोक्तः कोटिहोमः स्वयम्भुवा । आहतीभिः प्रयत्नेन दक्षिणाभिः फल्लेन च ॥२७१ पूर्ववद् प्रहदेवानां आवाहन-विसर्जने । होममन्त्राम्त एवोक्ताः स्नानं दानं तथैव च ॥२७२ मण्डपस्य च वेद्याश्च विशेषं च निबोधत । कोटिहोमे चतुर्हस्तं चतुर्हस्तायतं पुनः॥२७३ योनिवक्त्रद्वयोपेतं तद्प्याहुस्त्रिमेखलम् । द्वयङ्गुन्नेनोच्छिता कार्या प्रथमा मेखला बुघैः ॥२७४ त्र्यङ्गुलैहद्धृता तद्वद्द्वितीया मेखला स्मृता। उच्छाये मेखला या तु तृतीया चतुरङ्गला ॥२७५ द्वंचगुरुस्तत्र विस्तारः पूर्वयोरेव शस्यते । वितस्तिमात्रा योनिः स्यात्षर्-सप्ताङ्गुळविस्तृता ॥२७६ कूर्मपृष्ठोद्धृता मध्ये पार्श्वतश्चांगुलोच्छ्ता । गजोष्ठसदृशा तद्वदायामञ्जिद्रसंयुता ॥२७७ एतत्सर्वेषु कुण्डेषु योनिलक्षणमीरितम्। मेखळोपरि सर्वत्र अश्वत्यपत्रसन्निमा ॥२७८

वेदी च कोटिहोमे स्यात् वितस्तीनां चतुष्टयम्। चतुरस्रा समा तद्वत्त्रिभिर्विप्रेः समावृता ॥२७६ विप्रमाणं पूर्वोक्तं वेदिकायास्तथोच्छ्यः। ततः पोडशहम्तः स्यान्मण्डपश्च चतुर्मुखः ॥२८० पूर्वद्वारे उपि संस्थाप्य बह्न, चं वेदपारगम्। यजुर्वेदं तथा याम्ये पश्चिमं सामवेदिनम् ॥२८१ अथर्ववेदिनं तद्वदुत्तरे स्थापयेद्वुधः। अष्टौ तु होमकाः कार्या वेद-वेदाङ्गवेदिनः ॥२८२ एवं द्वादश विप्राणां वस्त्रमाल्यानुलेपनैः। पूर्ववत्पूजनं कृत्वा सर्वाभरणभूषणैः ॥२८३ रात्रिसूक्तं च सौरं च पावमानं तु मङ्गलम्। पूर्वतो बह्वचः शान्ति पावमानमुदङ्मुखम् ॥२८४ सूक्तं रौद्रं च सौम्यश्व कृष्माण्डं शान्तिमेव च। पाठयेइक्षिणे द्वारे यज्ञुर्वेदिनमुत्तमम् ॥२८४ सौपर्णमथ वैराजमाग्नेयी रुद्रसंहिताम । पञ्चिभः सप्तभिर्वाथ होमः कार्यश्च पूर्ववत् ॥२८६ स्नाने दाने च ये मन्त्रास्त एव द्विजसत्तमाः। ज्येष्ठसाम तथा शान्ति छन्दोगः पश्चिमे जपेत्।।२८७ स्वविधानं तथा शान्तिमथर्वोत्तरतो जपेत । वसोर्धाराविधानं तु लक्ष्रहोमवदिष्यते। अनेन विधिना घश्च प्रहपुजां समाचरेत्।।२८८

सर्वान् कामानवाप्नोति ततो विष्णुपुरं क्रजेत्।
यः पठेत् शृणुयाद्वापि ब्रह्यागमिमं नरः ॥२८६
सर्वपापविनिर्मुक्तः स गच्छेद्वैष्णवं पदम ।
अश्रमेवसहस्रं च दश चाष्ट्री च धर्मवित् ॥२६०
कृचा यत्फलमाप्नोति कोटिहोमात्तदश्नुते ।
ब्रह्महत्यासहस्राणि श्रूणहत्यार्बुदानि च ।
नश्यन्ति कोटिहोमेन स्वयम्भुवचनं यथा ॥२६१
प्रपेदिरे ये तस्य पितामहाद्याः श्वश्राणि पापेन गरीयसा तान् ।
उद्युत्य नाकं स नयेद्वि सर्वान् यः कोटिहोमं नृपति करोति ॥२६२
राष्ट्रं मनोवाञ्च्छत्वष्टियुक्तं धान्येश्च रत्नैः पश्चभिः समत्तम् ।
निर्द्वन्द्वनीरोगमदस्यु तस्य यो छक्षकोटीहवनं विद्व्यात् ॥२६३

यो लक्षकोटि विद्धाति भूभृत् तद्वन्नरो लक्षशतं जुहोति। प्रत्यव्दमानोति म दीर्घमायुर्भृङ्कं सपत्नान्विजयी धरित्रोम् ॥२६४ यो ब्रह्मचाती गुरुदारगामी ब्रामादिदाहात् ध्रवपापयुक्तः। पापैरशंपैः पुत्रपो विमुक्तः म कोटि होमाद्विवुत्रत्वमेति ॥२६५ दस्मातदा भूपतयो विद्धपुर्पृष्टिं प्रजासीस्यवलस्य पुष्ट्यौ।

इति कोटिहोमविविवर्णनम्।

आयुः प्रवृद्धन्य विजयाय कीर्त्ये लक्षादिहोमं प्रह्यागमेतम् ॥२६६

॥ अथ पुत्रार्थ पुष्पमूक्तविधानवर्णनम् ॥

अथान्यत्सम्प्रवक्ष्यामि विधि पावनमुत्तमम् । अरमत्तातप्रतितोऽयं रघुपौत्रस्य धीमतः ॥२६७

अनपत्यस्य पुत्रार्थमकरोद्वैभाण्डिकः स्वयम् । सहस्रशीर्षस्रक्तस्य विधानं चरुपाककृत् ॥२६८ यैयर्नु पैः कृतं पूर्वमन्यरिप द्विजोत्तमैः । उपासितानि सद्भत्तया श्रोत्रियैः श्रुनिपारगैः ॥२६६ आत्मविद्धिर्निराहारैः श्रौतिभिमैत्रवित्तमैः। सिध्यन्ति सर्वमन्त्राणि विधिविद्धिर्द्धिजोत्तमैः ॥३०० क्रियमाणाः क्रियाः सर्वाः सिध्यन्ति व्रतचारिभिः। न पाठान्न धनात् स्नानादात्मनः प्रतिपादनात् ॥३०१ प्राक्तनात्कर्मणः पुंसां सर्वाः सिध्यन्ति सिद्धयः। ज्ञुष्ठपक्षे ज्ञुभ वारे ज्ञुभनक्षत्रगोचरे ॥३०२ द्वाद्श्यां पुत्रकामो यश्चर्यं कुर्वीत वैष्णवम् । दम्पत्योक्रपवासः म्यादेकादश्यां सुरालये ॥३०३ भृग्भिः पोडशभिः सम्यगर्चयित्वा जनार्दनम्। चर्र पुरुषसूक्तंन श्रपयेत्पुत्रकाम्यया ॥३०४ प्राप्तुयाद् वेष्णवं पुत्रं चिरायुं सन्ततिक्ष्मम् ॥३०५ द्वादश्यां द्वादश चरून् विधिवन्निवेपेद्द्विजः। यः करोति महायागं विष्गुछोकं स गच्छति ॥३०६ हुत्वाऽऽज्यं विधिवत्प्वं झृग्भिः षोडशभिस्तथा। समिघोऽस्वत्थवृक्षस्य हुत्वाज्यं जुहुयात्पुनः ॥३०७ उपस्थानं ततः कुर्याद्भयात्वा तु मधुसूदनम् । हविहोंमं ततः कृत्वा दद्यात्पश्व घृताहुतीः॥३०८

कामप्रदं नमस्कृत्य नारी नारायणं पितम्।
सम्प्राश्य च हिवाशंषं वसेक्षच्वाशनी गृहे ॥३०६
ततः कृत्वा इदं कर्म कर्तव्यं द्विजतपणम्।
रजः स्त्रीपु निवर्तेत याबद्गर्मं न विन्दति ॥३१०
अस्ता मृतपुत्रा वा या च कन्याः प्रसूयते।
क्षिप्रं सा जनयेत्पुत्रं पराशरवचो यथा ॥३११
होमान्ते दक्षिणां दद्यात् गृहं वामम्नथा तिलान्।
भूमिं हिर्एयं रत्नानि यथा सम्भवमेव वा ॥३१२

यः सिद्धमन्त्रः सततं द्विजेन्द्रः सम्पूज्य विष्णुं विधिवत्सुतार्थी । इमं विधानं विद्धानि सम्यक् स पुत्रमाप्नोति हरेः प्रसादात् ॥३१३

इति पुत्रार्थं पुरुपसूक्तविधानवर्णनम्।

## ।। अथ शान्तिविधिवर्णनम् ॥

अथातः सन्प्रवक्ष्यामि प्रहमन्त्राधिदैवतम्।
आर्षे छन्दश्च यण्जानात्कर्म स्यात्सफलं कृतम् ॥३१४
आकृष्णेनेति मन्त्रोऽस्मिन्दैवत्यं सविता महत् ।
अपृषिर्हिरण्यस्तृपारूयस्त्रिष्टुप् च्छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१४
आप्यायस्वेति सोमाऽत्र दैवतं गौतमो मुनिः।
गायत्री छन्द् उद्दिष्टं विनियोगो वथेप्स्तिम् ॥३१६
अप्रिर्मूर्षेति मन्त्रोऽत्र दैवतं भौम उच्यते।
विरूपाक्षो मुनिर्धीमान् छन्दो गायत्रमिष्यते ॥३१७

उद्बुध्यस्वेति मन्त्रस्य बुधश्चेव तु दैवतम्। मुनिर्बुधश्च मन्तन्यसिष्टृप् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३१८ बृहस्पते अतीत्यत्र देवतापि बृहस्पतिः। आर्ष गृत्समदोऽस्येति छन्द्श्विष्ट्प् प्रकीर्तितम् ॥३१६ शुक्रःशुशुक्वेति हीत्यत्र शुक्र इत्यधिदेवतम् । शुक्रस्यापि तथार्षं च विराट् छन्दः प्रकीर्तितम् ॥३२० शन्नो देवीति चेत्यत्र शनिर्देवतमुच्यते । सिन्धुर्नाम भूषिर्विद्वान् छन्दो गायत्रमुच्यते ॥३२१ काण्डान् काण्डादिति राहुदेवतं हि तदुच्यते । भृषिः प्रजापतिः प्रोक्तोऽनुष्टृप् छन्दः प्रकीर्तितः ॥३२२ केतुं कृण्वन्निति प्रोक्तं दैवतं केतुरेव हि। मधुच्छन्दस आर्षं च गायत्रं छन्द एव हि ॥३२३ स्योनापृथिवीति मन्त्रस्य स्कन्दश्च देवतास्मृता । आर्ष मेघातिथिश्चात्र स्वयम्भुर्देवतं परम् ॥३२४ भगिष्यश्च मुनिश्चात्र बृहती छन्द उच्यते। इन्द्रकुत्सेति देवत्यं इन्द्र एव रमृतो बुधैः ॥३२४ आर्पं कुत्सस्य चामुत्र त्रिष्टुप् छन्दः प्रकीर्तितम् । यस्मिवृक्षेति वाह्यत्र यमो वै देवता परा ॥३२६ ऋषित्तु कुण्डलोमा च त्रिष्टुप् छन्दः स्मरेद्बुधः। ब्रह्मजज्ञानमित्यत्र कास्रो वे दैवतं महत्।।३२७ मुनिर्धमतनुर्नाम त्रिष्टुप् छन्दोऽभिधीयते । आयातमिति च हास्यां चित्रगुपस्तु दैवसम्।।३२८

आर्षं तु वामदेवोऽस्य त्रिष्टपुञ्जन्दो बुधैर्मतम् । अप्निं द्तमिति हास्यां मप्निर्वे देवता समृता ॥३२६ आर्षं मेधातिथिर्नाम छन्दो गायत्रमेव हि। अप्सुमे सोम इत्यत्र सोमं वै दैवतं स्मरेत ॥३३० मेधातिथिरिहाप्यार्पमनुरृष् झन्द उच्यते। पुरुषसृक्तस्य देवत्यं पुरुष एव मतं बुधैः ॥३३१ भूमिपृथिव्यन्तरिक्षमित्यत्र दैवतं क्षितिः। भृषिः शातातपो हात्र छन्दश्चानुष्टुवुच्यते ॥३३२ आर्पं नारायणस्येह छन्दश्चानुट्वित्यपि। इन्द्रायेंदो मरुत्वते मरुन्वान्दैवतं महत् ॥३३३ आर्ष तु काश्यपत्येह गायत्रं च्छन्द एव ेह। मम्त्वंतिमिति हात्र सुरेन्द्रो देवता मता ॥३३४ अत्रापि कश्यपम्यापं गायत्रं छन्द एव हि । <del>ष्ट्रतानपर्ण</del>इत्यत्र इन्द्रो दैवतमुच्यते ।।३३४ आर्षं साङ्ज्यस्य चात्रोक्तं मनुष्टृप् छन्द इत्यपि । प्रजापते इति हात्र देवता च प्रजापतिः ॥३३६ हिरण्यगर्भस्यार्षं तु त्रिष्टुप् झन्दो मतं बुधैः। आयं गौरिति चैवात्र देवता फणिनो मता ॥३३७ सर्पराजो मुनिस्तत्र गायत्रं छन्द उच्यते । एष ब्रह्मा भृतियज इति ब्रह्मदेवोऽधिदैवतम्। भाषिवे वामदेवोऽत्र गायत्रं छन्द इष्यते ॥३३८

आतून इन्द्रवृत्रहं सुरेन्द्रः सगणेश्वरः। तथार्षं वामदेवस्य गायत्रं छन्द इत्यपि ॥३३६ जातवेदस इत्यत्र जातनेदास्तु देवतम्। काश्यपस्यार्षमत्रापि छन्दोऽनुष्टृप् प्रकीर्तितम् ॥३४० अनोनियुद्धिरित्यस्मिन्वायुर्दैवतमुच्यते । आर्षमत्र वसिष्ठस्य अनुष्टप् छन्द उच्यते ॥३४१ नमः प्रकाशद्वैवत्यं मुनिष्ठोक्तं प्रजापतिः। छन्दो गायत्रमित्युक्तं विनियोगो यथेप्नितम् ॥३४२ एषो उपति चाप्यत्र अश्विनौ दैवते स्मरेत्। प्रस्कण्वश्चार्षमत्रापि गायत्रं च्छन्द उत्तमम् ॥३४३ मरुतो यस्य हि क्षये मरुहैवतमुच्यते। गौतमं च मुनि विद्धि छन्दश्च प्रथमं मुने ॥३४४ **छन्दस्तथापं सहदैवतेन** ज्ञात्वा द्विजो य कुन्ते विधानम्। वेदोक्तमर्थं प्रददाति सम्यक् सर्व फलं कर्तुरिहाग्यमुत्र ।।३४५ यो लक्षहोमं यदि कोटिहोमं राजा विदध्यान्प्रतिवर्षमेकम्। राष्ट्रे सुवृष्टिविजयः सुभक्ष्यमारोग्यता म्यात्पुकृतम्य वृद्धिः ॥३४६ भवन्ति पुत्राः शुभवंशपृध्ये दीर्घायुपो राजहिता धरिज्याम् ।

इति श्रीवृहत्पाराशरीये धर्मशास्त्रे शान्तिविधिर्नाम एकादशोऽध्यायः ।

सुकीर्तिमन्तो जयिनोऽपि राज्ये प्रतापवन्तो रवि-चन्द्रतृल्याः ॥

## द्वादशोऽध्यायः।

## अथ राजधर्मवर्णनम्।

अथातो नृपतेर्धमं वक्ष्यामि हितकाम्यया। पराशरात् श्रुतं विप्रा वक्ष्यमाणं निबोधत ॥१ भूभृदुभूमी परो देवः पूज्योऽसी परदेववत्। स विधातापि सर्वस्य रक्षिता शासिता च सः ॥२ इन्द्रा-ऽग्नि-यम-वित्तेशा-ऽन्लंश-मातरिश्वनः। शीतांशस्तीव्रभासम्ब ब्रह्माद्योऽसूजन्नुपम् ॥३ नृपो वेधा नृपः शम्भुनृ पोको विष्टरश्रवाः। दाता हर्ता नृपः कर्ता नृणां कर्मानुसारतः ॥४ नासृक्षद्यदि राजानं नापि दण्डं व्यधास्यत। नामंस्यतो यदा चैपा का भयिष्यज्ञगतिश्वतिः !।।६ नाप्रहीष्यन् पुरोडाशान् मनुष्य-पितृ-देवताः। नाभविष्यत् श्व-काकानां भागधेयं हुतं हविः ॥६ निर्गुणोऽपि यथा स्त्रीणां सद्। पूज्यः पतिर्भवेत् । तथा राजापि लोकानां पूज्यः स्याद्विगुणोऽपिसन् ॥७ स्वकर्मस्थान्नृपो लोकान् पिता पुत्रानिवौरसान्। शिक्षयेत् धर्मविद्दण्डैरधर्मकारिणो जनान् ॥८ नरान् दण्डघृतः कुर्यात् धर्मज्ञानार्थसाधकान्। समर्थानश्वपत्यादीनशूरान् स्वामिहितोद्यतान् ॥६

शुचीन् प्राज्ञान् स्वधर्मज्ञान् विप्रान् मुद्राकरान् हितान्। लेखकानपि कायस्थान् लेख्यक्रत्यविचक्षणान् ॥१० अमात्यान मन्त्रिणो द्तान् यथोदितपुरोहितान्। प्राइविवाकान् समस्तान् वा हिताश्च रक्षकानपि ॥११ शुरानथ शुचीन् प्राज्ञान् परविश्वासकारिणः। सर्वस्थानेषु चाध्यक्षान मत्कृत्य वेदिना परे ॥१२ महायतः कुमाराणामन्तःपुरस्य रक्षणे । बृद्धान् कञ्चुकिनो विप्रान् शुचीनाङ्गाश्च वीरकान् ॥१३ यथोदितानि दुर्गाणि कुर्यात्तेष्वपि रश्चणम्। उद्घाहमुदितं स्त्रीणां यौनसम्बन्धकारणात् ॥१४ स्राप्तकुत्यविज्ञानमात्मरक्षा प्रयव्नतः। प्रातः सन्ध्यार्चनादुर्ध्वं गृहपुंवचनश्रुतिः ॥१४ यथोक्तकार्ये राज्ये च नित्यं कुर्यात्परीक्षणम्। कोशेभाश्वरथादीनां हेतीनां वर्मणामपि ॥१६ क्रयादालोकनं नित्यमनालस्यो महीपतिः। अमात्य मन्त्रि-योद्घृणां सम्मानं नित्यशोऽपि च ॥१७ देवार्चनं सदा होमः शान्तिश्च वृद्धसेवनम् । यज्ञो दानं तथोत्पातसमये शान्तयोऽपि च ॥१८ वर्जनं विपयासक्तेर्भूमिदानं सशासनम् । प्राणिवर्जितदेशे च नीतिज्ञो मन्त्रकृद्भवेत् ॥१६ नित्यमुत्साइयुक्तश्च विजिगीषुरुदायुधः। सदारुष्ट्रारकुक्ध सदव प्रियभाषकः ॥२०

सदा प्रियहिते युक्तः पूज्यो नाकेऽप्यसौ नृपः। सदा साधपु सन्मानं विपरीतेषु घातनम् ॥२१ दण्डं दम्भेषु कुर्वाणो राजा यज्ञफलं लभेत्। वृद्धान् साघून् द्विजान् मौलान् यो न सन्मानयेन्द्रपः ॥२२ पीडां करोति चामीपां राजा शीघ्रं क्षयं व्रजेत्। यस्तु सन्मानयेदेतान् देवान् विप्रांश्च पूजयेत् ॥२३ पराजयेत्सोप्यरींस्तान् दीर्घायुरपि जायते । पीड्यमानां प्रजां रक्षेत्कायस्थेश्वोरतस्करैः ॥२४ धान्येक्षुतृणतोयेश्च सम्त्रनं परमण्डलम् । हीनवाहनपुंम्त्वं तु मत्वैतत्प्रविशेन्नृपः ॥२४ मासे सहिस यात्रार्थी कृतपुण्याहघोषवान्। विधिवद्यानकं कुर्याद्यद्र्यहैरक्षयन् बलम् ॥२६ यत्राचलसरोरक्षा वृक्षरक्षा तु यत्र च । वासं तत्रविधायेव रात्री रक्षेत्स्वकं बलम् ॥२७ चतुर्दिश्च च सैन्यस्य निशि शूरान् धनुधरान्। स्वयं राजा नियुद्धीत समीक्ष्य भूबलाबलम्।।२८ राज्यस्य षड्गुणान् मत्वा सन्धिविप्रहयानकान्। आसनं संशयं द्वैधं सम्यक् ज्ञात्वा समाचरेत्॥२६ निर्भेदं स्वबलं कुर्यान्निहन्याद्भिन्नचेतनम् । दासीकर्मकरान् दासान् भिन्दतो रक्षयेन्नृपः॥३० निकटस्थायिनो नित्यं जानन्ति चेष्टितं प्रभोः। तस्मात्ते यत्नतो रक्ष्या भेदमूळं यतस्त्वमी ॥३१

एते परस्य यत्नेन भेरनीयास्त्रतोऽपरे। यथा परो न जानाति तथा भेदं समाचरेत ॥३२ परामात्य-प्रधानानां व्यलीकदृतशब्दितम् । उत्थापयेत्स्वसेनायाः स्याद्यथा चित्तभेदना ॥३३ परसैत्ये बरु गतान्त्रिविधान् कुहकानपि । कारयेत् गरदानादि विद्याताननेकशः ॥३४ स्वसैन्ये गरदानादि नृपो यत्नेन रक्षयेत्। नियुज्य विज्ञः पुरुषानुक्तं सर्वे निशामयेत् ॥३४ अन्तर्भी हन् बहिः शूरान् साप्तिकान् ब्राह्मणोत्तमान्। मर्मज्ञान् कुळसम्पन्नान् विभृयादात्मसन्निधौ ॥३६ प्रविशन् परदेशे च प्रजां स्वीकृत्य संविशेत् । ब्रसार्य मार्गतो लोकान् दूरीकृत्य व्रजेन्तृपः ॥३७ शस्यादि दाह्येत्सवं यवसानि धनानि च। भिन्दात्सर्वनिपानानि प्राकारान्यरिखास्तथा ॥३८ अपसृत्य समादाय भूमि साधारणां नृपः। गमयेत् वार्भिकान्मासानासाद्य म्वधरां नृप: ॥३६ न युद्धमाश्रयेत्प्राज्ञा न कुर्यात्स्वबलक्षयम्। साम्ना भेदेन दानेन त्रिभिरेव वशं नयेत् ॥४० बद्ग्ति सर्वे नीतिज्ञा दृण्डस्याउगतिका गतिः। तद्वर्जं वशमायाति तथा शत्रुस्तथा चरेन्।।४१ आक्रान्ता दर्भसूच्योऽपि भिद्युर्ग् द्वयोऽपि भूतलम्। नातो यतेत युद्धाय युद्धिसिद्धिरसिद्धिवत् ॥४२

स्वधरात्यन्तिके देशे युद्धमिन्छेत्स्वधर्मवित्। न तु प्रविश्य तद्दूरभूमि युद्धं समाचरेत ॥४३ कि चित्सुप्तेषु लोकेषु क्षपायां युद्धमाचरेत्। सुधीरव्यसने चापि योधयेत्परसैनिकैः ॥४४ व्यूहैर्व्यूह्य यथोक्तेर्वा रक्षां फ़ुत्वापि चात्मनः। सैनिकांस्तान् समस्तांश्च प्रेरयेसुद्धविन्नृपः ॥४५ सम्मानयेत्समस्तांश्च योद्धन्सेनापतीन्नृपः। अन्त्रिन्छन् जयलक्ष्मी च नीतिष्कः पृथिवीपतिः ॥४६ स्नेहेनापि समं पत्न्या शय्यास्थोऽपि हि मानवः। पुष्पैरपि न युध्येत युद्धं तत्र विपत्तये ॥४७ हीनं परबलं मत्वा निरुत्साहमनादरम् । समस्तबलसंयुक्तः स्वयमुत्थाप्य योधयेत् ॥४८ न ह्न्यात् मुक्तकेशं च नाशयेश्न निरायुधम्। पराङ्मुखं न पतितं न तवास्मीति वादिनम् ॥४६ अन्यानपि निषिद्धांश्च न हन्यात्धर्मविन्नृपः। इत्वा च नरकं यान्ति भ्रृणहत्यासमैनसा ॥५० पराङ्मुखीकृते सैन्ये यो युद्धान निवर्तते। तत्पादानीष्टितुल्यानि भूम्यथं स्वामिनोऽपि वा ॥५१ शिरोहतस्य ये वक्त्रे विशन्ति रक्तिबन्द्बः। सोमपानेन ते तुल्या इति वासिष्ठजोऽजवीत्।।५२ युष्यन्ते भूभृतो ये च मृम्यर्थमेकचेतसः। इष्टस्तैर्बहुभियोगैरेवं यान्ति त्रिविष्टपम् ॥४३

एष एव परो धर्मो नृपतेर्यद्रणार्जितम्। विप्रेभ्यो दीयते वित्तं प्रजाभ्यश्चाभयं तथा ॥५४ यदा तु वशतां याति स देशो न्यायतोऽर्जितः। तहेशव्यवहारेण यथावत्परिपालयेन् ॥५५ रणार्जितेन त्रित्तेन राजा कुर्यात्मखान्द्रिजान्। अर्चयेद्विधवद्राजा साधून् सम्मानयेद्पि ॥५६ मातुलः श्वशुरो बन्धुरन्यो वापि हि यो जितः। अदण्ड्यः कोऽपि नास्त्येव राजनीतिविदो विदुः ॥५७ सुसहायमतिप्रौढं शूरं प्राज्ञानुरागद्म । मोत्साहं विजिगीपुं च मत्वा राजा नियामयेत् ॥६८ मत्वा चार्थवतः सर्वान् युक्तानप्यर्थकुद्भवेत् । सार्थकांश्च नियुञ्जीत सर्वतोऽर्श्रमुपार्जयेत् ॥५६ सर्वाण्यपि च वित्तानि यतस्ततोऽपि राजनि । प्रविशंतीव तोयानि सर्वाण्यपि हि सागरे।।६० नृपस्यापदि जातायां देवद्रव्याणि कोशवत्। आदाय रक्षेदात्मानं पुनस्तत्र च निःक्षिपेत् ॥६१ वित्तं वार्ध्विकाणां तु कद्यस्यापि यद्धनम्। पाषण्ड-गणिकावित्तं हरमातों न किल्विषी ॥६२ देव-ब्राह्मण-पाषण्डि-गणका-गणिकादयः। वणिग्वार्धुषिकाः सर्वे स्वम्थे राजनि सुस्थिताः ॥६३ यथा वहिश्च गोमांसं दहन्नपि न पातकी। आद्दानस्तथा राजा धनमार्ती न किल्यिषी ॥६४

गृह्णीयात्सर्वदा राजा करानपीडयन्प्रजाः। स्तोके स्तोकान् पृथक् साम्ना स भुङ्क्तं सुचिरं धराम् ॥६४ सदा चोद्यभिना भाव्यं नृपेण विजिपीपुणा। विजिगीपुर्नु पो नान्यैः कदाचिद्भिभ्यते ॥६६ तदैवं हृदि सन्धाय धृतोत्साहो नृपो भवेत्। दव-पौहपसंयोगो सर्वाः सिध्दन्ति सिद्धयः ॥६७ नैकेन चक्रेग रथः प्रयाति नचैकपक्षो दिवि याति पक्षी । एवं हि दैंवन न केवलेन पुंसोऽर्थसिद्विनरकारतो वा ॥६८ केचिद्धि दंवस्य तु केवलस्य प्राधान्यमिच्छन्ति मतिप्रवीणाः। पुरकारयुक्तस्य नरस्य केचिद्प्यत्र इष्टा पुरुषार्थसिद्धिः ॥६६ अत्युद्यमी क्रियत एव च यः श्रमी च शौर्यान्यत्रश्च गुणवांश्च सुधीश्च विद्वान्। प्राप्नोति नैव विधिना स पराङ्मुखेन स्वीयोद्रस्य परिपृरणमन्नमात्रम् ॥००

शुश्राणि हम्याणि वराङ्गनाश्च नानाश्रकारो विभवो नरस्य। डवींपतित्वं (च) नृपकारता (नृकारता) च सबँ हि मंश्ल (मञ्ज) क्षयमेति दैवात ॥७१ केषां (एपां)हि पुंसा महता हि देवात्स्थानस्थितानामपि चार्थसिद्धिः। केषां प्रमुत्वं बहुजीवितं च एको हि देवो बलवानतोऽत्र ॥७२ पुं-स्नीप्रयोगाद्थगुक्र-शोणितात को देहमध्ये विद्धाति गर्भ। स्नीणां तु तिहप्र न चापि पुंसां सर्वाणि चेषां(मनुजेश्वरं)ननु देवचेष्टा ॥ कासां तु गर्भस्य न सम्भवोऽस्ति केषां च शुकं नतु वीर्यहीनम्। इधाति गर्भ नतु कापि देवात् काश्चित्तु गम न दधाति देवात्॥७४

धाता विधाता निज कर्मयोगात विधेम्त्वभीष्टं त्वनुभावभाव्यम् । देवासुराणां सह दैत्यकानां स हाव कर्ता च मनूइवानाम । ७५ दैवात मघोनोऽपि सहस्रमङ्गां दैवाद्धिमांशोः क्षयगेगिताऽभृत्। दैवात्पयोधेर्छवणोदकत्वं देवाद्भवेचित्रतरा च वृष्टिः ॥७६ यद्प्यमुष्माञ्च परोम्ति देवातृ कुर्यात्तथापीह नगे नृकारम्। उद्दीपयेत्कर्मकरो नृकागदुद्दीपितं कर्म करोति लक्ष्मीः ॥५७ दैवेन केचित्प्रमभेन केचित्केचिन्तृकारेण नरस्य चार्थाः। सिध्यन्ति यत्नेन विधीयमानास्तेषा प्रधानं नरकारमाहः॥७८ स्वामिः प्रधानं नय-दुर्ग-कोशान् दण्डं च मित्राणि च नीतिविज्ञाः। अङ्गानि राज्यम्य वदन्ति सप्त सप्ताङ्गपूत्री नृपतिर्वराभुक् ॥७६ दुर्वृत्त-सद्वृत्तनरेषु दण्डं राजा विधत्तं निपुणोऽर्थमिष्यै। दण्डस्य मत्त्रोर्जितवित्तमत्वं पुंसोऽर्थहीनस्य दमं तु हीनम् ॥८० अन्यायतो ये तु जनं नरेशाः सम्पीड्य वित्तानि हरन्ति लोभान् । तत्क्रोधवहाँ परिदग्धदेहा गतायुपस्ते तु भवन्ति भूपाः ॥८१ दण्डो महान् मध्यमकाथमम्तु मानं तु तेषां त्रसरेणुकादि । सोऽशीतिसाहस्रपणो महान् स्याद्बीद्धको तम्य तद्वेको वा ॥८२ सर्वार्थपादश्च हरश्च दण्डो पात्यौ नृषेणेति वदन्ति सन्तः। पाण्यादिपच्छेदन-मारणं च निर्वासनं राष्ट्रत एव सद्यः ॥८३ ज्ञात्वापराधं मनुजस्य स्यस्तु देशं च कालं च वपुवयश्च । ्दंडचेषु दण्डं विद्धाति भूभृन् साम्यं स बध्नाति पुरन्द्रस्य ॥८४ यः शास्त्रहष्टेन पथा नरेशो दण्डं विद्ध्याद्विधिवत्कराश्च । सोऽतीव कार्ति वितनोति गुर्वीमायुश्च दीर्घ दिवि देवभोगान् ८४

यस्त्यक्तमार्गाणि कुछानि राजा श्रेणीश्च जातीश्च गगांश्च होकान् । आनीय मार्गे विद्धाति धर्म्ये नाकेऽपि गीर्वाणगणैः प्रशस्यते ॥८६

यः स्वधर्मे स्थितो राजा प्रजाधर्मेण पालयेत् । सर्वकामसमृद्धात्मा विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥८७ ह्रयश्व-वह्नि-यम-वित्तनाथ-शीतांशुरूपाणि हि विभ्रतीह । सर्वेऽपि भुपास्त्विह पश्चरूपास्तं कथ्यमानं शृणुत द्विजेन्द्राः ॥८८ यदा जिगीपुर्ध तशस्त्रपाणिस्त्विषुं समालम्ब्य स विद्धसैन्यः । सर्वान् सपत्नानिह जेतुकामस्तदा स हर्यश्व इवेह भाति ॥८६ अकारणात्कारणतोऽपि चेप प्रजां दहेत्कोपसिमद्धरोचिः। यदा तदेनं नृपनीतिविज्ञास्तनूनपातं प्रवदन्ति भूपम्।।६० धर्मासनस्यः श्रुतिशास्त्रहष्ट्या श्रुभाशुभाचारविचारक्रस्यात् । धर्म्येषु दानं स्त्रधक्तस्यु दण्डं तदा ऽवनीशस्त्रिह धर्मराजः ॥६९ यदा स्वमात्य-द्विज याचकादीन् प्रहृष्टचित्तस्तु यथोचितेन । धनप्रदानेन करोति हृष्टान् भूभृत्तदाऽसौ द्रविणेशवस्यात्।।६२ समस्तशीतांशुगुणप्रयुक्तो यदा प्रजामेय शुभाय पश्येत्। प्रसन्नमूर्तिर्गतमत्सरः सन् तदोच्यते सोम इति क्षितीशः ॥६३ आज्ञा नृपाणां परमं हि तेजो यस्तां न मन्येत स शस्त्रवध्यः। ब्र्याच कुर्याच वदेच भूभृत्कार्यं तदैवं भुवि सर्वलोकैः ॥६४ दुर्घर्षतिग्मांशुसमानदीप्तेर्त्रूयान् मनुष्यः परुषं नृपस्य । यस्तस्य तेजोऽप्यवमन्यमानः सद्यः स पंचत्वमुपैति पापात् ॥६४ योऽह्वाय सर्वं विद्धाति पश्येत् शृणोति जानाति चकास्ति शास्ति । करतस्य चाज्ञां न बिभर्ति राज्ञः समस्तदेवांशभवो हि यस्मात्। १६४ इति राजधर्मवर्णनम्।

## ॥ अथ वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम् ॥

अथ विप्रो वनं गच्छेद्विना वा सहभार्यया। जितेन्द्रियो वसेत्र नित्यं श्रीतामिकर्मकृत् ॥६६ वन्येर्मृन्यशनेर्मेध्येः श्यामा-नीवार-कङ्ग्रभिः। कन्द्-मूल-फलेः शाकेः स्नेहेश्च फलसम्भवैः ॥६७ सायं-प्रात्य जुहुयात्त्रिकालं स्नानमाचरेन्। चर्मचीवरवासाः स्यात् श्मश्रु-लोम-जटाधरः ॥६८ पितंश्च तर्पयेन्नित्यं देवांश्चाजन्त्रमर्चयेन् । अर्चयेदतिथीन्नित्यं तथा भृत्यांश्च पोपयेत्।।६६ न कि चित्रतिगृह्णीयात्स्वाध्यायं नित्यमाचरेत्। सर्वसत्वहितो दान्तः शान्तश्चाध्यात्मचिन्तकः ॥१०० सन्तुष्टस्वान्तको नित्यं दानशीलः सदा द्विजः। किबद्भेदं समास्थाय सुवृत्त्या वर्तयेत्सदा ॥१०१ एकाहिकं तु कुर्वीत मासिकं वाथ सञ्चयम्। षाण्मासिकं चाब्दिकं बा यज्ञार्थं च वने वसन्।।१०२ त्यक्त्वा तदाश्विने मासि स्थानमन्यत्समाश्रयेत्। यथावदिप्रहोत्रं तु समिदाज्यैस्तु पालयेन् ॥१०३ चान्द्र-कुच्छ्-पराकाद्यैः पक्ष-मासोपवासकैः। त्रिराजेरेकराजेश्च आश्रमस्थः क्षिपेद्बुधः ॥१०४ तिष्ठेन्न।त्रतिकस्तत्र स्वप्याद्धस्तथा निशि। अतन्द्रितो भवेशित्यं वासरं प्रपदैर्नयेत ॥१०४

योगाभ्यासरतो नित्यं स्थानाऽऽसन-विहारवान् । हेमन्त-व्रीष्म-वर्पासु जलाग्न्याकाशमाश्रयेत् ॥१०६ दन्तोलुखलिको वापि कालपक्रभुगेव वा। म्याद्वाश्मकुट्टको विप्रः फलस्तेहैश्च कर्मकृत् ॥१०७ शत्री मित्रे समस्वान्तत्त्वयेव सुख-दुःखयोः । ममदृष्टिश्च सर्वेषु न विशेद्धनगह्नरम् १०८ म्लेच्छव्याप्तानि सर्वाणि वनानि स्युः कलौ युगे। न भूपाः शामितारश्च मामोपान्ते वसेदतः ॥१०६ ग्रामाश्च नगरादेशास्तथारण्य-वनानि च। क्षितीशरक्षितान्येव सर्वेषां फलदानि हि ॥११० प्रथमं भूपतेस्तस्मात्कृत्यं शंसेदृद्विजामजाः । योगं वाऽरण्यवासं वा कुर्वीत तद्नुझया ॥१११ सुत्रामा-ऽनलवायूनां य**मस्येन्दोर्विवस्वतः** । ईश-वित्तेशयोर्बद्धमात्राभ्यो नि**र्मितो नृपः ॥११२** पारत्रिकं तु यत्कि चिचित्विचिदेहिकं तथा। नृपाज्ञया द्विजातीनां तत्सर्वं सिष्यति ध्रुवम् ॥११३ नृपतेः प्रथमं तस्मान् साधोर्यज्ञादिकं द्विजः। रक्षार्थं कथयित्वा तु यथा कार्यं समापयेत्।।११४ धेनुः पूर्वं वसिष्ठस्य ह्यासीद्दुर्वाससोऽपि च। वनवासाश्रमस्थस्य विहकार्याय तां श्रयेत् ॥११४ फलस्नेहा यदा न स्युः कालवैगुण्यतो द्विजाः। तदा गोदुग्ध-सर्पिभ्यामग्निकायं समापयेत्।।११६

तथा सर्वेषु कालेषु तथा सर्वाश्रमेषु च।
गोदुग्धादि पवित्रं स्यान्सर्वकार्येषु सत्तमाः ॥११७
वनवासिषु सर्वेषु भिक्षां कुर्याद्वनाश्रमी।
तदा सर्वे प्रकुर्वीत पितृदेवार्चनादिकम्॥११८
अष्टो भुक्षीत वा प्रासान् प्रामादाहृत्य यववान्।
वासनासंक्षयं गच्छेदनिलाशः प्रागुदीचिकः ११६

विधाय विप्रो वनवासधर्मान् सर्वानिमानुक्तविधिक्रमेग । स शोब्य पापानि वपुर्विशोध्य ब्रह्माधिगच्छेत्परमं द्विजेन्द्राः ॥१२०

> आश्रमत्रयधर्मान्वा चरित्वा प्राकृ द्विजाम्तन.। द्वयस्य वा तत पश्चाचतुर्थाश्रममाचरेन ॥१२० द्विजामजो यद्। पश्येन् वलीपलितमात्मनः। उपरामस्तथाक्षाणां क्षेण्यं कामस्य सद्द्विजाः ॥१२१ समीक्ष्य पुत्रं पौत्रं वा दृष्ट्य वा दुहितुः सुतम् । अधीख विधिवद्वेदान् क्रुःवा यज्ञान्विधानतः ॥१२२ निश्चयं मनसः कृत्वा चतुर्थाश्रममाविशेत्। प्राजापत्यां विधायेष्टिं वनाद्वा सद्मनोऽपि वा ॥१२३ समस्तद्क्षिणायुक्तान् सर्ववेदांस्ततश्च तान्। अम्रीनात्मनि चारोप्य दण्डान् विधिवदाहरेन् ॥१२४ कि विदेदं समास्थाय तद्धर्मेण च वर्तयेत्। वाङ्-मनः-कायदण्डाश्च तथा सत्वादयो गुणाः ॥१२५ त्रयोऽपि नियता यस्य स त्रिदण्डीति कथ्यते । कमण्डल्वक्षमाला च भिक्षापात्रमथापरम् ॥१२६

काषायवासः कौपीनं कार्यार्थं वस्त्रमेव वा । शिखा यज्ञोपवीतं च दण्डानां त्रितयं तथा ॥१२७ द्विकालं विधिवत्स्नानं भिक्षया चैकभोजनम्। शुद्धैकवृत्तिविप्रेपु सत्कर्मनिरतेपु च ॥१२८ भिक्षाचर्या यतेः प्रोक्ता व्रतचर्या तथैव च। असम्भाषश्च शूद्रेण तथा च शिल्पि-कारुभिः ॥१२६ अवक्तृत्वं तथा स्त्रीभिः कृत्यमेतद्यतेः स्मृतम् । न कदम्बकसंरोधो नित्यमेकान्तशीलता ॥१३० सदैव प्राणसंरोधः मदैवाध्यात्मचि तनम् । मृद्धेणु हार्वळाब्वश्ममयं पात्रं यते स्मृतम् ॥१३१ शुद्धिरद्भिरमीपां तु गोवालैश्चावघर्षणम्। न दण्डैर्न च दण्डेन विना वा तेन वा तथा ॥८३२ मोक्षावाप्तिभेवेत्पंसां कित्वस्याध्यात्मचिन्तनात्। समत्वं सुख-दु खेषु तथा विद्वेष-रागयोः ॥१३३ आत्मान्ययोः समानत्त्रमजस्रं चात्मचिन्तनम् ॥१३४ यतिभिक्षिभिरेकत्र द्वाभ्यां पञ्चभिरेव वा। न स्थातव्यं कदाचित्स्यात्तिष्ठन्तो नाशमाप्नुयः ॥१३४ बहुत्वं यत्र भिक्ष्णां वार्तास्तत्र विचित्रकाः। हनेह-पेशून्य-मात्सर्यं भिक्षूणां नृपतेरिप ॥१३६ तस्मादेकान्तशीलेन भवितव्यं तपोर्थिना। आत्माभ्यासरतश्चेव ब्रह्मप्राप्यभिलाषुकः ॥१३७

त्रिदण्डम्रहणादेव यतित्वं नेव जायते।
अध्यात्मयोगयुक्तस्य ब्रह्मावाप्तिर्भवेद्यतः।
जितेन्द्रियो हि दण्डाहों युवा न स्यात्तथा सरुक् ॥१३८
युवा नीरुक् तथा भिश्चरात्मवृद्धिप्रदूषकः।
भिश्चर्गेहे वसन्यत्र कामात्तांऽन्योऽभिगच्छिति ॥१३६
तत्सद्मनाथं वृद्धान्वे सह तेनेव पातयेन्।
एकरात्रं तु निवसेद्विश्चर्यस्य गृहाङ्गणे ॥१४०
तस्य वै तारयेत्पूर्वान विश्वितं पितृमावृतः।
भिश्चर्यस्यात्रभुक् ब्रह्मयोगाभ्यामरतो भवेन् ॥१४१
परिणामश्च योगेन कृतकृत्यो गृही भवेत्।
निर्ममो निरहङ्कारः सर्वसहः प्रसन्नधीः॥१४२
ब्रह्मण्यात्मनि गोमायौ मुनौ म्लेन्छे च तुल्यहक्।

चिह्नानि धात्रा कथितानि धत्ते वनते यो वै विहितेन भिद्धः। योऽध्यात्मवेदी सततं जिताक्षः स ब्रह्मकाये गमनं करोति ॥१४३

> वनस्य-भिक्षुवर्मान्वे यानुवाच पराशरः। यथावद्भिधायैतान् वक्षाम्याश्रमभेदकान्॥१४४

> > इति वानप्रस्थभिक्षुधर्मवर्णनम्।

शथ चतुर्णामाश्रमाणांभेदवर्णनम् ।।
 अथातः सम्प्रवक्ष्यामि भेदमाश्रमसम्भवम् ।
 जद्याचर्यादिकानां तु याथातथ्यं निबोधत ।।१४५

चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदो दृष्टो मनीपिभिः। प्रत्येकशो वदाम्येनं श्रुणुध्वं द्विजसत्तमाः ॥१४६ ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वानप्रस्थो यतिम्तथा। एतद्भेदान् प्रवक्ष्यामि श्रुणुष्वं पापनाशनम् ॥१४७ चतुर्धा ब्रह्मचारी स्यादुगायत्रो वैधमस्तथा। प्राजापत्यो वृहचेति लक्ष्णानि पृथक् वृथक् ॥१४८ अक्षारलवणाशी स्यात् गायत्र्यभ्यासतत्परः । वर्तते भिक्षया नित्यं गायत्रोऽयं प्रकीर्तितः ॥१४६ चतुर्घा द्वादशाब्द्वानि योऽधीयानश्चतुःश्रुतीः। भिक्षया ब्रह्मचर्येण तिष्ठेत ब्राह्मः स उच्यते ॥१५० गुरोर्वा गुरुपुत्रस्य तत्परत्या वापि मन्निधौ। यो वसेद्भ्यसन् ज्ञानं त्रह्मवागी म नैष्ठिकः ॥१५१ ऋतुकालाभिगामी सन् परस्वीं पर्व वर्जयेन्। वेदानध्येति भिक्षामुक् प्राजापत्योऽयमुच्यते ॥१४२ गृहस्थस्तु चतुर्भेदो बार्ता-शालीनवृत्तिकौ। यायावरम्तथा वान्यो घोरमन्यासिकस्तथा ॥१५३ कृषि-गोरक्ष-वाणिज्येः कुर्वन सर्वाः क्रिया द्विजः। विहतैरात्मविद्यैश्र वार्तावृत्तिः म उच्यते ॥१५४ ददात्यध्येति यजते याजयेत्र च पाठयेत्। क्यांत्कर्माप्रतिवाही शालीनो ध्यानकृद्द्विजः ॥१५५ उक्तः सन् कारयेदन्यांक्रियां कुर्यात्प्रतिप्रहम्। पाठयेश्व तथात्मानं यायावरः स उच्यते ॥१५६

तिष्ठेद्यश्च शिलोञ्च्जाभ्यामुद्धृताप्रिश्च उच्यते । आत्मविच क्रियाः कुर्यात् घोरसंन्यासिकः स्मृतः ॥१५७ वानप्रस्थश्चतुर्भेदो वैखानस उदुम्बरः। वालिखल्यो वनेवासी तल्रक्षणमधोच्यते ॥१४८ फलैर्मूलैरकृष्टान्नैरग्निकम वने वसन्। कुर्यात्पञ्चमहायज्ञान् स वैखानस आत्मवित् ॥१५६ प्रातर्द्र ष्टदिगानीतेर्फळाकुष्टाशनेन्धनैः । उदुम्बरो मतो ज्ञानी पश्चयज्ञाग्निकर्मकृत् ॥१६० चतुरो न्यामकुर्गिनकार्यं कुर्वन्वने वसन्। फल्रस्नेहैर्वनान्नेश्च बहुभिःश्रुतिचोदितैः ॥१६१ उद्धृत्य परिपूतःद्भिस्तथाऽयाचिनवृत्तिकः । फलेंबेन्येर्वनान्नेश्च फेनपः पञ्चयज्ञकृत् ॥१६२ वनस्थो वालिबल्यो यो धत्तं वल्कलचीवरम्। अग्निकार्यक्रदात्मज्ञ ऊर्जान्ते संचितं त्यजन् ॥१६३ चतुर्भेदः परिबाद् स्यात् कुटीचक-बहूदकौ । हंसाः परमहंसाश्च वक्ष्यन्ते ते पृथक् पृथक् ॥१६४ पुत्रस्य भ्रातृपुत्रस्य भ्रातृ-दौहित्रयोरपि । तदुपा तकुटीस्थो यः स भेक्ष्यवृत्तिभुक् द्विजः ॥१६४ प्रतिचर्याकृत सोऽपि यो वामःपूतवारिपः। तथा त्रिदण्डभृत शान्त आत्मज्ञः स कुटीचकः ॥१६६ श्रेयो बहुदको नाम यः पवित्रितपादुकः। शिखासनोपवीतानि धातुकाषायवस्त्रभृत् ॥१६७

साधुवृत्तिर्द्विजौकस्यु भिक्षाभुगात्मचिन्तकः। बहुद्कस्त्वयं ज्ञेयो यः परित्राट् त्रिद्ण्डभृत् ॥१६८ एकदण्डधरा हंसा शिखोपवीतधारिणः। वार्याधारकराः शान्ता भूतानामभयद्भराः १६६ वसन्त्येकक्षपां प्रामे नगरे पञ्चशर्वरीः। कर्षयन्तो व्रतैर्देहमात्मज्ञानरताः सदा ॥१७० एकद्ण्डधरा मुण्डा कन्था-कौपीनवाससः। 🚶 अञ्यक्तलिङ्गिनोऽन्यका सर्वदैव च मौनिनः॥१७१ शिखादिरहिताः शान्ता उन्मत्तवेपधारिणः। भप्र-शून्यामरीकःसु वासिनो ब्रह्मचिन्तकाः ॥१७२ एते परमहंसा वैनेष्ठिका ब्रह्मभिक्षवः। उक्तास्तद्गतभेद्ञैरात्मनः प्रार्थनाकराः ॥१७३ यो ब्रह्मचर्यवतचारिभेदो भेदो गृहस्थस्य तथैव यश्च।

योऽरण्यवासिद्विजकर्मभेदो यतेन्तथा नैष्ठिकमुक्तिभेदाः ॥१७४ चतुर्णामाश्रमाणां तु भेदमुक्त्वा पराशरः । अथाव्रवीत् द्विजा योगं श्रुणुष्वं पापनाशनम् ॥१७५ मुमुक्षवो विरज्यन्ते देहाद्गेहादितो यथा । शरीरज्ञास्तथा प्राहुः परब्रह्मस्त्यं गमाः ॥१७६ ख-वाय्वग्न्यंबु-धात्रीभिरारब्धमाश्चनाशि च । तन्मुख्यगुणसंयुक्तं तत्पश्चाक्षास्यं त्यजेत् ॥ १७७ शुक्र-शोणितसंयोगात्स्त्रीकोष्टपाकसम्भवम् । दुःखेन दशिभर्गासैर्व्यायतं भूरिदोहदैः ॥१७८

जनन्या दोहदाभावे गर्भस्थस्यापि दुःखिताः। अत्यन्तं जायमानस्य योनियन्त्रनिपीडनात् ॥१७६ जातस्य बालरोगाद्यैर्योगिनीमहदोषतः । देहिनः सर्वदा दुःखं दंतजन्मादिकैर्प्रहैः ॥१८० एवं बाल्ये महद्दुखं कौमार्ये यौवनेऽपि च। क्षिया विनापि साधै वा दारिद्वैचश्वर्ययोरिप ॥१८१ क्षुत्तृड्भ्यां प्रथमे वित्तरश्रणाद्येद्वितीयके । वृद्धत्वेचानयोदु<sup>६</sup>:खं तस्मादुदु.मयं वपुः ॥१८२ मासेन लेपितं बद्धं स्नायभिः कुल्यस वयम्। मेदोमेहनसम्रूणं कफ-पित्त-वसाश्रयम्।।१८३ अमेध्यपूर्णं भस्नावत्सर्वं वे सर्वदाऽशुचि । मृत्स्रया स्नान ग धाद्यैनिर्गनिध क्रियते बहिः ॥१८४ दुर्गन्धं सर्वरन्ध्रेषु स्वघाणोद्वंगकारकम्। सततं स्रवतेऽमेव्यं कि देहस्योच्यते शुभम् ॥१८४ यद्दग्धं भवेनमृत्स्रा दग्धं भस्मत्वमाप्नुयात्। मृतस्य दृश्यते किन्त्रित् तृष्णाकोपरतस्य तु ॥१८६ क इहोत्पद्यते विद्वान् को वेह म्रियते पुनः। यन्त्रोपममिदं धोमान् वायुत्यक्तं मृतं भवेत्।।१८७ पुथगात्मा पुथक् स्वान्तं पुथक् खानि दशापि च। पृथक् पृथक् च भूतानि पृथक् तेषां गुणोत्करः ॥१८८ पृथक् प्राणादिवायुश्च तद्गतिश्च पृथक् पृथक्। पृथक् पृथगिति द्येतत् शरीरं किमिहोच्यते ॥१८६

आरम्भकाणि यान्येव तेषु यान्ति तदंशकाः। आत्मा चान्यदवाप्नोति यातनीयं पुनर्वपुः ॥१६० यः पश्येत् शृणुयाज्ञिवेत् स्वदेद्विद्यास्मरेद्वदेत्। स्वप्याच जागृयादुच्छेद्भिन्द्यात् गायेत् जपेत् पठेत् ॥१६१ गृह्णीयादर्पयेह्याज्ञायेत जनयेदपि। सोऽस्ति कश्चित्परो देहाचो देवीति निगचते ॥१६२ नैकश्चेरस्यान्न देहेऽस्मिन् प्रत्यभिज्ञा कथं भवेन् । एकदृक्-दृष्टिरूपस्य पुनरन्येन पश्यतः ॥१६३ अद्राक्षं यदहं वस्तु तदेवतत्रपृशाम्यथ । यथाऽस्त्राक्षं च पश्यामि प्रतीतिर्यस्य जायते ॥१६४ द्रशन-स्पर्शनाभ्यां च ब्रह्णादेकवस्तुनः। अस्ति ह्यात्मा परो देहात्तथा देह्यस्ति कश्चन ॥१६५ गृही च गृहमध्यस्थो भप्नं किंचित्समाचरेतु। देहे क्षतादिसंरोहात्ता देशस्त कश्चन ॥११६ ज्ञानयोगफलेनायं कर्मयोगफलेन च। स एव भुज्यते कुर्वन् उद्देशी तस्य ताविति ॥१६७ तार्यते कर्मणा चायं बज्यते कर्मणापि च। उभयथापि नैवात्र प्रत्यक्षं दृश्यते द्विजाः ॥१६८ मायावित्वं च मृकत्त्रमतिरिक्तांगता क्रमान्। अवाक्त्वं धान्यहर्तृ णां पेशून्ये पूतिनासिता ॥१६६ भरतो वर्णकेश्चित्रैः स्वदेहं चित्रयेद्यथा। कुर्वन्नानाविधं कर्म तथात्मा कर्मजास्तनूः ॥२००

जरायुजाण्डजादीनि वपृंषि योऽप्रहीन्निजैः। कर्मभिर्वणभेदेश्च चित्तदौर्गत्यरुग्युतः ॥२०१ बधिर-क्लीब-निःस्वा-ऽन्धा जायन्ते पुरुषाधमाः। निरेनसः पुनर्भत्वा विद्वद्विप्रकुलेपु च ॥२०२ महाकुलेषु चान्येषु जायन्ते लक्षणान्विताः। धनवन्तः प्रजावन्तो विद्यावन्तो यशस्विनः ॥२०३ रूप-सौभाग्यसंयुक्ताः सर्वेपामुपकारकाः। **ब्रह्माभ्यासरताः** शान्ताः पट्कर्मनिरतान्तथा ॥२०४ पश्चयङ्गकृतो नित्यमग्निष्टोमादिषु स्थिताः। द्विजोपास्तिकरा नित्यं गुर्वाचार्यादिपूजकाः ॥२०४ चतुराश्रमधर्माणां सेविनः समदर्शिनः। गुणैः सवः समायुक्ताम्तेजस्विनो जनप्रियाः ॥२०६ एवंभूताश्च ये विप्रास्तेषां विष्णु सदान्तिके। विष्णुश्च सर्वदेवत्यस्तस्माद्विष्णुमना भवेन ॥२०७ देवतार्चाकृतां नित्यं गुरूपास्तिकृतां तथा। ब्रह्मैवाभ्यसतां सस्यक् ब्रह्मसान्निध्यमिष्यते ॥२०८ उपार्यं तत्सदा ब्रह्म यावत्साधकतां वहेन्। बह्वायासाद्विदित्वा यत्संसरेन्नेह मानवः ॥२०६ वदन्ति ब्रह्मवेत्तारो ब्रह्माभ्यासमनेकशः। ब्रह्मापि द्विविधं धीमन्नपरं परमेव ॥२१० समत्वं परमं ब्रह्म शब्दब्रह्मेति कीर्तितम्। प्रणवाख्यं । प्ररूपं तत्प्रागेव हि विशेषतः ॥२११

प्राणायामेस्तद्भ्यस्य पूरकाद्येश्च वायुभिः । पूरक-कुम्भको वायू रेचकस्तु तृतीयकः ॥२१२ येन व्यावर्तते वायुर्नासाम्रान्निःसरेद्वहिः। पूरवेत् श्वासयोगेन पूरकं तद्विदो विदुः ॥२१३ आपूर्य निश्चलीकृत्य यः कश्चिद्धार्यंतेऽनिलः। श्वासयोगं वदन्त्येनं कवयः कुम्भकं त्विति ॥२१४ **ब्रह्मध्यानसमायुक्तं** वायुं यो न वहिर्नयेत्। कुम्भकः पवनः स स्याद्यो वहिर्नेव मुच्यते ॥२१४ रेचकं तद्विदुस्तज्ज्ञा रेच्यते यः शनैः शनैः। न वेगाद्रेचयेद्वायुं सर्वथा विष्नभाग् भवेत्।।२१६ मोचयेन्मन्द्मन्दं तु बहिः स्यात्कुन्भितो यथा । नासाम्रस्थितपाणिस्तु सशिरश्चालनक्षमम् ॥२१७ अनिलं रेचयेद्योगी न मन्दं नातिवेगतः। न ज्ञायतेऽनिलो यस्य निःसरम् नासिकाप्रतः ।२१८ यस्यास्ते कुम्भितोऽजस्रं प्राणयोगी स उच्यते। दीर्घायुक्त्वं परं ज्ञानं समरता योगसिद्धयः ॥२१६ देहे तस्याऽवतिष्ठन्ति प्राणो येन वशीकृतः। यत्र तिष्ठति जीवःस्यान्निःसृतेमृत उच्यते ॥२२० स किन धार्यते प्राणो नहाः सिः सति यत्र तु। प्राण एवायमात्मास्ते प्राणो देहस्य वाहकः ॥२२१ शरीरान्निःसृते प्राणे नात्मा विष्रहवाहकः।

देहं त्यत्तवा यदा जीवो बहिराकाशमास्थितः ॥२२२ तद्। निर्विषयो वायुर्भवेदत्र न संशयः। तदा स सर्वदेहेषु नासात्रमास्थितः शिवः ॥२२३ प्रत्यक्षः सर्वभूतानां तिष्ठते न च लक्ष्यते । यदा न श्वसते वायुस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२४ नाभिसंस्थं तु विज्ञाय जन्मवन्धाद्विमुच्यते । **देहस्यः सर्व स**त्वानां स जीवति शृणोति च ॥२२४ धर्माधर्मेरवष्टन्धो देहे देहे न्यवस्थितः। स हृत्यंकजसंस्थरतु अध उध्वं प्रधावति ।२२६ धर्माधर्मेमहापारौगृहीतःसन् प्रवर्तते । उर्ध्वमुच्छ्रसते यावत्प्राणाख्यस्तु समीरणः ॥२२७ तावत्प्राणस्तु विज्ञेयो यावन्नासाग्रमास्थितः। अत्रस्थं निष्कलं ब्रह्म यावन श्वसिति द्विज ॥२२८ श्वासेन हि समायोगादाकाशात्पुनरागतः। नासारन्ध्रसमाछीनस्तदा निष्फलमुच्यते ॥२२६ स जीव इति विख्यातः स विष्णुः स महेश्वरः। ध्यातच्या देवतास्तत्र क्रमेण पूरकादिषु ॥२३० विष्णु-महोश्वरास्तेषु स्थानेषु स्थानविद्द्विज्ञेः। नीलपङ्कजवत् श्याममासीनं नाभिमध्यतः ॥२३१ महात्मानं चतुर्बाहुं पूरके तु हरिं स्मरेत् । हत्पद्मे कुन्भके ध्यायेत् ब्रह्माणं पङ्कजासनम् ॥२३२ रक्तेन्दीवरवर्णाभं चतुर्वक्त्रं पितामहम्।

रेचके शङ्करं ध्यायेङ्गलाटस्थं त्रिशूलिनम्।।२३३ शुद्रस्फटिकसङ्काशं संसारार्णवतारकम्। एवं श्वसनसंरोधाहेवतात्रयचिन्तनात् ॥२३४ अग्नि-वार्य्वभसंयोगादन्तरं शुध्यते त्रिभिः। निरोधादभवद्वायुस्तस्मादप्रिस्ततो जलम् ॥२३४ इति त्रिदेवतायोगात् शुद्धयन्तेऽन्तः पुनर्द्विजाः। व्याहृतिप्रणवोपेताः प्राणायामास्तु षोडश ।।२३६ अपि भ्रूणह्नं मासात्युनन्त्यहरहः कृताः। प्रातरिह च सायं च पूरकं ब्रह्मणोऽन्तिकम् ॥२३७ रेचकेन तृतीयेन प्राप्नुयात्परमं पदम्। न प्राणेनाप्यपानेन वायु वेगेन रेचयेत्।।२३८ प्रागुक्तेन प्रयोगेण मोचयेत्प्राणसंयमी। शरीरं च शिरोमीबा विद्वान् प्राणी च पद्द्वयम् ॥२३६ सर्वाङ्गं निश्चलं धार्यमापूर्यसर्वनाडिकाः। संवृत्याङ्गानि सर्वाणि कूर्मवध्यानकृद् द्विजः ॥२४० बद्धासनोऽचलाङ्गस्तु कुर्याद्युनिरोधनम्। कृत्वा सुसंयमं विद्वान्विधिवत्समुपसृशेत् ॥२४१ अन्तरं शुध्यते यम्यात्तस्मादाचमनं सपृतम् । इत्युक्तः प्राणसंरोधो देवतात्रयसंयुतः ॥२४२ त्रिमात्रः प्रणवस्तत्र ध्यातव्यः सर्वयोगिभिः। स्मर्यमाणस्य यातस्य विश्रान्ति स्यादमातृके ॥२४३ तत्परं निष्फलं ज्ञानं तद्विदुर्बद्याचिन्तकाः।

मृद्मध्यान्तसत्वोच स्थूलसृक्ष्मानुभावतः ॥२४४ त्रिविधं प्राणसंरोधं विदुस्तत्तत्ववेदिनः। क्रियमाणो विशेषण प्रत्याहारोऽयमुच्यते ॥२४४ सर्वं प्रागुक्तमेवास्य विशेषं च निवोधत । वाह्यं वायुं यथोत्थाय आकृष्य यच्छनंः शनः ॥२४६ निकन्ध्याद्विधिवद्योगी प्रत्याहारः स उच्यते । व्याहृत्याऽभिमुग्वीकृत्य खानि यत्र निरुध्य च ॥२४७ चिन्तयेन्निश्चलीकृत्य प्रत्याहारः म उच्यते। प्राणाद्या वायव: म्यूला: मङ्कल्पाद्याम्तथाऽणव: ॥२४८ निरोद्धव्या दशाप्येते प्राणसंयमकारिभिः । वायुरेकोऽपि देहस्थः क्रियाभदेन भिग्नते ॥२४६ प्रकपणासमन्ताच नयनादिकियाः म्मृताः । भविष्या-ऽतीतकालेभ्यः कर्मभ्यश्चाग्रसंयमी ॥२५० सर्वानिलांस्तथा म्वानि निमन्ध्येकत्र धारयेत । स धीमान्वेदविद्विदान स योगी ब्रह्मवित्तमः ॥२५१ स्थानं द्विजन्मा विधिवत्त्वजम्बमभ्यम्य संयाति विधेःपरस्य। पराशरोक्तेर्वहुभि प्रकारैरुक्तो विधिः प्राणनिरोयनस्य ॥२५२ प्रत्याहारो विशेपम्तु प्रोक्तस्तरयेव वित्तमाः। यदभ्यम्याप्नुयाद्ब्रह्म सर्वदानंदमन्ययम् ॥२५३ एतैस्तु पुनरावृत्तिः कदाचिदिह दृश्यते । संसृतिं नाप्नुयाद्येन शक्तिसृनुस्तद्त्रवीत् ॥२५४

उक्तस्तु संयमः पूर्वं त्रिविधो मलनाशनः। निबोधत चतुर्थं तु ध्यानं प्रणववेधसः ॥२४४ विधिवत्प्रणवध्यानमे क्रचित्तस्तु योऽभ्यसेत्। ब्रह्माभ्येति स मुक्तात्मा स योगी योगिनां वरः ॥२५६ तद्धचानमसुसंरोधस्तुय सम्यगिहोच्यते। तदन्यथानपेक्षं च चित्तक्षेपविवर्जितम् ॥२४७ चतुर्णामाश्रमाणां तु भेद्मुत्तवा पराशरः। अथात्रवीद्द्विजा योगं श्रुणुष्वं पापनाशनम् ॥२५८ तच्छान्तं निर्मलं शुद्धं ध्यातव्यं हत्सरोरुहे । तद्धंचयं तद्वरेण्यं च बीजं मुक्तेस्तदुच्यते ॥२४६ सिचत्य व्याहृतीः सप्त प्रणवाद्यास्तद्न्तकाः। सम्यगुक्तमिदं ध्यात्वा परब्रह्मणि योजयेत् ॥२६० हुतभुकु पवनो जीवस्त्रयोऽप्यते हृदि स्थिताः। एतत्सर्वं तु चैकत्र संस्मरेत् ध्यानक्कदुद्विजः ॥२६१ ॐकारवर्त्मनालेन उद्धृत्योपरि योजयेत्। योजयेत्मर्वमप्येतित्सद्धयोगी स उच्यते ॥२६२ शून्यभूतम्तु यत्प्राणः श्वासं जीवेति संज्ञितम् । यम्मादुत्पद्यते श्वासः पुनम्तत्र निवंशयेन ॥२६३ आद्यं तं प्रणवं विद्वान् घटाकाशवद्भ्यसेत्। स पश्येनिर्मलं शुद्धं पुरुषं तमसंशयम् ॥२६४ अन्तर्वक्रो वहिः (सम्यक) सर्पन् सर्पवरक्रण्डलाकृतिः ।

ध्यातव्यः प्रणवस्तत्र मध्यगं धाम संस्मरेन् ।।२६४ स मात्रा स च बिन्दुश्च तदेव परमं पद्म्। तद्भ्यस्यं हि तज्ज्ञात्वा स तिसम्नव छीयते ॥२६६ प्रथमं प्रणवो ऽन्यक्त स्त्र्यक्षरः परमाक्षरः । सर्वज्ञत्वमवाप्नोति प्राप्नोति परमं पद्म् ॥२६७ पञ्चमं तु पदं विद्वान् तत्सार्धमवतिष्ठते । नाद्बिन्दुसमभ्यासात् प्राप्तुयात्परमं पद्म ॥२६८ पदं प्राप्य निवर्तन्ते धाम स्वं स्वान्तमेव च। मर्वेऽप्यमातृका वर्णाः पुनस्तत्र विशन्ति च ॥२६६ वर्णात्मा सम्नवर्णम्तु समस्तवर्णजीवनम्। न दीर्घं नापि ह्रस्वं च न घोषं नाप्यघोषवत् ॥२७० न विसर्गं न तद्वीनं नानुम्वारविपर्ययः। हृद्याकाशनिविष्टं यदचलत्वं प्रयाति चेत् ॥२७१ ज्ञानयोगे त्रिषष्टिवें विभ्रतीत्यक्षराणि तु। तत्पदं योगिभिध्येयं व्योम यस्य तु मध्यगम् ।।२७२ व्योमान्तं सततं ध्येयमनंताकाशमव्ययम् । चिन्तयामो वयं यद्वै धियो यो नः प्रचोदयान ॥२७३ एतदृ इहा त्रयीरूपमेतद्भगंस्त्रयीमयम्। एषा सा परमा मुक्तिर्गत्वा यां न निवर्तते ।।२७४

आदाय चापं प्रणवं च बाणं सन्ध्याय चात्मानमवेक्य लक्ष्यम्। स तिष्ठिधि तत्र निवेश्य योगी प्राप्नोति नित्यं स तु मुक्तिकामः॥२७४ खदेशतः किंचिद्वादि विद्वन् ध्यानं विधेर्यत्ध्वनिपूर्वकस्य । सर्व निधानं विशिवच मम्यक् वक्तुं समर्थो विधिरेव चाम्य ॥२७६

इति प्रणवध्यानविधिवर्णनम्।

## अथ ध्यानयोगवर्णनम्।

अथान्यत्मम्बक्ष्यामि विधानं ध्यानकर्मणाम् । नानामतोदितं कार्यं परब्रह्माप्तिकारकम् ॥२७७ कर्मात्मकस्त्विह प्रोक्तः कः परात्मा परं च किम्। वक्ष्यमाणमिदं वित्राः श्रृणुध्वं मक्तितत्पराः ॥२७८ स्वीयेन कर्मणा येपां शरीरप्रहणं भवेत्। कर्मात्मानम्त उच्यन्ते निर्गता परमात्मनः ॥२७६ यं न म्प्रशन्ति दुःखाद्याम्तथा मत्वादयो गुणाः । कादाचित्कं न कर्मान्ति परमात्मा ततः परम् ॥२८० निष्ठा-नाशौ न विद्येते गुणा यं न स्पृशन्ति हि । अजःसन् कथमेतिम्मङ्लोक जातोऽभिधीयते ॥२८१ स्वात्मानमेव चात्मानं वेष्ट्यंत्कोशकारवत । कर्मणैव प्रजातम्तु वाह्यस्वार्थविमोहितः ॥२८२ तस्मादिव जैयेत्कर्म स्वर्गादेगप साधकम्। संसरेतवर्गतः कर्मक्षये स तु पुनर्यतः ॥२८३ सीमैषा परमा विद्वन् ब्रह्मणः पात-मोक्षयोः। कर्मस्थानमियं धात्री कृतमत्रोपभुज्यते ॥२८४

वैदिकः कर्मयोगश्च दिवोऽयावर्तकः स तु । योनेहावृत्तिकृतं च ज्ञानयोगमतोऽभ्यसेन ॥२८५ हृदि निःस्रतनाडीना सहस्राणां द्विसप्ततिः। तन्मध्यावस्थितं तेजः शशिष्रभं विभाति यन् ॥२८६ तन्मध्यमण्डले ह्याःमा विध्माचलदीपवत् । स ज्ञातव्यो विदित्वा तं संसरेन्न पुनर्यतः ॥२८७ पुटीभूतमधोवक्त्रं तत्दुधृत्पद्मः व्यवस्थितम् । नाभ्यत्थोदानवातेन कृत्योध्यास्यं विकासयेन ॥२८८ विकास्य तस्य मध्यस्थमचळं दीपशिष्वंव तत् ' तदृध्व निःसरच्छुभ्रं सूक्ष्मं तत्तु विचिन्तयेन ॥२८६ छलनाद्वारनिर्ग<del>च्छ</del>न्योगी मूर्धिन तु चिन्तयेत्। तावत्त् चिन्तयेद्यावन्निरालम्बत्वमृच्छति ॥२६० निरालम्बं यदा ध्यानं कुर्वाणो निश्चलो भवेत्। तदा तदुच्यते ब्रह्म स योगी ब्रह्मवित्तमः॥२६१ तत्पदं च पद्।तीतं तन्त्राप्ती मुक्त उच्यते । इति ध्यानं विधातव्यं मुक्तिकृत्सद्द्विजैर्द्विजाः ॥२६२ भूतानामात्मभूतस्य तानि सम्यक् प्रपश्यतः । विमुद्धन्त्यमरा मार्गं पदं किमपदस्य तु ॥२६३ यो न तिष्ठति नो याति न किञ्चित्मर्व एव यः। अवाग्यो वाङ्मयो यश्च सकलश्रुतिरश्रुतिः ॥२६४ योऽप्यन्तिके दवीयांश्च योऽस्ति नास्ति स्वरूपकः। यस्य तत्त्वस्य संवित्तिः स तस्मिन्नेव लीयते ॥२६४

यस्तु सर्वाणि भूतानि पश्यत्यात्मगतानि तु । आत्मानं तेषु सर्वेषु ततो यो न विरज्यते ॥२६६ सर्वभूतात्मभूतात्मा यत्र पश्यति धीमतिः। शोक-मोही च किं तस्य ह्यंकत्वमनुपश्यतः॥२६७ समाप्तान्तमादिर्यन्मन्त्र-ब्राह्मणयोद्विजाः। 🕉 खं ब्रद्धति चाम्नायो दर्शकस्त्वेप वेधसः ॥२६८ आत्मनःने बहुपाया उक्तास्तद्धि मनीपिभिः। नैस्तैः सर्वैः स मन्तव्यो ज्ञातव्यश्चोपदेशतः ॥२६६ न वंदें ज्ञेंयता तस्य न शास्त्रेर्वहुभिः श्रुतेः। न यज्ञंन जपैहोंमेः शौचैर्वाप्तितयापि च ॥३०० गुरूपदेशनो भक्ता सम्यगभ्यासतस्तथा। ज्ञात्रव्यः परमात्वेवं भक्तिकृत्तत्परेण च ॥३०१ ध्यानज्ञानस्य तद्भक्तंत्र्यत्र विश्रमते मनः। तदेवीपादिशत्तस्य वस्तु ज्ञानोपदेशकम् ॥३०२ मनो यम्य निषण्णं तु जायते यत्र वस्तुनि । स तु ध्यायेत्तदेवेति यावत्त्यात्ध्यानसन्ततिः ॥३०३ तत्र ध्याने तु संलग्ने हरावात्मनि वा पुनः। ध्यानं योजयते योगी तं निरालम्बतां नयेत् ॥३०४ योगशास्त्रेषु यत्प्रोक्तं रहस्यार्ण्यकेषु च। तत्तथोपदिशेद्धधानं ध्यायेदपि तथैव च ॥३०५ प्रवदन्यन्यथा केचित् शुभादिभेदतस्त्वतः। 

चित्तजं श्रुतिजं भावं भावनाभवमेव च। त्रविद्यमात्मना सिध्येद्योगाभ्यामफलप्रदम् ॥३०७ आत्मशक्तिः शिवश्चेति चैतन्यमिति संज्ञितम्। उत्तरोत्तरवैशिष्ट्याद्योगाभ्यासः प्रवर्तते ॥३०८ स एको निश्चलीभूतकर्मात्मा यमुपार्जित:। न विभेति स एकाकी परेषां जायते भयम्।।३०६ तदेवं गतिभित्रह्मध्यानं यस्यास्ति योगिनः। स विशेत्तमजं शान्तं कदाचित्संसरेन्न तु ॥३१० त्र्यम्बकश्च चतुर्वक्त्रश्चतुर्वाहुः परेश्वरः। एक एव महेशो वै तज्ज्ञेसिधति कीर्र्यते ॥३११ नाभिमध्यस्थितं विद्धि वस्तु विद्वन् सुनिर्मलम्। रविवद् भ्राजमानं तु काशद्रश्मिगणैद्धिज ॥३१२ चिन्तयेत् हृदि मध्यम्यं दीप्रिमत्पूर्यंमण्डलम् । तस्य मध्यगतः सोमो वहिश्चन्द्रशिखो महान् ॥३१३ तन्मध्ये तु परं सूक्ष्मं तद्धश्रायेद्योगमात्मनः। तन्मध्ये चिन्तयेदेतद्वक्ष्यमाणक्रमेण तु ॥३१४ विन्दुमध्यगतो नादो नादमध्यगतो ध्वनिः। ध्वनिमव्यगतस्तारस्तारमध्यगतों द्र्यमान् ॥३१५ तस्यमध्यगतं ब्रह्म शान्तं तस्य तु मध्यगम् । परं पदं तु यच्छान्तं सम्याव्याहृत्य योजयेत् ॥३१६ जीवात्मा कायमध्यस्थस्तत्रापि देहवर्जितः। वक्त्र-नासापुटस्थस्तु भुञ्जीत विपयान् प्रभु: ॥३१७

इत्येतदुष्यानमार्गं तु वदन्ति कवयो द्विजाः। केचिद्न्येऽन्यथा ब्रुयु रूपं ब्रह्मविदो विधः ॥३१८ न नामापि हि दुःग्वस्य शर्म यत्र निरन्तरम्। ब्रह्मणो रूपमानन्दं तन्मुक्कावुपलभ्यते ॥३१६ सर्वत्यापी य एकस्तु यश्चानन्तश्च भावकः। स मन्तव्योऽनरो ह्यात्मा मर्व व्याप्य च यः स्थितः ॥३२० एकं व्योम यथानेकं गृहाद्येर्पलक्ष्यते। एको ह्यात्मा तथानैको जलागारेषु सूयवत् ॥३२१ विश्वरूपो मणिर्यद्वत् वर्णान् गृह्वात्यनेकशः। उपाधितस्तथात्मको नानादेहेषु कर्मतः ॥३२२ कलाकाष्टादिरूपेण वतमानादिभदकृत्। एकः कालो यथा नाना तथात्मैकोऽप्यनेकधा ॥३२३ देहमध्यस्थितं देवं यो न ध्यायति मृढधीः। सोऽङ्कलब्यं मधु त्यक्तवा क्लेशायाज्ञो गिरि व्रजन् ॥३२४ यस्तीर्थयानं जप-यज्ञ-होमान् कुर्याद्वपुष्पान् न च वेक्ति विष्णुम्। स मांसपिण्डं परिहत्य दूराद्ज्ञः प्रधावेद्धिरुह्य पृष्ठम् ॥३२४ सम्भ्राम्यते विधिवशात्करणोग्नचक्रं पापेन कुम्भ इव धातृवरेण नूनम्। आरोप्य स्वार्थघृतद्ण्डमुखेन पूर्ण हृत्पद्मसंस्थशावतत्वमतिप्रहीणः ॥३२६ द्रौ मार्गावात्मनो इंयो ब्राह्मणेर्ब्रह्मचिन्तकैः। अभियाति विदित्वा यौ सायुज्यं परवेधसः ॥३२७

विद्वान धूमादिरेको वै द्वितीयम्त्वचिरादिकः। प्रत्येतच्यो प्रयत्नेन यत्प्रतीतिर्न जायते ॥३२८ घूपः क्षपाऽमितः पक्षो दक्षिणायनमेव च। लोकःपित्र्यश्च सोमश्च मातरिश्वानुकर्षणम् ॥३२६ यथा धातृक्रमादेते सम्भवन्ति समाश्रिताः। अर्चिर्दिनं सितः पश्चस्तथाचेवोत्तरायणम् ॥३३० देवलोकस्तथा सूर्यो विद्युतश्च क्रमादिमान्। मानसाः पुरुषा यान्ति जानन्तो ब्रह्मश्रोकताम् ॥३३१ यत्र याताः पुननेह संसरन्ति द्विजाः कचित् । मार्गद्वयमिदं धीमन्मन्तव्यं सततं द्विजैः ॥३३२ ज्ञानेन येन विज्ञातुर्ज्ञान-मोक्षौ च सिष्यतः। गृहारण्यस्थ-भिक्षूणां त्रयाणामपि धीमताम् ॥३३३ ज्ञानमभ्यस्यमानं तु तथा दृहति संसृतिम्। ज्ञानं समानमेतद्व इति ब्रह्मविदो विदुः ॥३३४ यथा दहति चेधांसि समिद्धश्राशुश्रुक्षणिः। तस्मान्मार्गद्वयेनापि आत्मा ज्ञेयो द्विजोत्तमैः ॥३३४ ये न जानन्ति ते यान्ति दन्दशूकादियोनिषु। यत्र गत्वा कृमित्वं वा कीटत्वमथ वाऽऽप्नुयुः ॥३३६ एताभ्योऽप्यधमास्वेव जायन्ते ते कुयोनिषु । विद्याविद्ये च मन्तव्ये ते हेतू स्वर्ग-मोक्षयोः ॥३३७ विद्या मोक्षप्रदा च स्याद्विद्या मृत्युजन्मकृत्। ज्ञानयोगस्तथा कर्म विद्याविद्य स्मृते बुधैः ॥३३८

अपवर्गाय द्वे चापि कर्भ कृत्वा निवेद्येत्। कर्मापि क्रियमाणं वै निरपेक्षं तु मोक्षकृत ॥३३६ विष्णवे गुरवे वापि कर्म कृत्वा निवेद्येन्। आत्मनः फलमिन्छंस्तु यत्कर्म कुरुते नरः ॥३४० तेनैव वाञ्छितप्राप्तिस्तेनान्यद्वोपजायते। हरिर्वा नित्यमभ्यम्य सर्वभावेन सद्द्विजैः ॥३४१ तदभ्यासादवाप्नोति मृ यौ दृष्टं हरिस्मृतिम् । एक एव हि स ध्येयो यत्परं नास्ति किञ्चन ॥३४२ विराद् सम्म्राट् महानेप सदा ध्येयो जितेन्द्रियेः। महान्तं पुरुषं देवं रविरूपं तमः परम् ॥३४३ ब्रह्मवित्सोऽतिमृत्युं वे प्रयात्येवानिवर्तकम्। एष एव नृणां पन्था ब्रह्मा वै युमुपासते ॥३४४ ये ये जन्मस्वनेकेषु विधिवचैकचेतसः। न भत्तया नापि योगेन नाभ्यासैनकजन्मना ॥३४४ ब्रह्माप्तिर्जायते पुंसां किन्तु स्याद्भरिजन्मभिः। यद्देवा सन्तताभ्यासाम्र ब्रह्म प्रतिपेदिरे ॥३४६ तन्मनुष्यैः कथं प्राप्यमेकनैव च जन्मना । ज्ञानाभ्यासेने तद्ब्रह्म कृतैदंभम्बरूपकेः ॥३४७ न प्राप्यते परं ब्रह्म न वाप्यासनमुद्रया। बहुभिः किमुपायेस्तु प्रोक्तेर्वा प्रन्थिवस्तरैः ॥३४८ एकमेवाभ्यसेत्तत्वं येन चित्ते वसेद्धरिः ।

एकेंव भावशुद्धिस्तु यथा स्यात्क्रियतं तथा ॥३४६ अन्यस्कुर्यान्मनस्वन्यद्विरुद्धभिति सर्वथा । भावः स्वर्गाय मोक्षाय नरकायापि स स्मृतः ॥३५० तस्मात्तं शोधयेद्यक्षाच्छुचिःस्याद्भावशुद्धितः । एकस्याः पुत्रः-भर्तारौ हदयोपिर योपितः ॥३५१ भिन्नभावौ भवेतां तौ भावमेवं विशोधयेत । परिष्वक्तो नरो नार्या द्वादमेति यथा युवा ॥३५२ तल्पस्थोऽपि सकामां तां भावहीनो न कामयेत । एको भावो हरौ कार्यो यथाऽसौ निश्चलो भवेत ॥३५३ तद्बुध्या पश्चतां गच्छन् स्वर्गं मोक्षमवाष्नुयात् । त्यक्त्वापि विविधान् भोगान तपस्तप्त्वातिदुष्करम् ॥३५४ मृत्युकाले मतिर्या स्यान्तां गर्ति याति मानवः ॥

योगप्रयोगः कथितः समासात्व्यानम्य मार्गो बहुधाऽभ्यधायि । योऽभ्यस्यमानस्तु भवेद्विधानात् ब्रह्माप्तिकृद्यश्च तथा द्विजानाम् ॥३५४

प्रत्याह्रस्थ योगश्च ध्यानं विस्तरतस्तथा।
उक्तं द्विजहिताथांय ब्रह्मावाप्तिकरं तथा।।३६६
अङ्गुल्यङ्गुष्ठयोनांदः क्षणः म्यात्तद्द्वयं त्रुटिः।
द्वाभ्यां चेव खवम्ताभ्यां निमेपोऽपि खबद्वयम्।।३६७
ते.पञ्चदशभिः काष्ठा ताश्च त्रिंशत्कळा स्मृता।
द्वाविंशतित्रिभागस्तु घटिकेति प्रकीर्तितः।।३६८
तद्द्वयं च मुटूर्तःस्यात्तित्रंशत्तु क्षपा-दिनम्।
तत्पञ्चदशकं पक्षस्तद्द्वयं मास उच्यते।।३६६

तद्द्वयं भृतुरित्युक्तं तद्वयं काल उच्यते। तत्सार्धमयनं प्रोक्तं तदुद्वयं वत्सरस्तथा ॥३६० पञ्चभिस्तुर्युगं प्रोक्तं तदुइादशकपष्टिकम्। पष्टिकःपष्टिगुणितो वास्पतेर्युगमुच्यते ॥३६१ तद्द्वयं तु कलिःप्रोक्तस्तद्द्वयं द्वापरो भवेत्। कलित्रयेण त्रेता स्यात्कृतःकलिचतुष्ट्यम् ॥३६२ पष्टिघ्नःसोऽपि कालज्ञैःप्रजानाथयुगः स्मृतः ॥३६३ कलिभिद्राभिन्नह्मन् । चतुर्युगमिति स्मृतम् । चतुर्युगसहस्रेण ब्रह्माहःकल्प उच्यते ॥३६४ अष्ट्रयुगा भवेत्सन्ध्या सायंसन्ध्या च तावती । तदेकसप्ततिगुणं मन्वन्तरमिति स्मृतम् ॥३६५ मन्वन्तरद्वयेनेह शक्रपातः प्रकीर्तितः। एतन्मानेन वर्पाणां शतं ब्रह्मक्षयः म्मृतः ॥३६६ ब्रह्मक्ष्यशतेनापि विष्णोरेकमहर्भवेत्। एतहिवसमानेन शतवर्षेण तत्क्षयः ॥३६७ तत्क्षयित्रगुणोष्टाभी मद्रस्य त्रुटिमच्यते। एवमाब्दिकमानेन प्रयातोऽब्दशते द्विजाः। कद्रश्चात्मनि छीयेत निष्कलंकं निरामयम्।।३६८ निष्प्रकम्पं जगत् व्योम व्योमातीतं परं पदम्। तन्निद्ध्याससंगुध्या स तत्रैव विलीयते ॥३६६ परम्पराणां परमं विचिन्त्य परात्परं दिष्टपदाद्तीतम्। क्षणादिकालं क्रमशोऽब्द्मेव प्रयाति तं तत्पद्मव्ययं च ॥३७० तमात्मरूपं परमव्ययं च विश्वेश्वरं चित्तभरं प्रपद्ये। शान्ति च गत्वा विथिना च योगी प्रयानि तह पदमव्ययं च ॥३७१

कालज्ञानेन योगोऽयं योगिभिध्यनिकारिभिः। मुमुक्षुभिःसदा ज्ञेयं निरालम्बं परं पद्मु ॥३७२ पराशरोदितं शास्त्रं चतुर्वर्णात्रमाय च । वेदितव्यं प्रयत्नेन सदा ध्येयं द्विजातिभिः॥३७३ दश द्वादश चाष्ट्री वा सन्त पट पंच वा त्रयः। दैविके पैतृके वापि श्लोका श्राव्या हिजातिभिः ॥३७४ श्रावयिष्यति यः श्राद्धे ब्राह्मणान्भक्तितत्परः । प्राश्यन्ति पितरस्तस्य तृत्ति वै शाश्वर्ता द्विजाः ॥३७४ य इदं अणुयाद्वापि श्रावयेत्पाठयेदपि । स प्रध्वस्ततमस्तोमो ब्रह्मलोकमवाप्त्यान् ॥३७६ त्रिभिःश्लोकसहम्त्रेस्तु त्रिभिर्वृ त्तशतेरपि। पराशरोदितं धर्मशास्त्रं प्रोवाच सुव्रतः ॥३७७ नमोऽस्तु याज्ञवल्क्याय मनवे विष्णवं नमः। गौतमाय वसिष्ठाय नमः पाराशराय च ॥३७८

इति श्री वृहत्पाराशमे धर्मशास्त्रे मुत्रतप्रोक्तायां म्मृत्यां योगनिरूपणो नाम द्वादशोऽभ्यायः।

इति बृहत्पराशरस्मृतिः समाप्ता ।।
 अत्यतः

#### ॥ अथ ॥

# –॥ लघुहारीतस्मृतिः ॥–

॥ श्रीगणेशाय नमः॥

अथ वर्णाश्रमधर्मवर्णनम्।

ये वर्णाश्रमधर्मस्थास्ते भक्ताः केशवं प्रति । इतिपर्वं त्वया प्रोक्तं भूर्मृवःस्वर्धिजोक्तमाः ॥१ वर्णानामाश्रमाणाश्च धर्मान्नो ब्रूहि सक्तम ! । येन सन्तुष्यते देवो नारसिंहः सनातनः ॥२ अत्राहं कथयिष्यामि पुरावृक्तमनुक्तमम् । श्रृषिभिः सह संवादं हारीतस्य महात्मनः ॥३ हारीतं सर्वधर्मञ्चमासीनमिव पावकम् । प्रणिपत्याब्रुवन् सवं मुनयो धर्मकाङ्क्षिणः ॥४ भगवन् ! सर्वधर्मञ्च ! सर्वधर्मप्रवर्त्तक ! । वर्णानामाश्रमाणाश्च धर्मान्नो ब्रूहि भागव ! ॥६ समासाद्योगशास्त्रश्च विष्णुभक्तिकरं परम् । एतचान्यच भगवन् ! ब्रूहि नः परमो गुरुः ॥६

हारीतस्तानुवाचाथ तैरेवं चोदितो मुनिः। शृण्वन्तु मुनयः ! सर्वे ! धर्मान् वक्ष्यामि शाश्वतान् ॥७ वर्णानामाश्रमाणाञ्च योगशास्त्रञ्च सत्तमाः ।। सन्धार्थ्य मुच्यते मर्त्यो जन्मसंसारबन्धनात् ॥८ पुरा देवो जगत्म्रष्टा परमात्मा जलोपरि । सुष्वाप भोगिपर्यङ्कं शयने तु श्रिया सह ॥६ तस्य सुप्तम्य नाभौ तु महत् पद्ममभूत किल। पद्ममध्येऽभवद् ब्रह्मा वेद्वेदाङ्गभूषणः ॥१० स चोक्तो देवदेवेन जगत्मृज पुनः पुनः। सोऽपि सृष्ट्रा जगत् सर्वं सदेवासुरमानुपम्।।११ यज्ञसिद्धचर्थमनघान् ब्राह्मणान्मुखतोऽसृजत्। असृजत् क्षत्रियान् वाह्नो वैश्यानप्युरुदेशतः ॥१२ शूद्रांश्च पादयोः सृष्ट्रा तेपत्रचैवानुपृर्वशः । यथा प्रोवाच भगवान् ब्रह्मयोनि पितामहः ॥१३ तद्वचः संप्रवक्ष्यामि शृणुत द्विजसत्तमाः !। धन्यं यशस्यमायुष्यं स्वग्यं मोक्षफलप्रदम् ॥१४ ब्राह्मण्यां ब्राह्मणेनैवमुत्पन्नो ब्राह्मणः स्मृतः। तस्य धर्म प्रवक्ष्यामि तद्योग्यं देशमेव च ॥१५ कृष्णसारो मृगो यत्र स्वभावेन प्रवर्त्तते। तस्मिन्देशे वसेद्धर्मः सिद्धचिति द्विजसत्तमाः । ॥१६ षद् कर्माणि निजान्याहुर्बाह्यणम्य महात्मनः। तैरेव सततं यस्त वर्त्तयेत सुखमेधते ॥१७

प्रथमो-

अध्यापनं चाध्ययनं याजनं यजनं तथा। दानं प्रतिप्रहश्चेति षट् कर्माणीति चोच्यते ॥१८ अध्यापनः त्रिविधं धर्मार्थमृक्थकारणात् । शुश्रपाकरणञ्चित त्रिविधं परिकीर्त्तितम् ॥१६ एपामन्यतमाभावं वृपाचारो भवंद्रु द्विजः। तत्र विद्या न दातव्या पुरुषेण हितंषिणा ॥२० योग्यानध्यापयेन्छिप्यानयोग्यानपि वर्जयेत्। विदितान् प्रतिगृह्णीयाद्गृहे धर्मप्रसिद्धये ॥२१ वेद्बचेवाभ्यसेन्नित्यं शुचौ देशे समाहितः। धर्मशास्त्रं तथा पाठ्यं ब्राह्मणेः शृद्धमानसेः ॥२२ वेद्वित्पठितव्यं च श्रोतव्यश्व दिवा निशि। म्मृतिहीनाय विप्राय श्रुतिहीने तथैव च। दानं भोजनमन्यच दत्तं कुलविनाशनम् ॥२३ तस्मात् सर्वप्रयत्नेन धर्मशास्त्रं पठेदृद्धिजः। श्रुतिम्मृती च विप्राणां चक्षुपी देवनिर्मिते। काणस्त्रत्रंकया हीनो द्वाभ्यामन्धः प्रकीर्त्तितः ॥२४ गुरुश्रुपणञ्चेव यथान्यायमतन्द्रितः। सायं प्रातरूपासीन विवाहाम्नि हिजोत्तमः ।।।२४ सुस्नातस्तु प्रकुर्वीत वैश्वदंवं दिने दिने । अतिथीनागताब्द्रक्तया पूजयेदविचारतः ॥२६ अन्यानभ्यागतान विप्राः ! पूजयेन्छक्तितो गृही । स्वदारनिरतो नित्यं पग्दारविवर्जितः ॥२७

कृतहोमस्तु भुद्धीत सायं प्रातरुदारधीः । सत्यवादी जितक्रोधो नाधर्मे वर्त्तयेन्मतिम् ॥२८ स्वकर्मणि च संप्राप्ते प्रमादाभ निवर्त्तते । सत्यां हितां वदेद्वाचं परलोकहितेषिणीम् ॥२६ एव धर्मः समुद्दिष्टो ब्राह्मणस्य समासतः । धर्ममेव हि य कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥३० इत्येष धर्मः कथितो मयायं पृष्टो भवदिस्त्विखलाघहारी । वदामि राज्ञामपि चैव धर्मान् पृथक् पृथग्बोधत विप्रवर्ग्याः ॥३१

द्वितीयोऽध्यायः ।
अथ चतुवर्णानां धर्मवर्णनम् ।
क्षत्रादीनां प्रवक्ष्यामि यथावदनुपूर्वशः ।
येषु प्रवृत्ता विधिना सर्वे यान्ति पर्ग गतिम् ॥१
राज्यसः क्षत्रियश्चापि प्रजाधर्मेण पाळयन् ।
कुर्यादृध्ययनं सम्यग्यजेद्यज्ञान् यथाविधि ॥२
द्यादानं द्विजातिभ्यो धर्मबुद्धिसमन्वतः ।
स्वभार्य्यानिरतो नित्यं षद्भागार्हः सदा नृषः ॥३
नीतिशासार्थकुरालः सन्धिविष्रहतत्त्ववित् ।
देवज्ञासणमन्त्रञ्च पितृकार्यपरस्तवा ॥४

#### लघहारीतस्मृतिः।

भर्मेण यजनं कार्यमधर्मपरिवर्जनम् । उत्तमां गतिमाप्नोति क्षत्रियोऽप्येवमाचरन् ॥५ गोरक्षां कृपिवाणिज्यं कुर्याद्वैश्यो यथाविधि । दानं देयं यथाशत्तया ब्राह्मणानाश्व भोजनम् ॥६ दम्भमोहविनिर्मुक्तस्तथा वागनसूयकः। स्वदारनिरतो दान्तः परदारविवर्जितः ॥७ धनैर्विप्रान् भोजयित्वा यज्ञकाले तु याजकान्। अप्रभुत्वश्व वर्तेत धमेष्वादेहपातनान् ॥८ यज्ञाध्ययनदानानि कुर्यानित्यमतन्द्रितः। पितृकार्यपरश्चैव नरसिंहार्मनापरः ॥६ एतद्वेश्यस्य धर्मोयं स्वधर्ममनुतिष्ठति । एतदाचरते योहि स स्वर्गी नात्र संशयः ॥१० वर्णत्रयस्य शुश्रूषां कुर्याच्छ्द्रः प्रयक्षतः । दासवद्बाह्मणानाञ्च विशेषेण समाचरेन् ॥११ अयाचितप्रद्।ता च कष्टं वृत्यर्थमाचरेन्। पाकयज्ञविधानेन यजेद्देवमतन्द्रितः ॥१२ शूद्राणामधिकं कुर्यादर्भनं न्यायवर्तिनाम् । धारणं जीर्णवस्त्रस्य विप्रस्योच्छिष्टभोजनम् । म्बदारेषु रतिश्चेव पग्दारविवर्जनम् ॥१३ इत्थं कुर्यात् सदा शूद्रो मनोवाकायकर्मभिः। स्थानमैन्द्रमवाप्नोति नष्ट्रपापः सुपुण्यकृत् ॥१४

वर्णेषु धर्मा विविधा मयोक्ता यथातथा ब्रह्ममुखेरिताः पुरा । शृणुष्वमत्राश्रमधर्ममाद्यं मयोच्यमानं क्रमशो मुनीद्राः ॥१६ इति हारीते धर्मशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः ।

-000-

तृतीयोऽध्यायः । अथ ब्रह्मचर्याश्रमधर्मवर्णनम् ।

उपनीतो मानवको वसेद्गुरुकुलेपु च। गुरोः कुले प्रियं कुर्यात् कर्मणा मनसा गिरा ॥१ ब्रह्मचर्ग्यमधःशय्या तथा वह्ने रूपासना । उद्कुम्भान् गुरोर्द्णाद्रोप्रासञ्चे धनानि च। कुर्याद्ध्ययन अवैव ब्रह्मचारी यथा विधि। विधि त्यक्ता प्रकुर्व्वाणो न स्वाध्यायफलं लभेत् ॥२ यः कश्चित् कुरुते धम विधि हित्वा दुरात्मवान्। न तत्फलमवाप्नोति कुर्व्वाणोऽपि विधिच्युतः ॥३ तस्मद्वेदव्रतानीह चरेन् स्वाध्यायसिद्धये। शौचाचारमशेषं तु शिक्षयेद् गुरुसन्निधौ।।४ अजिनं दण्डकाष्ठश्च मेखलाश्चोपवीतकम्। धारयेदप्रमत्तश्च ब्रह्मचारी समाहितः ॥५ सायं प्रातश्चरेद्धेक्षं भोज्यार्थं संयतेन्द्रियः । आचम्य प्रयतो नित्यं न कुर्याह्नतथावनम्।

छत्रश्वोपानहश्व व गन्धमाल्यादि वर्जयेत्। नृत्यगीतमथालापं मेथुन**ञ्च** विवर्जयेत् ॥६ इस्त्यश्वारोहणञ्चेव संत्यजेत् संयतेन्द्रियः । सन्ध्योपास्ति प्रकुर्ज्ञीत ब्रह्मचारी ब्रतस्थितः ॥७ अभिवाद्य गुरोः पादौ सन्ध्याकर्मावसानतः। तथा योगं प्रकुर्वित मातापित्रोश्च भक्तितः ॥८ एतेषु त्रिषु नष्टेषु नष्टाः स्युः सर्वदेवताः। एतेषां शासने तिष्ठेद्ब्रह्मचारी विमत्सरः ॥६ अधीस च गुरो वेंदान वेदी वा वेदमेव वा। गुरुवे दक्षिणां द्यात् संयमी त्राममावसेत् ॥१० यस्यैतानि सुगुप्तानि जिह्वोपस्थोदरं करः। संन्याससमयं कृत्वा ब्राह्मणो ब्रह्मक्यूंग्या ॥११ तस्मिन्नेव नयेत् कालमाचार्य्यं यावदायुषम्। तद्भावे च तत्पुत्रे तच्छिष्ये वाथवा कुले ॥१२ न विवाहो न संन्यासो नैष्ठिकस्य विधीयते ॥१३ इमं योविधिमास्थाय त्यजेरेहमतन्द्रितः। नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१४

नेह भूयोऽपि जायेत ब्रह्मचारी दृढव्रतः ॥१४ बो ब्रह्मचारी विधिना समाहितश्चरेत् पृथिन्यां गुरुसेवने रतः। संप्राप्य विद्यामतिदुर्लमां शिवां फल्ज तस्याः सुलमं तु विन्द् ति ॥१४ ॥ इति हारीते धर्मशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः ॥

## चतुर्थोऽध्यायः।

अथ गृहस्थाश्रमधर्मवर्णनम् ।

गृहीतवेदाध्ययनः श्रुतशास्त्रार्थतस्ववित् । असमानार्षगोत्रां हि कन्यां सम्रातृकां शुभाम् ॥१ सर्व्वावयवसंपूर्णा सुवृत्तामुद्रहेन्नरः। ब्राह्मेण विधिना कुर्र्यात् प्रशस्तेन द्विजोत्तमः ॥२ तथान्ये बहबः प्रोक्ता विवाहा वर्णधर्म्मतः। औपासनव्य विधिवदाहृत्य द्विजपुङ्गवाः । ॥३ सायं प्रातश्च जुहुयात् सर्वकालमतन्द्रितः। स्नानं कार्य्यं ततोनित्यं दन्तधावनपूर्व्वकम्।।४ उषःकाले समुत्थाय कृतशौचो यथाविधि। मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः॥४ तस्माच्छ्रक्कमथार्द्रं वा भक्षयेद्दन्तकाष्टकम्। करखं खादिरं वापि कदम्वं कुरवं तथा ॥ई सप्तपर्णपृश्निपणींजम्बुनिम्बं तथैव च। अपामार्गभा विल्बन्धार्कभोद्धम्बरमेव च ॥७ एते प्रशस्ताः कथिता दन्तधावनकर्मणि । दुन्तकाष्ट्रस्य भक्षश्च समासेन प्रकीर्त्तितः ॥८ सर्वे कण्टकिनः पुण्याः श्लीरिणश्च यशस्त्रिनः। अष्टाक्कुलेन मानेन दन्काष्ट्रमिहोच्यते । प्रादेशमात्रमदन्तान्थवा तेन विशोधवेतं। ।

प्रतिपत्पवेपष्ठीपु नवस्याञ्चेव सत्तमाः !। दन्तानां काष्टसंयोगाइहत्यासप्तमं कुलम् ॥१० अभावे दन्तकाष्ठानां प्रतिषिद्धदिनेषु च। अपां द्वादशगण्डुषैर्मुखशुद्धिं समाचरेत् ॥११ स्नात्वा मन्त्रवदाचम्य पुनराचमनं चरेत्। मन्त्रवत् प्रोक्ष्य चात्मानं प्रक्षिपेदुद्काञ्जलिम् ॥१२ आदित्येन सह प्रातर्मन्देहा नाम राक्षसाः। युद्धचन्ति वरदानेन ब्रह्मणोऽब्यक्तजन्मनः ॥१३ उदकाञ्जलिनिःक्षेपा गायज्या चाभिमन्त्रिताः। निघ्नन्ति राक्षसान् सर्व्वान् मन्देहाख्यान् द्विजेरिताः॥१४ ततः प्रयाति सविता ब्राह्मणैरभिरक्षितः। मरीच्याद्येमहाभागैः सनकाद्येश्च योगिभिः ॥१४ तस्मान्न लङ्कयेत् सन्ध्यां सायं प्रातः समाहितः। उह्णक्वयति यो मोहात् स याति नरकं ध्रुवम् ॥१६ सायं मन्त्रवदाचम्य प्रोक्ष्य सूर्य्यस्य चाञ्जलिम्। दस्वा प्रदक्षिणं कुर्ग्याज्ञलं स्पृष्ट्रा विशुद्ध-चित ॥१७ ः पूर्व्यां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि । गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनात् ॥१८ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां सादिताञ्च यथाविधि । गायत्रीमभ्यसेत्तावद्यावत्तारा न पश्यति ॥१६ ततश्चावसथं प्राप्य कृत्वा होमं स्वयं बुधः। सिबन्स्य पोध्यवर्गम्य भर्णार्थं विचक्षणः ॥२०

ततः शिष्यहितार्थाय स्वाध्यायं किश्विदाचरेत्। **ईश्वरञ्चैव कार्य्यार्थमभिगच्छेदिजोत्तमः ॥**२१ कुरापुष्पेन्धनादीनि गत्वा द्रं समाहरेत्। ततो माध्याहिकं कुर्याच्छचौ देशे मनोरमे ॥२२ विधि तस्य प्रवध्यामि समासात् पापनाशनम्। कात्वा येन विधानेन मुच्यते सर्वकिल्विपात् ॥२३ स्नानार्थं मृद्मानीय शुद्धाक्षततिलैः सह । सुमनाश्च ततो गच्छेन्नदी शुद्धजलाधिकाम् ॥२४ नद्यां तु विद्यमानायां न स्नायादन्यवारिणि । न स्नायादल्पतोयेषु विद्यमाने बहुद्के ॥२४ सरिद्वरं नदीस्नानं प्रतिस्रोतःस्थितश्चरेत । तडागादिषु तोयेषु स्नायाच तरभावतः ॥२६ शुचिदेशं समभ्युक्ष्य स्थापयेत् सकलाम्बरम्। मृत्तोयेन स्वकं देहं लिम्पेत् प्रक्षाल्य यव्नतः ॥२७ स्नानादिकञ्च संप्राप्य कुर्य्यादाचमनं बुधः। सोऽन्तर्जलं प्रविश्याथ वाग्यतो नियमेन हि । हरिं संस्मृत्य मनसा मज्जयेश्वोरुमज्जलं ॥२८ ततस्तीरं समासाद्य आचम्यापः समन्त्रतः। प्रोक्षयेद्वारुगैर्मन्त्रैः पावमानीभिरेव च ॥२६ कुशामकृततोयेन प्रोक्ष्यात्मानं प्रयत्नतः । स्योनापुथिबीति मृदात्रे इदं विष्णुरिति द्विजाः ! ॥३०

ततो नारायणं देवं संस्मरेत् प्रतिमक्तनम् । निमज्यान्तर्जले सम्यक् क्रियते चाघमर्वणम् ॥३१ क्कात्वा क्षततिलैखद्वदेवर्पिपिष्टभिः सह । तर्पवित्वा जलं तस्मान्निष्पीड्य च समाहितः ॥३१ जरुतीरं समासाच तत्र शुक्ले च बाससी । परिधायोत्तरीयश्व कुर्यात् केशाश्र धूनयेत्।।३३ ए न रक्तमुल्वणं वासो न नीख्य प्रशस्यते। मळाक्तं गन्धदीने 🛰 वर्जयेदम्बरं बुधः ॥३४ 🛚 🟨 🕫 · यतः प्रशासनेत् पादौ मृत्तों-भ विषक्षणः। दक्षिणन्तु कर्र करवा गोकर्णाकृतिकत् पुनः ॥३५ त्रिः पिवेदीक्षितं तोयमास्यं द्विःपरिनार्क्षयेत्। पावौ शिरस्ततोऽभ्युक्य त्रिभिरास्यमुपःपुशेत्।।३६ अङ्गुष्ठानामिकाभ्याश्व चक्षुषी समुपस्युरीत् । तथैव पञ्चभिर्मूद्धिन श्रुरोदेवं समाहितः ॥३७ अनेन विधिनाचम्ब क्राह्मणः शुद्धमानसः। कुर्व्वात दर्भक्रिक्क्ष्रक्र्युक्ः प्राक्युकोऽपि बा ।।३६ प्राणायामक्कं भीमान् यथान्यानसतन्द्रतः । जपयशं ततः कुम्याद्रायत्री नेदमाक्यक् ।। 😘 📆 त्रिविधो जपयमः स्यात्तस्य तत्त्वं 🙉 वाचिकम उपासुमा मानंसूम जिपास्तिः ॥४० ं अक्राम्यासिय यशीनी बेर्छः सुरक्षित्रोत्तरः । हरि

यदुवनीकोवरितैः शब्दैः स्पष्टपदाक्षरैः। मन्त्रमुबारयन् वाचा जपयज्ञस्तु वाचिकः ॥४२ शनैरुवारयन्मन्त्रं किष्विदोष्ट्री प्रचालयेत्। किश्विच्छ्वणयोग्यः स्यात् स उपांशुर्जपः स्पृतः ॥४३ धिया पदाश्वरश्रेण्या अवर्णमपदाक्षरम् । शब्दार्वे क्तिनाभ्यान्तु तदुक्तं मानसं स्मृतम्।।४४ जपेन देवता नित्यं स्तुत्रमाना प्रसीद्ति । प्रसन्ने विपुलान् गोन्नान् प्राप्तुवन्ति मनीषिणः ॥४४ राक्षसाश्च पिशाचाश्च महासर्पाञ्च भीषणाः। जिपतम्बोपसर्पन्तिं दूरादेव प्रयान्ति है।। खुन्द भृष्यादि विज्ञाय जपेन्मन्त्रमतन्त्रितः। जपेदहरहर्जात्या गायत्री मनसा द्विजः ।१४७ सक्त्रपरमां देवी शतसंध्यां दशावराम्। गायत्री यो जपेनित्यं स न पापेन किप्यते ॥४८ अथ पुष्पाञ्जिकि इत्वा भानवे चोर्द्ध वाहुकः। उदुस्य आपेत् सूकं तबक्षुरिति चापरम् ॥४६ प्रदक्षिणमुपाष्ट्रसं नमखुर्व्यादिवाकरम्। 🤏 ततस्त्रीर्थेन देवादीनद्रिः सन्तर्पयेद्द्विजः ॥६० स्नानवसम्बु निष्पीड्य पुनराचमनं चरेत्। तद्वद्रक्तजणस्येह सानं दानं प्रकीर्तितम् ॥५१ दर्भासीमीं क्रमपाणिर्जदायज्ञविधानतः। प्राक्षको असंबर्भ तु कुर्योच्छ्रासूसमन्वितः ॥१२

ततोऽर्ध्य भानवे दद्यात्तिलपुष्पाक्षतान्वितम्। उत्थाय मूर्द्धपर्यन्तं हंसः शुचिवदित्यृचा ॥५३ ततो देवं नमस्कृत्य गृहं गच्छेत्ततः पुनः। विधिना पुरुषसूक्तस्य गत्वा विष्णुं समर्बयेत्॥५४ वैश्वदेवं ततः कुर्याद्वलिकमिविधानतः। गोदोहमात्रमाकाङ्क्षेरतिथि प्रति वै गृही ॥ १४ अदृदृष्ट्रम्बानमतिथि प्राप्तमर्चयेत्। स्वागतासनदानेन प्रत्युत्थानेन चाम्बुना ॥५६ स्वागतेनाप्रयस्तुष्टा भवन्ति गृह्मेधिनः। आसनेन तु दत्तंन प्रीतो भवति देवराट् ॥५७ पादशौचेन पितरः प्रीतिमायान्ति दुर्छभाम्। अन्नदानेन युक्तेन रुप्यते हि प्रजापतिः ॥६८ तस्मादतिथये कार्यं पूजनं गृहमेधिना। भक्तया च शक्तितो नित्यं विष्णोरर्षाद्नन्तरम् ॥४६ भिक्षाञ्च भिक्षवे दद्यात् परित्राड्ब्रह्मचारिणे। अकल्पितान्नादुद्धृत्य सन्यञ्जनसमन्विताम् ॥६० अकृते वैश्वदेवेऽपि भिक्षौ च गृहमागते। उद्घृत्य वैश्वदेवार्थं भिक्षां दत्वा विसर्जयेत् ॥६१ वैश्वदेवाकृतान् दोषाञ्छक्तो भिक्षुर्व्यपोहितुप्। नहि भिक्षुकृतान् दोषान् वैश्वदेवो व्यपोहति ॥६२ तस्मात् प्राप्ताय यतये भिक्षां दद्यान् समाहितः। विष्णुरेव यतिच्छायइति निश्चित्य भावयेत् ॥६३

सुवासिनी कुमारीश्व भोजयित्वा नगनपि। बालवृद्धांस्ततः शेपं म्वयं भुञ्जीत वा गृही ॥६४ प्राङ्मुखोदङ्मुखो वापि मौनी च मितभाषकः। अन्नमादौ नमन्त्रत्य प्रहृष्ट्रनान्तरात्मना ॥६४ एवं प्राणाहृति दुर्यान्मन्त्रेण च पृथक् पृथक् । ततः स्वादुकरान्नश्व भुञ्जीत सुसमाहितः ॥६६ आचम्य देवतामिष्टां संम्मरमृद्रं खुशेत्। इतिहासपुराणाभ्यां कश्वित कालं नयेद्वुधः ॥६७ ततः सन्ध्यामुपासीत वहिर्गत्वा विधानतः। कृतहोमरतु भुञ्जीत रात्रौ चातिथिभोजनम् ॥६८ सायं प्रातर्द्विजातीनामशनं श्रुतिचोदितम् । नान्तराभोजनं कुर्याद्प्रिहोत्रसमो विधिः ॥६६ शिष्यानध्यापयेश्वापि अनध्याये विसर्जयेत्। स्मृत्युक्तानिबलांश्चापि पुराणोक्तानिप द्विजः॥७० महानवम्यां द्वादृश्यां भरण्यामपि पर्वसु । तथाक्षयतृतीयायां शिष्यान्नाध्यापयेद्द्विजः॥७१ माघमासे तु सप्तम्यां रथ्याच्यायां तु वर्जयेत्। अध्यापनं समभ्यञ्जन् स्नानकाले च वर्जयेत्।।७२ नीयमानं शवं दृष्ट्रा महीस्थं वा द्विजोत्तमाः। न पठेद्रुद्तिं श्रुत्वा सन्ध्यायां तु हिजोत्तमः ॥७३ दानानि च प्रदेयानि गृहस्थेन द्विजोत्तमाः। हिरण्यदानं गोदानं पृथिवीदानमेव च ॥७४

एवं धर्मो गृहस्थस्य सायंभूत उदाहृतः ।
य एवं श्रद्धया कुर्यात् स याति ब्रह्मणः पदम् ॥७५
इतनोत्कर्षश्च तस्य स्यान्नारसिंहप्रसादतः ।
तस्मान्मुक्तिमवाग्नोति ब्राह्मणो द्विजसत्तमाः ! ॥७६
एवं हि विप्राः ! कथितो मया वः समासतः शाश्वतधर्मराशिः ।
गृही गृहस्थस्य सतो हि धर्मं कुर्वन् प्रयक्षाद्धरिमेति युक्तम् ॥७७
इति हारीते धर्मशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः ।

॥ पश्चमोऽध्यायः ॥ अथ वानप्रस्थाश्रमधर्मवर्णनम्।

अतः परं प्रवक्ष्यामि वानप्रश्वस्य सत्तमाः !।
धर्माश्रमं महाभागाः ! कथ्यमानं निवोधत ॥१
गृहस्थः पुत्रपौत्र।दीन् दृष्ट्वा पिलतमात्मनः ।
भाग्यां पुत्रेषु निःक्षित्य सह वा प्रविशेद्धनम् ॥२
निक्षामाणि च तथा सितगात्रत्वगादि च ।
धारयन् जुहुयादि वनस्यो विधिमाश्रितः ॥३
धान्येश्च वनसंभूतेनीवाराचैरनिन्दितः ।
शाकम्लफ्लेर्वापि कुर्याक्तितं प्रयन्नतः ॥४
त्रिकालक्षानयुक्तस्तु कुर्याचीत्रं तपस्तदा ।
पश्चान्ते वा समश्नीयान्मासान्ते वा स्वपक्रमुक् ॥१

तथा चतुर्थकाले तु भुझीयादष्टमेऽथवा ।

षष्ठे च कालेऽप्यथवा वायुभक्षोऽथवा भवेत् ॥६

घर्मे पञ्चाप्रिमध्यस्यस्तथा वर्षे निराश्रयः ।

हेमन्ते च जले स्थित्वा नयेत् कालं तपश्चरन् ॥७

एवञ्च कुर्वता येन कृतबुद्धिर्यथाक्रमम् ।

अग्निं स्वात्मनि कृत्वा तु प्रव्रजेदुत्तरां दिशम् ॥८

आदेहपातं वनगो मौनमास्थाय तापसः ।

स्मरन्नतीन्द्रयं ब्रह्म ब्रह्मलोके महीयते ॥६

तपो हि यः सेवति वन्यवासः समाधियुक्तः प्रयतान्तरात्मा ।

विश्वक्तपापो विमलः प्रशान्तः स याति दिव्यं पुरुषं पुराणम् ॥१०

इति हारीते धर्मशास्त्रे पञ्चमोऽध्यायः।

॥ षष्ठोऽध्यायः ॥

अश्व सन्न्यासाश्रमधर्मवर्णनम् ।
अतः परं प्रवक्ष्यामि चतुर्थाश्रममुत्तमम् ।
श्रद्धया तद्नुष्ठाय तिष्ठन्मुच्येत बन्धनात् ॥१
एवं वनाश्रमे तिष्ठन् पातयंश्चेव किल्विषम् ।
चतुर्थमाश्रमं गच्छेत् संन्यासविधिना द्विजः ॥२
दत्त्वा पिरुभ्यो देवेभ्यो मानुषभ्यश्च यक्षतः ।
दत्वा श्राद्धं पिरुभ्यश्च मानुषभ्य स्तथासनः ॥३

इप्टिं वैश्वानरीं कृत्वा प्राङ् मुखोदङ् मुखोऽपि वा । अप्नि स्वात्मनि संरोप्य मन्त्रवित प्रव्रजेत् पुनः ॥४ ततः प्रभृति पुत्रादौ स्नेहालापादि वर्जयेत्। बन्धूनामभयं दद्यात् सर्वभूताभयं तथा ॥५ त्रिदण्डं वेणवं सम्यक् सन्ततं समपर्वकम्। वेष्टितं कृष्णगोवालरष्ज्जमचतुरङ्गुरुम् ॥६ शौचार्थं मानसार्थञ्च मुनिभिः समुदाहृतप् । कौपीनाच्छादनं वासः कन्थां शीतनिवारिणीम् ॥७ पादुके चापि गृह्वीयात् कुर्यान्नान्यस्य संप्रहम्। एतानि तस्य लिङ्गानि यतेः प्रोक्तानि सर्वदा ॥८ संगृह्य कृतसंन्यासो गत्वा तीर्थमनुत्तमम्। स्नात्वाचम्य च विधिवद्वस्नपूतेन वारिणा ॥६ तप्यित्वा तु देवांश्च मन्त्रवद्गास्करं नमेत्। आत्मनः प्राङ्मुखो मौनी प्राणायामत्रयं चरेत् ॥१० गायत्रीश्व यथाशक्ति जप्त्वा ध्यायेत् परंपदम्। स्थित्यर्थमात्मनो नित्यं भिक्षाटनमथाचरेत् ॥११ सायंकाले तु विप्राणां गृहाण्यभ्यवपद्य तु। सम्यक् याचेच कवलं दक्षिणेन करेण वै ॥१२ पात्रं वामकरे स्थाप्य दक्षिणेन तु शेषयेत्। यावतान्नेन तृप्तिः स्यात्तावद्गेश्चं समाचरेत् ॥१३ ततो निवृत्य तत्पात्रं संस्थाप्यान्यत्र संयमी। चतुर्भिरङ्गुलेखाद्य प्रासमात्रं समाहितः ॥१४

सर्वव्यक्षनसंयुक्तं पृथक् पात्रं नियोजयेन्। सूर्यादिभूतदेवेभ्यो दःवा संप्रोक्ष्य वारिणा ॥१५ भु**ञ्जीत पात्र**पुटके पात्रे वावभ्यतो यतिः। वटकाश्वत्थपर्णेषु कुम्भीतैन्दुकपात्रके ॥१६ कोविदारकदम्बेषु न भुञ्जीयात् कदाचन। मलाक्ताः सर्व उच्यन्ते यतयः कांस्यभोजिनः ॥१७ कांत्यभाण्डेषु यत् पाको गृहस्थान्य तथैव च। कांस्ये भोजयतः सर्वं किल्विषं प्राप्तुयात्तयोः ॥१८ भुत्तवा पात्रे यतिर्नित्यं क्षालयेन्मन्त्रपूर्वकम् । न दूष्यते च तत्पात्रं यज्ञेषु चमसा इव ॥१६ अथाचम्य निद्धियास्य उपतिष्ठेत भास्करम्। जपध्यानेतिहासैश्च दिनशेषं नयेद्वुधः।।२० इतसम्ध्यस्ततो रात्रिं नयेहेवगृहादिषु । इत्युण्डरीकनिलये ध्यायेदात्मानमव्ययम् ॥२१ यदि धर्मरतिः शान्तः सर्वभूतसमो वशी। प्राप्नोति परमं स्थानं यत्प्राप्य न निवर्तते ॥२२ त्रिदण्डभृद्योहि पृथक् समाचरेच्छनैः शनैर्यस्तु वहिर्मुखाधः।

संमुच्य संसारसमस्तबन्धनात् स याति विष्णोग्मृतात्मनः पद्म् ॥२३

इति हारीते धर्मशास्त्र षष्ठोऽध्यायः।

सप्तमोऽध्यायः ॥
 अथ योगवर्णनमः।

वर्णानामाश्रमाणांश्व कथितं धर्मलक्षणम् । **येन स्वर्गापवर्गञ्च प्राप्तुबन्ति** द्विजातयः ॥१ योगशासं प्रवक्ष्यामि सङ्क्षेपात् सारमुत्तमम्। यस्य च श्रवणाचान्ति मोक्षञ्चेव मुमुश्रवः ॥२ बोगाभ्यासबस्नेव नश्येयुः पातकानि तु । क्रमाचोमंपरो भूत्वा ध्यायेनित्यं क्रियापरः ॥३ प्राणायामेन वचनं प्रत्याहारेण चेन्द्रियम्। भारणाभिवेशे कृत्वा पूर्वे दुर्धवणं मनः ॥४ काकारमना मन्दं बुधैरुपमलामयम्। सहमात् सहमतरं ध्यायेत् जगदाधारमुख्यते ॥४ अप्रत्मानं वहिरत्तस्यं शुद्धचामीकरप्रभम्। रहत्येकान्तमासीनो ध्यायेदामरणान्तिकम् ॥६ यत्सर्वप्राणि हृद्यं सर्वेषाश्व हृदिस्वतम्। या सर्वेजनक्षेयं सोऽइमस्मीति चिन्तयेत्।।७ आत्मलाभसुलं बाबचपोध्यानमुद्दीरितम्। श्रुतिसमृत्यादिकं धर्मं तद्विरुद्धं न चाचरेत्।।८ यथा रथोऽरवहीनस्तु यथारवो रथिहीनकः। एवं तपश्च विद्या च संयुतं भैषजं भवेत् ॥६

यथानं मधुसंयुक्तम् मधुवान्नेन संयुतम्। जभाभ्यामपि पक्षाभ्यां यथा खे पक्षिणां गतिः ॥१० तथैव ज्ञानकमभ्यां प्राप्यते ब्रह्म शाश्वतम । विद्यातपोभ्यां संपन्नो ब्राह्मणो योगतत्परः ॥११ देहद्वयं विहायाशु मुक्तो भवति बन्धनात्। न तथा श्रीणदेहस्य विनाशो विद्यते कचित् ॥१२ मया ते कथितः सर्व्वो वर्णाश्रमविभागशः। संक्षेपेण द्विजश्रेष्ठा ! धर्मस्तेषां सनातनः ॥१३ श्रुत्वैवं मुनयो धर्मं स्वर्गमोक्षफलप्रदम् । प्रणम्य तमृषि जग्मुर्मृदिताः स्वं स्वमाश्रमम् ॥१४ धर्मशास्त्रमिदं सर्वे हारीतमुखनिःसृतम्। अधील दुरुते धर्म स याति परमां गतिम् ॥१४ ब्राह्मणस्य तु यत् कर्म कथितं वाहुजस्य च। ऊरुजस्यापि यन कर्म्म कथितं पादजस्य च । अन्यथा वर्तमानस्तु सद्यः पतित जातितः ॥१६ यो यस्याभिहितो धर्मः स तु तस्य तथैव च। तस्मात् स्वधर्मं कुर्ज्ञीत द्विजो नित्यमनापदि ॥१७ वर्णाश्चत्वारो राजेन्द्र । चत्वारश्चापि चाश्रमाः । स्वधमें ये तु तिष्ठन्ति ते यान्ति परमां गतिम् ॥१८ स्वधर्मेण यथा नृणां नारसिंहः प्रसीद्ति । न तुष्यति तथान्येन कर्मणा मधुसुदनः ॥१६

अतः कुर्वन्निजं कर्म्म यथाकालमतन्द्रितः । सहस्रानीकदेवेशं नारसिंहश्व सालयम् ॥२० उत्पन्नवैराग्यवज्ञेन योगो ध्यायेत्परं न्रह्म सदा क्रियावान् । सत्यं सुखं रूपमनन्तमाणं विहाय देहं पर्मेति विष्णोः ॥२१

इति छन्नहारीते धर्मशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।

इति लघुहारीतस्मृतिः समाप्ता ।

ॐ तत्सत् ।

॥ अथ ॥ वृद्धहारीतस्मृतिः ।

श्रीगगेशायनमः ।

।। प्रथमोऽध्यायः ॥

अथ पश्चसंस्कारप्रतिपादनवर्णनम् । अम्बरीषस्तु तं गत्वा हारीतस्याश्रमं नृपः । ववन्दे तं महात्मानं बालार्कसहराप्रमम् ॥१ संपृष्टः कुरालस्तेन पूजितः परमासने । उपविष्ट स्तुजो विष्रमुवाच नृपनन्दनः ॥२ मगत्रन् ! सर्वधम्भक्ष ! तत्त्रवेदविद्याम्बरः ! । पुच्छामि त्वा महामाग ! परमं धर्ममम्बयम् ॥३ मूहि वर्णाश्रमाणान्तु नित्यनैमित्तिकक्रियाः। कर्तव्या मुनिशाद्दूर् छ ! नारीणाश्व नृपस्य च ॥४ स्वरूपं जीवपरयोः कथं मोक्षपथस्य च । तत्प्राप्ते साधनं ब्रह्मन ! वक्तुमहिस सुब्रत !॥४ एवमुक्तस्तु विप्रविस्तेन राजर्षिणा तदा । जवाच परमप्रीत्या नमरक्तुत्र जनार्द्नम्॥६

हारीन उवाच। शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि सर्वं वेदोपवृंहितम् । यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं पृच्छतो मम भूपते ।।।७ तद्त्रवीमि परं धमं श्रुणुष्वैकाम्रमानसः। सर्वेषामेव देवाना मनादिः पुरुषोत्तमः ॥८ ईश्वरस्तु स एवान्ये जगतो विभुरव्ययः। नारायणो वासुदेवो विष्णुर्त्रह्मात्मनो हरि: ॥६ स्रष्टा धाता विधाता च स एव परमेश्वरः। हिरण्यगर्भः सविता गुणधृक् निर्गृणोऽन्ययः॥१० परमात्मा परं ब्रह्म परं ज्योतिः परात्परः। इन्द्रः प्रजापतिः सूर्यः शिवो वह्नः सनातनः ॥११ सर्वात्मकः सर्वसुहृत् सर्वभृदुभूतभावनः। यमी च भगवान् कृष्णो मुकुन्दोऽनन्त एव च ॥१२ यज्ञो यज्ञपतिर्यज्ञा ब्रह्मण्यो ब्रह्मणः पतिः। स एव पुण्डरीकाश्रः श्रीशो नाथोऽधिपो महान्।।१३ सहस्रमूर्द्धा विश्वात्मा सहस्रकरपादवान्। यद्गत्वा न विवर्तन्ते तद्धाम परमं हरे: ॥१४

चतुर्भिः शोभनोपायैः साध्योऽयं सुमहात्मनः। त्ररीयपदयोर्भक्तया सुसिद्धोऽय मुदाहृतः ॥१४ त स्वीकुर्वन्ति विद्वांसः स्वस्वरूपतया सदा। नैसर्गिकं हि सवपां दास्यमेव हरेः सदा ॥१६ स्वाम्यं परस्वरूपं स्याहास्यं जीवम्य सर्वदा । प्रकृत्या त्वात्मनो रूपं स्वाम्यं दास्यमिति स्थितिः ॥१७ दास्यमेव परं धर्मं दास्यमेव परं हितम्। दास्येनैव भवेन्युक्तिरम्यथा निरयं भवेत्।।१८ विष्णोदस्यं परा भक्तिर्पषां तु न भवेत् कचित् । तेषामेव हि संसृष्टं निरयं ब्रह्मणा नृप । ॥१६ नारायणस्य दासा ये न भवन्ति नराधमाः। जीवन्त एव चाण्डाला भविष्यन्ति न संशयः॥२० तस्माद्दास्यं परां भक्तिमालम्ब्य नृपसत्तम ।। नित्यं नेमित्तिकं सुबं कुर्यात्त्रीत्ये हरेः सदा ॥२१ तस्य स्वरूपं रूपञ्च गुणांश्चापि विभूतयः। ज्ञात्वा समर्चयेद्विष्णुं यावज्जोव मतन्द्रितः ॥२४ तमेव मनसा ध्यायेद्वाचा सङ्कीर्तयेत्प्रभुप्। जपेच जुहुयाद्भक्तो तहानेकविलक्षणः ॥२३ राङ्कचक्रोर्ध्व पुण्डादिधारणं दास्यलक्षणम्। तन्नामकरणञ्चेव वैष्णवन्तदिहोच्यते ॥२४ अवैष्णवाश्च ये बिप्रा हषेदास्ते नराधमाः। तेषां त नरके वासः कल्पकोटिशतैरपि ॥२४

तदादि वर्षस्थारी मन्त्ररत्नार्धतत्ववित् । वैष्णवः स जगत्पृष्ठयो याति विष्णोः परं पद्म ।२५ अचक्रधारी यो विप्रो बहुवेदश्रुतोऽपि वा। स जीवन्नेव चण्डालो मृतो निरयमाप्नुयात् ॥२६ तस्मात्ते हरिसंस्काराः कर्त्तव्या धर्मकाह्मिणाम्। अयमेव परं धर्माः प्रधानं सर्वकर्माणाम् ॥२७ इति वृद्धहारीतस्मृत्यां विशिष्टधामशास्त्रे पञ्चसंस्कार-प्रतिपादनं नाम प्रथमोऽध्यायः।

।। द्वितीयोऽध्यायः ॥

अथ पुण्डसंस्कारवर्णनम् ।

अम्बरीष उवाच।

भगवन् ! वैष्णावाः पञ्च संस्काराः सर्व्यकर्मणाम् । प्रधानमिति यचोक्तं सर्वे रेव महर्पिभिः॥१ तद्विधानं ममाचक्ष्व विस्तरेणैव सुव्रत ।।

हारीत उवाच।

श्रुण राजन् । प्रवक्ष्यामि निर्मला वैष्णवाः क्रियाः ॥२ यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वं वसिष्ठास्त्रेश्च वेष्णवेः।

संस्काराणां तु सर्वेषा माद्यं चक्रादिधारणम्।।३ तत् कर्तव्यं हि सर्वेषां विधीनां वै द्विजन्मनाम्। आचार्यं संश्रयेत् पूर्वमनघं वेष्णवं द्विजम् ॥४ शुद्धसत्वगुणोपेतं नवेज्याकर्मकारणम् । सत्सम्प्रदायसंयुक्तं मन्त्ररत्नार्थकोविदम् ॥५ ज्ञानवैराग्यसपन्नं वेद्वेदाङ्गपार्गम् । शासितारं सदाचार्येः सर्वधर्मविदावरम् ॥६ महाभागवतं विप्रं सदाचारनिषेवणम्। आलोक्य सर्वशास्त्राणि पुराणानि च वेष्णवाः ॥७ तद्र्थमाचरेद्यस्तु स आचार्य उदाहृतः। आस्तीक्यमानमं सद्भिकोतं धर्मवरसलम् ॥८ श्रह्धानं सदाचारं गुरुशुश्रूपतत्परम् । सम्वत्सरं प्ररीक्ष्यार्थे तं शिष्यं शासयेद्गुरुः ॥ ६ तस्याऽऽदौ पञ्च संम्कारान् कुर्यात् सम्यग्विधानतः । <mark>प्रातः स्ना</mark>त्वा शुचौ देशे पूजियत्वा जनार्दनम् ॥१० स्नातं शिष्यं समानीय तेनेव सर् देशिकः। स्नाप्य पञ्चामृतेर्गव्येश्वकादीनर्श्वयेत्ततः ॥११ पुष्पेर्धेपेश्च दीपेश्च नैत्रेद्येर्विविधेरपि। तत्तत्त्रकाशकैर्मन्त्रेरर्चयेत् पुरतो हरेः ॥१२ अग्रीहोमं प्रकुर्ज्ञीत इष्माधानादिपूर्वकम् । पौरुनेण तु सुक्तेन पायसं घृतमिश्रितम् ॥१३

आज्येन मूलमन्त्रण हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम्। बैष्णच्या चेव गायच्या जुहुयात् प्रयतो गुरु. ॥१४ पश्चादग्रौ विनिक्षिप्य चक्राद्यायुधपञ्चकम्। पुजयित्वा सह्चारं ध्यात्वा तद्वह्निमण्डले ॥१४ षडक्षरेण जुहुयादाज्यं विशतिसंख्यया। सर्वेश्च हेतिमन्त्रेश्च एकंकाङ्याहुति कमान्।।१६ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा स शिष्यो वह्निमात्मवान्। नमस्द्वत्या ततो विष्णुं जग्त्वा मन्त्रवरं शुभम् ॥१७ प्राड्मुखं तु समासीनं शिग्यमेकाप्रचेतसम्। प्रतपेचकशह्वी द्वी हेतिभिर्मन्त्रमुवरन् ॥१८ दक्षिगे तु भुजे चक्रं वामांशे शङ्कमेव च। गदां च भासमध्ये तु हृद्ये नन्दकं तदा ॥१६ मस्तके तु तथा शाङ्ग मङ्कयेद्विमलं तटा। पश्चात् प्रक्षाल्य तोयेन पुनः पूत्रां समाचरेत्॥२० होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः। प्वं तापः क्रियाः कार्याः वेष्णत्र्यः कल्मपापहाः ॥२१ प्रधानं वैष्णवं तेषां तापसंस्कारमुत्तमम्। तापसंस्कारमात्रेण परां सिद्धिमवाष्त्रयात् । २२ केचित्तु चक्रर ङ्क्षौ ही प्रतप्रौ बाहुमूलयोः। धारयन्ति महाभानश्रक्रमेकं तु चापरे ॥२३ वैष्णवानां तु हेतीनां प्रवानं चक्रमुच्यते । तेनैव बाहुमूले तु प्रतातेनाङ्कयेदुवृधः ॥२४

### वृद्धहारीतस्मृतिः।

जात पुत्रे पिता स्नात्वा होमं कृत्वा विधानतः। तेनाप्निनैव सन्तप्तचक्रेण भुजमूलयोः ॥२४ अङ्कयित्वा शिशोः पश्चान्नाम कुर्याच वैष्णवम् । पश्चात्सर्वाणि कर्माणि कुर्वीतास्य विधानतः ॥२६ अङ्कयित्वा स (न) चक्रेण यत्कि चित्कर्म सभ्वरेत्। तस्सर्वं याति वैकल्यमिष्टापूर्तादिकं नृप ! ॥२७ कारयेन्मन्त्रदीक्षायां चक्राद्याः पञ्च हेतयः। चकं वे कर्मसिध्यर्थं जातकर्मणि धारयेत् ॥२८ अचक्रधारी विप्रस्तु सर्वकर्मसु गर्हितः। अवैष्णवः समापन्नो नरकं चाधिगच्छति ॥२६ चकादिचिह्नरहितं प्राकृतं कलुषान्वितम्। अवैष्णवस्तु तं दृरात् श्वपाकमिव सन्त्यजेत् ॥३० अवैष्णवस्तु यो विप्रः श्वपाकाद्धमः स्मृतः । अश्राद्धे यो ह्यपाङ्क्तेयो रौरवं नरकं ब्रजेत् ॥३१ अवैष्णवस्तु यो विप्रः सर्वधर्मयुतोऽपिवा । गवां (स पाषण्डेति) षण्डति विज्ञेयः सर्वकर्मसु नाईति ॥३२ तस्माचक्रं विधानेन तप्तं वै धारयेदृद्विजः। सर्वाश्रमेषु वसतां स्त्रीणां च श्रुतिचोदनात् ॥३३ अनायुधासो असुरा अदेवा इति वै श्रुतिः। चक्रेण तामपवप इत्यृचा समुदाहृतम् ॥३४ अपेत्थमङ्कमित्युक्तं वपेति श्रवणं तदा। तस्माद्वे तप्तचक्रस्य चाङ्कनं मुनिभिः श्रुतम्। पवित्रं विततं बाह्यं प्रभोगात्रे तु धारितम् ॥३४

श्रुत्यैव चाङ्क्रयेद्गात्रे तद्बह्मसमवाप्तये । यत्ते पवित्रमर्बिष्यमग्ने वीततमन्तरा ॥३६ ब्रह्मेति निहितन्नेव ब्रह्मणो श्रुतिवृंहितम्। पवित्रमिति चैवाग्निरप्निवें चक्रमुच्यते ॥३७ अग्निरेव सहस्रारः सहस्रा नेमिरुच्यते। नेमितप्ततनुः सूर्यो ब्रह्मणा समतां व्रजन् ॥३८ यत्ते पवित्रमर्चिष्यमग्नेस्तु न सुनिहितः। दक्षिणं तु भुजे विप्रो विभृयाद्वै सुदर्शनम् ॥३६ सव्ये तु शङ्कं विभृयादिति ब्रह्मविदो विदुः। इत्यादिश्रुतिभिः प्रोक्तं विष्णोश्चक्रस्य धारणम् ॥४० पुराणेष्टिवतिहासेषु सात्विकेषु स्पृतिष्वपि । शङ्खचकोर्द्ध पुण्डादिरहितं ब्राह्मणं नृप ! ॥४१ यः श्राद्धे भोजयेद्विपः पितृणां तस्य दुर्गतिः। शङ्कचकोर्ध्व पुण्डादिचिह्नै: प्रियतमैर्हरे: ॥४२ रहितः सर्वधर्मेभ्यश्च्युतो नरकमाग्नुयात्। मद्रार्चनं त्रिपुण्डस्य धारणं यत्र दृश्यते ॥४३ तच्छ्द्राणां विधिः प्रोक्तो न द्विजानां कदाचन । प्रतिलोमानुलोमानां दुर्गागणसुभैरवाः ॥४४ पूजनीया यथाईण विल्वचन्द्रन्यारिणम् । यक्षराक्षसभूतानि विद्याधरगणस्तदा ॥४५ चण्डालानामर्चनीया मद्यमांसनिषेवणाम् । म्ववर्णविहितं धर्ममेवं ज्ञात्वा समाचरेत ॥४६

रुद्रार्चनाद्त्राद्याणस्तु शूर्रण समतां व्रजेत्। यक्षभूतार्चनात् सद्यक्षण्डालस्त्रमवाप्नुयात् ॥४७ न भस्म धारयेद्विप्रः परमापद्गतोऽपि वा। मोहाद्वै विभृयाद्यातु समुरापो भदेद्ध्रुवम् ॥४८ तिर्यक् पुण्डधरं विप्रं पट्टाम्बरधरं तथा। श्वपाक इव वीक्षेत न सम्भाषेत कुत्रचित्। तस्माद्द्विजातिभिर्घार्य्यं मूर्द्धं पुण्ड्रं विधानतः ॥४६ मृदा शुत्रेण सततं सान्तरालं मनोहरम। स्नात्वा शुद्धे ऽपि पूर्वाह्वे विष्णुमभ्यच्ये देशिकः ॥५० स्नातं शिष्यं समाहूय होमं कुर्वीत पूर्ववत्। परोमात्रेति सूक्तंन पायसं मधुमिश्रितत् ॥५१ हृत्वोऽथमूलमन्त्रेण शतमष्टोत्तरं घृतम्। स्थण्डिले तु तत पश्चान्मण्डलानि यहा क्रमात् ॥ ४२ दीक्ष्यष्टमध्ये चत्वारि विन्यसेन पुरतो हरेः। विलिखंत्तत्र पुण्डादि विस्तारायामभेदतः ॥५३ ते वर्षयेत्रतो धामान् केशवादीननुक्रमात्। तत्र तत्र च तन्मूर्ति ध्यात्वा म त्रैः समईयेत्।।५४ गन्धपुषादि सक्छं मन्त्रैणैवार्चयेर्गुरुत । प्रदक्षिण मनुबन्य स शिष्यः प्रणमेत्तथा ॥१४ तद्वाही निक्षिपेच्छिष्यः केशवादीननुक्रमात्। हृदि विन्यस्य पुण्डाणि गुरूक्तानि स वैष्णवः ॥६६

शुभ्रेणेव मृदा पश्चाद्विमृयात् सुसमाहितः। त्रिसन्ध्यासु मृहा विप्रो यागकाले विशेषतः॥५७ श्राद्धे दाने तथा होमें स्वाध्याये पितृतर्पणे। श्रद्धालुरूर्द्रु पुण्ड्राणि विभृयाद्द्विजसत्तमः ॥५८ श्राद्धो होमत्तथा दानं स्वाध्यायः पितृतर्पणम् । मस्मीमवति तत्सर्वमूर्ध्वपुग्ड्म्विना कृतम् ॥५६ कर्ष्त्रपुण्ड़ं विना यस्तु श्राद्धं कुर्व्वीत स द्विजः। सव तद्राक्षसैनीतं नरकं चाधिगच्छति ॥६० कर्ष्वपुग्डविहीनन्तु यः श्राद्धे भोजयेद्द्विजम्। अश्नन्ति पितरस्तस्य विष्मूत्रं नात्र संशयः ॥६१ तस्मात्त् सततं धःर्यपृष्वं गुण्डं द्विजन्मना । धारयेन्न तिर्यक् पुण्डमापद्यपि कदाचन ॥६२ तिर्यक्रुण्ड्यरं विप्रं चण्डालमिव सन्त्यजेन्। सोऽनईः सर्वऋत्येषु सर्वछोकेरु गहितः ॥६३ कर्ध्वपुण्डविहीनः सन् सन्ध्याकर्मम समाचरेत्। सर्वे तद्राश्वसेनीतं नरकञ्च स गच्छति ॥६४ यदि स्यात्तु मनुष्याणा मूर्व्वनुण्डविवर्जितम्। द्रुप्रत्यन्न ततिकञ्चित् श्मशानमित्र तद्वोत् ॥६५ कर्ष्वपुग्ड्रं मृहा शुत्रं ललाटे यस्य दृश्यते । चण्डालोऽपि हि शुद्धात्मा विष्णु होके महीयते ॥६६ अर्ध्वपुण्ड्स्य मध्ये तु ललाटे सुमनोहरे । स्वक्रम्या सह समासीनो रमते तत्र वे हरिः ॥६७

निरन्तरालं यः कुर्यादृर्ध्वपुण्डं द्विजाधमः। स हि तत्र स्थितं विष्गुं श्रियञ्चेव व्यपोहति ॥६८ अथेदमूर्ध्वपुण्डून्तु यः करोति द्विजाधमः । कहपकोटिसहस्राणि रौरवं नरकं ब्रजेत् ॥६६ तस्माद्रागान्वितं पुण्डन्धरेद्विष्णुपदाकृति । ललाटादिपु चाङ्गेपु सर्व्वकर्मसु वंष्णवः॥७० नासिकामूलमारभ्य ललाटान्तेषु विन्यसेत्। अङ्गुङ्खयमात्रन्तु मध्यच्छिद्रं प्रकल्पयेत् ॥७१ पार्श्वे चाङ्कुरुमात्रन्तु विन्यसेद्दिजसत्तमः। पुण्डाणामन्तराले तु हारिद्रां धारयेन्छ्यम् ॥७२ **छ**लाटे पृष्ठयोः कण्ठे भुजयोकभयोरपि । चतुरङ्गुङमात्रन्तु विभृयादायकं द्विजः ॥७३ उरस्यष्टाङ्कुलं धार्यं भुजयोरायतं तदा । उदरे पार्श्वयान्नित्यमायतन्तु दशाङ्गुरुम्।।७४ केशवादि नमोऽन्तेश्च प्रणवादौरनुक्रमात्। ललाट केशवं रूपं कुक्षौ नारायणं न्यसेत्।।७४ वक्षः स्थले माधवञ्च गोविन्दं कण्ठदेशतः। विष्णुश्व दक्षिणे पार्श्वे वाह्नोश्च मधुसूदनम् ॥७६ त्रिविक्रमन्तु वामांसे वामनं वामपार्श्वतः। श्रीधरं वामवाहों तु हृषीकेशं तदा भुजे ॥७७ पृष्ठे च पद्मनाभन्तु मीवे दामोद्रं तदा । तत्प्रक्षालनतोयेन वासुदेवेति मूर्घनि ॥७८

केशवस्तु सुवर्णाभः शङ्कचक्रगदाधरः। श्रक्षाम्बरधरः सौम्यो मुक्ताभरणभूपितः ॥७६ नारायणो घनश्यामः शङ्खचकगदासिभृत्। पीतवासा मणिमयैर्भृषणैरूपशोभितः ॥८० माधवश्चोत्पलप्रस्यश्चकशार्ङ्गगदासिभृत् । चित्रमाल्याम्बरधरः पुण्डरीकनिभेक्षणः ॥८१ गोविन्दः शशिवर्णः स्यात्पद्मशङ्खगदासिभृत रक्तारविन्द्पादाब्ज स्तप्तकाञ्चनभूपणः ॥८२ गौरवर्णो भवेद्विष्णुश्चकशङ्कहलासिभृत्। क्षौमाम्बरधरः स्रग्वी केयूराङ्गदभूषितः ॥८३ अरविन्दनिभः श्रीमान् मधुजित्कमलान(स)नः । चक्रं शार्ङ्गञ्च मुसलं पद्मं दोभिविभर्त्यसौ ॥८४ त्रिविक्रमो रक्तवर्णः शङ्कचक्रगदासिभृत । किरीट<mark>हारकेयूरकुण</mark>्डलैश्च विराजितः ॥८५ वामनः कुन्दवर्णः स्यात् पुण्डरीकायतेक्षणः । दोभिवेष्रं गदां चक्रं पद्मं हैमं विभर्त्यसौ ॥८६ श्रीधरः पुण्डरीकाख्य श्रक्रशाङ्कीं च पद्मधृक्। रक्तारविन्दनयनो मुक्तादामविभूषितः ॥८७ विद्युद्वर्णा हृषीकेशश्चकशार्ङ्गहलासिभृत्। रक्तमाल्याम्बरधरः पुग्डरीकावतंसकः ॥८८ इन्द्रनीलनिभश्रकशङ्खपद्मगदाधरः। पद्मनाभः पीत्तवासा श्चित्रमाल्यानुलेपनः। दामोदरः सावभौमः पद्मशाङ्गीसशङ्ख्युत् ॥८६

पीतत्रासा विशालाक्षो नानारत्नविभूषितः।
एवं पुण्ड्राणि सततं धारयेद्वेष्णशोत्तमः।।६०
पुण्ड्रसंस्कार इस्येवं शिष्येणापि च कारयेत्।
मन्त्रशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्ततः।।६१

इति पुण्डूसंस्कारो द्वितीयः।

अथ वैष्णवानांनामसंस्कारवर्णनम्।

वृतीयं नाम संस्कारं कुर्व्वीत शुभवासरे ॥६२ स्नात्वा संपूज्य देवेशं गन्धपुष्पादिभिगुंहन्। नामाधिदैवतं पश्चात् पूजयेत् प्रयत्तात्मवान् ॥६३ द्वाद्रशैव तु मासास्तु केशवाचैरिषष्ठिताः। आरभ्य मार्गशीर्षं तु यदा संख्या द्विज<del>ोत्त</del>मः ॥६४ यस्मिन्मासि भवेदीक्षा तन्मूर्त्तेर्नाम चोदितम्। नृसिंहरामकुष्गाख्यं दासनाम प्रकल्पयेत् ॥६४ शक्त्या दशावताराणां वर्जयेशाम वैष्णवः। नामद्द्यात्प्रयत्नेन वैष्णवं पापनाशनम् ॥६६ यस्य वै वैष्णवं नाम नास्ति चेत् द्विजन्मनः। अनामिकः स विज्ञेयः सर्वकर्मसु गर्हितः ॥६७ चक्रस्य धारणं यस्य जातकर्मणि सम्भवेत्। तत्र वै मासनामापि दद्याद्विप्रो विधानतः। ध्यात्वा समर्बयेनाममृति मन्त्रेण देशिकः ॥६८

धूपं दीपभा नैवेद्यं ताम्ब्रलभा समर्पयेत्। प्रदक्षिण मन्त्रक्य भक्तया सन्यक् प्रणन्य च ॥६६ तन्मत्रं मूलमन्त्रं वा जपेत्साहस्रसङ्ख्यया। पश्चाद्धोमं प्रकृवीत शतमष्टोत्तरं हविः ॥१०० वैष्णवेरनुवाकेश्च जुड्यात् सर्पिषा तदा । नाम द्यात् ततः शिष्यं मन्त्रतोये समाप्ञुतम् ॥१०१ ततः पुष्पाञ्जलि दत्वा होमरोषं समापयेत्। वैष्णवान् भोजयेराश्चाहक्षिणाद्यैत्र तोषयेत् ॥१०२ एवं हि नामसंस्कारं कुरोत द्विजसत्तमः। गुणयोगेन चान्यानि विष्णोर्नामानि छौकिके ॥१०३ विशिटं वैध्यवं नाम सर्वकर्मेष्ठ चोदितम्। हरेः परं पितुर्जाम यो दशस्यपरं सुनम् ॥१०४ अतिरोचनकं दिन्यं तृतीयं श्रुतिचोदितम्। तस्माद्भगवतो नाम सर्वेषां मुनिभिः स्मृतम् ॥१०४

इति नामसंस्कार स्तृतीयः।

अथ वैष्णवानांमन्त्रसंस्कारवर्णनम्।

एवं तृतीयसंस्कारं कृत्वा वे वैदिकोत्तमः । चतुर्थमन्त्रसंस्कारं कुर्वोत द्विजसत्तमः ॥१०६ ततः (प्रातः) स्नास्वा विधानेन पूजयेत् जगतां पतिम । अष्टोत्तरसङ्कं तु मन्त्ररत्नं जपेद्गुरुः ॥१०७

स्नातं शिष्यं समाहूय सुवेषं समलङ्कृतम् । आदाय कलशं रम्यं पवित्रोदकपृरितम् ॥१०८ पञ्चत्वक्पछवयुतं पञ्चरत्नसमन्वितम् । मङ्गलद्रव्यसंयुक्तं मन्त्रेणेवाभिमन्त्रयेत् ॥१०६ सम्मार्जयेत् ततः शिष्यं तज्जहेन कुशैः शुभैः। सुक्तैश्च विष्णुदेवत्यैः पावमानैस्तदैव च ॥११० अष्टोत्तरशतं पश्चान्मन्त्ररत्नेन मार्जयेत् । अभिषिच्य ततो मूर्ष्टिन शुक्कवस्त्रधरं शुचिम् ॥१११ स्वलङ्कृतं समाचान्त मूर्ध्वपुण्डधरं तदा । पिबन्नहस्तं पद्माक्षमालया समलङ्कृतम् ॥११२ निवेश्य दक्षिणे स्वस्य आसने कुशनिर्मिते । स्वगृह्योक्तविधानेन पुरतोऽप्त्रि प्रकल्पयेत् ॥११३ पौर्राण तु सुक्तेन श्रीसूक्तंन तथैव च। मध्वाज्यमिश्रितं रम्यं पायसं जुहुयाद्गुरुः ॥११४ अष्टोत्तरशतं पश्चादाज्यं मन्त्रद्वयेन च। मूलमन्त्रंण जुहुयाश्वरुं घृतविमिश्रितम् ॥११४ केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांस्तथेव च। एकैकमाहति हत्वा होमशेषं समापयेत् ॥११६ ततः प्रदक्षिणं कृत्वा नमस्कृत्वा जनार्दनम्। आचार्यः स्वगुरुं नत्वा जपेद्गुरुपरम्पराम् ॥११७ मातरं सर्वजगतां प्रपद्यंत श्रियं ततः। त्वं माता सर्वलोकानां सर्वलोकेश्वरप्रिये । ॥११८

अपराधरातैर्जुष्टं नम स्तेन मम च्युतम्। एवं प्रपग्न लक्ष्मी तां श्रियं सद्गुरुभावत ॥११६ नित्ययुक्तं तया देव्या वात्सल्यादिगुणान्त्रितम्। शरण्यं सर्वलोकानां प्रपद्यं तं सनातनम् । नारायण ! द्यासिन्धो ! वात्सल्यगुणसागर ! ॥१२० एनं रक्ष जरुनःथ । बहुजन्मापराधिनम् । इत्याचार्येण सन्दिष्टः प्रपद्यंत जनार्दनम् ॥१२१ प्रपद्यंत ततः शिष्यो गुरुमेव द्यानिधिम्। गुरो ! त्वमेव मे देव स्त्वमेव परमागतिः ॥१२२ त्वमेव परमो धमे स्त्वमेव परमं तपः। इति प्रपन्नमाचार्यो निवेश्य पुरतो हरे: ॥१२३ प्रागप्रेषु समासीनं दर्भेषु सुसमाद्तिः। स्वाचार्यं पुरतो ध्यात्वा नमस्कृत्वाथ भक्तिम न् ॥१२४ गुरोः परम्परां जत्या हृदि ध्यास्त्रा जनार्दनम् । क्राया वीक्षितं शिष्यं दक्षिणं ज्ञानदक्षिणम् ॥१२४ निश्चिप्य इस्तं शिरसि वामं हृद्दि च विन्यसेत्। पादी गृहीत्वा शिष्यस्तु गुरोः प्रयतमानसः ॥१२६ भो ! गुरो ! ब्रुहि मन्त्रं मे ब्रुयादिति द्यानिधे !। अध्यापयेत्ततस्त में मन्त्ररत्नं शुभाद्वयम् । १२७ सन्न्यासञ्च समुद्रश्च सर्विषण्डोऽधिधैवतम्। साथेमध्यापयेच्छित्र्यं प्रयतं शरणागतम् ॥१२८ ξS

अप्राक्षरं द्वार्शाणं षर्कृक्षी वेष्मवी तदा। रामकृष्णनृसिंहाख्यान् मन्त्रान् तस्मै नि .दयेन् ॥१२६ न्यासे वःष्यर्चने वापि मन्त्रमेकान्तिनं श्रयेत। अवैष्णवीपहिष्टेन मन्त्रेण नरकं ब्रजेत ॥१३० अवैष्ण इ दु र्रोर्मन्त्रं यः पठेहैं है गवो द्विजः। कल्पकोटिसहम्बाणि पच्यते नरकात्मना ॥१३१ अचक्रवारिणं यस्तु मत्त्रमध्यापयेदुगुरुः। रौरवं नरकं प्राप्य चाण्डाली योनिमाप्तयात् ॥१३२ तस्माह्यश्चाविधानेन शिष्यं भक्तिसमन्वितम्। म त्रमध्यापयेद्विद्वान् वैष्णवं पापनाशनम् ॥१३३ अनधीत्य हृयं मन्त्रं योऽन्यवैष्गवमुत्तमम्। अधीत्यमन्त्रसंसिद्धिं न प्राप्नोति न संशयः ॥१३४ . जातव मीण वा चौले तहा मौञ्जोानवन्यने । चक्रस्य धारणं यत्र भवेत्तस्य तु तत्र वै ॥१३४ डपनीय गुरुः शिष्यं गृह्योक्तविधिना ततः। अध्यापयेच सावित्रं तपोमन्त्रं द्वगं शुमम् ॥१३६ प्राप्तमन्त्र स्ततः शिष्यः पूजयेच्ड्रद्धया गुरुम्। गोभूहिरण्यरत्नाद्यैः वासोभिर्भूपणैरपि ॥१३७ सद्रक्ता शासयेच्छिष्यमाचार्यः संशित्रत्त । स्वरूपं साधनं साध्यं मन्त्रेगारमै निवेद्येत् ॥१३८ द्वयेन वृत्तियाथात्म्यं सम्यगस्मै निवेद्येन । आचार्याधीनवृत्तिस्तु संयतस्तु बसेत् सदा ॥१३६

कर्मणा मनसा वाचा हिस्मेत्र भजेत् सुधीः। यावच तीरपातन्तु द्वयमावर्तयेत्सदा ॥१४० एवं हि विधिना सम्यद्धान्त्रसंस्कारसंस्कृतः॥१४१

इति मन्त्रसंस्कारश्चतुर्थः।

## अथ पश्चसंस्कारविधिनां मवर्णनम्।

मन्त्रार्थतत्वविदुषं यागतन्त्रे नियोजयेत्। पूर्वा पूजयेद्वं तस्य प्रियतः शुभः ॥१४२ मन्त्ररत्नविधानेन गन्धपुष्पादिभिर्गुरः। अर्चयित्वाच्युतं भक्त्या होमं पूर्ववदाचरेत् ॥१४३ सर्वेश्च वंष्णवं: सूक्तेः पायसं घृतमिश्रितम् । आज्यं मन्त्रेण होतव्यं शतमष्टोत्तरं तदा ॥१४४ शक्त्या च वैष्णवैर्मन्त्रेः सर्वेहीमं समाचरेत्। एकैकमाहुर्ति हुत्वा सर्वावरणदेवता ।।१४५ प्रणवादिचतुर्थ्यन्ते स्तेषां वै नामभिर्यजेत्। होमशेपं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेत्तरा ॥१४६ मन्त्ररत्नेन तद्विम्बं पुःपाञ्जलिशतं यजेत्। प्रणम्य भक्तया देवेशं जष्त्वा मन्त्रमनुत्तमम् ॥१४७ आहूय प्रणतं शिष्यं तद्विम्बं दशेयेद्गुरुः। कृपयाथ तत्रतमे व्हाहिम्बं हरेगु रु: ! ॥१४८

एनं रक्ष जगन्नाथ ! केवलं क्राया तव । अर्चनं यत्कृतं तेन विभो ! स्वोकर्तुं मईसि ॥१४६ एवं छच्धा गुरोर्धिम्बं पूजयेत्तं प्रयन्नतः । हिरण्यवस्थाभरणयानशय्यासनादिभिः ॥१५० सतः प्रभृति देवेशमचेयेद्विधिना सदा । श्रीतम्मात्तोगमोक्तानां झ्रात्वान्यतममच्युतम् ॥१५१

इति बृद्ध इत्रोतस्मृत्यां विशिष्टयर्मशास्त्रे पश्चसंस्कार-विधानं नाम द्वितीयोऽध्यायः।

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्मन्त्रविधानवर्णनम्।

अम्बरीप इव.च।

भगवन् ! सर्वमन्त्राणां विधानं मम सुत्रत ! । बृह्दि सर्वमरोपेण प्रयोगं सार्थसंस्कृतम् ॥१

हारीत उवाच।

शृणु राजन् ! प्रवक्ष्यामि मन्त्रयोगमनुत्तमम् । यथोक्तं विष्णुना पूर्वं ब्रह्मणा परमातमना ॥२ सर्वपामेव मन्त्राणां प्रथमं गुह्ममुत्तमम् । मन्त्ररत्नं सुपश्रेष्ठ ! सद्यो गुत्ति.फडप्रदम् ॥३

सर्वेश्वयेप्रदं पथ्यं सर्वेषां सर्वेकामद्रम् । यस्योचारणमात्रेण परितृष्टो भवेद्धरिः ॥४ देशकालादिनियममरिमित्रादिशोधनम्। स्वरवर्णादिदोपश्च पौरश्चरणकं न तु ॥५ ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः श्वियः शृद्र स्तर्थतराः । तस्याधिकारिणः सर्वे सत्वशीलगुणा यदि ॥६ पञ्चसंस्कारसम्पन्नाः श्रद्धावन्तोऽनसृयकाः। भक्त्या परमयाविष्टा युक्तास्तस्याधिकारिणः ॥७ पञ्चित्राक्षरो मन्त्रः पद्देः पड्भिः समन्वितः। वादयद्वयं परं ज्ञयं मन्त्ररत्नमनुत्तमम् ॥८ यदाश्रयति विद्यादिः संस्थिता जगतां पतिम । तया विद्याऽनपायिन्या संग्रतः परमः पुमान् ॥६ नारायणोऽच्युतः श्रीमान् वात्सल्यगुणसागरः। नाथः सुशीलः सुलभः सर्वज्ञः शक्तिमान् परः ॥१० आपद्वन्धुः सद्दा मित्रं परिपूर्णमनोरथः । द्यासुधाब्यः सविता वोर्यवान् द्युतिमान् विभुः ॥११ प्रपद्ये चरणी तत्य शरणं श्रेयसे मम। श्रीमते विष्णवे नित्यं सर्वावस्थासु सर्वदा ॥१२ निर्ममो निरहङ्कारः वैष्ट्रयं करवाण्यहम्। एवमर्थं विदित्वैव पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥१३ नारायणो महाशब्दो गायत्री च परा शुभा। स्वयं नारायणः श्रीमान् देवता समुदाहृतः ॥१४

करयोः स्थल्योराद्य मक्षरं विन्यसेद्द्विजः। शेपाक्षराणि देयानि चतुर्विशतिपर्वसु ॥१५ पर्पदेश्ङ्क लिन्यास मङ्गेषु च यथाक्रमम् । पडङ्गं पट्पदैः कृत्वा मन्त्रार्थेश्च यथ क्रमम् ॥१६ मृर्धिन भाले नेत्रनासाश्रवणे गुतथाऽ नने । भुजयोह त्रदेशेच स्तरयोनिभिमण्डले ॥१७ पृष्ठे च अधने कट्योरूर्वोजान्वोश्च पादयोः। पञ्चविशाक्षराण्यस्य क्रमेगाङ्गेषु विन्यसेत्॥१८ एवं न्यासविधि कुःवा पश्चाद्धचानं समाचरेत्। इन्दीवरदल्श्यामं कोटिसूर्याप्रिवर्श्वसम् ॥१६ चतुर्भृजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम्। पद्मासनस्थं देवेशं पुण्डरीकनिभेक्षणम् ॥२० रक्तारदिनद्सहशदिव्यह्रस्तपदाश्वितम् । म्। णिक्यमुकु रोपेतं नीलकुन्तलशीर्पजम् ॥२१ श्रीवत्म होंस्युभोरस्हं वनमालाविराजितम् । , दिव्यचनद्खिराङ्गं दिव्यपुःपावतंसकम् ॥२२ हारकुण्डलकेयूरनूपुरादि विराजितम्। कटकेरङ्करीयश्च पीतवस्त्रण शोभितम् ॥२३ शङ्घपद्मगदाचकपाणिनं पुत्रपोत्तमम्। बागाङ्के चिन्तयेत्तस्य देवीं कमळळोचनाम्।।२४ तर्णी सुकुमाराङ्गी सर्वलक्षणशोभिताम्। द्वकूछवस्त्रसंयुक्तां सर्वाभरणभूषिताम् ॥२४

तप्रकाश्वनसङ्गाशां पीनोन्नतपयोधराम्। र**त्र**्ण्डलसंयुक्तां नीलकृन्तलशीर्षजाम् ॥२६ दिवयच उनलि राङ्गी दिवयपुष्पावतं सकाम्। मातृलिङ्गं च रक्ताव्जं द्रीणं वरदं तथा ॥७७ देवीं च विश्वतीं दोभिश्चिन्तयेदिष्टदां सदा। एवं ध्यात्या परं नित्यम चयेदच्युतं द्विजः ॥२८ यथात्मनि तथा देवे ज्ञानकर्म समाचरेत्। अर्चे रेदुप वार्श्च मनसा वा जनादनम् ॥२३ आवाहनासने पाद्यमध्यमाचमनीयकम्। स्नानं वस्त्रं.पत्रीते च भूपणं गन्धमेव च ॥३० पुष्पं धूपं तथा दोपं नैवेद्यं च प्रदक्षिणम्। नमस्कारश्व ताम्बूढं पुष्पमालां निवेद्ये । ॥३१ नमः हृत्या गुष्त पश्च। ज्ञपेन्म रं समाहितः । अष्टोत्तरस स्त्रन्तु शतमष्टोत्तरं तथा ॥३२ ध्यायन्वे मनमा देवं जपेदेकाप्रमानसः। प्राङ् मुखोद्रनमुखो वापि समासीनः कुशासने ॥३३ त्रिसन्ध्यामु जपेद्दवं सर्वसिद्धिमवा'नुयात्। आदावन्ते जपस्यास्य प्राणायामान् समाचरेन् ॥३४ पूरक: कुम्भ हो रेच्यः प्राणायामस्त्रिलक्ष्णः। वामेत पूरवेद्वायुं वाह्यं नासा जपन्मतुम् ॥३४ उभाभ्यां धारणं वायोः कुम्भकं समुदाहृतम्। तद्रेचनं दक्षिणेन रेचनं समुदाहृतम् ॥३६

पर्यावृत्या प्रश्चेत्रं प्राणायामत्रयं क्रमान् । पूरके कुत्मके चैत्र रेवके च विशेषत ॥३७ अष्टा विश्वतिवारं तु जपेन् मन्त्रं समाहितः। उत्तनं मुनिभिः प्रोक्तं प्राणायमं नृपोत्तम । ॥३८ ज न् द्वादशवारं तु उत्तमं तत्प्रकीर्तितम्। पड्डार तु कनोयः स्यान्त्रिवार मधमं स्पृत र् ॥३६ मनसेयाचयेदवं पश्चादर्थं विचिन्तयेत्। प्राणायामत्र मं बृहवा पश्चन्त्र मासं समाचरेत् ॥४० स्नालमा गुरुत्मवरधरः कृत्वा सन्ध्याप्दकर्म च । धृतोर्द्ध पुग्ड़देहश्च पवित्रकर एव च । ४१ धृत्वा पद्माक्षमालां च सन्निया वासने स्थितः। भूतशुद्धिविधानञ्च हृत्वा मन्त्रं प्रयोजयेत् ॥४२ अष्ट क्षरस्य मन्त्रस्य गुरुर्नारायण स्मृतः। छन्दश्च दैवी गायत्री परमात्मा च देवता । जपश्चाष्ट्राक्षरो मन्त्र सर्वपापप्रणाशनः ॥४३ सर्वेदु खर्रः श्रीमान् सर्वकामफलप्रदः। सर्वदेवात्मको मन्त्र स्ततो मोक्षप्रदो नृणाम् ॥४४ भृतो यन्षि सामानि तथैराथर्वणानि च। सत्रन राख्ररान्तरथं तबान्यद्रिप वाद्ययम् ॥४५ सर्जार्थी वेदगर्भक्षः वेदाधाद्याद्वरे स्थिता । अष्टाक्षरस्तु प्रणवे अकारे प्रणवः स्थितः ॥४६

इह लौकिकमें धर्य स्वर्गा ग्रंपारलोकिकम्। कैंबल्यं भगवत्त्रश्व मन्त्रेंडां साधिष्यति॥४७ सकुः बारणान्नुणां चतुर्वर्गफलप्रदम्। स्वरूपं सावनं प्रत्यं ददाति हि समञ्जसा ॥४८ महापापं चातिपापं विद्यते वोपपापकम् । जपादत्य मनोराशु प्रणश्यन्ति न संशयाः । ४६ अश्वमेधसहस्राणि राजसूयशतानि च। सकुद्रष्टाक्षरं जात्वा लभते नात्र संशयः ॥६० गव मयुतदानस्य पृथिव या मण्ड उस्य च। कन्याशतसहस्रस्य गजाश्वाना तथा च ।'५१ दानस्य यत्फलं नृणां सत्पात्रे नृपनन्दन !। शतबारं मनुं जप्त्वा त फ ं सर्वमानुयान् ॥५२ सार्थं समुद्रं सन्न्यासं सर्षिच्छ हो जिबदेवतम् । अष्टाक्षरम रुखात्वा बिष्णुमायुष्ट्यमाप्नुयात् ॥५३ पदत्रयात्मकं मन्त्रं चतुः यां सहितं तदा। स्वरूपसाधनोपेयमिति मःवा जपेद्वुवः ॥५४ प्रणवेन स्वरूपं स्यात् साधनं मनसा तथा । संबिभक्या चतुर्श्यात्र पुष्पार्थी भोन्मनोः ॥५५ अकारश्वाप्युकारश्व मकारञ्चेति तत्वतः। तान्येकधा सम भवत्त होमित्येतदुच्यते ॥५६ तस्मादोमिति प्रणवो विज्ञेयः साक्षरात्मकः। वेदत्रयात्मकं क्षेयं भूभुंबःस्वरितीति वै ॥५७

अकारस्तु भवेिष्णु स्तरम्वेद उदाहृतः। उकारस्तु भवेह्नस्मोर्यज्ञर्वे रात्मको महान् ॥५८ मकारस्त भवेजीव स्त्र गेर्दास उदाहृत । पञ्चविशाक्षरः साक्षात् सामगेदस्वरूपवान् ॥५६ पश्वविंशोज्यं पुरुतः पश्चविंश आत्मेति श्रुतेः। आत्मा पश्चिवंशः स्यादिति मम त्मानं संस्मरेत्।।६० इत्यौपनिपदं ह्यर्थं विदित्वा स्वं निवेद्येत्। अवधारणमन्ये तु मध्यमाणै वदन्ति हि ॥६१ तदेवाग्नि म्तरायु स्तत्सूर्य स्तरपि चन्द्रमाः। इत्येवं धारणशुतेरेवमे गोपवृ हितम् ॥६२ ऊ(ओं)कारेणेव श्रीशब्दः प्रोच्यते मुनिसत्तमः। न्यायेन गुणमिद्धिस्तु तस्यैव श्रीपतेर्वरी ॥६३ श्रीरस्पेशाना जगतो विष्णुपत्नोति वै श्रुतिः। कल्याणगुणसिद्धित् छक्ष्मीभर्त्ध्व नेतरा ॥६४ सामानाधिकरण्यत्वात्कारणस्यं तदोच्यते । अकार एव सर्वपामक्षराणां हि कारणम् । ६४ अकारो वे सर्वा वागित्यादि श्रुतिवच म्तथा। म्पर्शोष्मभिर्व्यज्यमानो नानाबहुबियोऽभवत् ॥६६ कारणत्वं तथैवास्य विष्णोर्वे जगतां पतेः। तस्मान् स्रष्टा च दाता च विधाता जगता हरिः ॥६७ रक्षिता जीवलोकस्य गुणवानेव सर्वगः। अनन्या विष्णुना छक्ष्मी भास्करेण प्रभा यथा ॥६८

लक्ष्मीमनुपगामिनोमिति श्रुतिवचो महत्। तस्मादकारो वे विष्णुः श्रीश एव जगत्पतिः ॥६६ लक्ष्मीपतित्वं तम्येत्र नान्यस्येति सुनिश्चितम्। नित्यैवैपा जगन्माता हरेः श्रीरनपायिनी ॥७० यथा सर्वगतो विष्ण स्ततैवेपा जगन्मयी। तस्मादकारो वै विष्णुर्रुक्म भर्ना जत्पतिः ॥७१ त्तरिमश्चतुर्थीयुक्तत्वात् त्रिपद्ध्य च मंग्रहः। अकार प्रथमां तस्माचत् यीं संप्रहं न तु ॥७२ सब श्रुतिविरोधत्वान्न युक्तमिति चोदिनम्। महसे ब्रह्मगं त्वा वे ओमिन्यात्मानं युञ्जीत ॥७३ परस्य च त्रनां तस्माद्भद् स्त्र मुनिश्चितः ॥७४ स्वमस्माकं तपस्येत श्रुत्त्रक्तमपि पार्थिव ! । तौ शाश्वतौ निपत्चेना वियननाविति वे तथा ॥७४ गृभिष्य द्या प्रागेवयात्मा न विश्वभृत्। असोयमत्यों मर्त्येन नयेनेत्येत्रयोनिता ॥७६ इत्यादि श्रुतयो भेदं वदन्ति परजीवयोः। दास्यमे बारमना विष्णोः स्वरूपं परमात्मनः ॥७७ साम्यं लक्ष्मीवरप्रोक्तं देवादीनां तथात्मनाम्। अनन्यरोषरूपा वै जीबास्तस्य जगश्यतेः॥७८ दास्यं स्वरूपं सर्वेपामात्मनां सतपं हरेः। भगवच्छेषमात्मानमन्त्रथा यः प्रपद्यते ॥७६

स चैव हि महापापी चण्डाल स्यात् नसंशयः। तस्मात्मकारवाच्योऽसौ पश्चि विशालमकः पुमान् ॥८० अकारवाच्यरपेशस्य दास एवाभिधीयते । अनुज्ञानाश्रयो नित्यो निर्मिकारोऽव्यय सद्दा। देहेन्द्रियात् परो ज्ञाता कर्त्ता भाक्ता सनातनः ॥८१ मकारव च्यो जीवोसी दास एव हरेः सदा। श्रीशम्याकारवाच्यस्य विष्णोरस्य जगत्पते:।।८२ स्वस्वामिनोककारेण ह्यवधारणमुच्यते। स जीवः स्यादतः स्यामी सवदा नृपसत्तम ॥८३ अनयोनान्यथे युक्तमुकारेण महर्पिभिः। इत्येवं प्रणवस्य थं प्रणवस्य पदस्य तु ॥८४ आत्मनश्च स्वरूपत्वाद्विजेय मृपिसत्तमेः। सर्वपामेव मन्त्र णां कारणं प्रणवः रमृतः ॥८४ तस्म दृव्याहतयो जातास्ताभ्यो वेदत्रयं तथा। भृरेत्येव हि भृग्वेदो भुव रिति यज्जुन्तथा ॥८६ स्व रिति सामगेदः स्यात्प्रणवो भूभूव सुवः। भूर्विष्णुश्च तरा लक्ष्मोर्भुव इत्यभिधीय्यते ॥८८ तयोः स्वरिति जीवस्तु सुव इत्यभिधीयते । अप्रिर्वायु स्तथा सूर्यस्तेभ्य एव हि जिहारे।।८८ य एता व्याहृतीह त्वा सर्व वेदं ज़होति वै। प्रसङ्गात्महितं चेदं मन्त्रशेषमुदीर्यते ॥८६

अस्वातन्त्रयात्त् जीवानामधीनं परमात्मनः। नमसा प्रोच्यते तस्मान्नहन्ताममतोऽपितम् ॥६० स्वरूपादित्रिवर्गस्य संसिद्धिर्नतु संव हि। नमसा रहितं सर्वं विफलं सम्प्रकीर्त्तितम्।।६१ नमसेत्र हि संसिद्धिभीदत्र न संशयः। पुरतः पृष्ठनश्चेत्र पार्श्वतश्चावरीपत ॥३२ नमसैक्षिते राजन् ! त्रिवर्गः सर्वेहेहिनाम । मकारेण स्वतः त्रः स्याम् एकस्तं निविध्यति ॥६३ तस्माश्च नम इत्यत्र स्वातन्त्र्यमपनोद्ति । द्वश्वश्वरस्तु भनेन्द्रत्युरम्बस्तु हि शाखतम् ॥६४ मनेति द्वन्यश्रं मृत्युर्न ममेति तु शाश्वतम्। म ममेति च सवत्र स्वातन्त्ररहित य वै ॥६४ युज्यते मुनिभिः सन्यक् सर्वकर्मपु पार्थिव ।। त्रसात् नमसा युका मन्त्राः सर्व च पार्थिव । ॥६६ सर्वसिद्धिप्रदा नृणां भवन्यत्र न संशयः। नम ता रदिता ये तुन तु मुक्तिप्रदा नृणाम् ॥६७ त्तस्मात नमसैरेगां पारतन्त्र्यस्मगीशितुः। पारतन्त्रयाञ्च ने न् सिद्धि स्यातन्त्रयाञ्चाशमेज्यति ॥६८ द्दास्यमेव हि जोवानां प्रोच्यते नमसेव तु। मत्रसा रहितं छोके किन्बिदत्र न विद्यते ॥६६ नमो देशेम्यो नम इति येशमोरो तथा मनः। हृतिश्विदेनो नम ता आविवास्त्रेति वै श्रुतिः ॥१००

क्षयैरकारः सम्प्रोक्तो नकारस्तं निषिध्यति । तस्मात् नर इस्रत्र निसरोनोच्यते जनः ॥१०१ नारा इति समृहत्वे बाहुल्यत्वाज्ञनस्य च । तेपामयनमावासस्तेन नारायणः स्पृतः ॥१०२ महाभूतान्यहङ्कारो महद्वयक्तमेत्र च। अण्डं तद्ग्तर्गना ये लोकाः सर्वे चतुर्दश ॥१०३ चतुर्विधशरोराणि कालः कर्मेति व जगत्। प्रवाहरूरेणेरैंशं नारहोनोच्यते बुधेः ॥१०४ तेपामपि निवासत्वान्नारायण इतीरितः। अन्तर्विद्धेश्व जगतो धाता सच सनातनः ॥१०४ स्रष्टा नियन्ता शरणं त्रिधाता भूतभावनः। माता पिता सखा भ्राता निवासश्च सुहृर्गतिः ॥१०६ योनौ श्रियः श्री परमस्तेन नारायणः स्पृतः । नराणां सर्वजगतामयनं शरणं हरि: ॥१०७ तस्मान्नारायण इति मुनिभिः सम्प्रकीत्येते। सर्वेषु देशकालेषु सर्वावस्थासु सर्वेदा ॥१०८ तस्यैव किङ्करोऽस्मीति चतुर्द्रा परमःसनः। भगवत्परिचर्येव जीवानां फलमुच्यते ॥१०६ तद्विना किं शरीरेण यातनास्य जनस्य तु। यश्मिन् शरीरे जीवानां न दास्यं परमात्मनः ॥११० तदेव निरयं प्रोक्तं सर्वेदुःखफलं भदेत्। दास्यमेव फर्छ विष्णोदीत्यमेव परं सुखम् ॥१११

दास्यमेव हरेमोंक्षं दास्यमेव परं तपः। ब्रह्माद्याः स्र कला देवा वशिष्ठाद्या महर्षयः । काङ्कन्तः परमं दास्यं त्रिणोरेव यजन्ति तम् ॥११२ तस्म। बतु यो मन्त्रस्य प्रधानं दास्य प्रकारे । न दास्यवृत्ति जीवानां नाशहेतु पास्य हि ॥११३ इत्थं सन्बिन्त्य मन्त्राथ जपेन्महमनन्द्रतः। अविदित्वा मनोर्थं जपेतु प्रयत्तमानसः ॥११४ न संसिद्धिमवा नोति स्वरूश्व न विन्दति। संसार्श्व समुद्रश्व सर्पिचण्डोऽधि दैवतम् ॥११४ सार्द्धं स यज्ञं सद्ध्यानं मन्त्रमेव प्रपृत्रदेत्। नारायणार्प गायत्री देवी चन्द्रोऽधिदेवता ॥११६ परमात्मा च लक्ष्मीराो विष्णुरेवाच्युतो हरिः। प्रणारुषु भवेद्रोजं चतुर्थी शक्तिरुच्यते ॥११७ क्द्रोल्काय महोल्काय विष्णूल्काय तथैव च। जाल्काय सहस्रोल्काय पश्च क्लो न्यास उच्यते ॥११८ ह्रन्मध्न'श्च शिखायाञ्च कवचो नेत्रयोर्न्यसेत्। पञ्चाङ्गन्यासमित्युक्तं सर्वमन्त्रेषु वैष्णवैः ॥११६ यदा त्रयेण कुर्वीत षडङ्गं तु यथाक्रमम्। मृष्ट्यानने च हृद्ये भुजयोर्जघने तथा ॥१२० पृष्ठे च जाःवी. पद्योर्मः त्राणीन यदा न्यसेत्। अष्टाक्षराण्यप्रदिक्ष क्रमेण तदनन्तरम् ॥१२१

नासिकायां तथाक्ष्णोश्च श्रोत्रयोरानने तथा । कण्ठे च स्तनयोर्नाभी गुह्ये च तद्नन्तरम् ॥१२२ अचकाय विचकाय सुचकाय तथैव च। **ज्**वालामहासुचक्राय त्रैलोम्याय तदन्तरम् ॥१२३ आधारकालचकाय दशदिक्ष यथाक्रमम्। स्वाहान्तं प्रण गाद्यन्तं न्यसेचक्राणि वैज्ञ्यवः ॥१२४ एवर यासविधि कृतवा पश्चाद्धचानं समाचरेत्। हृद्ये प्रतिमायां वा जले सन्वितृमण्डले ॥१२४ बर्री च स्थण्डिले वाउपि चिन्तयेद्विष्णुमन्ययम्। बालार्ककोटिसङ्क शं पीतास्त्रं चर्म् इम् ॥१२६ पद्मपत्रविशालाक्षं सर्वाभरणभूपितम्। चक्रमञ्जं गदां शङ्क्षं चतुर्देभि धृतं तथा ॥१२७ श्रीभूमिसहितं देवमासीनं परमासने। तत्र चावारशक्तयाद्यैर्धर्माद्यै सुरिभिर्धतैः ॥१२८ दिव्यरत्नमये पीठे पङ्काजे अद्रहे शुभे। तत्कर्णिकोपरित्छे तप्तकाञ्चनसन्निमे ॥१२६ देवी म्यां सिहतं तिसन्नासीनं पङ्कजासने। चिन्तयेद्दक्षिणं पार्खं लक्ष्मीं काञ्चनसन्निभाम् ॥१३० पद्मदस्तविशालाक्ष्मीं दुकूलवसनां शुभ म्। व मे दुर्वाद्लश्यामां विचित्राम्बरभूपिताम् ॥१३१ चिन्त्रोद्धएणीं देशीं नीखोत्पलधरां शुभाम्। माहिप्यट(श्व)द् डामेषु चिन्तयेद्धृतचामराम् ॥१३२

एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेत्रयतमानसः। स्नातः शुक्काम्बरधरः कृतकृत्यो यथाविधि ॥१३३ धृतोद्धं पुण्डदेहश्च पवित्रकर एव च। शुचिः कुःणाजिनासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥१३४ शङ्खचक्रगदाखड्गशार्ङ्गपद्मान्यनुक्रमात्। ताक्ष्येश्व वनमालाश्व मुद्रा अष्टी प्रपूजयेत् ॥१३६ पश्चत् ध्यात्वा जगन्नाथं मनसेवाचयेद्विभूम् । गन्य रूपादि सकलं मन्त्रेणेव निवेदयेत् ॥१३६ अनेनाभ्यर्चितो विष्गुः प्रीतो भवति तत्क्षणात् । अयुतं वा सहस्रं वा त्रिसम्ध्यासु जपेन्मनुम् । विष्णोः समानरूपेण शाश्वतं पदमाप्त्यात् ॥१३७ आयुष्कामी जपेन्नित्यं षण्मासं नियतेन्द्रयः। अयुतं तु जपेन्मन्त्रं सहस्रं जुरुयाद् घृतम् ॥१३८ आयुर्तिरामयं सम्पद्भवेद्वपेशताधिकम्। विद्याकामी जपेद्वपं त्रिसन्ध्यास्वयुतं मनुम् ॥१३६ जुद्रुयाद्विमलै: पुष्पै: सहस्रं नियते द्विय:। अष्टादशानां विद्यानां भोद् व्याससमो द्विजः ॥१४० विवाहार्थी जपेन्नित्यमेवं वर्षचतुष्ट्यम् ॥१४१ राजहोमी सहस्रं तु लभेत्कन्यां सुशोभिताम्। सम्पत्कामो जपेन्नित्यं ज्ययुतं वत्सरत्रयम् ॥१४२ पद्मैर्वा पद्मपत्रेवी तथा होमी श्रियं छभेत्। भूकामी तु जपेश्नित्यं वत्सरं विजितेन्द्रियः ॥१४३ ξķ

द्वाभिर्नृहुयात्तद्वस्रभेद्गमिमभीप्सितम् । राज्यकामी जपेन्नित्यं षडब्दं श्ययुतं तथा ॥१४४ सहस्रं जुहुयान नित्यं पायसं घृतमिश्रितम्। चक्रवर्ती भवेत् मधा पद्माभर्त्तुः प्रसादतः ॥१४४ द्वादशाब्दं जपेदवं सततं विजितेन्द्रियः। आत्महोमो तु यो नित्यभिन्द्रत्वं छभते न र ॥१४६ लक्षञ्जपेच यो नित्यं त्रिंशद्वर्षं जितेन्द्रियः। ब्रह्मत्वं वा शिवत्वं वा समाप्नोति न संशयः ॥१४७ यावज्जीवं तु यो नित्यमयुतं सुसमाहितः। सहस्रं वा शतं वापि होतत्र्यं वह्निमण्डले ॥१४८ आज्येन चहुगा वापि तिलेवा शर्करान्वितै:। पदुमै वां बिल्वपत्रे वां सिमिद्धिः पिष्पलस्य वा । कोमलैस्तुलसीपत्रैरर्चयित्वा सनातनम् ॥१४६ अनन्तविहगेशानां क्षिप्रमन्यतमो भवेन्। किमत्र बहुनोक्तेन सर्वसिद्धिपदो नृणाम् ॥१५० श्रीमदृष्टाक्षरो मन्त्रो नित्यप्रियतमो हरेः। आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन्त्रा यत्र कुत्रचित् ॥१५१ जपेदष्टाक्षरं मन्त्रं तस्य विष्णुः प्रसीद्ति । संस्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः ॥१५२ अभितः सर्वदेवानां यो जपेत्सततं मनुम्। ब्रह्मजो वा कृतज्ञो वा सहापापयुत्तोऽपिवा ॥१४३

अष्टाक्षरस्य जप्तारं दृष्ट्या पापैः प्रमुच्यते । अष्टाक्षरस्य जप्तारो यथा भागवतोत्तमाः ॥१५४ पनन्ति सकलं लोकं सदेवासुरमानुषम्। अष्टाक्षरस्य जप्तारं प्रणमेद्यस्त भक्तितः ॥१४४ सर्वपापविनिम्को विष्णुलोके महीयते। अचिन्त्यमेतन्माहात्म्यं मनोरस्य जगत्पतेः ॥१४६ न हि वक्तं मया शक्यं ब्रह्मादित्रिद्शैरपि। अथ वक्ष्यामि माहाम्यं द्वादशाणीस्य पार्थिव । ॥१४७ यस्योचारणमात्रेण द्वादशाब्दफलं लभेत्। नमो भगवते नित्यं वासुदेवाय शार्ङ्किणे ॥१५८ प्रणवेन समायुक्तं द्वादशाणमन् जपेत्। पूर्ववस्त्रणवस्यायं नमसश्च महामनोः ॥१४६ ऐश्वर्यं च तथा वीर्यं तेजः शक्तिरनुत्तमा । ज्ञानं बलं यदेतेपां पण्णां भगवदीरितः ॥१६० एभिर्गुणैः पूर्ववाद्यः स एव भगवान् हरिः। निखा च या भगवती प्रोच्यते मुनिसत्तमैः ॥१६१ ऐश्वर्यरूपा सा देवी सुभगा कमलाल्या । **ईश्वरी सर्वजगतां विष्णुपत्नी सनातनी ॥१**६२ तस्याः पतित्वा धीशस्य भगवानिति चोच्यते । तस्मात् भगवान् श्रीमानेकार्था मुनिभिः स्मृतः ॥१६३ भगवानिति शब्दोऽयं तथा पुरुषइत्यपि । निरुपाधी च वर्तेत वासुदेवेऽखिछात्मनि ॥१६४

वक्ष्यन्ति केचिद्भगवान् ज्ञानवानिति सत्तमाः। तद्वामुदेवेनोक्तं स्यात्मामान्यत्वात्ततोऽत्यथा ॥१६४ तस्मात्रुलयाणगुणवान् श्रीमान् यो उसौ जगत्पतिः । स एव भगवान् विष्णुर्वासुदेवः सनातनः ॥१६६ भगवते श्रीमते चेत्येकार्थे हि प्रोच्यते बुधैः। गुणवान् भगवानेव सृष्टिस्थिति विनाशकृत् ॥१६७ ह्रौ ह्रौ गुणावधिष्ठाय सर्वाग्रम स्रोत्प्रमुः। प्रसुम्रश्चानिमद्धश्च सङ्घर्षण इतोरितः ॥१६८ भगपान् वासुद्वोऽमौ सृष्ट्याद्यमकरोत् स्वयम्। ऐश्वर्यवोयवान सर्गे प्रद्युन्नः पर्यपद्यत ॥१६६ तेज शक्ति समाविश्य अनिरुद्धो ह्या छयत्। बलजाने तथा द्वं तु मङ्कर्पणो ह्यथिष्ठितः ॥१७० अकरोद्भगवानेव संहारं जगतः पुनः। एवं पड्गुगपूर्गत्वान् पतित्यात्त्यपि च श्रियः ॥१७१ सर्गादेः कारणत्याच भगवानिति चोच्यते। सर्वत्रासी समतं च वसखत्रेति वै यतः ॥१७२ ततः स वासुरोति विद्वद्भिः परिपद्यते । चतुर्थी पूर्वविद्विद्यात् केङ्कर्यार्थं महात्मनः ॥१७३ एवं हात्या मनोर्थं द्वादशार्णस्य चक्रिणः। संसिद्धि परमाप्नोति सम्यगावर्त्य चेतसा ॥१७४ गत्वा गत्वा निवर्तन्ते सर्वक्रतुफलैरपि। तद्गत्वा न निवतन्ते द्वादशाक्षरचिन्तकाः ॥१७५

द्वादशार्षं सक्कज्जप्त्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । ब्रह्महत्यादि रापानि तत्संसर्गकृतानि च ॥१७६ द्वादशाणें मनोर्जप्तु र्दहत्यग्निरिवेन्धनम्। सवसीभाग्यसुखदं पुत्रवीत्राभिवर्द्धनम् ॥१७७ सर्वकामप्रदं नणामायुरारोग्यवर्द्ध नम् । देवत्वममरेशत्वं शिवब्रह्मत्वमेव च ॥१७८ द्वादशाणे मनुं जप्त्वा समाप्नोति न संशयः। दुराचारोऽपि सर्वाशी कृतध्नो नास्तिक्रोऽपि वा ॥१७६ द्वादशार्गमनुं जन्त्वा विष्णुसायज्यमाप्त्यात्। प्रजापतिः कश्यपश्च मनुः स्वायम्भुदस्तथा ॥१८० सप्तर्पयो ध्रवश्चेते ऋपयस्तस्य कीर्तिताः। वशिष्ठः कश्यपोऽत्रिश्च विश्वामित्रश्च गौतमः ॥१८१ जमद्रिभेरद्वाजस्त्रेते सप्टमहर्पयः। भगवान् वासुदेवो वै देवतास्य प्रकीर्त्तितः ॥१८२ छन्दश्च परमा देवी गायत्री समुदाहता। साधकानां सदा राजन् कामुदेनुरितीग्तिः ॥१८३ दशाङ्क्रलीपु तलयोद्वीदशाणीनि विन्यसेन्। पदैश्रतुर्भरङ्गेषु विन्यसेत्तर्नन्तरम् ॥१८४ चतुरङ्गेषु विन्यस्य मन्त्रेणोत्तरयोर्द्धयोः। मुध्न्यस्यनेत्रयोर्नासाक्ष्योर्भुजयो स्तथा। हृदि कुक्षी तथा गुह्यं ऊर्जीजन्विश्च पादयोः ॥१८४

मन्त्राणीनि तु विन्यस्य क्रमेणैव नृपोत्तम ! अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च ॥१८६ तथा त्रेलोक्यचक्राय महाचक्राय वै तथा। असुरान्तकचक्राय स्वहान्तं प्रणवादिकम् ॥१८७ हृद्याद्पिडङ्गेषु यथाशास्त्रं प्रयोजयेन्। क्षीराव्यो शेपपर्यङ्कं समासीनं श्रिया सह ॥१८८ नीलजीमृतसङ्काशं तप्तका वनभूषणम्। पीताम्बरधरं देवं रक्ताव्जद्छलोचनम् ॥१८६ दीर्घेश्चनुर्भिदोभिश्च सर्वाभरणभूषितैः । शङ्खचकगदाशाङ्गीन् विभ्राणं परमेश्वरम् ॥१६० नानाकुसुमसम्बद्धनीलकुन्तलशीर्षजम् । श्रीवत्सकौस्तुभोरम्कं वनमालाविभूषितम् ॥१६१ समािकष्टं श्रिया दिव्या पद्मया पद्महस्तया। स्तूयमानं विमानस्थेर्देवगन्धर्वकिन्नरैः ॥१६२ मुनिमिः सनकाद्येश्व सेवितञ्च सुरर्षिभिः। एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं जपेन्मन्त्रं समाहितः ॥१६३ अचियत्वा हृपीकेशं सुगन्धकुमुमैः सदा। शालमामादिकस्थाप्वर्चऽमानं जपेदु बुधः ॥१६४ जपित्वा दशसाहस्रं यावजीवं समाहितः। वप्णवं पद्माप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम् ॥१६५ आयुष्कामी जपेन्नित्यं वत्सरं विजितेन्द्रियः। संख्या द्वादशसाहस्रं होमं तिलसहस्रकम् ॥१६६

लभेताऽऽयुः शतसमा दुःखरोगविवर्जितम्। विवाहकामी षण्मासं जपेन्नित्वं जितेन्द्रियः ॥१६७ आज्यहोमी सहस्रन्तु लभेत्कन्यां सुलक्षणाम्। सम्पत्कामी जपेन्नित्यं वत्मरन्तु सहस्रशः ॥१६८ साज्येश्च ब्रीहिभिर्होमी सहस्रं श्रियमानुयात्। राज्यमिन्द्रपदं वापि शिवत्वं ब्रह्मतामपि ॥१६६ बहुकालं विल्वपत्रैः कमलैर्वा जपेन्मनुम् । जुहुयाच जपेन्नित्यं नत्तत्प्राप्नोत्यसंशयम् ॥२०० यं यं कामयते चित्ते तत्र तत्र नृपोत्तम ।। जुहुयान्मालतीपुष्पैरयुतं विजितेन्द्रियः ॥२०१ तां तां सिद्धिमवाग्नोति पदं चाग्नोति वेष्णवम् । द्वादशार्णेन मनुना पक्षे पक्षे द्विजोत्तमः ॥२०२ द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं कोमछै स्तुलसीद्छैः। विष्णुतुल्य वपुः श्रीमान् ! मोदते परमे पदे ॥२०३ द्वादशार्णमनोरेवंविधानं प्रोच्यते नृप !। अद्य ते सम्प्रवक्ष्यामि षद्धश्रमनोरिदम् ॥२०४ विधानं सर्वफलदं जन्ममृत्युविक्रन्तनम्। ओंनमो विष्णवे चेति पडक्षर मुदाहृतम् ॥२०४ पूर्ववत्प्रणवस्यार्थं नमःशब्द उदाहृतः। व्याप्तत्वाद्वः यापकत्वाच विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०६ सदैकरूपरूपत्वात् सर्वात्मत्वाद्विभृत्वतः ।

अनामयत्वादीशत्वादुगभस्तत्वादुवृणित्वतः। यथेष्ट्रफछदातृत्त्राद्विष्णुरित्यभिधीयते ॥२०७ णकारो बङ्गित्युक्तः षकारः प्राण उच्यते । त्तयोस्तु सङ्गतिर्थत्र तदात्मेत्युन्यते धृतिः ॥२०८ तस्माण्णकारषकारावनुसंहितमुत्तमम्। सप्राणं सबलं देव । संहितामुत्तमां तु यः ॥२०६ तस्यैवायुष्यमित्युक्तं नेतरस्यैव च श्रतेः। एतदेव हि विद्वांसो वक्ष्य ते ये महर्पयः ॥२१० एवं वक्ष्यामहे किन्तु किमुत व्याख्यामहे वयम्। इमी णकारपकारावसुसंहितमेति यन् । २११ तदेव विष्णु वृष्णेति जिष्णुरित्यभिधीयते। विष्णवे नम इत्येप मन्त्रः सर्वफलप्रदः ॥२१२ ऐश्वयं तु विकारः स्यात्ताद्गतम्य णाद्वयं समृतम् । ऐश्वर्य्यद्वयत्रीजं स्याहिष्गुमन्त्रमनुत्तमम् ॥२१३ तत् पडर्णविधानेन केवलं वे जपेमहि। इत्युक्त्वा मुनयः सर्वे वेदवेदान्तपारगाः ॥२१४ परित्यज्येतरं धमं तदेकशरणं गताः। एवं महामनुं जग्त्वा विधानेनाच्यतं गताः ॥२१४ तस्मादेतः महामन्त्रं सबसिद्धिप्रदं नृप !। सकुदुचारणेनास्य हरिस्तत्र प्रसीद्ति ॥२१६ ब्रह्माद्याः सनकाद्याश्च मुनयश्च जपन्ति हि । छन्दस्तु तस्य गायत्री देवता विष्णुरच्युतः ॥२१७

स्यादोम्बीजं नमः शक्तिर्मनोरस्य प्रकीर्तितम्। त्रिभिः पदेः षडङ्गेषु यथासंख्यं सुविन्यसेत् ।,२१८ अङ्कुञीष्वपि चाङ्गेषु मन्त्रार्णानि यथःक्रमात्। मृष्ट्यांस्ये हृद्ये वाह्नोः पृष्ठे गुद्धे यथाक्रमम् ॥२१६ विन्यस्य चक्रन्यासं च पश्चाद्धचानेषु तः मयम् । प्रणोनोन्सुखीकृत्य हृत्पङ्कजमधोसुखम् । २२० विकासयेश मन्त्रेण विमलं तस्य कशरम्। तस्योपरि च वह्नचर्कसोमविम्वानि चिन्तयेतु ॥२२१ तत्र रत्नमयं पोठं तत्मध्येऽष्टद्हाम्युजम्। तिसान् कोटिशशाङ्कामं सर्वछभ्रणस्भितम् ॥२२२ चतुभू जं सुन्दराङ्गं युवानं पद्महोचनम्। कोटिकन्दर्पलावप्यं नीलभ्रूलतिकालकम् ॥२२३ ऋक्ष्णनासं रक्तगण्डं विम्बितोज्ज्वलवुण्डलम्। शङ्खचकगदापद्मवारणं दोभिकज्वलः । २२४ केयूराङ्गदहाराद्यं भूपणैश्चन्दनैरपि। अल्ङ्कृतं गन्धुदो रक्तहस्त ङ्विपङ्कजम् ॥२२४ मुक्ताफलाभद् तालि वनमालाविभूपितम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरहकं दिव्यपीताम्बरं हरिम् ॥२२६ तातकाञ्चनवर्णाभं पद्मया पद्महम्तया। समाश्चिष्टममुं देवं ध्यात्वा विष्णमयो भवेत्।।२२७ मनसैशोपचाराणि कृत्शा मन्त्रं जपेत्ततः। त्रिसन्ध्यासु जपेन्नित्यं सहस्रं साष्टकं द्विजः ॥२२८

विष्णोर्लोकमवाप्नोति पुनरावृत्तिवर्जितम्। पूर्ववज्ञपहोमाज्यं कृत्वा सिद्धिं नरो लभेत्।।२२६ भगवत्सन्निधौ वापि तुलसीकाननेऽपि वा। समाहितमना जप्त्वा षडणें नियतेन्द्रियः॥२३० तिलहोमायुतं कृत्वा सर्वसिद्धिमवानुयान्। एवं विष्युमनोः प्रोक्तं विधानं नृपसत्तम । ॥२३१ विधानरधुनाऽमुख्य मस्त्रस्यापि ब्रवीमि ते। षडक्षरं दाशरथेस्तारकब्रह्म कथ्यते ॥२३२ सर्वेश्वर्यप्रदं नृणां सर्वकामफलप्रदम् । एतमेव परं मन्त्रं ब्रह्मरुद्रादिदेवताः ॥२३३ ऋषयश्च महात्मानो मुत्तवा जप्त्वा भवाम्बुधौ। एतन्मन्त्रमगस्त्यस्तु जप्त्वा रुद्रत्वमाग्नुयात् ॥२३४ ब्रह्मत्वं काश्यपो जप्त्वा कौशिकस्त्वमरेशताम । कार्त्तिकेयो मनुत्त्रश्च इन्द्रार्को गिरिनारदौ ॥२३४ बालखिल्यादिमुनयो देवतात्वं प्रपेदिरे। एप वै सर्वलोकानामैश्वर्यस्येव कारणम् ॥२३६ इममेव जपेन्मन्त्रं म्द्रसिपुरघातकः। ब्रह्महत्यादि निर्मुक्तः पृज्यमानोऽभवत् सुरैः ॥२३७ अद्यापि काश्यां कद्रस्तु मर्वेषां त्यक्तजीविनाम्। दिशत्येतन्महामन्त्रं तारकब्रह्मनामकम् ॥२३८ तस्य श्रवणमात्रेण सर्व एव दिवं गताः। श्रीरामाय नमो होष तारकब्रह्मनामकः ॥२३६

नाम्नां विष्णोः सहस्राणां तुल्य एव महामनुः। अनन्तो भगवन्मत्रो नानेव तु समाः कृताः। श्रियो रमणसामर्थ्यात्सौकयगुणगौरवान् ॥२४० श्रीराम इति नामेदं तस्य विष्णोः प्रकीर्तितम् । रमया नित्ययुक्तत्वाद्राम इत्यभिधीयते ॥२४१ रकारमैश्वर्यवीजं मकारस्तेन संयुतः। अवधारणयोगेन रामेत्यस्मान्मनोः स्पृतः ॥२४२ शक्तिः श्री रुच्यते राजन् । सर्व्वाभीष्टफलप्रदा । श्रियो मनोरमो योऽसौ स राम इति विश्रुतः ॥२४३ चतुर्थ्या नमसञ्चेव सोऽर्थः पूर्ववदेव हि। ब्रह्मा विष्णुश्च मद्रश्च अगस्त्याचा महर्पयः ॥२४४ छन्दश्च परमा देवी गायत्री समुदाहता। श्रीरामो देवता प्रोक्तः सर्वेश्वर्यप्रदो हरिः॥२४५ अङ्कुलीष्वपि चाङ्गेषु न्यासकर्माद्यवीजतः। मृष्ट्यस्ये हृद्ये पृष्ठं गुह्यं चरणयो स्तथा ॥२४६ वैष्णवास गुरोः पञ्चसंस्कारविधिपूर्वकम् । अधीत्य मन्त्रं विधिना पश्चाहेवं जपेद्बुधः ॥२४७ ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वैश्याः स्त्रियः शुद्रास्तथेतराः । मन्त्राधिकारिणः सर्वे ह्यनन्यशरणा यदि ॥२४८ स्नानादिकृतकृत्यः सन्नूर्ध्वपुण्डः पवित्रघृन् । कृष्णाजिने समासीनः प्राणायामी च न्यासकृत् ॥२४६

ध्यायेरम्मरुपत्राक्षं जानकीसहितं हरिम्। नैव ध्यानं प्रकुर्वीत विष्रहे सति शार्ङ्गिणः ॥२५० चन्दनागुरुकर्प्रवासिते रह्नमण्डपे। वितानः पुष्पमालाद्ये धूपैदिःयैर्विरःजिते ॥२५१ तन्मव्ये कल्पवृक्षस्य छायायां परमासने । नानाग्व्रमये दिव्ये सौवर्ण सुमनोह्रे ॥२५२ तस्मिन् बालार्क सङ्घारा पङ्कतेऽउदले शुभे । वीरासने समासोनं वामाङ्काश्रितसोतया ॥२५३ सुह्मिग्वशाद्वलश्यामं कोटिव्श्वानरप्रभम् । युवानं पद्मपत्राक्षं कनकाम्बरशोभितम्।।२५४ सिंहम्कन्धानुरूपांसं कम्बुशीवं महाहनुम्। पीनकृत्तायतस्निन्धमङ्गवाहुचतुष्टयम् ॥<mark>२</mark>५५ विशालत्रक्षसं रक्तह्स्तराद्नलं शुभम्। बन्धूकिमतमुक्ताभदन्तौष्ठद्वयशोभितम् ॥२५६ पूर्ण चन्द्राननं स्निग्धं अर्युगं घननासिकम्। रम्भोमद्वयमानीलकुत्तलं स्मितचन्द्नम् ॥२५७ तरुणादित्यसङ्काशकुण्डलाभ्यां विराजितम्। हारकेयूरकटकेरङ्गुलीयैश्च भूपपै: ॥२५८ श्रीवत्सकौस्तुभाभ्याञ्च वैजयन्त्या विभूपितम्। हरिचन्दनलिपाङ्गं वस्तुरीतिलकाश्वितम् ॥२५६ शङ्खचक्रधनुर्वाणान् विभ्राणं दोर्भिरायतैः। वामाङ्के सुस्थितां देवीं तत्तकाश्वनसन्निभाम्।।२६०

पद्माक्षी पद्मवद्नां नीलकुन्तलशीर्षजाम्। आरुढयो प्रनां नित्यां पीनोन्नतपयोधराम ॥२६१ दुकूळवस्त्रसम्बीतां भूपणैरूपशोभिताम् । भज तां कामरां पद्मरम्तां सीतां विचिन्तयेत् ॥२६२ स्मणं पश्चिमे भागे धृतन्स्त्रं महाबरुम्। पार्ख भरतशत्रुव्नौ बालज्यजनपाणिनौ ॥२६३ अवतस्तु हु रूम तं बद्धाञ्जलिपुटं तथा। सुप्रीवं जाम्बवन्तश्च सुपणश्च विभीपणम् ॥२६४ नीलं नलञ्चाङ्गद्ञ भृगमं दिश्च पूजयेत्। वशिष्ठो वामदेवश्च जावालिरथ कश्यपः ॥२६४ माकग्डयश्च मीद्स्य स्तथा पवेतनारदी। द्वितीय वंग्णं प्रोक्तं रामस्य परमात्मनः ॥२६६ धृष्टिजेयतो विजयः सुराष्टो राष्ट्रवर्धनः। अलको धर्मपालश्च सुमन्तुश्चाद्टमन्त्रिणः ॥२६७ हृतोयावरणं तस्य तत्र चन्द्रादिदेवताः। कुमुराद्याश्च चण्डाद्या विमाने चान्तरीयकाः ॥२६८ एवं ध्यात्वा जगन्नाथं पुत्रये मनसाऽपि वा। षट्सहम्रं जपेन्मन्त्रं जुहुयाच सहस्रकम् ॥२६६ जुड्याबरुगा वापि शतं पुष्पाञ्जलिं न्यसेत्। एवं संपूच्य देवेशं यावज्ञीवमतन्द्रितः ॥२७० तंरहपतने तस्य सारुप्यं परमे पदे। विद्या स्त्री राज्यवित्ताद्यं यं यं कामयते हृदि ॥२७१ अन्यं देवं नमस्कृत्वा सर्वसिद्धिमवाप्नुयात्। विना वं वैष्णवं मन्त्रमन्यमन्त्रान्विसर्जयेत ॥२७२ तमेव पूजयेद्रामं तन्मन्त्रं वै जपेत् सदा। अन्यथा नाशमाप्नोति इह लोके परत्र च ॥२७३ अद्वितीयं यदा मन्त्रं तार्कब्रह्मनामकम्। जपित्वा सिद्धिमाप्नोति अन्यथा नाशमाप्नुयात् ॥२७४ सावित्री मन्त्ररत्रश्च तथा मन्त्रद्वयं शुभन्। सर्वम त्रं जपेन् पूर्वं संसिध्यर्थं जपेत् सदा ॥२७४ अजप्यैतानमहामन्त्रान्न तु संसिद्धिमाप्नुयात्। तस्माच्छत्तया जपित्वेतान् पश्चान्मन्त्रं प्रयोजयेत्।।२७६ विद्यास्त्रीवित्तराज्यादिरूपारोग्यजयार्थिनः। पुष्पाज्यविल्वरक्ताब्ज जातिदृवां द्वरेस्तथा ॥२७७ आरक्तकरवीरैश्च हुत्वा सिद्धिमवाप्नुयुः। सर्वसिद्धिमवाप्नोति तिलहोमेन वैष्णवः ॥२७८ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा। सायं प्रातश्च जुहुयात् षण्मासं विजितेन्द्रियः ॥२७६ यावज्ञीवं जपंदास्तु भक्तया राममनुस्मरन्। सदारपुत्रः सगण प्रेत्य स्वर्गे महीयते ॥२८० षट्कारयुक्तं स्वाहान्तं रामास्त्रं सम्प्रकीर्तितम्। सर्वापरमु जपन्मन्त्रं रामं ध्यात्वा महाबलम् ॥२८१ चोराप्रिशत्रुसम्बाघे तथा रागभयेषु च। वोयबातप्रहादिभ्यो भयेषु च सभक्तिकम्।।२८२

शङ्ख्यकथनुर्वाणपाणिनं सुमहाबलम्। लक्ष्मणानुचरं रामं ध्यात्वा राक्षसनाशनम् ॥२८३ सहस्रन्त्र जपन्मन्त्रं सर्वापदुम्यो विमुच्यते । सूर्योद्दे यथा नाशमुपैति ध्वान्तमाञ्ज वै।।२८४ तथैव रामस्मरणाद्विनाशं यान्त्यूपद्रवाः। एवं श्रीराममन्त्रम्य वियानं ज्ञायते नृप । ॥२८४ विधानं कृष्णमन्त्रस्य वक्ष्यामि शृणु पार्थिव ।। श्रीकृष्णाय नमो हाष म<sub>ं</sub>त्र. सर्वार्थमाध**क**. ॥२८६ कृष्णेति मङ्गलं नाम यस्य वाचि प्रवर्त्तते। भस्मीभवन्ति राजेन्द्र ! महापातककोटयः ॥२८७ सकृत् कृष्णेति यो ब्र्याद् भक्त्या वापि च मानवः। पापकोटिविनिर्मुक्तो विष्णुलोकमवाष्नुयात् ॥२८८ अश्वमेयसहस्राणि राजसूयशतानि च। भक्त्या क्रुग्णमतुं जप्त्या समाग्नोति न संशयः ॥२८६ गवाश्व कन्यकानाश्व प्रामाणाश्वायुतानि च। दत्त्वा गोदावरी कृष्णा यमुना च सरस्वती ॥२६० कावेरी चन्द्रभागादिक्षानं कृष्णेति योऽसमम्। कुञ्गेति पञ्चकुज्जत्वा सर्वतीर्थफलं लभेत्।।२६१ कोटिजन्मार्जितं पापं ज्ञानतोऽज्ञानतः कृतम्। भक्त्या कुणमनुं अन्त्रा दहाते तूलराशिवत् ॥२६२ अगम्यागमनात्पापादभक्ष्याणाञ्च भक्षणात् । सकृत् कृष्णमनुं जत्त्वा मुच्यते नात्र संशयः ॥२६३

सकृद् (कृपि) भूवाचकः शब्दो णश्च निर्दे तिवाचकः। चभयोः सङ्गतिर्यत्र तर्वह्रात्यभिधीयते ॥२**६४** णकारश्च पकारश्च बलप्राणा वृभौ म्मृतौ । आत्मन्येतौ समायुक्ती जरतो स्यापि कृ णतः ॥२६४ तक्षात कु णे.ते म त्रोज्य वाचकः परमात्मनः। कुष्मेति परमो मन्त्रः सर्ववेदायिकः स्मृतः ॥२६६ श्रियः सतः प्राणपदान् श्रीकृष्ग इति वे स्मृतः । एवमर्थ विदिखैव पश्चान्मन्त्रं जपेद्वुधः ॥२६७ सर्वकामप्रद्रवाच वीजं कान्दर्पमुच्यते । नित्यानपाया श्रीशक्तिर्मणोरस्य प्रयुज्यते ॥२६८ देवर्भि र्नारदःसाय गायत्री छन्द उच्यते । देवता रुक्मिगी भक्ता वृष्टगः सर्वफञ्जप्रदः ॥२६६ पूर्ववद्विधिना मन्त्रं गृहीत्वा वैष्णवाद्गुरोः। स्नानवस्नादिभिः शुद्ध कृत्यं कृत्त्रोर्ध्वपुण्ड्घृन् ॥३०० तुलसीकानने रम्ये देशे वा प्राङ्मुखः धुभे । कुरो कृष्णाजिने वापि पुष्पे वा शुभवासरे ॥३०१ समासीनस्तु कुर्वीत प्राणायामांश्च पूर्ववत् । आदिवीजन कुरीत पडङ्गेषु यथाक्रमम् ॥३०२ अङ्ग ठीष्वपि तेनेव न्यासकर्म समाचरेत्। मुखं वाह्नोश्च हृदये ध्वजे जान्वोश्च पादयोः ॥३०३ विन्यस्य मन्त्रवर्णानि चक्रं न्यासं ततः कृतम् । पूर्व(जन्ममयादोनि)वन्मन्त्रपादीनि स्मरे(दाभरणानि)च्छाभरणनि च ॥३०४

k

विचित्रशुभपर्यङ्के दिव्यकल्पतरोरधः। सुगन्धपुष्पसङ्कीणे सर्वतः सुविचित्रिते ॥३०४ तस्मिन् देवया समासीनं रुक्मिण्या रुक्मवर्णया । नी छोत्पलामं कन्द्र्पलावण्यं पद्मलोचनम् ॥३०६ चन्द्राननं जपापुष्परक्तहस्तपदाम्बुजम्। नीलकुष्वितकेशं च सुकपोलं सुनामिकम् ॥३०७ सुभ्रू युगं सुविम्बोष्ठं सुद्दन्तालिविराजितप । उन्नतांसं दोर्घबाहुं पीनवक्षसमन्ययम् ॥३०८ निरङ्कचन्द्रनखरं सर्वेलक्षणलक्षितम्। श्रीवत्सकौस्तुभोद्गासं वनमालामहोरसम्॥३०६ पीतामंबरं भूषणाह्यं वालाकांभं मुकुण्डलम् । हारकेयूरकटकेरङ्कुलीयैश्च शोभितप ॥३१० मौक्तिकान्वितनासाम्रं कस्तूरीतिलकाश्वितम्। हरिचन्दनिक्षप्ताङ्गं सदैवाऽऽरुद्यौवनम् ॥३११ मन्दारपारिजातादिकुसुमेः कबरीकृतम् । अनर्घमुक्ताहारश्च तुलसी वनमालया ॥३ २ चक्रशङ्कसमेताभ्यामुद्बाहुभ्यां विराजितम्। इतराभ्यां तथा देवीं समाश्चिष्टं निरन्तरम ॥३१३ अलब्कुताभिः सत्यादिमहिषीभिः समावृतम्। कालिन्दी सत्यभामा च मित्रविन्दा च सत्यवित्।।३१४ सुनन्दा च सुशीला च जाम्बवती सुलक्षणा। एता महिष्यः संप्रोक्ताः कृष्णम्य परमात्मनः ॥३१५ ६६

तामि' र राज स्त्याना सहस्रैः परिसेवितम् । तप रायनस्रोय शोभितं निधिभित्रं तम् ॥३१६ एरं त्या अहार नित्यमचयित्वा जपेन्मनुम्। भारतमासे पात्रतमावने वा स्थण्डिले हृदि ॥३१७ म्म व भेदेन त्रियनभ्यामु पट्महम्त्रं मनुं द्विजः। विष्णकुळावव अ मान्विष्णुलोकमवाप्नुयात् ॥३१८ सर्वशिक्षितानानि इह लोके परत्र च। िन्य में भागायन्तं जपेत् ध्यायन् ऋतुत्रयम् ॥३१६ नत्याः भगभः राम् विद्यासिद्धिमवाप्नुयात् । अध्यामा तु प्रचीतं वत्मरान् ह्ययुतं जपेत् ॥३२० र में निष्ठातन् करणं तिरुद्दं त्वाऽऽयुराप्नुयान् । म्हा र्राच्य वे मार्य पोडशं ज्ययुतं हरिम् ॥३२१ *।' म*ं सरमः जन्याहाजैर्मधुविमिश्रितः। प्राय क्षेत्र स्वर्धिमनां रूपौदार्यवतीं सतीम् ॥३२२ सन्द मने उपेजिन्यं मध्याह्ने तु भृतुत्रयम्। श्य । या नरामीयां ग्विसिहासने स्थितम् ॥३२३ शहर्भार्दार्भाशनी राजकुरुरपि सुसेवितम्। मादिवयार्गर्यनं शङ्खाद्यायुधधारिणम् ॥३२४ ब्या वा संप्राय होमं च जपश्चायुत संख्यया । अवज्ञिन्वद्रक्योऽपि होमं मधुविमिश्रितम्।।३२५ आस्तर्ता वियमा नोति कुवेरमहशो भवेत्। भवना गण्यकामी तु रा(स)ममण्डलमध्यगम् ॥३२६

ध्यायन्स्त्रिमासमयुतं जप्त्वा लावण्यवान् भवेत्। एवं कुष्णमनोरस्य माहात्म्यं परिकीर्तितम् ॥३२७ अनन्तान् भगवन्मत्रान् वक्तुं शक्यं न ते मया। वाराहं नारसिंहञ्च वामनं तुरगाननम्।।३०८ क्रमेणैव तु वक्ष्यामि यथावच्छृणु पार्थिव !। हुङ्कारं प्रथमं वीजमाद्यं वाराह्युच्यते ॥३२६ त्रीन् वीजानादितः कृत्वा पश्चान्मन्त्रप्रयोजनम् ॥३३० ओं नमो भगवते पश्चाहराहरूपाय भूर्भुवः। म्वः पतयेति भूपतिन्वं मे देहीति तदाप्यायस्वेति ॥३३१ अङ्गुलीपु यथाऽङ्गेषु वीजेनाऽऽयेन वै क्रमान्। यथा सन्त्यासवद्भृत्वा पश्चाद्धन्यानं समाचरेन ॥३३२ वृहत्तनुं वृहद्प्रीवं वृहद्ंष्ट्रं सुशोभनम्। समस्तोदवेदाङ्गसाङ्गोपाङ्गयुतं हरिम् ॥३३३ रजताद्विसमप्रख्यं शतबाहुं शतेश्रणम्। उद्वृत्य दंष्ट्रया भूमि समालिङ्गच भुजेर्मृदा ॥३३४ ब्रह्मादित्रिद्रोः सर्वैः सनकाद्यैर्मुनीश्वरः । स्तूयमानं समन्ताच गीयमानश्च किन्नरै: ॥३३४ एवं ध्यात्वा हरिं नित्यं प्रातरष्टोत्तरं शतम। जप्त्वा लभेच भूपत्वं ततो विष्णुपुरं व्रजेत् ॥३३६ नमो यज्ञवराहाय इत्यष्टाक्षरको मनुः। उक्तबीजन्नयं पृवं कृत्वा मन्त्रं जपेद्वुधः ॥३३७

मूलमन्त्रमिदं प्राहुर्वाराहं मुनिपुङ्गवाः। एतमेव परं मन्त्रं जप्त्वा भूमिपतिर्भवेन ॥३३८ नित्यमष्टमहम्मं तु जपेद्विण्णुं विचिन्तयन् । कमलैर्विल्त्रपत्रैर्वा जहुयाच दशांशकम् ॥३३६ एवं संवत्सरं जप्वा सार्वभौमो भवेदुध्वम् । राज्यं कृत्वा च धर्मेण पश्चाद्विष्णुपदं ब्रजेत् ॥३४० विधानं नारमिंहम्य मनोर्वक्यामि सुत्रत ! उद्रं वीरं महाविष्णुं ज्वलन्तं सर्वतोमुखम् ॥३४१ नृमिहं भीपणं भद्रं मृत्योमृत्युं नमाम्यहम्। आर्पं ब्रह्माऽनुष्टुप्च्छन्दो देवना च नृकेसरी ॥३४२ चतुश्चतुश्च षट् पट्च षट्चतुश्च यथाक्रमान् । शिगो ललाटनेत्रंपु मुखवाह्नङ्विसन्धिपु ॥३४३ साम्रेषु कुक्षौ हृद्ये गले पार्श्वद्वयेऽपि च । अपराङ्गे ककुद्मे(दि)च न्यसेद्वर्णान्यनुक्रमान ॥३४४ वायोर्शाक्षरं यत्तु वहृङ्कारं जपेन सकृत्। विन्दुना सहितं यत्तु नृमिहं वीजमुच्यते ॥३४५ अङ्गुलीपु तथाङ्गेषु न्यासन्तेनैव चोदितम्। तद्वीजमादितः कृत्वा मन्त्रं पश्चात्प्रयोजयेन् ॥३४६

ओं नमो भगवते वासुदेवाय नमो नरसिंहाय ज्वालामालिने दीर्घदंष्ट्रायाग्निनेत्राय सर्वरक्षोग्नाय सर्वभूतविनाशाय दह दह पच पच रक्ष रक्ष-हुं फट् स्वाहा इति ज्वालामालिपातालनृसिंहाय नमः ॥ वीजेनेवन्यासः । आं हीं क्षों हुं फट् ॥ अस्य मन्त्रस्य ब्रह्मभृषिः पङ्क्ति श्छन्दो नृसिंहो देवता नृसिंहास्त्रमिदं वीजेनैव न्यामः।

श्रीकारपूर्वो नृसिंहो द्विजयादुपरि स्थितः। त्रिःसप्तक्रत्वो जप्तुः स्यान्महाभयनिवारणम् ॥३४७ अस्य ब्रह्मा च रुद्रश्च प्रह्लादश्च महर्पयः। तथैव जगति च्छन्दो देवता च नृकेमगी। न्यासं वीजेन कुर्वीत ततो ध्यानं नृपोत्तम । ॥३४८ माणिक्याद्रिसमप्रभं निजरुचा सन्त्रस्तरक्षांगणम्। जानुन्यस्तकराम्युजं त्रिनयनं रत्नोहमद्भूपणम् ॥ बाह्भ्यां घृतशङ्घचक्रमनिशं दंष्ट्रोहसत्म्वाननम् । ज्वालाजिह्नमुद्रमकेशनिचयं वन्दे नृसिंहं प्रभुम् ॥३४६ उद्यत्कोटिरविप्रभं नरहरिं कोटिक्षपेशोज्वलम् दंष्ट्राभिः सुमुखोज्वलं नम्बमुखे दीर्घरनेकेर्मुजेः ॥ निर्भिन्नासुरनायकन्तु शशभृत्युर्थ्यामिनेत्रत्रयम् विद्युद्जिह्नसटाकलापभयदं विह्नं वहन्नं भजे ॥३५० कोपादाछोछजिद्धं विवृतनिजमुखं सोममृर्ग्यामिनेत्रं-पादादानाभिरक्तं प्रसभग्रुपरि संभिन्नदैत्येन्द्रगात्रम् ॥ चक्रं शङ्क्षं सपाशाङ्कशमुमलगदाशाङ्कं वाणान्वहन्तम भीमं तीक्ष्णावदृष्टुं मणिमयविविधाकल्पमोडे नृसिंहम् ॥३५१

महाभयेष्विदं ध्यानं सौम्यमभ्युद्येषु च । सौवर्णं मण्डपान्तस्यं पद्मं ध्यायेत्सकेसरम् ॥३५२ पश्चास्यवद्नं भीमं सोममृर्ग्याप्रिलोचनम् ।

तरुणादित्यदित्यसङ्काशं कुण्डलाभ्यां विराजितम् ॥३५३ उपेयन्यामं सुमुखं तीक्ष्णदृष्ट्विराजितम्। व्यात्तास्य मरूणोष्ठश्व भीषणैर्नयनैर्युतम् ॥३४४ सिहस्कन्धानुरूपांसं वृत्तायचतुर्भृजम् । जपासमाङ्घिहस्ताव्जं पद्मासनसुसंस्थितम् ॥३४४ श्रीवत्मकौस्तुभोरस्कं वनमालाविराजितम्। केश्राङ्गदहाराह्यं नूपुराभ्यां विराजितम् ॥३५६ चक्रशङ्खाभयवरचतुर्हस्तं विभुं स्मरेत्। वामाङ्के संस्थितां लक्ष्मीं मुन्दरीं भूपणान्विताम ॥३५७ विव्यचन्दनिष्ठप्ताङ्गी दिव्यपुष्पोपशोभिताम्। गृहीतपद्मयुगलमातुलिङ्गकरां चलाम् ॥३५८ एवं देवीं नृसिंहस्य वामाङ्कोपरिसंस्थिताम्। ध्यात्वा जपेज्ञपं नित्यं पूजयेश्व यथाबिधि ॥३५६

श्रों हीं श्रीं श्रीं नृसिंहाय नमः ॥
इमं लम्मीनृसिंहस्य जपेन सर्व्वार्थदं मनुम्।
अष्टोत्तरमहम्मं वा जपेन सन्ध्यासु वाग्यतः ॥३६०
अत्वण्डविल्वपत्रेश्च जुहुयादाज्यमिश्रितैः ।
सर्वसिद्धिमवाप्नोति पण्मासं प्रयतो भवेन् ॥३६१
देवत्वममरेशत्वं गन्धर्वत्वं नथा नृप !।
प्राप्नुवन्ति नराः सर्वं स्वग मोक्षञ्च दुर्लभम् ॥३६२
यं यं कामयते चित्ते तं तमेवाऽऽज्याद् ध्रुवम् ।
ब्रह्मर्षी नत्र गायत्री नरसिंहश्च देवता ॥३६३

तदेव वीजं शक्तिः श्रीमनोरम्य विधायत । न्यासमध्येन बीजन चाचनं तुलमाः "ते त्र पूर्वोक्तविधिना पीठे पूजियत्वा समानित परितः पूजयेदिश्च गमटं शङ्गुरं नथा ॥ ... शेपच पदायोनि च श्रियं माया र्यात नवा पुष्टि समर्बेदिश्च ततो लोकेश्वरान यज्ञास्तर महाभागवनं देत्यनाशकं देवमणन एवं सम्पूज्य देवेशं नारमितं सन । सम् ।। . ५ तत्पदं समवाप्नोति मुदितः सजन सन कर्परधवलं देवं दिन्यकुण्डलम्।पनम् ॥-किरीटकेयूरधरं पीताम्बरधरं ५ स् पुद्मासनस्थं देवेशं चन्द्रमण्डलभध्यनम् ते ... सुरुयंकोटिप्रतीकाशं पूर्णचन्द्र न राज्यम मेखळाजिनदण्डादियायणं । ५८ एप ५५ । ५५ ४ कलघौतमयं पात्रं द्वानं ।स्रार्कान पीयूनकलशं वामे दव'नं डिस्जं अन्त 🖘 सनकाद्ये. स्तूयमानं मर्बद्वेन्य लाल-एवं ध्यात्वा जपेनित्यं स्वामन न उन हिन ॥ ५५ विष्यवे वामनायेति प्रणवादिनसं तन्त्र । इन्द्रार्पञ्च विराट्छन्दो देवता व सर स्वयम ॥०७० सुधावीजं सुदीर्घन्तु बीजमाचन्तु पामनम्। तेनैव तु पड्डाद्यां न्यासं कुर्वित उष्णयः । ५ ७४

दध्यन्नं पायशं वाऽऽपि जुहुयात्त्रत्यहं द्विजः। औपासनाग्नी जुहुयादृशेत्तरशतं गृही ॥३७५ कुवेरसदृशः श्रीमान् भवेत्सद्यो न संशयः। ओनमो विष्णवे पतये महावलाय स्वाहा ॥३७६

इति वामनमन्त्रः-

समृत्वा त्रैविक्रमं रूपं जपेन्मंत्र मनन्यधीः ॥३७७ सुक्तो बन्धाद्भवेत सद्यो नात्र कार्य्या विचारणा । ह्रीं श्रीं श्रीवामनाय नम इति मूल्लमन्त्रः । ब्रह्मार्ष चेव गायत्री देवता च त्रिविक्रमः । न्यासं बीजन जप्त्वानष्टोत्तरसहस्रकम् ॥३७८ इति वामनमन्त्रम्य जपादन्नपतिभवेत् । उद्गीथप्रणवोद्गीथ सर्ववागीश्वरेश्वर ! ॥३७६ सर्ववेदमयाचिन्त्य ? सर्वं वोधय मे पितः । ।

हुं एं हयत्रीवाय नमः ॥

नित्याषं (ब्रह्माषं) चैव गायत्री हयत्रीवोऽस्य देवता ।
न्यासं बीजेन कृत्वाऽथ पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् ॥३८०
शारच द्रशाङ्कप्रभमश्ववक्तं मुक्तामयेराभरणैरुपेतम् ।
स्थाङ्गशङ्काञ्चितवाहुयुगं जानुद्वर्णन्यस्तरुरं भजामः ॥३८१
शङ्काभः शङ्कचके करसरसिजयोः पुस्तकं चान्यहस्ते
विश्रद्व्याख्यानमुद्रां लसदितरकरो मण्डलस्यः सुधांशोः ।
आसीनः पुण्डरीके तुरगवरशिराः पूरुवो मे पुराणः
श्रीमानज्ञानहारी मनसि निवसता मृग्यजुःसामरूपः ॥३८२

एवं ध्यात्वा जपेन्मत्रं सन्ध्यासु विजितेन्द्रियः। सर्ववेदार्थतत्त्वज्ञो भवेदत्र न संशयः ॥३८३ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमटोत्तरन्तु वा। जपे**च** जुह्याचैवं साज्यैः शुश्र<sup>े</sup>ः सतण्डुलैः ॥३८४ विद्यासिद्धिमवाप्नोति पण्मासं द्विजसत्तमः । अष्टादशानां विद्यानां वृहस्पतिममो भवेन् ॥३८५ सहस्रारं हुं फडित्येवं मूलं सीदर्शनं मनुम्। अहिर्बुध्न्योऽ नुष्टुभम्य देवता च सुद्रशनम् ॥३८६ अचक्राय विचक्राय सुचक्राय तथैव च । विचक्राय सुचकाय ज्यालाचकाय वै क्रमात् ॥३८७ पडङ्गेषु च विन्यम्य पश्चाद्ध्यानं समाचरेत् । नमश्रकाय स्वाहेनि दशदिक्ष यथाक्रमम्।।३८८ चक्रेण सह बध्नामीत्युत्तया प्रतिदिशेत्ततः। **जैलोक्यं रक्ष रक्ष हुं फट्स्वाहा इति वै क्रमात् ॥३८६** अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सर्वरक्षाकरः परः। ओं मूर्धित स भ्रूमध्ये हं मुखे स्नाहमधीत्यतः ॥३६० रं गुह्ये हं तु जान्वोश्च फट् पद्द्वयसन्धिषु । कल्पान्तार्कप्रकाशं त्रिभुवनमग्विलं तेजसा पूरयन्तम् रक्ताक्षं पिङ्गकेशं रिपुकुलभयदम्भीमदृष्ट्राजहासम्। शङ्कं चक्रं गदाव्जं पृथुतरमुशलं चापपाशाङ्कशाङ्गम् विश्राणन्दोभिराद्यं मनसि मुगरिपुं भावयेशकसंज्ञम् ॥३६१ ओं नमो भगवते महासुदर्शनाय हुं फट्। इति पोडशाक्षर मिति सुदर्शनविधानम्।।

इति बृद्धहारीतम्मृतौ विशिष्टयम्भैशास्त्रे भगवन्मन्त्रविधानं नाम नृतीयोऽध्यायः ॥

> ।। चतुर्थोऽध्यायः ।। अथ प्राप्तकालभगवत्ममाराधनविधिवर्णनम् । हारीत उवाच ।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र ! विष्णोराराधनं परम् । प्रत्यूषं सहसोत्थाय सम्यगाचम्य वारिणा ॥१ आत्मानं देहमीशक्च चिन्तयेन मंयतेन्द्रियः । ज्ञानानन्द्रमयो नित्यो निर्विकारो निरामयः ॥२ देहेन्द्रियात्परः माक्षात्पक्च विशात्मको ह्यहम् । अभिन् देशं वमाम्यद्य शेपभृतो हि शार्क्षिणः ॥३ शुक्रशोणितमम्भूते जरारोगाद्युपद्रवे । मेदोरक्तास्थिमांसादिदेहद्रव्यममाकुले ॥४ मलमूत्रवसापङ्को नानादुःवसमाकुले । तापत्रयमहावह्निद्धमानेऽनिशम्भृशम् ॥५ इपणात्रयकृष्णाहिवाध्यमाने दुरत्यये । क्रिश्यामि पापभृविष्ठे कारागृहनिभेऽशुभे ॥६

१०५१

बहुजन्मबहु म्लेशगर्भवासादि दु खिते। वसामि सर्वदोपाणामाळ्ये दुःखभाजने liv अम्माद्विमोक्षणायैव चिन्तयिष्यामि कशवम् । वैकुण्ठे परमञ्बोम्नि दुग्धान्धौ वेष्णवे पदे ॥८ अनन्तभोगिवर्यङ्कं ममासीनं श्रिया सह । इन्द्रनीलिनभं श्यामं चक्रशङ्खगदाधरम् ॥६ पीताम्बरधरं देवं पद्मपत्रायतेक्षणम्। श्रीवत्सकौस्तुभोरस्कं सर्वाभरणमूपितम् ॥१० चिन्तयित्वा नमस्क्वःवा कीर्तयेद्दिव्यनामभिः। सङ्कीत्ये नामसाहस्रं नमस्कृत्वा गुम्ननिप ॥११ तुलसीं काञ्चनं गाञ्च संस्पृश्याथ समाहितः। दृराद्बहिर्विनिष्क्रम्य शुचौ देशे च निर्जने ॥१२ कर्णस्थ ब्रह्मसूत्रस्तु शिरः प्रावृत्य वाससा । कुर्यान्मूत्रपुरीपं च ष्टीवनोच्छ्यामवर्जितः ॥१३ अहन्युदङ्मुखो रात्रो दक्षिणाभिमुखस्तथा। समाहितमना मौनी विण्मूत्रो विस्तृत्रेत्ततः ॥१४ उत्थायातिन्द्रतः शौचं कुर्याद्भ्यद्धृतेर्जलैः । गन्धरेपक्षयकरं यथासङ्ख्यां मृद्। शुचिः ॥१४ अद्धेप्रसृतिमात्रां तु मृदं द्याद्यथोक्तवत् । पडपाने त्रिलिङ्गं तु सन्यहस्ते तथा दश ॥१६ उभयोः सप्त द्याच तिम्नस्तिम्नस्तु पाद्योः। आजङ्कान्मणिबन्धात्तु प्रक्षाल्य शुभवारिणा ॥१७

उपविष्ठः शुचौ देशे अन्तर्जानुकरस्तथा। पवित्रपाणिराचामेत् प्रसृतिम्थः स वारिणा ॥१८ त्रिः प्राश्याङ्गप्टमृत्रेन द्विधोनमृज्य कपोलकौ । मध्यमाङ्कुलिभिः पश्चाद्द्विरोष्टौ मृजयेत्तथा ॥१६ नासिकौष्ठान्तरं पश्चान् मर्वाङ्गलिभिरेव च। पादौ हस्तौ शिरश्चेव जलैः संमार्जयेत्ततः ॥२० अङ्कुष्ठतर्जनीभ्यां तु ग्षृगेन द्वी नामिकापुटौ । अङ्कष्टानामिकाभ्यां तु चक्षःश्रोजे जलैः स्पृगेन ॥२१ कनिष्ठाङ्गप्रनाभिश्व तलेन हृद्यन्ततः। सर्वाङ्कुलिभिः शिगमि बाहुमूले तथैव च । नामभिः केशवाद्येश्च यथासङ्ख्यमुपस्पृशेन ॥२२ द्विराचामेतु सर्वत्र विण्मूत्रोत्मर्जने त्रयम्। सामान्यमेतत् सर्वेपां शौचं तु द्विगुणोदितम्।।२३ आचम्यातःपरं मौनी दन्तान् काष्ठेन शोधयेत्। प्राङ मुखोदङ् मुखो वापि कपायं तिक्तकण्टकम् ॥२४ कनिष्ठात्रमितम्थूलं द्वादशाङ्गलमायतम् । पर्वाधः क्रुतकूर्चेन तेन दन्तान्निकर्पयेन् ॥२४ अपां द्वादशगण्डुपैः वक्त्रां मंशोधयेद्दिवः। मुखं संमार्जियत्वाऽथ पश्चादाचमनं चरेत्। पवित्रपाणिराचम्य पश्चात स्नानं समाचरेत् ॥२६ नद्यां तडागे खाते वा तथा प्रस्नवणे जले। तुलसीमृत्तिकां धात्रीमुपलिप्य कलेवरे ॥२७

अभिमन्त्र्य जलं पश्चानमूलमन्त्रोण वैष्णवः। निमञ्ज्य तुळसीमिश्रं जलं सम्प्राशयेत्ततः॥२८ आचम्य मार्जनं कुर्यात् कुरोः सतुलसीद्लैः । पौरुवेण तु सुक्तेन आपो हि छादिभिस्तथा ॥२६ निमज्ज्याप्सु जले पश्चात्त्रिवारमघमर्पणम् । उत्थाय पुनराचम्य पश्चाद्प्सु निमज्ज्य वै॥३० मन्त्ररत्नं त्रिवारं तु जपन्ध्यायन सनातनम्। पिवेदुत्थाय तेनैव त्रिवारमभिमन्त्रितम् ॥३१ आचम्य तर्पयेद्देवान् पितृनपि विधानतः। निष्पीड्य कूले वस्नं तु पुनराचमनं चरेत् ॥३२ धौतत्रस्नं मोत्तरीयं सकौपीनं धरेत्स्थितम् । निबद्वशिखकच्छस्तु द्विराचम्य यथाविधि ॥३३ धारयेदूर्ध्वपुण्डाणि मृता शुम्राणि वैष्णवः । श्रीकृष्णतुलसीमूलमृदा वाऽपि प्रयत्नतः ॥३४ मन्त्रोणैवाभिमन्त्रयाथ लालाटादिषु धारयेत्। नासिकामूलमारभ्य विभृयाच्छीपदाकृति ॥३४ सान्तरालं भवेत् पुण्ड़ँ दण्डाकारं तु वा तथा। ललाटादि तथा पश्चाद्वीवान्तं केशवादिभिः॥३६ नाम्नां द्वादशभिर्मूर्धिन वासुदेवं तलाम्बुना । पवित्रपाणिः शुद्वातमा सन्ध्यां कुर्यात् समाहितः ॥३० प्रादेश**मात्रौ कौ**शेयौ साप्रौ मूलयुतौ तथा। अन्तर्गर्भी सुविमली पवित्रं कारयेद्दिजः ॥३८

देवार्चने जपे होमे कुर्याद्बाह्यंय पवित्रकम्। इतरे वर्त्छप्रन्थिरवं धर्मी विधीयते ॥३६ पथि दर्भाश्रिता दभौ ये दभी यज्ञभूमिषु। स्तरणासनपिण्डेपु ब्रह्मयज्ञे च तर्पणे ॥४० पाने भोजनकाले च धृतान् दर्भान् विसर्जयेत्। सपवित्रकरेणीव आचामेत्प्रयतो द्विजः ॥४१ आचान्तस्य शुचिः पाणिर्यथापाणि स्तथा कुशः । सन्ध्याचमनकाले तु धृतं न परिवर्जयेत् ॥४२ अप्रमृताः स्मृता दर्भाः समिधस्तु (प्रमृतास्तु) कुशाः स्मृताः । समूलास्तु कुशा जेया श्छिन्नामास्तृणसंज्ञिताः ॥४३ कुशोद्केन यत्कण्ठं नित्यं संशोधयेद्द्विजः। न पर्युपन्ति पापानि ब्रह्मकूर्च दिने दिने ॥४४ कुशासनं सदापृतं जपहोमार्चनादिषु । केरोनैव कृतं कम सर्वमानन्यमश्नुते ॥४४ तम्मान् कुशपविशेण स ध्यां कुर्यात् यथाविधि। स्वगृद्योक्तविवानेन सन्ध्योपासित समाचरेत्।।४६ ध्यात्वा नारायणं देवं रविमण्डलमध्यगम् । गायज्याऽध्यै प्रद्धाच जपं कुर्वीत भक्तिमान् ॥४७ सूर्यस्याभिमुखो जप्त्वा मावित्री नियतात्मवान्। उपस्थानं ततः कृत्वा नमस्कुर्यात्ततो हरिम्।।४८ नमो ब्रह्मण इत्यादि जपित्वाऽथ विसर्जयेत् । ततः सन्तर्पयेद्विष्णुं मन्त्ररत्नेन मन्त्रवित् ॥४६

शतवारं सहस्रं वा तुलसीमिश्रितंजेलैः। वैकुण्ठपार्षदं पश्चात्तपंयेच यथाविधि ॥५० अनन्तदीपारेखाद्दिवनानामनुक्रमान्। एकैकमञ्जलि दत्त्वा पश्चादाचमनं चरेत्। श्रीशस्याऽऽराधनार्थं वे कुर्यात पुष्पस्य स*च*्चयम्।।५१ तुलसीविल्वपत्राणि दर्वा कोगयमेव च। विष्णुकान्तं मरुवकं केशाम्बुद्दलं तथा ॥५२ उशीरं जातिकुषुमं कुन्दञ्चेव कुरण्टकम् । शमीञ्बम्पाङ्कदम्बञ्च चूनपुष्पं च माधवीम ॥५३ पिष्पलम्य प्रबालानि जाम्बवं पाटलं तथा। आस्फोटं कुटजं लोघं कर्णिकार च किंशुकम् ॥५४ नीपार्जुने शिशपञ्च श्वेतिकशुकनामकम्। जम्बीरं मातुलिङ्गं च यूथिकारचयं तथा ।।५५ पुन्नागं वकुलं नागकेशराशोकमहिकाः। शतपत्रं च हारिद्रं करवीरं प्रियङ्क च ॥५६ नीलोत्पलं नृत्पलञ्च नन्द्यावर्तञ्च केतकम्। घटजं स्थलपद्मं च मर्वाणि जलदानि च ॥५७ तत्कालसम्भवं पुष्पं गृहीत्वाऽथ गृहं विशेत्। वितानादियुते दिव्यपूपदीपैर्विराजिते ॥ ४८ चन्दनागरुकस्तूरी कर्पूर।मोदवामिते। विचित्ररङ्गवल्याह्ये मण्डपे रत्नपीठके ॥४६

विस्तीर्णपुष्पपर्यङ्के देव्या सहितमच्युतम्। सन्निधा वासने स्थित्वा कुशे पद्मासने स्थितः ॥६० प्राणायामविधानेन भूतशुद्धि विधाय च। प्राणायामत्रयं कृत्वा पश्चाद्ध्यानं यथोक्तवत् ॥६१ परव्योन्नि स्थितं देवं लक्ष्मीनारायणं विभुम्। पराभिः शक्तिभिर्युक्तं भूळीळाविमळादिभिः ॥६२ अनन्तविहगाधीशसेन्याद्येः सुरसत्तमेः । चण्डाचै:कुमुद्राचैश्च लोकपालेश्च सेवितम् ॥६३ चतुर्भृजं सुन्दराङ्गं नानारत्रविभूपणम्। वामाङ्कस्थित्रया युक्तं शङ्खचक्रगदाधरम्।।६४ मन्त्ररत्नविधानेन न्यासमुद्रादिकर्मकृत्। पञ्जीपनिषदं न्यासं कुर्यात् सर्वत्र कर्मसु ॥६४ ओ मीशाय नमः परायेति परमेव्ह्यात्मने नमः। ओं यां नमः परायेति ततः पुरुवात्मने नमः ॥६६ ओं रां नमः परायेति ततो विश्वात्मने नमः। ओं वां नमः परायेति स्वनिवृत्यात्मने नमः ॥६७ ओं छा नमः परायेति ततः सर्वात्मने नमः। शिरोनासाम्रहृदयगुह्यपादेषु विन्यसेत्।।६८ यथाक्रमेण तन्मन्त्रान् पञ्चाङ्गेयु क्रमान्त्यसेत्। तन्मुद्रया तदाऽऽत्राह्य द्यादासनमेव च ॥६६ पाद्याच्याचमनस्नानपात्राणि स्थाप्य पूजयेत्। पूरियत्वा शुभजलं पानेपु कुसुमेर्युतम् ॥७०

ऽध्यायः ]

द्रव्याणि निश्चिपेत् तेषु मङ्गलानि यथाक्रमात्। उशीरं चन्द्नं कुष्टं पाद्यपात्रं विनिक्षिपेत् ॥७१ विष्णुकान्तभ्व दृर्वाभ्व कौगेयान् तिलसपपान्। अक्षतांश्च फलं पुष्पमर्घ्यपात्र विनिक्षिपेत् ॥७२ जातीफलञ्च कर्पर मेलाञ्चाचमनीयके। मकरन्दं प्रवाल 堵 रत्नं सौवर्णमेव च ॥७३ तानि द्यात् स्नानपात्रं धात्रो सुरतरं तथा। द्रव्याणामप्यलाभे तु तुलसीपत्रमेव च ॥७४ चन्द्रनं वा सुवर्णं वा कौरोयं वा विनिक्षिपेत । दर्शयेत सुरभेर्मुद्रा पूजयेत् कुसुमत्रजेः ॥७५ अभिमन्त्रय च मन्त्रोण पदीपेर्निवंद्येत् । अनन्तं चोद्धरण्या च दद्यात्पाद्यादिकं तथा ॥७६ तत्पात्रश्नालनं कृत्वा तथा पुरुपाञ्जलि न्यसेन् । सौवर्णानि च रौप्याणि ताम्रकास्यानि योजयेत्।।७७ पात्राणामप्यलाभे तु शङ्क्षमेकं विशिष्यते । शङ्कोदकं सदा पूतमतिप्रियतरं हरेः ॥७८ **उद्धरि**ण्या जलं दद्यान्नात्सु शङ्खं निमज्जयेत्। अष्टाक्षरेण मनुना मन्त्ररतंन वा यजेन्।।७६ पाद्यार्घ्याचमनं दत्त्वा मधुपर्क निवेद्येत । पुनराचमनं दस्वा पादपीठं निवेदयेन् ॥८० द्न्तधावनगण्डूषद्र्पणालोचनं तथा। निवेद्याभ्यञ्जनं तेलेनोद्वत्तं केशरञ्जनम् ॥८१ ξų

सुखोष्णितजलैः स्नानं पुनरुद्धर्तनं चरेत्। कुङ्कमेन हरिद्रेण चन्दनेन सुगन्धिना ॥८२ उद्बर्त्य गन्धतोयेन स्नापयेच पुनस्ततः। स्नानपात्रोदकं पश्चादादाय कुप्तुमैः सह ॥८३ पौरुषेण तु सूक्तेन स्नापयेत्कमलापतिम्। मार्जयेच्छुभवस्रेण दीपैनीराजयेत्तथा ॥८४ वस्रञ्चैवोपवीतश्व दद्यादाभरणानि च। कस्तूरीतिलकं गन्धं पुष्पाणि सुरभीणि च। अङ्के निवेश्य देवस्य लक्ष्मी संपूजयेत्तथा ॥८५ पाश्वयोरद्धं धरणी महिष्यः पतिता स्तथा। विमलोत्कर्पणीत्यापः पूर्वमेव प्रकीर्तिताः ॥८६ चण्डादि द्वारपालांश्च कुमुदादीस्तथार्चयेत्। वासुदेवः सीरपाणिः प्रद्युम्नश्च उषापतिः । दिश्च कोणेषु तत्पत्न्यो लक्ष्मीरेव रती उषा ॥८७ द्वितीयावरणं पश्चात्केशवाद्याः सशक्तयः। संकर्षणाद्यः पश्चान्मत्त्यकूर्माद्य स्तथा ॥८८ श्री र्छक्मी: कमला पद्मा पद्मिनी कमलालया। रमा वृषाकपेर्धन्या वृत्तिर्यज्ञान्तदेवता ।।८६ शक्तयः केशवादीनां संप्रोक्ताः परमे पदे । हिरण्या हरणी सत्या नित्यानन्दा त्रयी सुस्ना ॥६० सुदन्धा सुन्दरी विद्या सुशीला च सुलक्षणा। सङ्क्ष्णादिमूर्तीनां शक्तयः समुदाहृताः॥ ६१

ऽध्यायः ]

वेदा वेदवती धात्री महालक्ष्मीः सुखालया । भागवी च तदा सीता रेवती रुक्मिणी प्रभा । १६२ मत्स्यकूर्मादिमूर्तीनां शक्तयः सम्प्रकीर्तिताः। एवं सशक्तयः पूज्याः केशवाद्याः मुरेश्वराः ॥६३ पश्चात्सशक्तयः पूज्या श्रकशङ्खादिहेतयः। शङ्कं चक्रं गदां पद्मं शार्क्षेश्व मुसलं हलम् ॥६४ वाणञ्च खड्गस्वेटं च छुरिका दिव्यहेतयः। भद्रा सौम्या तथा माया जया च विजया शिवा।।६४ सुमङ्गला सुनन्दा च हिना रम्या सुरक्षिणी। शक्तयो दिव्यहेतीनां पूजनीयाः मनातनाः ॥६६ बर्हिर्लोकेश्वराः पूज्याः साध्याश्च सममद्गणाः। एवमावरणं सर्वमर्चयेत्परमात्मनः। पुनरध्यादिकं दत्त्वा धूपदीपैर्निवेदयेत् ॥६० प्रागृदीच्याञ्च सदृशं नागराजं तथापरे। पुरतो वैनतेयश्व पूजयेच्छक्तिभिः मह ॥६८ सेनापतेः सूत्रवर्ती नागराजस्य वारुणीम् । भद्राश्वलां तथा यस्य पूजयेद्वैष्णवोत्तमः ॥६६ गुम्गुलं महिषाक्षीञ्च सालनिर्यासमेव च । अगर्ह देवदारुच उशीरं श्रीफलं तथा ॥१०० हीबेरं चन्दनं मुस्ता दशाङ्गं धूपमुच्यते। गवाज्येन च संयोज्यं द्धादुध्पं सुवासितम् ॥१०१

कार्पासमार्कं श्रौमञ्च शाल्मलीक्षीरकोद्भवम्। अम्भोजं कौटजं काशतू लिकाऽष्टाङ्गमुच्यते ॥१०२ गवाज्यं तिल्तेलं वा कुसुमैश्च सुवासितम् । संयोज्य वह्निना दीपं भत्तया विष्णोर्निवेदयेत्॥१०३ नवेद्यं शुभहृशान्नं पायसापूपसंयुतम् । फलेश्च भक्ष्यमोज्येश्च पानकेर्व्यञ्चनः सह ॥१०४ गवाज्य च द्वि क्षीरं शर्कराच्च निवेद्येन्। <mark>शुद्धं हविष्यं हृद्यश्च सुरुच्यं</mark> वे निवेद्येत् ॥१०४ यच्छास्त्रेषु निषिद्धं तु तत्प्रयत्नेन वर्जयेन्। कोद्रवं चौलकं लुव्यं यावनालं तथा सितम्॥१०६ निष्पावश्व मसूरश्व तुन्छधान्यानि सर्वशः। भुक्तं पर्युवितं रूक्षं यज्ञं कर्म्मणि वर्जयेत् ॥१०७ वजयेदारनालञ्च मद्यमांसममानि च। निर्यासान्वजीयेत् मर्व्वान्विना हिङ्कु च गुगगुलुम् ॥१०८ **ब्रत्राकं मू**लकं शिप्र करञ्जं लशुनं तथा । कुम्भीद्रलञ्च पिण्याकं श्वेतवृन्ताकमेव च ॥१०६ आत्रश्व नालिकाशाकं नालिकेर्याव्यमेव च। (पीलुं)बिल्बञ्च शणपुज्यश्च भूस्रुणं भौतिकं तथा।।११० कोशातकी विम्वफलं मद्यमांससमानि च। अभक्ष्याण्यप्यशेपाणि वर्जायेदाज्ञकर्मणि ॥१११ कालिङ्गं कतकं बिल्वफलं जन्तुफलं तथा। वंशाङ्करमलांबु च तालहिन्तालके फले ॥११२

ऽध्यायः ो

१०६१

अश्रत्थं प्रश्ननीप भ्व वटमारम्बधं तथा। कलम्बिका च निर्गृण्डिमुण्डिवात्त्रांकमेव च ॥११३ क्रपरं लवणञ्चेव स्वेतश्व बहतीफलम् । नवचर्मातकञ्चेव चिश्विलञ्चेति यत्नतः ॥११४ विज्ञयानि च भक्ष्याणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्भणि। श्लेप्मातकञ्च विद्वजानि प्रत्यक्षलवणं तथा ॥११४ अनिर्दर्शाहगोक्षीरमवत्साया स्तथाऽऽविकम्। ओष्ट्रमेकशफञ्चेंव पशूनां विड्भुजामपि ॥११६ अतिदीर्णं तथा तक्रं करनिम्मन्थितः द्धि । ताम्रेण संयुतं गव्यं क्षीरश्व लवणान्वितम् ॥११७ घृतं छवणसंयुक्तं प्रयत्नेन विवर्जयेत्। सूपान्नश्व गुड़ान्नश्व शकेरामधुसंयुतम् ॥११८ मरीचिमिश्रं दध्यन्नं पायसान्नं फलैः सह । तुलसीदलसम्मिश्रं जलैः सम्प्रोक्ष्य वाग्यतः ॥११६ अष्टार्विशतिवारन्तु मूलमन्त्राभिमन्त्रितम्। मुद्राश्व मीरभेयीन्तां दर्शयेन्मन्त्रमुचरन् ॥१२० सुधाब्धिममृतं बीजं चिन्तयन् परमात्मनः। द्द्यात् पुष्पाञ्जलि पश्चादशवारं समाहितः ॥१२१ पेपणक्रियया (आपोशनक्रिया)पूर्वमन्नमस्में निवेद्येत्। शतवारं जपेन्मन्त्रं घण्टाशब्दं निनाद्यन् ॥१२२ जपत्पीयूबदेवत्यान्मन्त्रानेकाप्रचेतसा । हरेर्भुक्तवतः पश्चाइद्याद्वारि सुवासितम् ॥१२३

पश्चादचमनं दद्याज्जलैर्गन्धमिविश्रितैः। अभ्यर्चा पौरुषस्यास्य सुक्तस्य सुरसत्तमान् ॥१२४ विष्ण्वर्पितचतुर्भागं क्रमाद्धव्यस्य चार्पयेत्। अनन्ततार्क्ष्यसेनेशपवित्राणां निवेद्येत् ॥१२४ तीर्थेन सहितं हव्यं पृथक् पात्रेषु निक्षिपेत्। सवषां वारिपूर्वेण पश्चात् पुष्पाञ्चलिश्वरेत् ॥१२६ नीराजनं ततो दत्त्वा ताम्बृलञ्च निवेदयेत्। प्रणमेच ततो भत्तया रम्यैः स्तोजैः ग्रभाह्वयैः ॥१२७ प्रसार्य बाहू पादौ च बद्धे नाञ्जलिना सह। स्तुवन् स्तुतिभिरेवं तु प्रणामो दीर्घ उच्यते ॥१२८ नत्वा दीर्घप्रणामेश्च स्तुत्वा स्तुतिभिरेव च। सर्वश्च वैष्णवैर्मन्त्रीः कुर्यान् पुष्पाञ्जलि ततः ॥१२६ सुक्तेश्च विष्णुदैवत्यैर्नामभिः शार्ङ्गिणस्तथा । ततः शुभासने स्थित्वा जपेन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥१३० न्यासमुद्रादिपूर्वेण ध्यायन्वै कमलेक्षणम् । अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥१३१ जप्त्वा पुष्पाञ्जलि दद्याद्यथाशक्त्या च मन्त्रतः। नमेखोगेन देवेशः हृदिस्थं कमलेक्षणम् ॥१३२ मनसि वाऽचंयित्वास्मिन् समाधौ विरमेन् सुधीः। प्रातरौपासनं कृत्वा तत्र होमं समाचरेत्।।१३३ आज्येन चरुणा वाऽपि समिद्भिर्वा च यिन्नयैः। तण्डुलैचू तमिश्रवि बिल्पजैरथापि वा ॥१३४

तिरुवि कुसुमे वांऽपि यवैमिश्रभिरेव वा। यज्ञरूपं हरि ध्यात्वा स्ववंदेमयं विभूम् ॥१३४ दिव्याभरणसम्पन्न शङ्कचक्रगदाधरम्। वरदं पुण्डरीकाक्षं वामाङ्कस्थित्रयं हरिम ॥१३६ यज्ञस्वरूपिणं वह्नौ ध्यायन् मन्त्रद्वयेन च। सबश्च वैष्णवैर्मन्त्रीरेकैकेनाऽऽहृति तथा ॥१३७ नामभि: केशवाद्येश्व सूक्तें विष्णुप्रकाशकेः। वकुण्ठपाषेदं सर्वं हुत्वा चैव तता विलम् ॥१३८ क्षिपेचतुर्विधान् भूतानुदिश्य च ततो भुवि। आचम्य पूजयेत्पश्चात्तदीयान् सुसमाहितः ॥१३६ तेभ्यः प्रणम्य भ<del>त</del>्तयाऽथ सन्तर्ग्य पितृदेवताः। वेदमध्यापयेच्छत्तया धर्मशास्त्रञ्च संहिताः ॥१४० सात्विकानि पुराणानि सेतिहासानि वेष्णवः। सर्व्वोपनिपदामर्थं सद्भिः सह विचिन्तयेत् ॥१४१ योगक्षेमार्थवृद्धिञ्च कुर्य्याच्छक्ता यथाईतः। ब्राह्मणाः क्षत्त्रिया वेश्याः शूद्रा वर्णा यथाक्रमम् ॥१४२ आदास्त्रयो द्विजाः प्रोक्ता स्तेषा व मन्त्रसिक्कयाः। सवर्णेभ्यः सवर्णासु जायन्ते हि सजातयः ॥१४३ तेषां सङ्करयोगाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः। विप्रान्सूर्घाभिषिक्तस्तु क्षत्त्रियायामजायत ॥१४४ वैश्यायान्तु तथाऽऽम्बष्टो निषादः शूद्रया तथा । राजन्याद्वेश्यशृद्यान्तु माहिष्योमी तु ती स्मृती ॥१४४

शुद्यां वैश्यात् तु करणस्थिरैवां तेऽनुस्रोमजाः। विप्रायां क्षत्त्रियात् सूतः वश्याद्वंदेहिकस्तथा ॥१४६ चण्डालस्तु तथा शूद्रात्सर्वकर्मसु गर्हितः। मागधः क्षत्त्रियायां वै वैशयाक्षत्त्रात् तु शूद्रतः ॥१४७ शुद्राद्योगवं वंश्या जनयामास वै सुतम् । रथकारः करण्यान्तु माहिष्येण प्रजायते ॥१४८ असत्सन्ततयो ज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः । प्रतिलोमासु व जाता गर्हिताः सर्वकर्मणाम् ।।१४६ एतेपां त्राह्मणाद्याश्च पट्कममु नियोजिताः। त्रिकर्मसु क्षत्त्रविशावेकस्मिन् शुद्रयोनिजः ॥१५० प्रतिप्रहुञ्च वृत्त्यर्थं ब्राह्मगस्तु समाचरेत्। असदेवासनां प्रोक्तं निषिद्धं तद्विवर्जयेत् ॥१५१ पापण्डाः पतिताः पापास्तथैव प्रतिलोमजाः। कुलटाश्च विकर्मस्था असतः परिकीर्तिताः ॥१५२ लवणं तिलकार्पासं चर्मे च त्रपुसीसकम्। आयसं मधु मांसञ्च विषमन्नं घृतं रूजम् ॥१५३ किल्विषं गजमुष्ट्रश्च सर्षपं जलमेव च। तृणं काष्ठभ्व कृष्माण्डं शिशपाभ्व विवर्जयेत ॥१५४ महिपीं गर्दभञ्चेव वाजिनश्व तथाऽऽविकम्। दासीमजां यानवृक्षा न पञ्चानडुहन्तुलाम् ॥१५५ एवमारा मसद्द्रव्यं प्रयत्नेन विवर्जयेत्। धान्यं वासांसि भूमिश्व सुवर्ण रत्नमेव च ॥१५६

### Sध्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौक्वषिवर्णनम् । १०६४

पुष्पाणि फलमूलाचं सद्द्रव्यं मुनिभिः स्पृतम् । सर्वत्र परिगृह्वीयाद् भूमि धान्यं फलादिकम् ॥१५७ भूमि यस्तु प्रगृह्वाति भूमि यस्तु प्रयच्छति । तावभौ पुण्यकर्माणौ नियतौ स्वर्गगामिनौ ॥१६८ धान्यं करोति दातारं प्रगृहीतारमेव च। धान्यं नृपवरश्रेष्ठ । इहलोकं परत्र च ॥१५६ तस्माद्धान्यं धरित्रीश्व प्रतिगृहीत सर्वतः। <del>दुसुम्भधान्य एव स्यात् वृसुम्भधान्यवान् नृप ।।।१६</del>० शीलोञ्छंनापि वा जीवेन्छ यानेषा परो वर:। जीवेद्यायावरेणेव विप्रः सबेत्र सर्वदा ॥१६१ वर्जयित्वंव पापण्डान पतिताश्चान्यद्विकान् । कृषिणा वाऽपि जीवंत सता चानुमतेन वा।।१६२ न वाहयेदनडुहं क्षुधातं श्रान्तमेव च। तस्य पुंस्त्वमहित्वेव वाहयेद् द्विजपुङ्गवः ॥१६३ कमेलोप मकुर्वन्वे कृषि कुर्वीत वै द्विजः। हरेः पूजां यथाकालं कृपिलोपे समाचरेन ॥१६४ न ब्राह्मंच मन्त्यजेद विप्र स्तथा यज्ञादिकर्म च। आपद्यपि न कुर्वीत सेवां वाणिज्यमेव च ॥१६४ असत्प्रतिप्रहं स्तेयं तथा धर्मस्य विक्रयम्। अन्यायोपार्जितं द्रव्यमापद्यपि विवर्जयेत् ॥१६६ भृतकाध्यापनं चैव सदासत्कर्मभावनम्। प्रीतये वासुदेवस्य यहत्तमसतामपि ॥१६७

महाभागवतस्पर्शात्तत्सदित्युच्यते बुधैः। तापादीन पञ्च संस्कारां स्तथाकारै स्त्रिभिर्युतः ॥१६८ हरेरनन्यशरणो महाभागवतः स्मृतः। यक्षराक्षसभूतानां तामसानां दिवौकसाम् ॥१६६ तेषां यत्त्रीतये दृत्तं तथा यद्यपि वर्जयेत्। बुद्धरुद्वौ तथा वायुर्दु र्गागणसुभैरवाः ॥१७० यमः स्कन्दो नैर्भु तश्च तामसा देवताः स्पृताः । एवं विशुद्धिं द्रव्यस्य ज्ञात्वा गृह्णीत सत्तमः ॥१७१ कृषिस्तु सर्ववर्णानां सामान्यो धर्म उच्यते। प्रतिब्रहस्तु विप्राणां राज्ञां क्ष्मापालनं तथा ॥१७२ कुसीद्बचैव वाणिज्यं विशामेव प्रकीर्तितम्। सेवावृत्तिस्तु शूद्राणां कृषिर्वा सम्प्रकीर्तिता ॥१७३ अशक्तस्तु भवेद्राजा पृथिव्याः परिपालने । जीवेद्वाऽपि विशां वृत्त्या शूद्राणां वा यथासुखम् ॥१७४ कृषिर्भृ तिः पाशुपाल्यं सर्वेपां न निपिध्यते । स्तेयं परस्नीहरणं हिंसा कुह्ककोशिक ॥१७४ स्त्रीमद्यमांसल्बणविक्रयं पतितं स्मृतम्। अपक्रष्टनिक्रप्टानां जोवितं शिल्पकर्मभिः ॥१७६ हीनन्तु प्रतिलोमानामहीन मनुलोमिनाम्। चर्मवैणववस्नाणां हिंसाकर्म च नेजनम्।।१७७

गाणिक्यं (माणिक्यं)वपनाग्निश्व (यवनाद्यश्व)मद्यमांसिक्रया तथा । सारथ्यं वाहकानाश्व रथानां भूभृतामपि ॥१७८

# **ऽध्यायः** ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौराजधर्मवर्णनम् । १०६७

एवमादि निषिद्धं यत्प्रातिलोम्यं यदुच्यते । यत्सौम्यशिल्पं लोकेऽस्मिन् सौम्यं तद्नुलोमकम् ॥१७६ मृहारुशैललोहानां शिल्पं सौम्यमिहोच्यते। न्यायेन पालयेद्राजा पृथिवी शास्त्रमार्गतः॥१८० स्वराष्ट्रकृतधर्मस्य सदा पहागामिद्धये। राज्ञां राष्ट्रकृतं पापमिति धमविदो विदुः ॥१८१ तसाद्पापसंयुक्तां यथा संरक्षयेड्वम्। अग्निदङ्गरद्भोरं हिंमां दुर्वृत्तमेव च ॥१८२ धूर्तं पतितमित्यादीन हन्यादेवाविचारयन्। अङ्कयित्वा श्वपादेन गर्डमे चाधिरोह्य वे ॥१८३ प्रवासयेन स्वराष्ट्रात् ब्राह्मणं पतिनं नृपः । कुलटां कामचारेण गर्भव्नी भर्नु हिसकाम् ॥१८४ निकृत्तकर्णनासोष्टीं कृत्वा नागी प्रवासयेन्। न्यायेन दण्डनं राज्ञः स्वर्गकीर्तिविवर्धनम् ॥१८४ अद्ण्ड्यान द्ण्डयन् राजा तथा द्ण्ड्यानद्ण्डयन् । अयशो महदाप्नोति नग्कं चाधिगच्छति ॥१८६ दिग्दण्डस्त्वथ वाग्दण्डो धनदण्डो वधस्तथा। ब्रात्वाऽपराधं देशं च जनं कालमदोऽपि वा ॥१८७ वयः कम च वित्तञ्च दण्डं न्यायेन पातयेतु। निश्चित्य शास्त्रमार्गेण विद्वभिः सह पार्थिवः ॥१८८ गुरूणां तु गुरुं दण्डं पापानां च लघोर्लघ्म्। व्यवहारान् स्वयं पश्यन् कुर्यात् सभ्येवृ तोऽन्वहम्।।१८६ मिथ्यापवाद्शुद्वचय पञ्च दिज्यानि कल्पयेत्। ज्ञात्वा शुद्धेरु दिन्येषु शुद्धान्वै मानयेत्तथा ॥१६० तन्मिश्याशंसिनं दुष्टं जिह्वाच्छेदेन दण्डयेत्। परद्रव्यादिहरणं परदाराभिमर्शनम ॥१६१ यः कुर्यान् तु बलान् तस्य हस्तच्छेदः प्रकीर्तितः। यो गच्छेन् परदारांस्तु बलात्कामाश्च वा नरः ॥१६२ सर्वस्वरूगणं कृत्वा लिङ्गच्छेद्ञ दापयेन्। द्हेन्कटामिना देहं गुरुखीगामिनं तदा ॥१६३ ब्रह्मनं च सुगपं वा गोस्त्रीबालनिपृद्नम् । देवविश्रम्बहर्नारं शूलमारोपयेन्नरम् ॥१६४ द्वतं ब्राह्मणं गाञ्च पितृमातृगुरु स्तथा। पादेन ताडयेद्यम्तु तम्य तन्छेद्नं ममृतम्।।१६५ तेपामुपरि हस्तं तु दोष्णो श्*ळेद*न्तु कामतः । प्रत्येकं दण्डनं कुर्याद्दुर्वृ नस्य परिक्रयाम् ॥१६६ चुम्बने तालुविच्छेदो द्वौ हस्तौ परिरम्भणे। हम्तस्याङ्कुलिविच्छेदः केशादिग्रहणे स्त्रियः ॥१६७ दाहयेत्तवतेलेन हस्तमुष्ट्या च ताडनम्। सुरतं याचमानस्य जिह्वाच्छेदं च कामतः ॥१६८ कामेङ्गितेयु सर्वत्र ताल्वाश्च दहनं स्मृतम। दृष्ट्या मुहुः प्रेरणे तु नेत्रयोः स्फोटनं चरेत् ॥१६६ मानकूटं तुलाकूटं कूटसाक्ष्यकृतां नृणाम्। सहस्रं दापयेदण्डं वृत्त्या स्वस्यापनायने ॥२००

## **ऽध्यायः** ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधीराजधर्मवर्णनम्। १०६६

येषु केषु च पापे गुशरीरे दण्डनं समृतम्। तेप तेष्वक्रनेनैव अक्षतो ब्राह्मणो व्रजेत् ॥२०१ पापानेवाङ्कयित्वाऽम्य मुण्डयित्वा शिरोह्रहान् । सवस्वहरणं कृत्वा राष्ट्रात् सम्यक् प्रवासयेत् ॥२८२ अवैष्णवं विकमेस्थं हरिवासरभोजनम्। ब्राह्मणं गार्दभं यानमारोप्यैव विवासयेन ॥२०३ न्यायेन पालयेद्राजा धर्मान षड्भाग माहरेत्। त्रिभागमाहरेद्धान्याद्धनान् पड्भागमेत्र च ॥२०४ गोभृहिरण्यवासोभिर्धान्यरत्रविभूपणैः। पूजयेदुब्राह्मणान् भक्तया पोषयेच विशेषतः ॥२०४ विम्वानि स्थापयेद्विष्णोर्वामेषु नगरेषु च। चैत्यान्यायतनान्यस्य रम्याण्येव तु कारयेत् ॥२०६ वसुपुष्पोपहारौधं भूघेन्वादि समर्पयेन। इतरेषां सुराणां च वैदिकानां जनेश्वरः ॥२०७ धर्मतः कारयेद्यश्च चैत्यान्यायतनानि तु । वापी कूपतडागादि फलपुष्पवनानि च ॥२०८ कुर्वीत सुविशालानि पूर्वकान्यपि पालयेत्। फलितं पुष्पितं वाऽपि वनं छिन्द्यात्तु यो नरः॥२०६ तडागसेतुं यो भिन्यात तं शूलेनानुरोहयेत्। अग्निदं गरदं गोर्ज्ञं बालस्त्रीगुरुघातिनम् ॥२१० भगिनीं मातरं पुत्रीं गुरुदारान् स्तुषामपि। साध्वी तपस्विनी वाऽपि गच्छन्तमतिपापिनम् ॥२११ हिंस्रयन्त्रप्रयोक्तारं दाहयेद् वै कटाप्निना। अद्ण्डियत्वा दुर्व त्तान् तत्पापं पृथिवीपतिः ॥२१२ सम्प्राप्य निरयं गच्छेत्तस्मात्तान् दण्डयेत्तथा । यः स्ववर्णाश्रमं हित्वा स्वन्छन्देन तु वर्तयेत् ॥२१३ तं दण्डयेद्वर्षशतं नाशयेत्तद्विदेशतः। सर्वेष्वेतेषु पापेषु धनदण्डं प्रयोजयेत् ॥२१४ पितेव पालयेद्भृत्यान् प्रजाश्च पृथिवीपतिः। प्रजासंरक्षणार्थाय संप्रामं कारयेन्नृपः ॥२१४ तस्मिन् मृत्युर्भवन्छ्ं यो राज्ञः संप्राममृद्धं नि । मृतेन लभ्यते स्वर्गं जितेन पृथिवी त्वियम् ॥२१६ यशः कीर्त्तिविवृध्यर्थं धर्मसंप्राममाचरेत । मुक्तशीर्षं मुक्तवस्त्रं त्यक्तहेति पलायितम् ॥२१७ न हन्याद्वन्दिनं राजा युद्धे प्रेक्षणकृजनान्। भग्ने स्वसन्यपुब्जे च संप्रामे विनिवर्तिनः ॥२१८ पदे पदे समग्रस्य यज्ञस्य फलमश्नुते। नातः परतरो धर्मो नृपाणां नरशालिनाम् ॥२१६ युद्धलब्धा महीशस्य दीयते नृपसप्रमैः। जित्वा शत्रुन्महीं लब्ध्वा लब्धां यत्नेन पालयेत्।।२२० पालितां वर्धयेत्रित्यं वृद्धां पात्रे विनिश्चिपेत्। पात्रमित्युच्यते विप्रस्तपोविद्यासमन्वितः ॥२२१ न विद्यया केवलया तपसा वाऽपि पात्रता। श्रुतमध्ययनं शीलं तप इत्युच्यते बुधैः ॥२२२

### Sच्यायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौराजधर्मवर्णनम्। १०७१

ईश्वरस्याऽऽत्मनश्चापि ज्ञानं विद्येति चोच्यते। तथाविधेषु पात्रेषु दस्वा भूमिं धनं नृपः ॥२२३ शासनं कारयेत्सम्यक् स्वहस्तिखितादिभिः। उपजीव्योपसर्पेश्व रम्ये देशे नृपोत्तमः ॥२२४ दुर्गाणि तत्र कुर्वीत जनकम्यात्मगुप्तये। तत्र कर्ममु निष्णानान कुशलान धर्मनिष्ठितान् ॥२२४ सत्यशौचयुतान् शुद्धानध्यक्षान् स्थापयन् नृपः। अशीतिभागो बृद्धिः म्यान्मामि मासि सबन्धके ॥२२६ अबन्धके स्याद्द्विगुणं यथा तत्कालमात्रकम् । लेखयेनदृणं सम्यक् समामासादिकल्पनैः ॥२२७ देयं सबृद्धयाधविके(धनिने) पुरुषेस्निभिरेव तत् । निर्धनस्तु शनैर्दद्याक्तथाकालं यथोदयम् ॥२२८ औद्धत्याद्वा बलाद्वा तु न द्याद्धनिने भृणम्। दण्डयित्वैव तं राजा धनिने दापयेद्दणम् ॥२२६ ब्रिन्ने दुग्धेऽथवा पत्रे साक्षिभिः परिकल्पयेत् । वस्रधान्यहिरण्यानां चतुस्त्रिद्विगुणादिभिः॥२३० न सन्ति साक्षिण स्तत्र देशकालान्तरादिभिः। शोधयित्वा तु दिन्येन दापयेद्धनिने ऋणम् ॥२३१ मध्यस्थापितं द्रव्यं वर्धते न ततः परम्। कृते प्रतिप्रहे चाऽऽधौ पूर्वो वै बलवत्तरः ॥२३२ अवधिद्विविधं प्रोक्तं भोग्यं गोप्यं तथैव च। क्षेत्रारामादिकं भोम्यं गोप्यं द्रव्यमुपस्करम्।।२३३

गोप्याधिभोग्ये नो वृद्धिः सोपस्कारे तथापि ते। नष्टं देयं विनष्टञ्च द्रव्यं राजकृताहते ॥२३४ उपस्थितस्य भोक्तव्य माधिरतेनोऽन्यथा भवेत । प्रयोजने सति धनं कुलेन्यस्याधिमाप्नुयान् ॥२३४ तत्कालकृतमूल्ये वा तत्र तिष्ठेदृतृद्धिकम्। विना धारणकाद्वापि विक्रोणोतमसाक्षिकम् ॥२३६ तं वनस्थमनाख्याय धान्यमस्य न दोयते । तदा यदधिकं द्वत्र्यं प्रतिदेयं तथैव च ॥२३७ न दाप्योऽपहृतन्त्यक्तराजदैविकतम्करैः। न प्रद्धात्त तन्मोहात्स दण्ड्य श्रोरवत्तदा ॥२३८ द्दीत श्वेच्छया दण्डं दापयेद्वापि सोदरम्। याचितान्त्राहितन्यायान्निक्षेपादिष्वयं विधि: ॥२३६ सुराकामच्तकृतं वृथा दानं तथैव च। दण्डशुरुकानुशिष्टञ्च पुत्रो दद्यान्न पैतृकम्।।२४० पितरि प्रोपिते प्रते व्यसनाभिष्टुतेऽपि वा। पुत्रपौरोक्षूणं देयं निह्नुते साक्षिचोदितम ॥२४१ रिक्थप्राही भूणं द्रशाद्योषिद्प्राहस्त्रथेव च। पुत्रो न स्वाश्रिनद्रव्यः पुत्रहीनस्तु रिक्थिनः ॥२४२ प्रातिभाव्य मृणं साक्ष्यं देयं तस्मै यथोचितम्। दीयते स्यात्प्रतिभुवा धनिने तु ऋणं यथा ॥२४३ द्विगुणं तत्रदातव्यं दृण्डं राह्ने च तत्समम्। पुत्रादिभिने दातव्यं प्रविभाव्य मृणं खियाम् ॥२४४

### अथायः ] प्राप्तकालभगवत्समाराधनविधौराजधर्मवर्णनम् । १०७३

प्रतिपन्नं स्त्रिया देयं पत्या चंवहि यत कृतम। स्वयं कृतं तु यदृणं नान्यस्त्री दातुमर्हति ॥२४५ पत्ये स्वकं धनं पुत्रा विभजेयः सुनिर्णितम् । मार्ककचंद् दुहितरम्तद्भावं तु तत्सुत. ॥२४६ भगिन्यश्च प्रमुदिनाः पैतृकादाहरेद्धनान् । न स्रोधनं तु दायादा विभजेयुरनापदि ॥२४७ पितृमातृसुताश्रातृपत्यपत्याद्यपागतम् । आधिवतिनकाद्यं च स्त्रीधनं परिकोर्तितम् ॥२४८ अपुत्रा योपितश्चव भर्तज्या साधुरृत्तयः। निर्वास्या व्यभिवारिण्यः प्रतिकृष्ठास्त्रयेव च ॥२४६ नैव भागं वनस्थानां यतोनां ब्रह्मचारिणाम । पापण्डपतितानां च नचावदिककर्मणाम् ॥२५० विभक्तप्वनुजो जातः सत्रणी यदि भागभाक । अविभक्तपितृकाणां पितृव्यान् भागकल्पना ॥२५१ द्वै मातृणा मारुतश्च करुपयेद्वा समोऽपिवा । विभक्तस्यास्य पुत्रस्य पत्नी दुहितरस्तथा ॥२४२ पितरौ भ्रानरश्चेव तःस्तुताश्च सपिण्डिनः। सम्बन्धिवान्यवाश्चेव क्रमाद् वै रिक्थभागिनः ॥२५३ सीम्रोऽपवादे क्षेत्रेषु सामन्ताः स्थविरादयः। गोपाः सीमाकृषाणां च सर्वे भवनगोचराः ॥२५४ नयेयु रेते सीमानं स्थुणाङ्गारतुषदुमैः। न त वल्मीकनिम्नास्थिचैत्याद्यैरुपशोभिताः ॥२५४ ŧ۷

औरसो दत्तकश्चैव क्रीतः कृत्रिम एव च। क्षेत्रजः कानिकश्चेव दौहित्रः सत्तमः स्मृतः ॥२५६ पिण्डजश्च परश्चेषां पूर्वाभावे परः परः। पुत्रः पौत्रश्च तत्पुत्रः पुत्रिकापुत्र एव च ॥२५७ पुत्री च भ्रातरश्चेव पिण्डदाः स्यूर्यथाक्रमान्। एवं धर्मेण नृपतिः शासयेत्सर्वदा प्रजाः ॥२५८ यदक्तं मनुना धमं व्यवहारपदं प्रति। विलोक्य तञ्ज विद्वद्भि वींतरागे विमत्सरैः ॥२५६ विमृश्य धर्मविद्धिश्च विमर्छः पापभीरुभिः। धर्मेणैव सदा राजा शासयेत पृथिवीं स्वकाम्।।२६० विपरीतां दण्डयेद्वे यावहर्पोपनाशनम्। सभ्या अपि च दण्ड्या वै शास्त्रमार्गविरोधिनः ॥२६१ राजधर्मोऽयमित्येवं प्रसङ्गान् कथितो मया। कात्यायनेन मनुना याज्ञवल्क्येन धीमता।।२६२ नारदेन च सम्प्रोक्तं विस्तरादिदमेव हि। तस्मान्मया विस्तरेण नोक्त मत्र नृपोक्तम । ॥२६३ परं भागवतं धर्म विस्तरेण ब्रवीमि ते। विष्णोरभ्यर्चनं यत्तु नित्यं नैमित्तिकं नृप । ॥२६४ यदाह भगवान् धातुस्तेन स्वायम्भवस्य च। नारदस्य च मे सम्यक् तदद्य कथयामि ते ॥२६५ इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे प्राप्तकालभगवत्-समाराधनविधिनाम चतुर्थोऽध्यायः।

॥ पञ्चमोऽध्यायः ॥

अथ भगवन्निसनंमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम्।

अम्बरीष उवाच।

भगवन् ! ब्रह्मणा यत् तु सम्प्रोक्तं स्यान्मनोः पुरा । तत्सर्वं परमं धर्मं वक्तुमर्हसि मेऽनघ ! ॥१

हारीत उवाच।

सर्गादौ लोककर्ताऽसौ भगवान् पद्मसम्भवः। मन्वादिप्रमुखान विप्रान् ससृजे धर्मगुप्तये ॥२ मनु भूग विशिष्ठश्च मरीचि दक्ष एव च। अङ्गिराः पुरुहश्चेव पुरुम्त्योऽत्रिर्महातपाः ॥३ वेदान्तपारगास्ते च तं प्रणम्य जगदुगुरुम्। भगवन् । पर्मं धर्मं भववन्धापनुत्तये ॥४ वद सर्वमशंपण श्रोतुमिच्छामहे वयम्। इत्युक्तः स द्विजेः सोऽपि ब्रह्मा नत्वा जनार्दनम् ॥४ वेदान्तगोचरं धमं तेषां वक्तुं प्रचक्रमे । सर्वेषामवलोकानां स्रष्टा धाता जनार्दनः ॥६ सर्ववेदान्ततत्वार्थसर्वयज्ञमयः प्रभुः। यज्ञो वे विष्णुरित्यत्र प्रत्यक्षं श्रूयते श्रुतिः ॥७ इज्यते यत् समुद्दिश्य परमो धर्म उच्यते। भगवन्त मनुद्दिश्य ह्यते यत्र कुत्र वै।।८ तत्र हिंसाफलं पापं भवेदत्र विगर्हितम्। तस्मात् सवस्य यज्ञस्य भोक्तारं पुरुषं हरिम् ॥६

ध्यात्वेव जुह्यात्तरमै हृद्यं दीग्ते हृताशने । मुखमि्रभेगवतो विष्गोः सर्वगतस्य वै।।१० तस्मिन्नैव यजन्नित्यमुत्तमं मुनिसत्तमाः !। यजेद्विप्रमुखं शत्त्वया जलमन्नं फलादिकम् ॥११ श्रीतये वासुदेवस्य सर्वभूतनिवासिनः। तमेव चार्चयित्रस्यं नमम्कुयांत्तमेव हि ॥१२ ध्यात्वा जपेतमेवंशं तमेव ध्यापयेद्धित । तन्नामैत्र प्रगातव्यं वाचा वक्तत्र्य मेव च ॥१३ व्रतोपवासनियमान् तमुद्दिश्यैव कारयेत्। तत्समर्तितभागः स्याद्त्रपानादिभक्षणैः ॥१४ मतिः स्वार्थ सदारेषु नेतरत्र कदाचन । न हिम्यात्मवभूतानि यज्ञेषु विधिना विना ॥१५ सोऽहं दामा भगवतो मम स्वामी जनार्दनः। एवं वृत्तिभवद्स्मन् स्वधर्मः परमो मतः ॥१६ एप निष्कण्टकः पन्था तस्य विष्णोः परं पदम् । अन्यन्तु कुपथं ज्ञेयं निरयप्राप्तिहेतुकम् ॥१७ भगवन्त मनुद्दिश्य यः कर्म कुरुते नरः। स पापण्डीति विज्ञंयः सर्वलोकेषु गहितः॥१८ यो हि विष्णुं परित्यज्य सवलोकेश्वरं हरिम्। इतरानर्चते मोहात्स लोकयतिकः स्पृतः॥१६ उक्तधर्म परित्यज्य यो ह्यधर्म च वतेते । पतितः स तु विज्ञेयः सर्वधर्मवहिष्कुतः ॥२०

यः कर्म कुरुते विश्रो विना विष्णवर्चनं कचित्। ब्राह्मण्याद् भ्रश्यते गद्म श्रण्डालत्वं स गन्छति ॥२१ ब्राह्मणो वैष्णवो विष्रो गुरुरम्यश्च वेद्वित्। पर्यायेण च विद्यंत नामानि क्ष्मासुरस्य हि ॥२२ तस्माद्वैष्णवत्वेन विप्रत्वादु भ्रश्यते हि सः। अर्चयित्वाऽपि गोविन्द्मितरानर्घयेन पृथक् ॥२३ अविष्णवत्वं तस्यापि मिश्रभक्त्या भवेद् ध्रवम्। भोकारं सर्वेयज्ञानां सबलोकेश्वरं हरिम ॥२४ ज्ञात्वा तत्प्रीतये सर्वान् जुहुयात्मततं हरिम्। दानं तपश्च यज्ञश्च त्रिविधं कम कीर्तितम् ॥२४ तत्सर्वं भगवत्प्रीत्ये कुर्वीत सुममाहितः। तस्मात्तु वैष्णवा विप्राः पूजनीया यथा हरिः ।।२६ ये तु वै हेतुकं वाक्यमाश्रित्यैव स्ववाग्वलात्। बैष्णवं प्रतिपिष्यन्ति ते लोकायतिकाः म्मृताः ॥२७ यो यत्त् वैष्णवं लिङ्गं धृत्वा च तमसाऽऽवृतः। त्यजेचेहें हणवं धर्म सोऽपि पापण्डतां ब्रजेत् ॥२८ तस्मात् वैष्णवो भूत्वा वैदिकी वृत्तिमाश्रितः। कुर्वीत भगवत्त्रीत्यै कुर्य्याद्यज्ञादिकर्म यत् ॥२६ तद्विशिष्टमिति प्रोक्तं सामान्यमितरं समृतम्। फलहीना भवेत्सा तु सामान्या वैदिकक्रिया ॥३० तोयवर्जितवापोव निरर्थी भवति ध्रुवम्। नैसर्गिकन्तु जीवानां दास्यं विष्णोः सनातनम् ॥३१ तद्विना वर्त्तते मोहादात्मचारः सनातनातः । तस्मात्तु भगवद्दास्यमात्मनां श्रुतिचोदितम् ॥३२ दास्यं विना कृतं यत्त् नदेव कळुषं भवेत् । विशिष्टं परमं धर्मं दास्यं भगवतो हरेः ॥३३

भृषय ऊचुः !

कथं दास्यं हि तद्वृत्तिः कथं नैसर्गिकं नृणाम् । सत्सर्वं त्रूहि तत्वेन लोकानुप्रहकाम्यया ॥३४

ब्रह्मोवाच ।

सुदर्शनोर्ध्व पुण्डादिधारणं दास्यमुच्यते ।
तिद्धिविदिकी या च तदाज्ञा चोदिना किया ॥३४
तत्राप्याराधनत्वेन कृता पापस्य नाशिनी ।
निरूपणत्वाद्दास्यस्य धार्यं चक्रं महात्मनः ॥३६
अङ्गत्वान सवेधर्माणां वेष्णवत्वाच धर्मतः ।
कर्म कुर्याद्भगवतस्तरमं राज्ञा मनुस्मरन् ॥३७
विधिनैव प्रतप्तेन चक्रणवाङ्कयेद्भुजे ।
तथैव विभ्याद्वाले पुण्डं शुभ्रतरं मृद् ॥३८
विभ्यादुपवीतन्तु सव्यस्कन्धे विधाननः ।
कण्ठे पद्माक्षमालाञ्च कौशेयं दक्षिणे करे ॥३६
उमे चिह्ने विना विप्रो न भवेद्धि कथञ्चन ।
न लभेत्कर्मणां सिद्धि वैदिकानां विशेषतः ॥४०
आश्रमाणां चतुर्णाञ्च स्त्रीणाञ्च श्रुतिचोदनात ।
अङ्करेषकशङ्काभ्यां प्रतप्नाभ्यां विधानतः ॥४१

एकैकमुपवीतन्तु यतीनां ब्रह्मचारिणाम्। गृहिणाश्व वनस्थाना मुपवीतद्वयं समृतम् ॥४२ सोत्तरीयं त्रयं वाऽपि विभृयाच्छुभतन्तुना। त्रयमूर्ध्व द्वयं तन्तु तन्तुत्रय मधोवृतम् ॥४३ त्रिवृच प्रन्थिनंकेन उपवीतमिहांच्यते। अर्ककार्पासकौशंयक्षौमशोणमयानि च ॥४४ तन्तूनि चोपवीतानां योज्यानि मुनिसत्तमाः !। मर्वेपामप्यलाभे तु कुर्ग्यान् कुशमयं द्विजः ॥४४ ऐणेयमुत्तरीयं म्याइनस्थनहाचारिणाम्। शुक्लकाषायवसने गृह्स्थम्य यतेः क्रमान् ॥४६ उक्तालाभेषु मर्वेपाङ्कशचीरं विशिष्यते । मौञ्जी वे मेखला दण्डं पालाशं ब्रह्मचारिणः ॥४७ त्रयस्तु वैष्णवा दण्डा यते: कापायवाससी । कुशचोरं वल्कलं वा वनस्थस्य विधीयते ॥४८ कटीसूत्रञ्च कोपी ं महज्ञ गुक्लवाससा ! कुण्डके चाङ्गुलीयानि गृहस्थम्य विधीयते ॥४६ मुण्डिनौ मूक्ष्मशिम्बनौ यत्यन्तेवासिनावृभौ। वानप्रस्थो यतिर्वा स्यात्मदा वै श्मश्रुरोमधृत् ॥५० सुकेशी सुशिग्वो वा म्याद् गृहस्थः सौम्यवंपवान् । यतिश्च ब्रह्मचारी च उभी भिक्षाशनी म्मृती ॥५१ शाकमूलफलाशी स्याद्वनस्थः सततं द्विजः। कुसूलकुम्भधान्यो वा ज्याहिको वा भवेदुगृही ॥४२

प्रतिग्रहेण सौम्येन जीवेद्यायावरेण वा। यस्त्रेकं दुण्डमालम्ब्य धर्म ब्राह्मं परित्यजेन् ॥५३ विकर्मास्थो भवंद्विप्रः स याति नरकं ध्रवम ! शिखायज्ञोपबीतादि ब्रह्मकर्म यतिस्त्यज्ञेन ॥५४ सजीवं न च चण्डालो मृतश्वानोऽभिजायते। स्वरूपेणैव धमस्य त्यागो हानिभवेद् ध्रवम् ॥४४ कर्रणां फलसन्त्यागः सन्न्यासः स उदाहृतः। अनाश्रितः कमेफलं कृत्यं कर्म समाचरेत ॥४६ स सन्त्यामी च योगी च स मुनिः सात्विकः समृतः ! तुष्ट्यर्थ वासुदेवस्य धर्म व यः समाचरेत् ॥५७ स योगी परमेकान्तं हरेः प्रियतमा भवेत । मोहाद्दास्यं विना विष्णोः कि चित्कर्म समाचरेत् ॥६८ न तस्य फलमाप्नोति तामसी गतिमश्नुते। हित्वा यज्ञोपवीतन्तु हित्वा चक्रस्य धारणम् ॥५६ हित्वा शिखोध्रपुण्डं च विप्रत्वाद् भ्रश्यते भ्रवम् । पश्वसंस्कारपूर्वेण मन्त्रमध्यापयेदु गुरु: ॥६० संस्काराः पञ्च कर्तव्याः पार्भेकान्त्यसिद्धये। प्रतिसम्बत्सरं कुर्यादृपाकम ह्यनुत्तमम् ॥६१ सर्ववेद्वतं कृत्वा तत्र सम्पूजयेद्धरिम् । द्यादत्रोपवीतानि विष्णवं परमात्मने ॥६२ ब्राह्मणभ्यश्च द्त्त्वाऽथ विभृयात् स्वयमेव च । तद्मौ पूज्य सन्तर्प्य चक्रञ्चैवाङ्क्येद् भुजे ॥६३

#### अध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०८१

एवं प्रात्याह्निकं धार्यमुपवीतं सुद्र्शनम्। पुण्डास्तु प्रतिमन्ध्यन्तु नित्यमेव च धारयेत् ॥६४ द्वारवत्यद्भवं गोपी चन्द्रनं वेङ्कटोद्भवम्। सान्तरालं प्रकुर्वीत पुण्डं हरिपदाकुति ॥६४ श्राद्धकाले विशेषण कर्ता भोक्ता च धारयेत्। अर्थं पश्चकतत्त्रज्ञः पश्चसंन्कारदीक्षितः ॥६६ महाभागवती विप्रः सनतं पृजयेद्वरिम् । नारायणः परं ब्रह्म विप्राणां देवतं सदा ॥६७ तस्य भुक्तावशेपन्तु पावनं मुनिसत्तमाः !। हरिभुक्तोऽपि तं द्द्यात्पितृणाञ्च दिवौकमाम् ॥६८ तदेव ज़हुयाद वहाँ भुञ्जीयात्त तदेव हि। हरेरनर्पितं यत्तु देवानामर्पितञ्च यत् ॥६६ मद्यमांससमं प्रोक्तं तद्भुञ्जीयास्कदाचन ! हरेः पाद्जलं प्राश्यं नित्यं नान्यहिवौकसाम् ॥७० सुराणामितरेपां तु फलपुज्पजलादिकम्। निर्माल्यमशुभं प्रोक्तमस्वृश्यं हि कदाचन ॥७१ विधिह्यंष द्विजातीनां नेतरेपां कदाचन। शिवार्चनं त्रिपुण्डश्च शूद्राणां तु विधीयते ॥७२ तद्विधाना मिदं ये च विप्राः शिवपरायणाः। ते वे देवलका ज्ञंयाः सर्वकर्मवहिष्कुताः ॥७३ वैखानसास्तु ये विप्राः हरिपूजनतत्पराः । न ते देवलका ज्ञया हरिपादाब्जसंश्रयान् ॥७४

नापहृत्य हरेद्रंच्यं ग्रामार्चनपरो भवेत्। भक्त्या संपूज्य देवेशं नासौ देवलकः स्मृतः ॥७४ भक्त्या योऽत्यर्चयेद्वं प्रामार्चं हरिमव्ययम्। प्रसादतीर्थम्वीकारान्नासौ देवलकः स्मृतः ॥७६ शङ्कचक्रोध्वपुण्डादिधारणं स्मरणं हरे:। तन्नामकीर्तनब्चैव तत्पादाम्बुनिपेवणम् ॥७७ तत्पादवन्दनञ्चेव तं निवेदितभोजनम्। एकाद्रयुपवासश्च तुलम्यैवार्चनं हरे: ॥७८ तदीयानामर्चन अ भक्तिनवविधासमृता । एतैर्नवविधेयंक्तो वष्णवः प्रोच्यते वृधेः ॥७६ एतंगुणैर्विहीनम्तु न तु विप्रो न वैष्णवः। कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येजनार्दनम् ॥८० भक्तिः सा सात्विकी ज्ञेया भवेदव्यभिचारिणी। नान्यं देवं नमस्कुर्यान्नान्यं देवं प्रपूजयेत्।।८१ नान्यप्रसादं भुञ्जीत नान्यदायतनं विशेत्। न त्रिपुण्डं तथा कुर्यात्पट्याकारं जगत्त्यम् ॥८२ यतिर्यस्य गृहे भुङ्क्ते तस्य भुङ्क्तं हरिं म्वयम् । हरिर्यस्य गृहे भुक्कं तस्य भुक्कं जगत्त्यम् ॥८३ महाभागवनो विप्रः सततं पुजयेद्धरिम्। पाञ्चकाल्प विधानेन निमित्तंपु विशेपतः ॥८८ अफ्बग्नो हृद्ये सूर्य्य स्थण्डिले प्रतिमासु च। षट्स तेषु हरेः पूजा नित्यमेव विधीयते ॥८४

#### Sभ्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०८३

स्नानकाले तु संप्राप्ते नद्यां पुण्यजले शुभे । ध्यात्वा नारायणं देवं नागपर्यङ्कशायिनम् ॥८६ द्वादशार्णेन मनुना सोऽर्चयित्वाऽक्षतादिभिः। अष्टोत्तरशतं जात्वा ततः स्नानं ममाचरेत् ॥८७ एतदप्यर्चनं पोक्तं ब्राह्मणस्य जगत्पतेः । होमकाले तु सनतं परिस्तीर्यानलं शुभम् ॥८८ यज्ञरूपं महात्मानं चिन्तयेतु पुरुपोत्तमम्। साङ्गत्रयीमयं ग्रुश्रदिव्याङ्गोपाङ्गशोभितम् ॥८६ सर्वलक्षणसम्पन्नं शुद्धजाम्बृनद्प्रभम् । युवानं पुण्डरीकाक्षं शङ्खचकधनुर्धरम् ॥६० सर्वयज्ञमयं ध्यायेद्वामाङ्काश्रितपद्मया। सम्पूज्य चाक्षतैरेव पश्चाद्धोमं समाचरेन ॥६१ प्राणाग्निहोत्रममये सम्यगाचम्य वारिणा । कुशासने समासीनः प्राग्वा प्रत्यङ्मुखोऽपि वा । पतिष्यासनमात्मानं प्राणायामं ममाचरेत ॥६२ मन्त्रेणोद्बुध्य हृदयपङ्कतं केशरान्वितम्। तस्मिन्वह्नयर्कशीतांशुबिम्वान्यनु विचिन्तयेन ॥६३ सर्वाक्षरमयं दिव्यरन्तपीठं तद्त्तरे। तन्मध्येऽष्टदलं पद्मं ध्यायेत्कल्पतरोरधः ॥६४ वीरासने समासीनं तस्मिन्नीशं विचिन्तयेत्। स्निग्धदूर्वाद्छश्यामं सुन्दरं भूषणैर्युतम् ॥६५

पीताम्बरं युवानं च चन्दनस्रग्विभूषितम्। शरत्पद्मासनं रत्नाद्माभाङ्क्तिकरद्वयम् ॥६६ स्निग्धवर्णं महाबाहुं विशालोरस्कमव्ययम्। चक्रशङ्खगदावाणपाणि रघुवरं हरिम् ॥६७ जानकीलक्ष्मगोपेतं मनसैवाचयेद्विभुप्। मन्त्रद्वयेनार्चयित्वा जप्त्वा चैव पडक्षरम् ॥६८ पश्चाद् वे जुहुयान् पञ्च प्राणानभ्यच्च्यं तं पुनः । ध्यायन्वे मनमा विष्णुं सुखं भुञ्जीत वाग्यतः ॥६६ एवं हृद्यचनं विष्णोहत्तमं मुनिसत्तमाः !। अत्यन्ताभिमता विष्णो ह नृपूजा परमात्मनः ॥१०० सन्ध्याकाले तु सन्प्राप्ते रविमण्डलमध्यगन्। हिरण्यगर्भ पुरुषं हिरण्यवपुषं हरिम् ॥१०१ श्रीवत्मकौम्तुभोरस्कं वैजयन्तीविराजितम्। शङ्खचकादिभिर्युक्तं भूषितेदीभिरायतैः ॥१०२ शुक्लाम्बरधरं विष्णुं मुक्ताहारविभूषितम्। ध्यात्वा समर्चयेद्वं कुसुमैरक्षतैरपि ॥१०३ प्रणवेण च साविज्या पश्चात् सूक्तं निवेद्येत्। ध्यायन्नेवं जपेद्विष्णुं गायत्री भक्तिसंयुतः ॥१०४ तयैवाभ्यच्च गोविन्दं नमस्कृत्वा विसर्जयेत्। एवमभ्यर्चयेदवं त्रिसन्ध्यासु तथा हरिम् ॥१०४ वैश्वदेवावसाने तु पुरस्ताद् वै विभावसोः। उपलिप्य स्थण्डिले तु जुहुयाद्गक्तिकर्म तत् ॥१०६

ष्यात्त्रा सर्वगतं विष्णुं घनश्यामं सुरुोचनम् । कौम्तुभोद्गासितोरस्कं तुलसीवनमालिनम् ॥१०७ पीताम्बरधरं देवं रत्नकुण्ढलशोभितम्। हरिचन्दनलिप्राङ्गं पुण्डरीकायतेक्षणम् ॥१०८ मौक्तिकान्त्रितनामात्रं जगन्मोहनवित्रहम्। गोपीजनै. परिवृतं वेणुं गायन्तमच्युतम् ॥१०६ ध्यात्वा कृष्णं जगन्नार्थं पूजयित्वा यथाविधिः। जुद्याद्धरिचक्रं तद्वानुद्दिश्य मत्तमा । ॥११० जप्त्वा कृष्णमन् पश्चादभ्यच्यं मनमा हरिम्। आचम्य प्रयतो भूत्वा नमस्क्रय विसज्ञयेन ॥१११ स्थण्डिलेऽभ्यर्चनं विष्णोरेवं कुर्याद्विधानत । त्रिसन्ध्यास्वचयेद् विष्गुं प्रतिमासु विशेषतः ॥११२ सुर्ग्यरजताचेर्वा शिलादार्वादिनाऽपि वा । कृत्वा बिम्बं हरे सम्यक् सर्वावयवशोभितम् ॥११३ सवलक्षणमम्पन्नं सर्वायुध समन्त्रितम्। ततोऽधिवासनं कृयांत्त्रिरात्र शुद्धवारिषु ॥११४ तत्राचयेद्विधानेन जपहोमादिकर्मभिः। स्नाप्य पञ्च मृतेर्गञ्येस्तदा मन्त्रजलैरपि ॥११५ यज्जपेद्यां समारोध्य पूजयेत्तत्र दीक्षितः। मङ्गलद्रव्यसंयुक्तैः पूर्णकुम्भैः समन्वितः ॥११६ शरावैर्द्रव्यसम्पर्णैः पताकस्तोरणादिभिः। कुम्भेषु वासुदेवादीन् सुरान् संपूजयेत् क्रमान् ॥११७

वासुदेवो ह्यप्रीवस्तथा सङ्कर्षणो विभुः। महावराहः प्रद्युम्नो नारसिंहस्तथैव च ॥११८ अनिरुद्धो वामनश्च पूजनीया यथाक्रमात्। तस्य पूर्णशरावेषु लोकेशानर्चयेत्ततः ॥११६ मध्ये तु वारुणं कुम्भं पञ्चरत्नसमन्वितम्। पूजयेद्गन्धपुष्पाद्यैध्यात्वाऽस्मिन् जलशायिनम् ॥१२० ततः संपूजयेद्वं धान्योपरि निधाय च ॥१२१ ब्याघ्रचर्म्म समास्तीर्य तस्मिन् कौशेयवाससि । निवेद्य पूजयेद् बिम्बं मूलमन्त्रेण वैष्णवः ॥१२२ तारणेषु चतुर्दिश्च चण्डादीनचयेत् तदा। कुमुदादि सुरान् दिक्षु नथा धर्मादिदेवताः ॥१२३ संपुज्य विधिना तस्मिन पश्चाद्धोमं समाचरेत्। आग्नेयं कल्पयेत कुण्डं मेखलासुपशोभितम् ॥१२४ अश्वत्थाद् वा शमीगर्भाद्गहृत्याग्नी विनिश्चिपेत्। वष्णवस्य गृहाद्वाऽपि समानीयानलं द्विजः ॥१२४ ग्रह्मोक्तविधिनेवात्र प्रतिष्ठाप्य हुताशनम्। इध्माधानादि पर्यन्तं कृत्वा होमं समाचरेत्।।१२६ पायसेन गवाङ्येन तिलंबीहिभिरेव च। चतुर्भिवैंष्णवैः मूक्तेः पायसं जुहुयाद्वविः ॥१२७ हिरण्यगर्भसूक्तंन श्रीसूक्तंन तथेव च। अहं रुद्रैभिरिति च गवाङ्यं जुहुयास्ततः ॥१२८

त्वमन्ने द्युभिरिति च सुक्तन प्रत्युचन्त्रिभिः। अस्य वामेति सुक्तंन प्रत्युचं ब्रीहिभिस्तथा ॥१२६ अप्रिं नरो दीधितिभिः सूक्तंन प्रत्युचं तथा। समिद्भिः पिप्पलीरौद्रहोतव्यं मुनिसत्तमाः । ॥१३० अष्टोत्तरं महस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा होतव्यमाञ्चं पश्चात्त तथा मन्त्र ायम् ॥१३४ वैकुण्ठपार्षदं होमं पायसेन घृतेन वा । समाप्य होमं हविषः शेषं तस्मे निवेद्येत्। चतुर्मन्त्रांश्चतुर्वेदांश्चतुर्दिक्षु जपेत्ततः ॥१३२ तत्र जागरणं कुरुयद्गिगातवादित्रनर्तकैः। रजन्यां तु व्यतीतायां स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥१३३ वेंकुण्ठतर्पणं कुर्यादृत्विग्भिन्नाह्मणैः सहः। तर्पयित्वा पितृन् देवान्वाग्यतो भवनं विशेन ॥१३४ आचम्य पृवंवन प्जां कृत्वा होमं ममाचरेत्। जुहुयाद्ब्रह्मणः म्तुत्यैः सूक्तेश्च घृतपायसम् ॥१३४ पौरुपेण तु सुक्तेन श्रीसुक्तेन तथैव च । वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा कर्मशेषं समापयेत्।।१३६ नयनोन्मीलनं कुर्यात् सुमुहूर्तेन वैप्णवः । महाभागवतः श्रेष्ठः सूक्ष्महेमशलाकया ॥१३७ द्वयेनैव प्रकुर्वित नयनोन्मीलनं हरेः। निवेश्य भद्रपीठे तु स्नापयेत् सुसमाहितः ॥१३८

सवश्च वैष्णवैः सूक्तेर्झृ त्विजः कलशोद्कैः। ततस्तत्मध्यमं कुम्भमादाय द्विजसत्तमः ॥१३६ स्नापयेन्त्ररत्नेन शतवारं समाहितः। सौवर्णन च ताम्रेण शङ्क्षेन रजतेन वा ॥१४० स्नाप्य पश्चामृतेर्गञ्देर द्घृत्य शुभचन्द्नैः। मन्त्रेण स्नापयित्वा च तुलमीमिश्रितेर्जलेः ॥१४१ वासोभिर्भूपणैः मम्यगरुङ्कुय च वंष्णवः । उपचारैः समभ्यन पश्चान्नीराजयेत्तद्। ॥१४२ अलङ्कृते शुभे गेहं पीठं संस्थापयद्धरिम्। सूक्तेनोत्तानपादस्य दृढं स्थाप्य सुखासने ॥१४३ अष्टोत्तरशतं वारं शुभमन्त्रचतुष्टयात् । ध्यात्वा पुष्पाञ्चलि द्यान्महाभागवतोत्तमः ॥१४४ नत्वा गुरुन् परं धाम्नि स्थितं देवं सनाननम्। ध्यात्वेव मन्त्ररत्नेन तस्मिन् विम्बे निवंशयेत् ॥१४५ अर्चयित्वोपचारैस्तु मङ्गलानि निवेदयेत् । द्रेणं कपिलां कन्यां शङ्खं दृर्वाक्षतान् पयः ॥१४६ सौवर्णमाज्यं लाजांश्च मधुसपंपमञ्जनम्। एवं त्रयोदशे मासि मङ्गलानि निवंदयेत् ॥१४७ तयैव दशमुद्राश्च मन्त्रेणेव समीक्ष्येत्। तद्विम्बमूर्त्ति मन्त्रेण पश्चाइशशतानि तु ॥१४८ पुष्पाणि दद्याद्भत्तया च जपेश सुसमाहितः। सतिलै स्तण्डुलै: शुभ्रै जुहुयाब द्विजोत्तम: ! ।।१४६

#### ऽध्यायः ] भगवित्रसनेमित्तिकसमाराधमविविवर्णनम् । १०८६

आशिषो वाचनं कृत्वा दीपैनीराजयेतदा । भोजयित्वा तनो विप्रान् दक्षिणाभिश्च नोपयेत ॥१४० आचार्य मृत्विजश्चापि विशेषेण समर्चयेत्। तद्धि संप्रहेन्नित्यं होमार्थ परमात्मनः ॥१४१ त्रिरात्रमुःसवं तत्र कुर्यान्छ स्त्या यतात्मवान् । वैष्णवं पापमाष्तुश्च तत्र पुष्पाञ्चलि चरेत् ॥१५२ आज्येन चरुगा वाऽपि होमं कुर्ज्वात वैष्णवः। प्रत्यहं भोजयेद्विप्रान वंग्णवान धृतपायसम् ॥१५३ तन्मूर्तिप्रीतये शक्तया द्याद्वासासि दक्षिणाः। कुर्याद्वभृथेष्टि च महामागवनः सह ॥५४ सहस्रनामभिर्विष्गोः सूक्तेर्विष्णुप्रकाशकैः । नद्यामवभूथं कृत्वा तर्पयेत्पितृदेवताः ॥१५५ अस्य वामेति सूक्तन पायसं मधुसंयुतम्। आज्येन मूलमन्त्रण महस्रं जुहुयात्तदा ॥/४६ आशिषो वाचनं कृत्वा भोजयेद्द्विजसत्तमान्। एवं संस्थापयेहवमर्चयद्विधिना तदा ॥१५७ गृहार्चायां स्थापने तु लघुतन्त्रं समाचरेत्। आधिवासनवेद्यादि मन्त्रमत्र विवर्जयेत् ॥१५८ एकत्र पञ्चगव्येषु विनिक्षिप्य परेऽहिन । पश्चामृतैः स्नापयित्वा पश्चदुद्वर्तनादिकम् ॥१५६ आद्दाय कलशं शुद्धं पवित्रोदकपृरितम्। निश्चिप्य पञ्चरतानि सुवर्णतुलसीदलम् ॥१६०

चन्द्नाक्षतरृव्याश्च तिलान् धात्रीश्व मर्षपम्। अभिमन्त्र्य कुशैः पश्चान्मन्त्ररत्नेन वैज्णवः ॥१६१ शतवारं सहस्रं वा मन्त्रंणैवाभिषेचयेत्। सवश्च बैष्मवेः सुक्तेर्गायत्रया वैष्णवेन च ॥१६२ नामभिः केशवाद्येश्च सर्वेमेन्ट्रीश्च वेष्णवैः। स्नाप्य वस्त्रीर्भू पणिश्च शुभे धान्ये निवंशयेत ॥१६३ म्यण्डिकेज्यिनं प्रतिष्ठाप्य इन्माधानादि पूर्ववत्। होमं कुर्याद् गवाज्येन पायमान्तेन वेष्णवः ॥१६४ कर्तूरीपासनाम्रौ तु होममत्र (तःत्रं) विशिष्यते । प्रत्यृचं वैःगवेः स्कैजुं हुयाद् घृतपायसम् ॥१६५ अस्य वामेति सुकत गवाज्यं जुड्यात्ततः। मन्त्ररत्नेन जुड्याद्टोत्तरसद्घकम् ॥११६६ तद्विम्बमूर्तिमन्त्रोण तिलहोमं तर्येव च। अविज्ञातस्तु तत्मत्रं मूछमत्त्रीय वा यजेत् ॥१६७ यजेच्छी भ्रष्ट्रकाशेश्व गायत्र्या विष्णुसंज्ञया। बैकुग्ठपावदं होमं कृत्वा होमं समापयेत् ॥१६८ नयनोत्मीलनं कुःवा सीवर्णेन कुशेन वा। निवेश्याऽज्वाहयेत्पीठे मन्त्ररत्नेन वैष्णवः ॥१६६ मन्त्रोणैवार्चनं कृत्वा पश्चात् पुष्पाञ्चलि यजेत्। त्तरिमन्त्रिम्ते तु तन्मूर्ति ध्यात्त्रा नियतमानसः॥१७० अष्टोत्तरसद्ग्रन्तु दद्यात् पुष्पाञ्जलि ततः। सर्वेश्च बैष्णवैः सूक्तैर्दद्यात् पुष्पाणि बेष्णवः ॥ १७१

बाह्यणान् भोजयेत्पश्चत्पायसान्नं घृतान्वितम्। शक्तया च दक्षिणां दस्वा विशेषेणार्चयेद् गुरुम्।। १७२ सहस्रनामभिः म्तुस्वा आशीभिरभिवाद् रेत्। प्रदक्षिणानमस्कारान कुट्याँतात्र पुनः पुनः ॥१७३ प्रसीद मम नाथंति भत्तया सम्प्रार्थयेद्विभूम्। दीप्तेनींराजयत्पश्चाच्छत्तया तेन समाहितः॥१७४ हृतशेषं हिव प्राश्य जन्त्वा मन्त्र मनुत्तमम्। ध्यायन कमलपत्राक्षं भूमौ स्वत्यात् बुशोत्तरम् ॥१७४ एवं गृहाची बिम्बस्य विष्णुं संस्थाप्य वष्णवः। अर्चयेद्विधिना नित्यं यावद्दंहनिपातनम् ॥१७६ शाल्यामशिलायान्तु पूजनं परमात्मनः। कोटिकोटिगुणाधिक्यं भवेदत्र न संशय ॥१७७ न जपो नाधिवासश्च न च संस्थापनक्रिया। शालप्रामार्चने विष्गुम्तम्मिन सन्निहितम्तथा ॥१७८ मूर्तीनान्तु हरे स्तस्य यम्यां प्रीतिरनुत्तमा । तस्यामेत्र तु तां ध्यात्वा पूजयेत् तद्विधानतः ॥१७६ मूर्त्यन्तरमिबम्बे तु न यष्टव्यं तदेव तत्। शालयामशिलायान्तु यष्टच्या इष्टमूर्तयः ॥१८० अर्चनं वन्द्नं दानं प्रणामं दर्शनं नृणाम्। शालप्रामशिलायान्तु सर्वं कोटिगुणं भवेत् ॥१८१ न (स)स्नातः सर्वतीर्थेषु सर्वयज्ञेषु दीक्षितः। यो वहेच्छिरसा नित्यं सालपामशिलाजलम् ॥१८२

असत्यकथनं हिंसामभक्ष्याणाञ्च भक्षणम्। शालक्रामजलं पीत्वा सर्वे दहति तत्क्षणान् ॥१८३ द्विजानामेव नान्येपां शालवामशिलार्चनम्। बालकृष्णवपुर्देवं पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८४ पठेद्वा प्रयचित्रेद् विष्णुं विशिष्टः शृद्वयोनिजः । स्थण्डिले हृद्ये बाउपि पूजयेत्तद् द्विजः सदा ॥१८४ वाराहं नारसिंहञ्च ह्यप्रीवञ्च वामनम् । ब्राह्मणः पूजयेद्विण्णं यज्ञमूर्तिञ्च केवलम् ॥१८६ क्षत्रियः पूजयेद्रामं केशदं मधुसृदनम्। नारायणं वामुदेवमनन्तञ्च जनादेनम् ॥१८७ प्रद्युम्न मनिरुद्वश्च गोविन्दश्चाच्युतं हरिम्। सङ्कर्षणं तथा कुर्णा वेश्यः संपूजयेत्त ा ॥१८८ बालं गोपालवेषं वा पुजयेन्छुद्रयोनिजः। सर्व एव हि संपूज्या वित्रेण मुनिसत्तमाः ।।।१८६ सर्वेऽपि भगवत्मत्त्रा जान्याः सर्वेतिद्धिद्याः। तस्माद्द्विजोत्तमः पूज्य सर्वपां भूतिमिन्छताम्।।१६० पञ्चसंस्कारसम्पन्नो मन्त्ररत्नार्थकोविदः। शालवामशिलायां तु पूजयेन पुरुषोत्तमम्। पूजितस्तुलसीपत्रेदद्याद्धि सक्लं हरिः ॥१६१ यः श्राद्धं कुरुते विप्रः शालप्रामशिलाप्रतः। पितृणां तत्र तृप्तिः स्याद् गयाश्राद्धाद्ननन्तरम् ॥१६२

### ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनंभित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०६३

जप्तं हुतं तथा दानं बन्दनं च ततः क्रिया। शालप्रामसमीपे तु सर्व कोटिगुणं भवेत्।।१६३ ध्यात्वा कमलपत्राक्षं शालवामशिलोपरि। पौरुषेण तु सूक्तंन पूजयेत पुरुषोत्तमम् ॥१६४ अनुष्टभस्य सूक्तस्य त्रिष्टवन्त्वाऽस्य देवता । पुरुषो यो जगद्वीजमृपिर्नारायणः स्मृतः ॥१६४ प्रथमा वित्यसेहामे हितीयां दक्षिणं करे। तृतीयां वामपादे तु चतुर्थी दक्षिणे तथा ॥१६६ पश्चमी वामजानौ तु पष्टी व दक्षिणे तथा। सप्तमी वामकट्यां तु ह्यप्रमी दक्षिणेऽपि च ॥१६७ नवमीं नाभिदेशे तु दशमी हृदि विन्यसेत्। एकादशीं कण्ठदेशे द्वादशीं वामवाहके ॥१६८ त्रयोदशी दक्षिणे तु स्वास्यदेशं चतुर्दशीम्। अक्ष्णोः पञ्चरशी मूर्धिन पोडशीब्चैव विन्यसेन् ॥१६६ एवं न्यासविधि कृत्या पश्चाद् ध्यानं समाचरेत्। सहस्राकेप्रतीकाशङ्करदर्पायुतसन्निभम्।।२०० युवानं पुण्डरीकाक्षं मर्वाभरणभृषितम् । पीनवृत्तायतैदांभिश्चतुर्भिर्भूषणान्वितैः ॥२०१ चकं पद्मं गदां शङ्कं विभ्राणं पीतवाससम्। शुक्रपुष्पानुलेप 🔏 रक्तहस्तपदाम्बुजम्।।२०२ सुस्निग्धनीलकुटिलकुन्तलैकपशोभितम्। श्रिया भूम्या समाश्लिष्टपाश्वं ध्यात्वा समर्चयेत् ॥२०३ बृद्धहारीतस्मृतिः।

यथाऽऽत्मनि तथा देवे न्यासकर्म समाचरेत्। आद्ययाऽऽवाहनं विष्णोरासनं च द्वितीयया ॥२०४ तृतीयया च तत्पाद्यं चतुश्यांऽध्यं निवेद्येत् । पश्चम्याऽऽचमनीयं तु दातव्यं च ततः क्रमात्।।२०४ षध्ट्या स्नानन्तु सप्तम्या वस्त्रमप्युपवीतकम् । अष्टम्या चैत्र गत्धन्तु नवम्याथ सुपुत्रपकम् ॥२०६ द्शम्या धूपकञ्चेव मेकादश्या च दोपकम्। द्वादश्या च त्रयोदश्या चर्म दि्ज्यं निवेद्येन्॥२०७ चतुर्श्या नमस्कारं पञ्चदृश्या प्रदक्षिणम्। पोडश्या शयनं दत्त्वा शपकर्म्म समाचरेत्।।२०८ स्नानवस्रोपवीतेषु चरी चाऽचमनं चरेत्। हुत्वा पोडशभिर्मन्त्रीः पोडशाऽऽज्याहुतीः क्रमान् ॥२०६ तथवाऽऽज्येन होतव्यं मृद्धिः पुऱपाञ्जलि चरेन् । तच सर्वे जपेन सद्यः पौरुषं सूक्तमुत्तमम् ॥२१० कृत्वा माध्याहिकस्नान मृद्ध्रुपुण्ड्रधरस्ततः। नित्यां सन्ध्यामुपास्याथ रविमण्डलमध्यगम् ॥२११ हरिं ध्यायन्नगदः स्यादेनसः शुचिरित्यृचा । सावित्रीं च जपेत्तिष्ठन प्राणानायम्य पूर्वतः ॥२१२ सौरेण चानुवाकेन उपस्थानजपं तथा। आत्मानं च परीक्ष्याथ दर्भान्तरपुटाञ्जलिम् ॥२१३ दक्षिणाङ्कं तु विन्यस्य जपयज्ञाप्तये बुधः। सन्याहृति सप्रणवां गायत्रीं तु जपेत्त दा ॥२१४

## ऽभ्यायः ] भगवित्रस्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०६४

शक्तया च चतुरो वेदान् पुराणं वेष्णवं जपेत्। चरितं रघनाथाय गीता भगवतो हरेः ॥२१४ ध्यायन्त्रे पुण्डरीकाक्षं जास्त्रा वाऽप उपस्पृशेत् । पूर्ववत्तर्पयदेवं वैकूण्ठपार्पदं तथा ॥२१६ देवानृषी न्यितुन्श्रव तर्पीयन्वा तिलोदकैः। निष्पीड्य वस्त्रमाचम्य गृहमाविश्य पूर्ववन् ॥२१७ पूजयित्वाऽच्युनं भत्तया पौरुषण विधानतः। देवं भूतं पेतृकं च मानुषञ्च विधानतः ॥२१८ प्रीतयं सर्वयज्ञम्य भोक्त विष्णो यजेत्तत । वेकुण्डं वेज्यवं होमं पर्ववज्जुहुयात्तदा ॥२१६ चतुर्विधेभ्यो भृतेभ्यो बल्जि पश्चाद्विनिक्षिपेन । द्वारि गोदाहमात्रन्तु तिष्ठेद्तिथिवाब्द्वया ॥२२० भोजयंबाऽऽगतान कालं फलमूलौदनादिभिः। महाभागवतान विप्रान् विशयेणीव प्जयेत्।।२२१ मध्यक्षेत्रदानेन पाद्याध्यांचमनादिभिः। गन्येः पुष्पश्च नाम्बल धूपे दींपे निवेदनैः॥२२२ ब्रह्मासने निवेश्येव पूजयच्छद्धयाऽन्वितः। मकुःसंप्जिते विषे महाभागवनोत्तमे ॥२२३ षष्टि वर्षसहस्राणि हरिः संपूजितो भवेत । मोहादनर्चयंद्यस्तु महाभागवतोत्तमम्।।२२४ कोटिजन्मार्जितात्पुण्याद् भ्रश्यते नात्र मंशयः। गृहे तस्य न चाश्नाति शतवर्षाणि केशवः ॥२२४

मुखं हि सर्वदेवानां महाभागवतोत्तमः। तस्मिन् सम्पृजिते विप्रं पृजितं स्याज्जगत्त्रयम् ॥२२६ अर्थपञ्चकतत्वज्ञः पञ्चसंस्कारसंस्कृतः । नवभक्तिसमायुक्तो महाभागवतः स्मृतः ॥२२७ काले समागते तस्मिन् पुजिते मधुसूदनः । क्षणादेव प्रसन्नः स्यादीप्सितानि प्रयच्छति ॥२२८ महाभागवतानाञ्च पिवत्पादोदकं तु यः। शिरसा वा श्रयेद्भक्त्या सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥२२६ यस्मिन् कस्मिन् हि वसनि महाभागवतोत्तमे । अप्येकरात्रमथवा तहेशस्तीर्थसम्मितः ॥२३० भोजयित्वा महाभागान् वैष्णवानतिथीनपि । ततो वालसहद्वृद्धान् बान्धवांश्च समागनान् ॥२३१ भोजयित्वा यथा शक्तया यथाकालं जितक्षधः। . मक्षां दद्यान प्रयत्नेन यतीनां ब्रह्मचारिणाम् ॥२३२ शुद्रो वा प्रतिलोमो वा पथि श्रान्तः क्षुवातुरः। भोजयेत्तं प्रयत्नेन गृहमभ्यागतो यदि ॥२३३ पापण्डः पतितो वाऽपि श्लुधार्त्तो गृहमागतः। नैव द्द्यात स्वपकाश्रमाममेव प्रदापयेत्।।२३४ स्वशक्त्या तपयित्वैवमतिथीनागतान् गृहे । सम्यङ्निवेदितं निष्णोः स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥२३४ प्रक्षाल्य पादौ हम्तो च सम्यगाचम्य वारिणा। विष्णोरभिमुखं पीठे हेमदिग्धे कुशोत्तरे ॥२३६

प्राग्वा प्रत्यङ्मुखो वाऽपि जान्वोरन्तःकरः श्रचिः । उदङ्गुखो वा पैत्र्ये तु समासीताभिपृजितः ॥२३७ वंशतालादिपत्रेस्तु कृतं वसनमश्म च। कपाल मिष्टकं वापि वर्ण तृणमयं तथा ॥२३८ चर्मामनं शुष्ककाष्टं खलं पय्यङ्कमेव च। निपिद्धधातु पीठं च दान्तमस्थिमयश्व यत्।।२३६ द्ग्धं परावितं तालमायम्ब विवर्जयत्। विभीतकन्तिन्दुकञ्च करञ्जं व्याधिघातकम् ॥२४० भहातकं कपित्थं च हिन्तालं शियमेव च। निपिद्धतरवो ह्येते सर्वकर्मसु गर्हिताः ॥२४१ गुद्धदारुमये पीठ समामीने कुशोत्तरे। पीठं त्वलाभे सौम्ये स्यात केवलं कुशविष्टरम् ॥२४२ चतुरस्रं त्रिकोणं वा वर्तुलश्वार्द्धं चन्द्रकम् । वर्णानामानुपूर्वेण मण्डलानि यथाक्रमात् ॥२४३ स्वलड्कृते मण्डलेऽस्मिन् विमलं भाजनं न्यसेत्। स्वर्ण रोप्यं च कांस्यं वा पर्ण वा शास्त्रचोदितम् ॥२४४ चतु.षष्टिपलं कांस्यं तद्धं पादमेव वा। गृहिणामेव भोज्यं स्यात् ततो हीनन्तु वर्जयेत् ॥२४४ पलाशपद्मपत्रं तु गृही यत्नेन वर्जयेत्। यतीनाश्व वनस्थानां पितृणाञ्च ग्रुभप्रदम् ॥२४६ वटाश्वत्थार्कपर्णानि कुम्भोतिन्दुकयोस्तथा। एरण्डतालबिल्वेषु कोविदारकरञ्जके ॥२४७

भक्षातकाश्वपर्णानां पर्णानि परिवर्जयेत्। मोचागर्भपलाशं च वर्जयेत्तत्त् मर्वदा ॥२४८ मधुकं कुटनं बाह्यजम्बूप्रक्षमुदुम्बरम् । मातुल(ल)ङ्गं पनसं च मोचाचर्मदलानि च ॥२४६ पालाक्यवर्णं श्रीपर्णं शुभानीमानि भोजने । यथाकालोपपन्ने तु भोजने घृतसंस्कृते ॥२५० पत्न्यादिभिर्दत्तवस्तु वास्तुद्वापिते शुभे। गायच्या मूलमन्त्रेण संप्रोक्ष्य शुभवारिणा ॥२४१ भृतसत्याभ्यामिति च मन्त्र्याभ्यां परिषेचयेत्। अन्नरूपं विराजं संब्यात्वा मन्त्रं जपेद्बुधः ॥२४२ ध्यात्वा हत्पङ्कजे विष्णुं सुधांशुमदशद्यतिम् । शङ्खचक्रगदापद्मपाणि वै दिव्यभूषणम् ॥२५३ मनसैवार्चयित्वाऽथ मृलमन्त्रेण वैष्णवः। पादोदकं हरेः पुण्यं तुलमीदलमिश्रितम् ॥२४४ अमृतोपस्तरणममीति मन्त्रेण प्राशयेत्। उद्दिश्येव हरि प्राणान जुहुयान् सघृतं हविः ॥२५५ अन्नलाभे तु होतव्यं शाकमूलफलादिभिः। पञ्चप्राणाद्या हुनयो मन्त्रेस्तेर्जूहुयाद्धरेः ॥२४६ श्रद्धायां प्राणे(नि)विष्ठेति मन्त्रेण च यथाक्रमात्। तर्जनीमध्यमाङ्गुष्ठैः प्राणायेति यजेद्धविः ॥२५७ मध्यमानामिकाक्कुड्डेरपानायेत्यनन्तरम् । कनिष्ठानामिकाक्कष्ठेर्व्यानायेत्याहुति ततः ॥२५८

#### ऽभ्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १०६६

कनिष्ठतर्ज्ञान्यङ्गष्ठैप्रदानायेति वै यजेत्। समानायेति जुदुयात्सवरङ्क्क्षिभिद्धिजः ॥२५६ अयमप्रिवेश्वानिरित्यात्मानमनन्तरम् । शतमृद्योत्तरं मन्त्रं मनसेव जपेत्ततः ॥२६० ध्यायन् नारायणं देवं भुञ्जीयात् तु यथासुखम्। वक्त्राद्पातयन ग्रासं चिन्तयनमधसुद्नम् ॥२६१ नाऽऽसनारूढपाद्म्तु न वेष्टितशिरास्तथा। न स्कन्दयन न च हसन वहिनाध्यवलोकयन ॥२६२ नाऽऽत्मीयान प्रलपन् जल्पन वहिर्जानुकरो न च । न वादकोपितनरः(पादारोपिनकरः)पृथित्यामपि वा न च ॥२६३ न प्रसारितपादश्च नोत्सङ्गकृतभाजनः। नाश्नीयाद्वार्यया सार्धं न पुत्रवीपि विह्नलः ॥२६४ न शयानो नातिसङ्गो न विमुक्तशिरोकहः। अन्नं वृथा न विकिरन् निष्ठीवन नातिकाङ्क्या ॥२६५ नातिशब्देन भुञ्जीत न वस्तार्थोपवेष्टितः। प्रगृह्य पात्रं हस्तेन भुञ्जीयात् पैतृकं यदि ॥२६६ चपके पुरके वाऽपि पिवत्तीयं द्विजोत्तमः। तकं वाडप्यथ वा क्षीरं पानकं वाडपि भोजने ॥२६७ वक्डोण सान्तर्धानेन दत्तमन्येन वा पिबेत्। प्रासरोषं नचारनीयात्पीतरोषं पिवेन्न तु ॥२६८ शाकमूलफलादीनि दन्तिच्छिन्नं न खाद्येत्। उद्घृत्य वामहस्तेन तोयं वक्त्रेण यः पिबेत् ॥२६६

स सुरां वे पिबंद व्यक्तां सद्यः पतित रौरवे। शब्देनापोशने पीत्रा शब्देन द्धिपायसे ॥२७० शब्देनामरसं क्षीरं पीत्वेव पतितो भवेत्। प्रत्यक्षलवणं शुक्तं क्षीरं च लवणान्वितम् ॥२७१ द्धि हस्तेन मथितं सुरापानसमं स्पृतम्। आरनालरसं तद्वचद्वेवानार्षितं हरेः ॥२७२ आसनेन तु पात्रेण नैव दद्याद्घृतादिकम्। नोच्छिष्टं घृतमाद्द्यात् पैतृके भोजने विना ॥२७३ तथैव तु पुरोडाशं पृपदाज्यश्व माक्षिकम्। पानीयं पायसं क्षीरं घृतं लवणमेव च ॥२७४ हस्तदत्तं न गृह्णीयात्तुल्यं गोमांसभक्षणम्। अपूर्व पायसं मापं (मांसं) यावकं कुसरं मधु ॥२७६ केवलं यो वृथाऽश्नाति तेन भुक्तं सुरासमम्। करञ्जं मूलकं शिग्रु लशुनं तिलपिष्टकम्।।२७६ तलास्थि श्वेतवृन्ताकं मुरापानसमं स्मृतम्। अन्यच फलमूलायं भक्ष्यं पानादिकञ्च यत्।।२७७ स्रक्चन्दनादि ताम्बूछं यो भुङ्क्तं हर्यनर्पितम्। कल्पकोटिसहस्राणि रेतोविण्मूत्रभाग् भवेत्।।२७८ तस्मात्सवं सुविमछं हरिभुक्तं यथोक्तवत्। स पवित्रेण यो भाङ्के सर्वयज्ञफळं छभेत्।।२७६ ध्यायन् नारायणं देवं वाग्यतः प्रयतात्मवान् । भुक्त्वावनतितृप्त्यैव प्राशयेदम्बु निर्मछम् ॥२८०

### ऽभ्यायः ] भगवित्रयनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०१

अमृतापिधानमसीतिमन्डोण कुशपाणिना । किञ्चिदन्नमुपादाय पीतशेषण वारिणा ॥२८१ पैतृकेण तु तीर्थेन भूमौ दद्यात्तदर्थिनाम्। रौरवं नरके घोरे वसतां क्षुत्पिपासया ॥२८२ तेषामन्नं सोदकञ्च अक्षय्यमुपतिष्ठतु । इति दस्वोदकं तेपां तस्मिन्नवाऽऽसने स्थितः ॥२८३ प्रक्ष्याल्य हस्ती पादौ च वक्तां मंशोध्य वारिभि । द्विराचम्य विधानेन मन्त्रंण प्राशयेज्ञलम्। २८४ पीत्वा मन्त्रजलं पश्चादाचम्य हृद्याम्युजे । राममिन्दीवरश्यामं चक्रशब्खधनुर्धरम् ॥२८५ युवानं पुरहरीकाक्षं ध्यात्वा मन्त्रं जपेर्वुधः । समासीनः सुखासने वदमध्यापयेत्ततः। सिब्द्रिप्यान् यांस्तु शास्त्रं वा स्नेहाद्वा धर्मसंहिताम ॥२८६ इतिहासपुराणं वा कथयेच्छृणुयाच वा। रवावस्तङ्गते सन्ध्यां वहिः कुर्ज्ञात पूर्ववत् ॥२८७ वहिः सन्ध्या शतगुणं गोष्ठे शतगुणं तथा । गङ्गाजले सहस्रं स्यादनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥२८८ उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां जप्त्वा जप्यं समाहितः। पूर्ववत् पूजयेद्विष्णुं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः ॥२८६ अष्टाक्षरविधानेन निवेश्येवं समाहितः। सायमीपासनं दुत्वा वैष्णवं होममाचरेत्।।२६०

ध्यात्वा यज्ञमयं विष्णुं मन्त्रोणाष्ट्रोत्तरं शतम्। तिलब्रीह्याज्यचरुभिस्तजैकेनापि वा यजेत्।।२६१ वैश्वदेवं भूतविंछ हुत्वा दस्वा च आचमेत्। शय्यायां विन्यसेंद्वं पर्यंड्कं समलड्कृते ॥२६२ सविताने गन्धपुष्पधूपैरामोदिते शुभे। शाययित्वा च देवेशं देवीभ्यां सहितं हरिम् ॥२६३ हिरण्यगर्भमूक्तंन नामदासीदनेन च। कृत्वा पुष्पाञ्जिति पश्चादुपचारैः समर्चयेत् ॥२६४ श्रिये जात इत्युचेव ध्रुवसूक्तंन च द्विजः। दीपैनीराजनं कृत्वा पश्चाद्रध्यं निवेद्येत् ॥२६५ सुवाससा य(ज)वनिकां विन्यस्याथ समाहितः। द्वादशार्णं महामन्त्रं जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥२६६ अस्त्रेश्च शङ्कचकाद्येदिक्षु रक्षां सुविन्यसेत्। स्तोत्रेः स्तुत्वा नमस्क्रःवा पुनः पुनरनन्तरम् ॥२६७ वैष्णवैश्व सुहद्भिश्च भुञ्जीयादपितं हरेः। आचम्याप्रिमुपस्पृश्य समासीनस्तु वाग्यतः ॥२६८ ध्यायन् हृदि शुभं मन्त्रं जपेदृशेत्तरं शतप्। शेपाहिशायिनं देवं मनसैवार्चयेत्ततः ॥२६६ शयीत शुभशय्यायां विमले शुभमण्डले। भ्रतौ गच्छंद्वर्मपत्नी विना पञ्चसु पर्वसु ॥३०० पुत्रार्थी चेत् युग्मासु स्त्रीकामी विषमासु च। न श्राद्धदिवसे चैव नोपवासदिने तथा ॥३०१

ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनेमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०३

नाशुचिमीहिनो वाऽपि न चैव महिनां तथा। न क्रुद्धां न च क्रद्धः सन न रोगी नच रोगिणीम ॥३०२ न गच्छेन क्राद्विसे मघामूलद्वयोगि । ब्राह्मित मुहुर्त उत्थाय आचामेत्प्रयतात्मवान् ॥३०३ यती च ब्रह्मचारी च वनस्थो विधवा तथा। अजिने कम्बले वाऽपि भूमौ स्वायान कुशोसरे ॥३०४ ध्यायन्तः पद्मनाभं तु शयीरन विजितेन्द्रियाः। अर्पयेद् वाऽर्चयेद्विग्णुं त्रिकालं श्रद्धयाऽन्विताः ॥३०४ आचरेयुः परं धम यथावृत्त्यनुमारतः। प्रातः कृष्णं जगन्नाथं कीर्तयेन पुण्यनामभिः ॥३०६ शौचादिकन्तु यत्कर्म पृब्वीक्तं सर्वमाचरेत्। नैमित्तिकविशेषण ्रज्ञयेत् पतिमव्ययम् ॥३०७ तत्तत्काले तु तनमूर्ते रचेनं मुनिभिः स्मृतम्। प्रसुति पद्मनाभे तु नित्यं मासचतुष्टयम् ॥३०८ द्रोण्यान्दोलायामपि वा भत्तया संपूजयेहिभुम्। क्षीराब्धो शेषपयङ्कं शयानं रमया सह ॥३०६ नीलजीमृतसङ्काशं सर्वालङ्कारसन्दरम् । कौस्तुभोद्गासिततनुं वैजयन्त्या विराजितम् ॥३१० लक्ष्मोघनकुचस्पर्शशुभोरस्कं सुबर्चसम्। ध्यात्वेवं पद्मनाभन्तु द्वादशार्णेन नित्यशः ॥३११ पूजयेदुगन्धपुष्पाद्यै स्त्रिसन्ध्यास्वपि वैष्णवः। निवेद्य पायसाम्नं तु द्द्यात् पुष्पाञ्जलि ततः ॥३१२

सहस्रं शतवारं वा द्वयं मन्त्रं जपेत्सुधीः। द्वादशार्णमनुञ्चेव जप्त्वाऽऽज्येन तिलैश्च वा ॥३१३ केवछं चारुणा वाऽपि जुहुयात्प्रतिवासरम् । अधःशायी ब्रह्मचारी सर्वभोगविवर्जितः ॥३१४ वार्षिकांश्चतुरो माप्तानेवमभ्यर्च्य केशवम् । बोधियत्वाऽथ कार्तिक्यां दद्यात् पुष्पाण्यनेकशः॥३१५ साज्येस्तिलै: पायसेन मधुना च सहस्रशः। मूलमन्त्रोण जुह्यान सूक्तेश्वाव**भृथं** ततः ॥३१६ सहस्रनामभिः कृत्वा दद्याद्दर्णमेव च। गृहं गत्वाऽथ देवेशम्पुजयित्वा यथाविधि ॥३१७ भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् दक्षिणाभिश्च नोपयेत्। शुक्रपक्षे नभोमासि हादश्यां वेष्णवः शुचिः ॥३१८ पवित्रारोपणं कुर्यान्नाभिमात्रायतं न्यसेत्। तथा वक्षसि पर्यन्तं सहस्रन्तान्तवं स्मृतम् ॥३१६ कुशप्रन्थिसहस्रन्तु पादान्तं विन्यसेत्ततः। सौवर्णी राजनीं मालां शतप्रनिथयुतां न्यसेत् ॥३२० मृणालतान्तवं पश्चात् पुष्पमालां ततः परम्। शतमौक्तिकहाराणि नानारत्नमयान्यपि ॥३२१ उपोध्येकादशीं तत्र रात्रौ जागरणान्वितः। अभ्यर्षयेज्ञगन्नाथं गन्धपुष्पफलादिभिः ॥३२२ नीत्वा रात्रि नर्तनाद्येः प्रभाते विमले नदीम्। गस्वा स्नात्वा च विधिना तर्पयित्वेशमचेंयेत् ॥३२३

#### अध्यायः ] भगवित्रत्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०५

सर्वैश्च वैष्णवें: (मर्लो ) मृक्तैर्मध्वाज्यतिलपायसै: । हुत्वा दत्त्वा दशार्णेन महस्र जुटुयात्ततः ॥३२४ पश्चादारोपयद्विष्णोः पवित्राणि श्रभानि वै। पवस्व सोम इति च जपन मृक्तं सुपावनम् ॥३२४ निवेद्येत्पवित्राणि तथा विष्णोर्यथाक्रमात्। मन्द्रं कुशयोक्त्रेण त्रेष्ट्यन परमात्मनः ॥३२६ वितानपुष्पमालाद्यं रलङ्कृत्य च सर्वतः। सहस्रं द्वादशर्णेन भक्तया पुष्पाञ्जलि न्यसेन ॥३२७ अथोपनिपद्कानि पञ्चमूकान्यनुक्रमान् । त्वयाह्न पीतमिज्यादि जपन् पुष्पाञ्जलि नतः ॥३२८ ब्राह्मणान् भोजयेत्पश्चात् म्वयं कुर्वात पारणम् । शक्त्या वा चोत्मवं कुर्य्यात्त्रिरात्रं वंष्णयोत्तमः ॥३२६ प्रत्यब्द्मेवं कुर्वीत पवित्रारोपणं हरेः। क्रतुकोटिसहस्रस्य फुछं प्राप्नोत्यसंशयः ॥३३० तत्र दुर्भिक्षरोगादिभयं नारित कदाचन। संप्राप्ते कार्तिके मासे सायाह्नं पूजयेद्धरिम् ॥३३१ हृद्यैः पुष्पेश्च जातीभिः कोमलै म्तुलसीद्रलैः । अर्चयेद्विष्णुं गायत्र्याऽनुवाकैर्वष्णवेरपि ॥३३२ पावमान्येश्च तन्मासं भक्त्या पुःपाञ्चिछि न्यसेत्। अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरं तु वा ॥३३३ अष्टाविंशतिं वा शक्त्या दद्यादीपान् सुपालिकान्। सुवासितेन तैलेन गवाज्येनाथवा हरेः ॥३३४

अष्टोत्तरशतं नित्यं तिलहोमं समान्तरेत्। मनना वैष्णवेनापि गायत्र्या विष्णुसंह्या ॥३३४ हत्वा पुष्पाञ्जलि दत्वा ताभ्यामेव तदा विभोः। ह्विष्यं मोदकं शुद्धं नक्तं भुञ्जीत वाग्यतः॥३३६ तेलं शुक्तं तथा मांसं निष्पावान्माक्षिकं तथा। चणकानिप मापश्चि वर्जयत्कार्तिकेऽहनि ॥३३७ भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान् नित्यं दानादिशक्तयः। अन्ते च भोजयेद्विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोपयेत् ॥३३८ एवं संपूज्य देवेशं कार्तिके क्रतुकोटिभिः। पुण्यं प्राप्यानघो भूत्वा विष्णुङोके महीयते ॥३३६ दशमीमिश्रितां त्यक्त्वा वेलायामरुणोदये। उपोध्येकादशी अद्धां द्वादशी बाऽपि वैष्णवः ॥३४० स्नात्वाऽऽमलक्या नद्यां तु न्निधानेन हरिं यजेत्। सुगन्धकुपुमैः शुभ्रौरुपचारैश्च सर्नशः ॥३४१ रात्री जागरणं कुर्यात् पुराणं संहितां पठेत्। जागरेऽस्मिन्नशक्त्रब्रेद्दर्भानास्तीर्म वैष्यवः ॥३४२ पुरतो वासुदेवस्य भूमौ स्वप्यात्समाहितः। ततः प्रभातसमये तुलसीमिश्चितैर्ज्ज्हेः ॥३४३ स्नात्वा सन्तर्प्य देवेशं तुल्यस्या मूलमन्त्रतः। द्वयेन वा विष्णुसूक्तेः कुर्प्यान् प्रुष्पाख्यस्यतः ॥३४४ तथ्रैव जुहुयाद।ज्यं मन्त्रेणेव शवं वतः। पायसार्ग निवेग्रेशे हाहापान भोजतेलनः ॥३४८

# असम्बः ] भगवन्नित्यनैसित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११०७

ध्यायन् कमलपत्राक्षं स्वयं भुञ्जीत वाम्यतः। अहःशेषं समानीय पुराणं वाचयन् बुधः ॥३४६ सायाहं समनुप्राप्ते बोलायां पूजयेद्धरिम्। अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्ष्यैनांनान्निधैरपि ॥३४७ ब्रा**श**णस्यतु सृक्तेश्च शनैद्रं छा प्रचालयेत् । इतिहासपुराणाभ्यां गीतवाद्यैः प्रबन्धकैः ॥३४८ एवं संपूजयेदेवं तस्यां निशि समाहितः। मध्याह्वे पूजयेडिप्णुं बैप्णवेन समाहितः ॥३४६ चम्पकैः शतपत्रेश्च करवीरैः सितैरपि। बैष्णवेनैव मन्त्रेण पूजयेत्कमलापतिम् ॥३५० नकरीन्द्रंति सुक्तेन दद्यान पुष्पाञ्जलिं हरेः। मन्त्रेणाष्टोत्तरशतं द्यात् पुष्पाणि भक्तितः ॥३५१ तथैव होमं कुर्वीत किली ब्रीहिभिरेव बा। सुद्ध्यन फलयुतं नैबेदा विनिवेद्यद् ॥३४२ दीपैनीराजनं कृत्वा बैष्णवान् भोजग्रेत्ततः। मन्दवारे तु सायाह्रे तावत्सम्यगुपोषितः ॥३५३ तिलीः स्नात्वा त्रिधानेन सन्तर्फ च सनातनम्। नृसिह्वपुषं देवं पूजयेत्तद्विधानतः ॥३५४ मन्त्रराजेन गायज्या मूलमन्त्रण वा यजेत्। अखण्डविल्वपत्रेश्च जातिकुन्देश्च यूचिकैः ॥३५५ छन्नः पञ्चोशना शान्त्याः त्वमस्ते ! शुभिरीति च । दद्यात् पुष्रपाखुर्लि भक्त्या मन्त्रेणैन सद्धं यथा ॥३५६

आम्यामेबानुवाकाभ्यां प्रत्यचं जुहुयाद् घृतम्। मन्त्रेणाष्ट्रीत्तरशतं विल्वपत्रेर्वे तान्वितैः ॥३४७ वैदुण्ठपावदं हत्वा होमशेषं समापयेत्। मधुशकरसंयुक्तानपूपान मोदकांस्तथा ॥३५८ मण्डकान् विविधान् भक्ष्यान सूपान्नं मधीमश्रितम्। सुवासितं पानकञ्च नृसिंहाय ममर्पयत् ॥३४६ नृत्यं गीतं तथा वाद्यं कुवीत पुरतो हरेः। भोजयेच ततो विप्रान् नव सप्ताथ पञ्च वा ॥३६० ह्यंर्पितहविष्याञ्चं भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम् । ध्यायेन्नृत्महं मनमा भूमौ स्वत्याज्ञितेन्द्रयः ॥३६१ एवं शनिदिने देवमभ्यर्च्य नरकेसरिम्। सर्वान् कामानवाप्नोति मो अप्रमेधायुतं लभेन ॥३६२ पष्टिवर्षसद्म्यं स पूजां प्राप्नोति केशवः। कुलकोटि समुद्धृत्य वैकुग्ठपुरमाप्नुयान् ॥३६३ प्रायश्चित्तामदं गुह्यं पातकपु महत्म्वपि । अपुत्रो लभते पुत्र मधनो धनमानुयान् ॥३६४ पक्षे पक्षे पौर्णमास्यामुदितेऽस्मि (निशाकरे) न्दिवाकरे । स्नात्वा संपुजयेद्विष्णुं वामनं देवमञ्ययम् ॥३६४ समासीनं महात्मानं तस्मिन् पूर्णेन्दुमण्डले । सन्तर्पयेच्छुभजलैः कुसुमाक्षतमिश्रितैः ॥३६६ तत्र मृहोन मन्त्रोण पूजयत परमेश्वरम् । तुलसीकुन्दकुष्पमेरथ पुष्पाञ्जलि चरेत् ॥३६७

त्वं मोम इति सृक्तंन प्रत्य च कुसुमंयजेत्। पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत पायसान्नं सशर्करम् ॥३६८ मन्त्रेणाष्ट्रोत्तरशतं स्वतेन प्रत्यचं तथा। अग्निमोमानुवाकेन समिद्भिः पिष्पलैर्यजेन् ॥३६६ सहस्रनामभिः स्तुत्वा नमम्कृत्वा जनादंनम् । वैष्णवान् भोजयत्पश्चात्पायमान्नेन शक्तित ॥३७० म्वयं भुक्तवा हविः शेषं शयीत नियतेन्द्रियः। एवं संपूज्य देवेशं पौर्णमास्यां जनार्दनम् ॥३७१ मर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णु मायुज्यमाप्नुयात् । मघायामपि पर्वाहे स्नान्वा कृष्णं जरुँ ईिजः ॥३७२ सन्तर्प्य मुलमन्त्रेण निल्लिभितवारिभिः। तर्पयित्वा पितृन्देवानर्चयेदच्युतं ततः ॥३७३ कृष्णेश्च तुलमीपडीः केतर्कः कमलेरपि । शोणितै: करवीरैश्र जपाकुटजपाटलैं: ॥३७४ अस्य वामेति सूक्तंन द्दात् पुरपाञ्जलि हरेः। मन्त्रेणाष्ट्रोत्तरशतं कृष्णं श्रीतुलसीद्लैः ॥३७४ तथैव जुहुयाद्मी तिलैः कुप्णैः सकर्शरैः। आज्येन पौरुषं सूक्तं प्रत्यृचं जुहुयात् ततः ॥३७६ नारायणानुवाकेन उपस्थाय जनाईनम्। मुसंयावैः सौहदेश शाल्यन्नं विनिवेदयेत्।।३७७ वैष्णवान् भोजयत्पश्चात्स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः। तस्यां रात्रौ जपेन्मन्त्रमयुतं हरिसन्निधौ ॥३७८

वैष्णवैरनुवाकेश्च दत्त्वा पुष्पाञ्जलि ततः। पुरतो वासुदेवस्य भूमौ स्वय्यात्कुशोत्तरे ॥३७६ एवं संपज्य देवेशं मघाया वैष्णवात्तमः । उद्घृत्य वंशजान् सर्वान् वैष्णवं पदमाप्नुयान् ॥३८० व्यतीपातं तु संप्राप्तं ह्यमीवं जनादनम् । पुष्पंश्च करवीरश्च पुण्डरोकेः समर्घयत् ॥३८१ योरयीत्यनुवाकेन प्रत्यृचं व यजेद्वुधः। मन्त्रोण च शतं दस्वा पश्चाद्धोमं ममाचरेत् ॥३८२ यवश्च तण्डुलैबांऽपि तिलें: पुष्पेरमापि वा । मन्त्रणाष्ट्रोत्तरारतं जुहुवाहेष्णवोत्तमः ॥३८३ अभूदेकाद्यष्टसूक्तैः प्रत्युचं जुहुयाचरूम् । शेषं निवेश हरये संप्राश्याऽऽचमनं चरेत् ॥३८४ सहस्रशीपमृक्तेन उपस्थाय जनार्दनम्। शाल्योदनं मृपयुनं विविधेश्च फलैगपि ॥३८५ गवाज्येन युतं दत्त्वा दीपैनींगजयेत्ततः ॥३८६ ब्राह्मणान् भाजयेत्पश्चाइक्षिणाभिश्च तोपयेत्। हविष्यन्तु स्वयं भुक्त्वा भूमौ स्वप्याज्ञितेन्द्रियः॥३८७ एवं संपूच्य देवेशं व्यतीपाते सनातनम् । दशवर्षसहस्रस्य पूजायाः फलनाप्नुयान् ॥३८८ प्रहणे रविसंकान्ती वराहवषुषं हरिम्। कुमुदेशज्व के: पद्मैरतुलसी भिः कुरम्दकैः ॥३८६

## **ऽव्यायः**] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम्। ११११

अर्चयेद्भूधरं देवं तत्मन्त्रोणैव वैष्णवः। दूरादिहेति सूक्तेन द्यात् पुष्पाञ्जिलि द्विजः ॥३६० मन्त्रेण च मह्भं तु शतं वाऽपि यजंत्तदा । तिलेश्च जुहुयात्तद्वत् सुक्तेन प्रत्यूचं घृतम् ॥३६१ सूपान्नं कुसरान्नं च मक्ष्यापूपान् घृतप्लुतान् । नैंबंद्यं विनिवंद्येशे ब्राह्मणान् भोजयंत्रतः ॥३६२ एं संपूज्य देवेशं संक्रान्ती प्रहण हरिम्। कल्पकोटिसहस्राणि विष्गुलोके महीयते ॥३६३ वशाखे पूजयेद्रामं काकुत्स्य पुरुषोत्तमम्। मीतालक्ष्मणमंयुक्तं मध्याह्ने पूजयेद्विभुम् ॥३६४ पुन्नागकतकीपद्मैरुत्पलैः करवीरकैः। चाम्पेयेबकुरू: पूजां पडणीनेव कारयेत् ॥३६५ जातये वातिसृक्तेन कुर्यात् पुष्पाञ्जलिं ततः। संक्षेपेण शतश्रोक्यां प्रतिश्लोकं यजेत्ततः ॥३६६ पुष्पाञ्जलि सहस्र तु मन्त्रोणैव यजेत्ततः। त्वमप्र इति सूक्तेन पायसं जुहुयाहचा ॥३६७ पश्चान्मज्ञेणाऽऽज्यहोमो नेवेद्यं पायसं घृतम् । कदलीफलं शर्करां च पानकं च निवेद्येत्।।३६८ पञ्च सप्त त्रयो वाऽपि पूजनीया द्विजोत्तमाः। सुहसेरनपानासंगीहिण्यादिदक्षिणैः ॥३६६ हविष्यान्नं स्वयं मुक्त्वा पठेद्रारामायणं नरः। एवं संपूज्य विधिवद्राघवं जानकीयुतम् ॥४००

भुक्त्वा भोगान् मनोरम्यान् विष्णुलोके महीयते। लक्ष्मीनारायण देवं भागेवे वामरे निशि ॥४०१ अखण्डबिल्वपनैश्च तुलसीकोमळैं:छैं:। अर्चयेत्मन्त्ररतेन वामाद्वश्यश्रिया सह ॥४०२ चन्दनं कुङ्कुमोपंतङ्कम्तूर्या च समर्चयंत । श्रीसूत्तपुरुषसूक्ताभ्यां दद्यात् पुष्पाञ्जलि ततः ॥४०३ मन्त्रद्वयेन पुष्पाणां सहस्रं च निवेद्येत् । त्वमग्न इति मृक्तेन प्रत्युचं कुमुमान् यजत्।।४०४ अखण्डविल्वपजीर्वा पद्मपजीर्घृ तेन वा । श्रीसूत्तपुरुपसूक्ताभ्या प्रत्यृचंज्जुहुयात् ततः ॥४०५ अग्नि न वेति सुक्तेन तिर्ह्मर्जीहिभिरेव वा। मन्त्ररत्नेन जुहुयात् सुगन्यकुसुमैः शतम् ॥४०६ मण्डकान् श्लीरसंयुक्तान् पायमात्रं मशर्करम्। शाल्यम् १९५ ड्यं च भत्तयास्मे विनिवेद्येत् ॥४०७ अभ्यर्च्य विप्रमिथुनान् वासोऽस्रङ्कारमूपणः । भोजयित्वा यथाशक्त्या पश्चाद्भुञ्जीत वाग्यतः ॥४०८ मन्वन्तरशतं विष्णुं दुग्धाव्धौ हेमपङ्कजे.। संपूज्य यदवाप्नोति तत्फलं भृगुवासरे ॥४०६ एवं संपूज्यमानस्तु तस्मिन्नहनि वंग्णवैः। लक्ष्म्या सह हरि: साक्षात् प्रत्यक्षं तत्क्षणाद्भवेत् ॥४१० कृष्णाष्टम्यां चतुर्दश्यां सायंमन्ध्यासमागमे । गोपालपुरुषं कुण्णमर्चयेच्छद्धयाऽन्वितः। महिकामालतीकुन्दयूथी कुटजकेतकैः ॥४११

#### अथायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । १११३

लोधनीपार्जुनैनागैः कर्णिकारैः कदम्बकैः । काविदारे: करवीरे दिल्बरास्कोटकॅरपि ॥४१२ दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेत पुरुषोत्तमम् । ये त्रिशतीति सुक्तेन दद्यात् पुष्पाञ्जलि ततः ॥४१३ श्रीकृष्णं तुलसीपनैः प्रत्युचं पूजयेद्विभूम् । श्रीकृष्णाय नम इति मृक्ते नाष्ट्रीत्तरं शतम् ॥४१४ पूजियत्वाऽथ होमन्तु तिल्लं कृष्णेर्घृ तान्वितः। प्रत्यृचं वेष्णवेः सूक्ते र्जु हुयान् पुरुशक्तमम् ॥४१५ मिमिद्धः पिप्पर्लेश्चापि मन्त्रेणाष्ट्रोत्तरं शतम् । नामभिः केशवाद्यश्च चर्म पश्चाद् घृतप्छुतम् ॥४१६ वैष्णञ्या चैव गायज्या पृषदाज्यं शतं तथा । गुडोद्नं सर्पिपाऽकः भक्ष्याणि विविधानि च ॥४१७ क्षीराम शर्करोपेतं नवदाश्व समर्पयेत्। दैष्णवान् भोजयेःपश्चात् स्वयं भुञ्जीत वाग्यतः ॥४१८ एवमभ्यच्यं गोविन्दं कृष्णाष्टम्यां विधानतः। सर्वपापविनिर्मुक्तो विष्णुसायुज्यमाप्नुयान् ॥४१६ द्वयोरप्यनयोः श्रीशं कूर्मरूपं समर्चेयत्। ससागरां महीं सर्व्वां छभते नात्र संशयः ॥४२० अर्चयेन्मूलमन्त्रोण गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। अश्वयित्वा विधानेन हविष्यं व्यञ्जनैर्युतम् ॥४२१ सुदीर्घयन्त्रजान् सूपघृतमिश्रान् निवेदयेत्। अहं पूर्वेति सूक्तं न कुर्यात्पुष्पाञ्जलिं ततः ॥४२२

सहस्रं मूलमन्त्रोण पूजयेतुलसीदलः। तिलमिश्रेश्च पृथुकं जुहुं याद्वस्यवाहने ॥४२३ प्रयद्व इति सूक्ताभ्यां नासदासीत्यनेन च। मन्त्रोणाऽऽज्यं सहस्रन्तु जुहुयाद्वेष्णवोत्तमः ॥४२४ भोजयेद्वंष्णवान् भक्त्या विशेषेणार्चयेद् गुरुप्। कौर्म तु शतवर्षन्तु समभ्यच्यं विधानतः ॥४२४ अत्राप्यर्चनमात्रेण तत्फ ंसमवाप्नुयात् । मधुशुक्कप्रतिपदि केश ः पृजयेद् द्विजः ॥४२६ स्नात्वा मध्याह्रसमये करवीरें: सुगन्धिभः। अग्निमील इस्याचं न प्रत्यृचं कुमुमें यंजेन ॥४२७ मन्त्ररत्नेन वाऽभ्यर्च्य चरुपायसहोमकृत् । ईले द्याविति मूक्तं न यदिन्द्रामीत्यनेन च ॥४२८ विष्णुसृक्तेश्च जुहुयाद् गायत्र्या विष्णुसंज्ञ्या । अपूपान कटकाकारान शाल्यम् धृतसंयुतम् ॥४२६ फलेश्च भक्ष्यभोज्येश्च नैवेदां विनिवेद्येन्। भोजयेद् ब्राह्मणान् शक्त्या दक्षिणामिः प्रवजयेत् ॥४३० सामं सम्वत्सरं तत्र सम्यक् संपूजयेद्धरिम्। सर्वान् कामानवाप्नोति इयमेघायुतं लभेन ॥४३१ तस्मित्रवम्यां शुक्ते तु नक्षत्रेऽदितिदैवते। तत्र जातो जगन्नाथो राघवः पुरुषोत्तमः ॥४३२ तस्मिन्नुपोष्य मध्याह्रे स्नात्वा सन्ध्यां विधानतः। तर्पयित्वा पिकुन् देवानर्चयेद्वाघर्व हरिम् ॥४३३

## **ऽध्यार्थः** ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराथनविधिवर्णनम् । १११५

षडक्षरेण मन्त्रेण गन्धमाल्यानुलेपनैः। अभ्यर्च्य जगतामीशं जपेन्मन्त्रं समाहितः । शान्ति शास्त्रं पुराणवा नाम्नां विष्णोः सहस्रकम् ॥४३४ पावमानैर्विष्णुसूम्ते. कुर्यान् पुष्पाञ्जलिं ततः। रामायणशतऋोक्या दवान् पुष्पाणि वैष्णवः ॥४३४ संशर्करं पायमात्रं कपिलावृतसंयुतम् । रम्भाफलं पानकञ्च नैवेद्यं विनिवेद्येन ॥४३६ पीवानि नागपणानि क्षिग्धपगोफलानि च। कर्पूरेण च संयुक्तं ताम्बूलञ्च समर्पयेन ॥४३० दीपान्नीराजयेद्भक्त्या नमस्कृत्य पुनः पुनः। प्रीतये रघुनाथस्य कुर्याद्दानानि शक्तितः ॥४३८ षडक्षरेण साहम्त्रं तिलेवी पायसेन वा। कमले बिल्वपत्रे वा घृतेन जुहुयात्ततः ॥४३६ अस्य वामेति सुक्तेन समिद्धिः पिप्पलम्य तु । बैकुण्ठपार्षदं हत्वा होमशेषं समापयेन ॥४४० रात्री जागरणं कुर्यात् द्वित्रियामं समचयेत्। प्रभाते विमले चापि ततो भरतजन्मनि ॥४४१ तृतीयेऽहनि मध्याह्वे सौमित्रो र्जन्मवासरे। सानुजं जगतामीशमर्चयेत् पूर्ववद् द्विजः ॥४४२ पूजां पुष्पाञ्जलिं होमं जपं ब्राह्मणमोजनम् । अविच्छिन्नं तथा क्षर्यादिनिहोत्रं त्रिवासरम् ॥४४३

एवं त्रिरात्रं कुर्वीत राघवाणां विधानतः। महोत्सवं जन्मभेषु प्रत्यब्दं चैत्रमासिके ॥४४४ चतुर्थंऽह्नि तथा नद्यां कुर्याद्वभृथं द्विजः। वैष्णवैरनुवाकैश्च रामनामभिरेव च ॥४४४ चरितं रघनाथस्य जपन्नवभृतं चरेत्। देवान पितृंश्च सन्तर्प्य गृहं गत्वाऽर्घ येत्प्रसुम् ॥४४६ कुर्यादवभृथेष्टिश्व चरुणा पायसेन वा । अस्य वामेति सुक्तंन परोमात्रत्यनेन च ॥४४७ प्रत्युचं जुहुयात्पश्चान्मन्त्रेण शतसंख्यया। हुत्वा समाप्य होमन्तु शेषं सम्प्राशयेचरू ।।४४८ आचम्य पूजयेहॅवं वैष्णवान भोजयेत्ततः। स्वयं भुञ्जीत तद्रात्रावधःशायी समाहितः ॥४४६ एवं द्वादशभिः पज्यश्रेत्रे नावमिके नथा। पष्टिवर्पसहस्राणि श्वेतद्वीपनिवासिनम् ॥४५० संपूज्य यदवाप्नोति तदेवात्र समश्नुते । यज्ञायुतरानं लब्ध्वा विष्णुलोके महीयते ॥४५१ तस्येव पौर्णमास्याञ्च शीनांशो मद्ये तथा। स्नात्वा संपूजयेदेवं माधवं रमया सह ॥४५२ शुद्धजाम्बृनदप्रख्यं कन्दर्पशतमन्निभम् । लक्ष्म्या सह समासीनं विमले हेमपङ्कते।।४५३ चन्द्रनेन सुगन्धेन करवीराव्जपङ्कजै:। कर्पूरकुङ्कुमोपेतचन्दनेन च पूजयेत्।।४५४

तत्मन्त्रमन्त्ररत्नाभ्यां माधवं विधिना यजेत्। मण्डकान क्षीरसंयुक्तान शाल्यन्नं घृतसंयुतम् ॥४४४ कृष्णरम्भाफलेर्जुष्टं नैवंद्यं विनिवंद्यंत् । अस जीवत्व इन्यादि पट्सृक्तैः कुसुमेर्यजेन ॥४४६ मन्त्रोणाष्ट्रोत्तरशतं कोमछे स्तुलसीदहाः। संपुज्य होमं कुर्वीत साज्येन चरुणा नतः ॥४५७ विहीभोतोरित्यतेन मूक्तंन प्रत्यचं द्विजः। कमछै बिल्वपत्री वो मन्नेणाष्ट्रंत्तरं शतम् ।'४४८ हुत्वाः थ पौरुपं सूक्तं श्रीमूक्तं जुहुयाद् द्विजः। सहस्रनामभिः स्तुरवा वैष्णवान् भाजयेत्तत ।।४५६ हुतशेषं स्वयं भुक्त्वा भूमौ स्वायः जितेन्द्रयः । एवं संप्ज्य देवेशं माध्य्यां मधुमूदनः ॥४६० सर्वान् कामानवारनाति हरिमायुज्यमाप्नुयात् । वशास्त्र्या पौर्णमास्यान्तु मध्याह्नं पुरुषोत्तमम् ॥४६१ अर्चयंद्रक्तकमलें रूत्पलैः पाटलैरपि । ह्वीवेरकरवोरैश्च गायत्र्या विष्णसंज्ञया ॥४६२ द्ध्यन्नं फलसंयुक्तं पायसञ्च निवेद्येत्। प्रस्यचं चेद्दिवं सूक्तैः प्रत्यचं जुहुयात्ततः ॥४६३ सौराष्ट्रे द्रेति सुक्तंन दीपैनींगजयेततः। शक्त्या विप्रान् भोजयित्वा पूजये देशिकं तथा ॥४६४ तस्मिन् सम्पूजितो देवः प्रत्यक्षस्तत्क्षणाद्भवेत्। शयने भोजयेद्विष्णुं पूजयेच्छुद्धयाऽन्वितः ॥४६४

कुशप्रसूनदृव्यायपुण्डरीककदम्बकैः । मूलमन्त्रेण श्रीविष्णुं गायज्या च समर्घवेत् ॥४६६ सत्येनोत्तमसूक्तंन भ्राग्भः पुष्पाञ्जलि यजेत । मन्त्रेणाष्ट्रोत्तरशतं तुलसीपक्कवे स्तथा ॥४६७ पश्चाद्धोमं प्रकुर्व्वीत विष्णुमूक्तैः सुपायसम् । मन्त्ररत्नेन जुहुयावाज्यमष्टोत्तरं शतम् ॥४६८ सशर्करं पायसान्नमपूपान्विनिवेद्येन् । विश्वजितेति मूक्तंन कुर्यांनीराजनं ततः ॥४६६ भोजयेद्वैष्णवान् विप्रान पूजयेत्र विशेषतः। सर्व्वान् कामानवाप्नोति हयमेधायुतं लभेत्।।४७० प्राजापत्यर्क्षमंयुक्ता नभःकृष्णाष्ट्रमी यदा । नभवस्यैव भवेत्सातु जयन्ती परिकीर्तिता ॥४७१ तस्यां जातो जगन्नाथः केशवः कंसमर्दनः। तस्मिन्नुपोष्य विधिवत्सर्वपापैः प्रमुष्यते ॥४७२ अष्टमी रोहिणीयोगो मुहुर्ते वा दिवानिशुम् । मुख्यकाल इतिख्यात स्तत्र जातः स्त्रयं हुरिः। मासद्वये यद्यलाभ्रे योगे वस्सिन् दिका जिन्नि ॥४५३ नवमी रोहिणीयोगः कतंत्र्यो वैष्यवैद्धिजेः। सान्नियोगस्तु बलनात् वृत्यां जातो जनाईनः ॥अ०४ तिलेन वे भकान्ते च पारणा यत्र चोच्यते। याम्ब्रक्षियुक्तायां प्रातरेव हि पार्का ।।४७४

## अग्रायः ] भगवित्रत्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम्। १११६

पूर्वेद्य्नियमं कुर्याइन्तधावनपूर्वकम्। प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजरोत् कृष्णमञ्ययम् ॥४७६ षडक्षरेण मन्त्रंण वालकृष्णतन् हरिम्। सुकृष्णतुलसीपत्रैरर्चयेन्छ्द्धयाऽन्त्रिनः ॥४७७ दुग्धं क्षीरं शर्कराश्व नवनीतं निवद्येत्। सहस्रमयुतं वाऽपि जपेन्मन्त्रं षडक्षरम् ॥४७८ गवाज्यं जुहुयाद्वह्नी कृष्णमन्त्रोण पायसम्। सहस्रं शतबारं वा प्रत्यृचं विष्णु मूक्तकैः ॥४७६ हुत्वा सुगन्धिपुष्पाणि वैरेव च ममर्चयेत्। सहस्रनाम्नां गीतानां पठनं गुरुपूजनम् ॥४८० वैष्णवान भोजयेच्छत्तया हतशेषं सकुस्वयम् । हुत्वा (मुक्तूा) कुशोत्तरे स्वप्याद्भौ नियमवान् शुचिः ॥४८१ परेऽह्रुपोष्य विधिवन स्नात्वा नद्यां विधानतः। तर्पयित्वा जगन्नाथं पितृन्देवांश्च तर्पयेत ॥४८२ पूर्ववत् पूजयित्वेशं जपहोमादिकं चरेत् ॥४८३ अवैष्णवं द्विजं तस्मिन् वाङ्मात्रेणापि (न) वार्श्वयेत्। पुराणादिप्रपाठेन रात्रौ जागरणं चरेत् ॥४८४ शीतांशावुदिते सास्वा शुक्काम्बरधरः शुचिः। नको तको भवतीत्युचाऽन्यं बितिबेब्मेत् ॥४८४ अर्चयेत्मात्कराक्ने साबं कृष्णं सनातनम् । वुक्तुहिन्त्रप्रस्थेक कावुरीजन्त्र चन्त्रकं ।।४८६

षडश्ररेण मन्त्रेण भक्तया सम्पूजयेद्धरिम्। वसुदेवं नन्दगोपं बलभद्रश्व रोहिणीम् ॥४८७ यशोदां च सुभद्रां च मायां दिक्षु प्रपूजयेत । प्रह्लादादीन् वैष्णवांश्च तथा लोकेश्वरानपि ॥४८८ धूपं दोपञ्च नैवद्यं ताम्बृलश्च समर्पयेत्। अनूनमिति सूक्तेन भक्तया नीराजनं तथा ॥४८६ शन इत्यादिसूक्तंश्च दद्यान् पुष्पाणि वैष्णवः। दशाक्षरेण मन्त्रेण पूजयेन पुरुपोत्तमम् ॥४६० सहस्रनामभिः म्तुत्वा शय्यायां विनिवेशयेत्। गीतं नृत्यञ्च वाद्यञ्च यथा शतया च कारयेत् ॥४६१ ततः प्रभातसमये सन्ध्यामन्त्रास्य वैष्णवः । दशाक्षरेण मन्त्रेण तुलसीचन्दनादिभिः॥४६२ सम्पूज्य वंष्णवैः सूक्तैः कुय्यांन् पुःपाञ्जलिं ततः । मन्त्रोण जुहुयादाज्यं सहस्रं हब्यवाहने ॥४६३ ममाप्र इति सूक्ताभ्यां जुहुयात्पायसं ततः। परोमाजेति सुक्तेन चर्रं तिलविमिश्रितम् ॥४६४ सबश्च भगवन्मन्त्रीरेकैकामाहुति यजेत्। नामभिः केशवाद्येश्च तथा सङ्कर्षणादिभिः ॥४६४ वैकुण्ठपार्पदं हुत्वा होमशेषं समापयेत्। ततो मङ्गलवादिशै यांनै योंकुश्च चामरैः ॥४६६ लाजें ईरिद्वाच्णैंश्च गन्धैः पुष्पैः सुगन्धिभिः। मुदा विकीरयन् सर्वे बालवृद्धाश्च मध्यमाः ॥४६७

## ऽध्यायः ] भगवन्नित्यनैमित्तिकसमाराधनविधिवर्णनम् । ११२१

नार्थ्यश्च रमणैः साद्धं सुवासिन्यश्च योपितः। आरोप्य शिविकायान्तु देवकीनन्दनं हरिम् ॥४६८ अकर्दमां नदीं रम्यां तडागं वा मनोहरम्। गच्छेयुर्माहरीवालजलीकादिविवर्जितम् ॥४६६ कुर्यादवभृथं तत्र पावमान्यः पवित्रकेः। विष्णुमूक्तेश्च सुस्नात्वा देवान् पितृंश्च तर्पयेन् ॥५०० विचित्राणि च भक्ष्याणि द्यात्तत्रं शुभाम्वितः। गृहं गत्वा तथैवेशं पृत्वेवत्पृजयेद् द्विजः ॥५०१ भोजयित्वा ततो विप्रान् दक्षिणाभिश्च तोपयेत्। हिरण्यवस्ताभरणेराचार्यं पूजयंत्तु सः ॥५०२ स्वयञ्च पारणां कुर्यान् पुत्रपौत्रसमन्वितः । सायाह्रे समनुप्राप्ते दोलायामर्चयंद्धरिम् ॥४०३ चतुः स्तम्भां चतुर्धामवितानाद्येरलङ्कृताम् । घूपैदींपेश्चैव रम्यां दोलां सम्पृजयेद् द्विजः ॥५०४ स्तम्भेषु वेदान् मन्त्रांश्च धामस्वभ्यर्च्य कच्छपम् । पादेष्वाशागजान् पीठं सप्तच्छन्दांसि चाऽऽस्तरे ॥४०४ प्रणवश्वाऽऽतपत्रो तु शेषं केतौ खगेश्वरम्। इतिहासपुराणानि सर्वतः परिपूजयेन् ॥५०६ तस्यां निवेश्य दोलायां बासुदेवं श्रियः पतिम्। उपचारैरर्चियत्वा शनैदीलाभ दोलयेत् ॥५०७ वेदादौर्बद्याणस्पत्यैः सूक्तरङ्गेद्विजोत्तमः। सामगानैः प्रबन्धेश्च गायन् कृष्णं जगद्गुरुम् ॥५०८

सुवासिन्यो दोलयिखा वैष्णवान् पूजयेत्ततः। एवं संपूज्य देवेश पापैर्मुक्तो हरि ब्रजेत् ॥५०६ दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशमम्। कोटियागानुजं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥५१० शिवब्रह्माद्यां देवा नार्दाद्या महप्यः। दोलायां दर्शनार्थं वे प्रयान्त्यनुचरः सह ॥५११ गन्धवाष्मरसः सर्वा विमानस्थाः सकिन्नराः । गायन्ति सामगानैश्च दोलायमर्चितं हरिम् ॥५१२ गवाज्यसंयुतैर्दीपैर्भक्तया नीराजनं चरेत्। महत्व इन्द्रसूक्तं न मङ्गलाशीभिरेव च ॥५१३ ताम्बूलफलपुष्पाद्यंवेष्णवान् भोजयंत्रतः। आशिपोवाचनं कृत्वा नमस्कृत्वा विसर्जयंत् ॥५१४ एवं संपूज्य देवेशं जयन्त्यां मधुसूदनम्। सर्वा झोकान् जपेन्वाञ्च याति विष्णोः परं पदम् ॥५१४ मासि भाद्रपदे शुक्ले द्वादश्यां विष्णुरैवते । आदित्यामुद्दभृद्धिष्णुकोन्द्रो वामनोऽज्ययः ॥५१६ तस्यां स्नानोपवासाद्यमक्षय्यं परिकीर्तितम्। श्रीकृष्णजन्मवन् सर्वं कुर्यादत्रापि ैष्णवः ॥५१७ सर्वान् कामानवाप्नोति विष्णुसायुज्यमाप्नुयात् ॥५१८ माघमासे तु सप्तम्या मुद्ति चैव भास्करे । स्नास्वा नद्यां विधानेन पूजवेत् पुरुषोत्तमम् ॥४१६

रक्तेश्च करवीरैश्च कुमुद्देन्द्वीवरादिभिः। मन्त्ररत्नेनार्चयित्वा पायसान्नं निवेदयेत् ॥४२० यतश्च गोपा इत्यादि दश सृक्तान्यनुकमात्। पुष्पाणि द्याद्भक्त्या वे प्रत्यचं वैष्णवोत्तमः ॥५२१ सहस्रं शतवारं वा मन्त्रणापि यजेत्ततः। पश्चाद्धोमं प्रकुर्वीत तिलेः कृष्णैः सशर्करैः ॥४२२ वैष्णवैरनुवाकेश्च मन्त्रग्रतेन मन्त्रवित् । वैकुण्ठपार्पदं हुत्वा शेषं कम्मे समाचरेत ॥५२३ नीराजनं ततो द्याद्यं गौरित्यनेन तु। इति वा इति सूक्तंन उपस्थाय जनाद्नम् ॥५२४ सहस्रनामभिः स्तुत्वा वैष्णवान् भोजयत्तनः। गुर्म सम्पूजयेद्भक्तया भुञ्जीत तद्वविः सञ्चन ॥५२५ अधःशायी ब्रह्मचारी जपेद्रात्रौ समाहितः। एवं सम्पूज्य देवेशं तस्मिन्नहिन वैष्णवः॥५२६ त्रिकोटिकुलसुद्धृत्य वैष्णवं पदमाग्नुयान् । द्वादश्यामपि तस्यां वै यज्ञवाराहमच्युतम्।।५२७ वैष्णज्या चैव गायज्या पूजयेत् प्रयतात्मवान् । महिषाख्यं घृताक्तं वे घूपं दद्यात् प्रयत्नतः ॥५२८ दद्यादष्टाङ्गदीपं च गवाज्येन च वैष्णवः। सशर्कराज्यं सूपामं मोदकान् कृसरं तथा ॥४२६ इश्लदण्डानि रम्याणि फलानि च निवेदयेत्। प्र ते महीति सूत्तेन दखात् पुष्पाणि भक्तिमान् ॥६३०

सर्वेश्व वैष्णवैः सूक्ते श्वरुणा पायसेन वा । मधुसुक्तेन होतव्यं गायज्या विष्णुसंज्ञया ॥५३१ आज्येन वंष्णवैर्मन्त्रीः त्रिशतं त्रिभिरेव तु । बैकुण्ठपार्पदं हुत्वा होमशेपं समापयत् ॥५३२ भोजयंद् ब्राह्मणान् भत्तया गुरुं चापि प्रपूजयंत । मर्वयज्ञेषु यत्पुर्ग्यं सर्वेदानेषु यत्फलम् ॥५३३ तत्कछं लभते मर्खा विष्गुमायुज्यमाप्नुयान् । कोइण्डस्थं दिनकरे तस्मित्मासि निरन्तरम् ॥५३४ अरुगोद्यवंछायां प्रातः स्नानं समाचतेत् । तर्पयित्वा विवानेन कृतकृयः समाहितः॥५३५ नारायणं जगन्नाथमर्चयेद्विधिवद् द्विजः। पौरुपण विधानेन मूलमन्त्रोण वा यजेत् ॥५३६ शतपत्रेश्च जातीभिम्तुलसीबिल्वपुष्करैः। गन्धेर्षुपेश्च दीपेश्च नैवेद्येविविधेरपि ॥५३७ पायसात्रं शकरात्रं मुद्गान्नं सघृतं हविः। सुवासितञ्च दध्यन्नमपूपान् मध्मिश्रितान् ॥५३८ मोद्कान् पृथुकान् लाजान् शष्कुली(सक्त्मिः)चणकानपि । विविधानि च भक्ष्याणि फलानि च निवंद्येत् ॥५३६ वेदपारायणंनेव मासमेकं निरन्तरम्। भृचां दशसहस्राणि भृचां पश्वशतानि च ॥५४० भृचामशीतिपादश्च पारायणं प्रकीर्तितम् । वेदपारायणेनेव प्रत्यृचं कुशुमान्यजेत् ॥५४१

## Sभ्यायः ] भगवित्रत्यनैमित्तिकसमाराधनविधानवर्णनम् । ११२४

रात्री होमं प्रकुवर्गीत तिलैब्रीहिभिरेव वा। सववंदेष्वशक्तस्तु होमकर्मणि वैष्णवः ॥५४२ वैष्णवरनुवाकेवां प्रत्यहं जुहुयाद् बुधः। यजुपाऽपि तथा साम्नां शक्त्या पुष्पाञ्जलि चरेन ॥५४३ अशक्तो यस्तु वेदेन प्रतिवासरमच्युतम्। मूलमन्त्रोण साहस्रं दद्यात पुष्पाञ्जलि द्विजः ॥५४४ तेनेव जुहुयाद्भक्त्या सहस्र' वह्निमण्डले। अथवा रघुनाथम्य चारित्रेण महात्मनः ॥५४५ प्रतिश्लोकेन पुष्पाणि दद्यान्मासं निरन्तरम्। अधःशायी ब्रह्मचारी सकुद्भोजी भवेद्द्विजः ॥५४६ मासान्ते तु विशेषण पूजयेदु वष्णवान् द्विजान्। एवसभ्यच्ये गोविन्दं धनुर्मासे निरन्तरम् ॥५४७ दिने दिने वैष्णवेष्ट्या फलं प्राप्नोत्यसंशयः। यं यं कामयते चित्ते तं तमाप्नोति पुरुषः ॥५४८ महद्भिः पातकैर्मुक्तो विष्णुछोके महीयते। ततोमास्युदिते भानौ मासमेकं निरन्तरम् ॥५४६ स्नात्वा नद्यां तडागे वा तर्पयेत्पतिमच्युतम्। अर्चयेन्माधवं नित्यं तन्मत्रेणैव तत्र वै ॥४४० मन्त्ररत्नेन वा नित्यं माधवीचूतचम्पकैः। मण्ड(क)पानि विचित्राणि शर्कराज्ययुतानि च ॥५५१ शाल्यमं दिधसंयुक्तं मोदकांश्च निवेदयेत्। वैष्णवैः पावमानैश्च कुर्यात् पुष्पास्त्रल्थि ततः ॥५५२

तिलैश्च जुहुयाद्वह्नौ मधुशर्करमिश्रितैः। प्रत्युचं पुरुषसूक्तेन श्रीसृक्तेनापि वैष्णवः ॥५५३ सहस्रं मुलमन्त्रोण तन्मन्त्रोणापि वै द्विजः । सहस्रं वा शतं वाऽपि शक्त्या च जुहुयाद् बुधः ॥५५४ यज्ञे यज्ञमिति भुच। दीपान्नीराजयंत्ततः। रात्रौ दोलाचनं कुर्याद्वेष्णवद्विजसत्तर्मः ॥५५५ मासान्ते भोजयेद्विप्रान् वामोऽलङ्कारभूपणैः। एवं सम्पूजिते तस्मिन् प्रसन्नोऽभूजनार्दनः ॥४४६ ददाति म्वपदं दिन्यं योगिगम्यं सनातनम् । फाल्गुन्यां पौर्णमास्यां वे उदिते च निशाकरे ॥४४७ उपाष्य विधिवद्गक्ति पूजयेद्वेष्णवोत्तमः। तिलेख करवीरेख कणिकारेख पाटलै: ॥४४८ कुन्दसहस्रकुमुमैर्यजेन तं कमलापतिम्। विष्णुसुक्तः प्रत्युचं च चरुणाऽज्येन मन्त्रतः ॥५५६ ब्रह्मा देवानामनेन दीपाश्रीराजयेततः। प्रसन्नां नित्यमनेन उपस्थाय सनातनम्। वैष्णवान् भोजयेच्छक्त्या भुञ्जीयाद्वाग्यतः स्वयम् ॥५६० एवं सम्पूज्य देवेशं तस्यां रात्री सनातनम्। पष्टिवर्षसहस्रस्य पूजामाप्नोत्यसंशयः ॥५६१ एवं मम्पूजयद्विष्णुं निमित्तंषु विशेषतः। यथाकालं यथावर्णं यथाशक्त्या यथाबलम् ॥५६२ यथोक्तपुष्पालाभे तु तुलस्या वै समर्घयेत्।

नैवेद्यस्याप्यलाभे तु हविष्यं वा निवेद्येन् ॥१६३
सुक्तानि वैष्णवान्येत्र सुक्तालाभे यथा जपेन् ।
एकेन वा पौरुषेण सूक्तेन जुहुयात्तथा ॥१६४
सर्वत्राऽज्यं प्रशस्तं स्याद्धोमद्रव्याद्यलाभतः ।
मन्त्रालाभे मूलमन्त्रं सर्वतन्त्रेषु यो यजेन ॥१६५
उपस्थानन्तु सर्वत्र निहिष्णोरिति वा ऋवा ।
नीराजनन्तु सर्वत्र श्रियं जातेत्यनेन वा ॥१६६
तत्तत्कालोचितं मर्वं मनमा वाऽपि पूजयेन् ।
तुलमीमिश्रितं तोयं भरत्या वाऽपि समर्पयेन् ॥६६७
मर्वेष्वेषु निमित्तेषु महाभागवतोत्तामान् ।
सम्प्ज्य परिपूर्णत्वमाष्नोत्यत्र न संशयः ॥१६८

इति वृद्धहारोतम्मृतौ विशिष्ठपरमयर्मशास्त्र भगवन्नित्यनैमिनिक-समाराधनविधिनाम पश्चमोऽध्याय:।

> ।। पष्ठोऽध्यायः ।। अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणविधौ । प्रथमं भगवतः यात्रोत्सववर्णनम् ।

हारोत उवाच ।

महोत्सवविधि कुर्यादेवस्य परमात्मनः ॥१

प्रामार्चायाः प्रकुर्वीत यथोक्तविधिना नृप !।

यात्रोत्सवे कृते विष्णोः श्रुतिस्मृत्युक्तमार्गतः ॥२

अनावृष्ट्यप्रिदुर्भिक्षभयं नास्त्यत्र किश्वन। वारिजं वातजं वाऽग्निसर्पविद्यदृद्विपत्कृतम् ॥३ महारोगप्रहैश्चैवं यद्भयं प्रामवासिनाम् । कृते महोत्सवं तत्र भयं नाम्ति न संशयः ॥४ तस्य दासा भविष्यन्ति नानाजनपदेश्वराः। सार्वभौमो भवेद्राजा भक्त्या कृत्वा महोत्सवम् ॥६ नवाहिकं च सप्ताहं पश्चाहं प्रत्यहं तथा। सम्वत्सरे भृतौ मामि पक्षेतृ कुर्यात् क्रमेण तु ॥६ तस्मिन्नादौ शुभदिने स्वस्तिवाचनपूर्वकम्। अङ्करार्पणमादौ तु गरुत्मत्केतुमुच्छ्येत्।।७ याश्च पडित्योषधयः केतुको वेद इत्यपि । अश्वत्थाख्यशमीगर्भशुभामरणिमाह्रेत् ॥८ निर्मिथितेति सूक्तेन तथैवासीदमीति च। आभ्यां च प्रत्यचं तस्मिन्निध्माधानादि प्रवेवत् ॥६ चर्वाङ्येरथमन्नीति उपस्थायाङ्ययेत्रथा । तदाप्नि संप्रहेत्तावदुत्सवः परिपृर्यते ॥१० दीक्षितः स भवेत्तावदाचार्यो विजितेन्द्रियः। वेद्वेदाङ्गविच्छौतस्मार्तकर्मविधानवत् ॥११ महाभागवतो विप्रस्तान्त्रिकः सर्वकर्मसु । लौकिके वा प्रकुर्वीत मिथताग्निने चेद्यदि ॥१२ आभ्यामेव च सुक्ताभ्यामग्री देवं यजेद्बुधः। प्रातः (स्नात्वा) स्मार्तविधानेन धौतवस्त्रोर्ध्वपुण्डूधृत् ॥१३ ऽध्यायः ]

भृत्विग्भिर्बाह्मणैद्नितैर्यागभूमि विशेद्गुरुः। देवालयस्य मध्ये तु वेदि रम्यां प्रकल्पयेत् ॥१४ अङ्करार्पणपात्रैश्च भद्रकुम्भैरलङ्कृताम् । वितानकुसुमायुक्तां कृत्वा तत्र सुखासने ॥१५ महोत्मवाई विम्बं च निवेश्यास्मिन् प्रपूजयेत्। श्रीभूनिलादिसंयुक्तं नित्यैः परिजनैर्द्य तम्।।१६ मन्त्ररत्नविधानेन पूजयित्वा जगद्गुरुम्। इमे विप्रस्येत्यादिभि म्बिभिः सुम्तेश्च पूजयेत्।।१७ सुरभीणि च पुष्पाणि प्रत्युचं विनिवेदयेत् । चदुर्दिक्षु च चत्वारो ब्राह्मणा मन्त्रवित्तमाः ॥१८ वाराहं नारमिंहं च वामनं राघवं मनुम्। ईशान्यादिषु चत्वारो विष्णुमन्त्रान विदिक्ष च ॥१६ वेद्या दक्षिणतः कुण्डं (कुम्भं) लक्षणा(द्यं)ह्यं च तत्र तु । हताशनं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानानिकं चरेतु ॥२० सर्वेश्च वैष्णवैः सूरतेश्चर्गं तिलविमिश्रितम्। प्रत्यृचं जुहुयाद्वहौं मध्वाज्यगुडमिश्रितम् ॥२१ आज्यं श्रीभूमिस्काभ्यां त्वं सोम इति पायसम्। पूर्वोक्तैवेंडणवैर्मन्जेस्तिलैब्रीहिभिरेव वा। २२ प्रत्येकं जुहुयात्पश्चादष्टोत्तरशतं क्रमात्। वैकुण्ठपार्षदं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।२३ सुद्ध्यन्नं फलयुतं पानकश्व निवेद्येत्। ताम्बृलभ्य समर्प्याथ भृत्विजञ्चापि पूजयेत् ॥२४

ततः स्यन्द्नमानीय पताकाच्छत्रसंयुतम्। श्वेतैः सलक्षणैरुद्धयानमश्वैः प्रकल्पितैः ॥२४ वस्तपुष्पमणिस्वर्णभूषितं तत्र चित्रितम्। तस्मिन् मृदुनरश्रक्ष्णपर्यङ्कं स्थाप्य देशिकः ॥२६ तस्मिन्निवेश्य देवेशं देवीभ्या महितं हरिम्। अर्चयेद् गन्धपुष्पाद्यंध्पदीपादिभिम्तथा ॥२५ रथचक्रेषु वेदांश्च धर्मादीनपि पूजयेत। आधारशक्तिमाधारे इंपादण्डं पुराणकम् ॥२८ छन्दांसि कृतरे सप्त पर्यङ्कं भुजगाधिपम्। हयेषु चतुरो मन्त्रान् योक्त्रेष्त्रङ्गानि पट् च वै ॥२६ ध्वजे पताकराजानं छत्रेऽनन्तं स्वराणि तु । तालवृन्ते च।मरे च अक्षराणि च पूजयेन ॥३० अभ्यचें वं रथं दिव्यं पश्चात् संपूजयेद्धरिम् । दिक्पालावरणांश्चेंव मर्चयेहिश्च सर्वतः ॥३१ जीमृतस्येति सुक्तेन तत्र पुष्पाञ्जिष्ठि चरेत्। मरुत्वानिन्द्रेति सूक्तंन कृत्वा नीराजनं ततः ॥३२ वनम्पतीति सूक्तंन वाद्येत्पटहादिकम्। गीतेनृ त्येश्व वादित्रैः पुण्यस्तोत्रेमनोहरैः ॥३३ ह्येगजेः स्यन्दनेश्च परितस्तपयेत्प्रभुम । ऋत्विजः पुरतो वेदानङ्गानि च जपेत्तदा ॥३४ गायेत् सामानि भक्त्या वै पुरतः पार्श्वतो हरेः। कुड्डमैः कुसुमै र्लाजे विकिरन्वे समन्ततः ॥३४

स्वलङ्कृतेपु विधिषु पर्यटन् सेवयेत्प्रभुम्। गृहद्वारेषु मार्गपु भक्ष्यैरिक्षभिरेव च ॥३६ कुसुमै ध्पदीपश्च ताम्बुलश्चापि सेवयेत्। एवं निषव्य देवेशं पुनर्गेहं निवेश्येत् ॥३७ तमभि प्रगायतेति जपन् सूक्तं निवंशयेत्। प्रसन्नाज मित्यनेन दीपान्नीराजयेत्ततः ॥३८ पीठे निवंश्य देवेशमुपचारान समपयेत्। वयमुपेत्य ध्यायेम आशिषो वाचनं चरेन ॥३६ अनेन विधिना कुर्यादुत्सवं प्रतिवासरम्। जपेहींमें स्तथा दानेविप्राणां भोजनैरपि ॥४० समाप्ते चोत्सवं विष्णोः कुर्यादवभृथं शुभम्। नदीं खातं तडागं वा देवन महितो ब्रजेन ॥४१ स्यन्दनादिषु यानेषु स्थिता नार्यः स्वलड्कृताः । पुरुषाश्च हरिद्राश्च चुर्णादीन् विकिरन्मिथः ॥४२ कुर्याद्वभृथं तत्र विशिष्टैर्बाह्मणेः सह । बासुदेवोत्सवे स्नानमश्रमेधफलं लभेत्।।४३ **ञ्चा**त्वा सन्तर्प्य देवादीन् प्रविश्य हरिमन्दिरम्। यजेतावभृथेष्टिश्व अस्य वामेति सुक्ततः ।४४ चरुमाज्यं तिलैर्वापि अनुवाकैश्च वंष्णवैः। एवं हुत्वावस्थेष्टिं वे वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥४५ गुरुभ भृत्विजश्रीव पूजयेद्भक्तित स्ततः। पिबासोमेत्यभ्यायेन कुर्यात् स्वस्त्ययनं हरेः ॥४६

इच्छन्ति त्वेरय ध्यानेन प्रत्यृचश्व द्वयेन च। अष्टोत्तरशतं जुहुयात्कुसुमैरेव वैष्णवः ॥४७ हिरण्यगर्भसू केन तथैवाऽऽज्यं द्विजोत्तमः। पुनरेव तु होतन्यं हुत्वा वैकुण्ठपार्षदम् ॥४८ होमशेषं समाप्याथ वैष्णवान् भोजयेदपि। सर्वयज्ञसमाप्तौ तु पुष्पयागं समाचरेत ॥४६ सवं सम्पूर्णतामेति परितुष्टो जनार्दनः। एवं महोत्सवं कुर्यात्प्रत्यब्दं परमात्मनः ॥५० अथ नित्योत्सवं पूजा होमश्चात्र विधीयते । शिविकायां निवेश्येशं पूजियत्वा विधानतः ॥५१ तत्र चामरवादित्रभृङ्गारै स्तालवृन्तकैः। दीपिकाभि रनेकाभिद् वांत्रकुषुमाक्षतैः ॥५२ फलमोदकहस्ताभिनारीभिः समलङ्कतम्। देवस्याऽऽयतनं रम्यं त्रिः प्रदक्षिणमाचरेत्।।५३ तत्तन्मन्त्रान् जपेदिश्चु सर्वासु द्विजपुङ्गवाः। बिल्जि निश्चिपेतासु देवानुहिश्य पूर्वतः ॥५४ प्राचीं विश्वजिते सूक्त मग्ने तव अनन्तरम्। याम्ये परे इमां सन्तु मोपुणन्तु तदन्तरम्॥५५ यिद्धति प्रतीष्यान्तु विहिहोत्येत्यनन्तरम्। स सोम इति सौम्यान्तु कदुद्रायेत्यनन्तरम्।।५६ प्रजापति तथा चोर्द्ध मधश्च पृथिवी श्रिपेत्। एवं दिख्न बर्लि दस्वा परिणीय जनाईनम् ॥४७

स्तुतिभिः पुष्कलाभिश्च भवनं सम्प्रवेशयत्। पीठे निवेश्य देवेशं पूजियत्वा विधानतः ॥६८ विहिसोतादि सूक्नेन द्यात् पुष्पाणि शार्ङ्गिणे । नीराजनं तनो दद्यात् ध्रुवसूक्तेन वैष्णवः ॥५६ शाययित्वा च शय्याया द्यात् पुष्पाणि मन्त्रतः। इमं महेति सुक्ताभ्या पुजयेतु विष्णुमञ्ययम् ॥६० सौदरानेन मन्त्रेण रक्षां कुर्यात्समन्ततः॥६१ एवं नित्योत्मवं कुर्याद्वात्रो चाहनि सर्वदा। गुरूणामन्त्यदिवसे भगवज्जन्मवासरे ॥६२ कार्तिक्यां श्रावणं वाऽपि कुर्यादिष्टिश्व वैष्णवीम् । उपोष्य पूर्वदिवसे दीक्षितः सुसमाहितः ॥६३ स्वस्तिवाचनपूर्वेण कारयेदङ्करार्पणम्। नद्यां स्नात्वा च ऋत्विग्भि श्रतुर्भि वेंद्पारगैः ॥६४ पौरुषेण विधानेन पूजयेत् पुरुषोत्तमम्। गन्धे र्नानाविधैः पुष्पे धूंपे दींपे निवेदनैः ॥६४ फलैश्च भक्ष्यभोज्येश्च ताम्बूलाचे प्रपृजयेत्। अर्घ्याद्यैरपचारेस्तु सुक्तान्ते पूजयेद्धरिम् ॥६६ अध्यान्ते मण्डलान्ते नेवेद्येविविधैरपि । पुजयित्वा हरिं भक्त्या वैष्णत्रान् भोजयेत्तथा ॥६७ आज्येन चरुणा वाऽपि तिलेः पद्मैरथापि वा । समिद्भिर्विल्वपत्रै वी होमं कुर्वीत वैष्णवः ॥६८

यज्ञरूपं हरिं ध्यायन् प्रत्यचं वेदसंहिताम्। होमः समाप्यते यावत्तावद्वै दोक्षितो भवेत्।।६६ जुहुयाद्वै गार्हपत्यो मोऽग्निमभ्यर्च्य भूपते ।। अग्निरक्षणमप्युक्तं यावदिष्टिः समाप्यते ॥७० विशिष्टान वैष्णवान् विप्रान भोजयेत्प्रतिवासरम्। भृत्विजश्च पठेत्तावचतुर्मन्त्रान समाहितः ॥७१ यजेदवभृथेष्टिं च पावमान्येश्च दैष्णवैः। अन्ते संप्जयेद्विप्रान वामोऽलङ्कारभूषणैः॥७२ भृत्विजश्च गुर्भ चैव पजयेच विशेषतः। एवमिष्टिन्तु यः कुर्याद्वैष्णवीं वैष्णवोत्तमः॥७३ कतूनां दशकोटीनां फलं प्राप्नोत्यसंशयः। यम्मिन्देशं वैष्णवेष्ट्या पृजितो मधुसूदनः ॥७४ दुर्भिक्षरोगाग्निभयं तम्मिन् नास्ति न संशयः। अशक्तः सर्वदेवेन कर्त्तुमिष्टि च वैष्णवीम् ॥७५ सर्वैश्व वंष्णवः मृक्तर्जुहुयात्प्रत्यृचं हविः। तेरेव पुष्पाञ्जलि च कुर्यादिष्ट्याः प्रपृत्तेये ॥७६ अथवा मूलमन्त्रं तु लक्षं जप्त्वा हुताशने। अयुतं जुहुयात्तद्वत्पुप्पाणि च सनातने ॥७७ इष्टिः संपूर्णतां याति सर्ववेदाः सदक्षिणाः। एविमिष्टि प्रकुवींत प्रत्यब्दं वैष्णवोत्तमः ॥७८ तुष्ट्यर्थं वासुदेवस्य वंशस्योज्जीवनाय 🔻। वृष्यर्थमपि लोकस्य देवतानां हिताय च । 🕊

पिता वा यदि वा माता भ्राता वाज्न्य सुहज्जनाः। यदि पश्वत्यम।पन्नाः कथं कुर्याद् द्विजोत्तमः।।७६ कनिष्ठवर्जमेवात्र वपनं मुनिभिः स्मृतम्। स्नात्वाऽऽचम्य विधानेन कारयेत् पजनं हरेः। रङ्गबल्यादिभि स्तत्र कुर्यात् सवंत्र मङ्गलम् ॥८० रोदनं वर्जयित्वैव गोमयेन शुचि स्थलम् । विलिप्य मण्डले तत्र धान्यम्योपर्यूल्खलम् ॥८१ कलशांस्तु चतुर्दिश्च तण्डुलोपरि निक्षिपेत्। हिरण्यपञ्चगव्यानि पञ्चत्वक्पल्लवान् न्यसेत्॥८२ वासमा तन्तुना वाऽपि वेष्ट्येत् त्रिः प्रदक्षिणम् । उलूबले वासुदेवं कलशेषु क्रमेण च ॥८३ प्रयुष्न मनिरुद्धश्व सङ्कर्षण मधोक्षजम्। सम्पन्य गन्धपुष्पाद्यैर्भक्तया भक्ष्यं निवेद्येत् ॥८४ अभ्यर्च्य मुसले पुष्पैर्गायम्या प्रणवेन च । हरिद्रामवहन्यात्तु परोमात्रेति वै जपन ॥८५ भगवन्मन्दिरे विष्णुं हरिद्राद्येः प्रपूजयेत्। पितुः शरीरं विधिवत् स्नापयेत्कळशोदकैः ॥८६ तिरुष्टेश्च पञ्चगत्र्येश्च गायत्र्या वैष्णवेन च । उद्दर्श्यसर्वकमणेति स्नापयेत्पितरं सुतः ॥८७ नारायणानुवाकेन चैवं झाप्य ततः पितुः। **भौतवसम्ब** सम्बेष्ट्य भूष**णे**र्भूषयेत्ततः ॥८८

गन्धमाल्यै रलङ्क्तय शुचौ देशं कुशोत्तरे। तिलोपरि विधायैनं वस्तं हित्वाऽन्यतः सुतम्॥८६ धारयेदुत्तरीय द्वे यावत्कर्म समाप्यते । हुत्वेवोपासनं तस्य आर्द्रयज्ञीयकाष्ट्रकः ॥६० शिविकां कारयित्वाऽथ वस्त्रमूल्यादिभिः शुभाम् । तस्मिन्निवंश्य तं प्रेनं बाहकान्वरयेत्ततः ॥६१ स्ववणीवंषगवानेव पूजयेत् स्वर्णदक्षिणैः। वहेयुस्तेऽपि भक्तया तं पठन् विष्णुस्तवान् मुदा ॥६२ हरिद्रालाजपुष्पाणि विकिरन् वष्णवा मुदा। वादित्रनृत्यगीताद्यं त्रेजेयुः कीर्तयन् हरिम्। हुताग्निमयनः कृत्वा गच्छेयुस्तस्य बान्धवाः ॥६३ वाहकानामलाभे तु शकटे गोवृषान्विते। निवश्य शिविकां रम्यां व्रजयुर्नगराद्वहिः ॥६४ दक्षिणेन मृतं शूद्रं पुरद्वारेण निर्हरेत्। पश्चिमोत्तरपूर्वेषु यथासङ्ख्यं द्विजातयः ॥६४ प्रागृद्वारं सर्ववर्णानां न निपिद्धं कद्वाचन। गत्वा शुभतरं देशं रम्यं शुभजलान्वितम् ॥६६ यज्ञवृक्षसमाकीर्ण ममेध्यादिविवर्जितम। खातयेत्तत्र कुण्डं तु निम्नं इस्तत्रयं तदा। द्वाभ्यान्त्रिभिर्वा विस्तारं चतुरायतमेव च ॥६६ ततः संमाजेनं इत्वा गोमयान्वितवारिणा । सम्ब्रोक्ष्य यहायैः काष्ठैः स्थिति कुर्याचयाविधि ॥६७

११३७

आस्तीर्य दक्षिणामेवमेणाजिन मनुत्तमम्। तस्मिन्नास्तीय्ये द्भांस्तु विकीर्य च तिलांस्तथा ॥६८ तस्मिन्निवश्य तं देवं (प्रेतं) घृताक्तं नववस्वकम्। ईपद्धौतं नवं श्रोतं सदशं यन धारितम् ॥६६ अहतं तद्विजानीयाहवे पित्र्ये च कर्मणि। परिषच्य चितिं पश्चादापो प्यस्मानितीत्युचा ॥१०० परिस्तीर्य शुभैदेभैरपसब्येन सब्यतः। उरस्यप्नि निधायास्य पात्रासादानमाचरेन् ॥१०१ प्रोक्षणं चममाज्येन चरुमिध्मसूबौ तथा। आसाद्योक्तविधानेन इध्माधानास्त्रमाचरेन् ॥१०२ स्वगृद्धोक्तविधानेन हुत्वा सर्वमशेपतः। पश्चादाज्ययुतं हत्र्यं जुहुयादुपवीतवान् ॥१०३ सोमानमित्योदनेन प्रत्यचं तत आज्यतः। तं महेन्द्रंति सूक्तंन हुत्वा प्रत्यूचमेव च ॥१०४ एष इत्यनुवाकाभ्यां प्रादाज्यं यजेत्ततः। सर्वेश्च वैष्णवर्मन्त्रेः पृथगष्टोत्तरं शतम् ॥१०४ तिलैश्च जुद्यात्पादमप्राविशतिमेव वा। एकैकामाहुर्ति पश्चाह्रेकुण्ठपार्षदं यजेत् ॥१०६ ब्रह्ममेध इति प्रोक्तं मुनिभिर्बद्धातत्परैः। महाभागवतानां वै कतत्र्यमिद्मुत्तमम् ॥१०७ केशवार्षितसर्वाङ्गं शशिभं मङ्गलाद्वयम्। न वृथा दापयेद्विद्वान् ब्रह्ममेधविधि विना ॥१०८

ऽध्यायः ो

परमावगतेनापि कर्तव्यं हि द्विजन्मनः। द्रव्यालाभेऽपि होतव्यं यज्ञियंश्च प्रसूनकैः ॥१०६ शुद्रस्यापि विशिष्टस्य परमैकान्तिनस्तथा । स्वाहाकारं च वेदं च हित्वा पुष्पैर्यजेच्छुभैः ॥११० तूषगोमद्भिः परिषिच्य परिग्तीर्य कुरोस्तिलैः। न मनिः केशवाद्यैत्र तथा सर्द्वर्रगाहिनिः ॥१११ मत्स्यकून्मादिभिश्चेव वेदार्थाक्तप्रबन्धकैः। नमोज्तमेव जुदुयात् स्वाहाकारं विवर्जयेत् ॥११२ अमन्त्रकं प्रकुर्वीत शृद्धः सर्वेमशेपतः । दम्ध्वा शरीरं विविवद्वष्णवस्य महात्मनः ॥११३ यन्मरणं तद्वभृथमिति मत्वा विचक्षणः। स्नानार्थं पुण्यसिललं ब्रजेद्वागवतैः सह ॥११४ अनुलिप्य घृतं सर्वं गोमयं वा तिलेः सह। द्वां प्रेरक्षतेळां जेः स्नानं कुर्वीत मङ्गलम् ॥११४ स्वगृद्योक्तविधानेन तस्य पुत्राः स्वरोत्रजाः। पिण्डोदकप्रदानाद्यं सर्वमप्यीर्ध्व देहिकम् ॥११६ निर्वत्ये विधिना धर्म सामान्येनावरोपतः। विशिष्टं परमं धर्मं नारायणबल्जि ततः ॥११७ प्रकुर्याद्वैरणवैः साद्धै यथाशास्त्र मतन्द्रितः । निमन्त्रयेत् पूर्वेद्य ब्रांझणान् वैष्णावान् शुभान् ॥११८ चतुर्विशतिसंख्याकान् महाभागवतोत्तमः। केरावादीन समुद्रिय चतुर्विशति बैष्णवान् ॥११६

रात्रौ निमन्त्र्य सम्पूज्य तं. माद्धं विजितेन्द्रियः। प्रातहत्थाय तैर्गत्वा नदीं पुण्यजलान्विताम् ॥१२० धात्रीफरानुलिपाङ्गो निमन्न्य विमले जलै। जपन् वे देष्णवान् सृक्तान् स्नानं कुवींन वे द्विज: ।।१२१ वेंकुण्डनर्पणं कुर्यान कुसुमै. सतिलाक्षतः । गृहं गरबाटचेयेदवं सर्वावरणसंयुतम् ॥१२२ सुगन्दपुरार्थिविधेगः धर्ध्<sup>र</sup>श्च दीपकैः । नेपेद्यं भक्ष्यभोज्यंश्च फलर्नाराजनस्पि ॥१२३ अर्चियत्वा विधानेन मृत्यमन्त्रेण वंष्णवः। पुरतो प्रिं प्रतिष्ठात्य इध्माधानं समाचरेत् ॥१२४ चर्मः मशकराज्यन्तु जुहुयाद्वत्तिमण्डले । प्रत्यचं वेष्णवैः सूक्तः केशवार्यं अ नामभिः ॥१२५ हत्य।ऽय वेज्णवेर्मन्त्रेः पृथगष्टोत्तरं शतम् । गवाज्येनेव जुदृयाचनुर्भि वेँप्णदोत्तमः ॥१२६ दैकुग्ठपार्पदं हुत्वा होमशेषं समापयेत्। अग्नेहत्तरभागेन गोमयेनानुलिय च ॥१२७ आस्तीर्यं दर्भान् प्रागमान् चतुविशतिसंख्यया । उदक्प्रावणिकेनैव केशवादिक्रमेण तु ॥१२८ अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यै स्तत्तः मन्त्रैः पृतक् पृथक्। मध्वाङ्यतिलमिश्रेण चरुणा पायसेन वा ॥१२६ कुशंपु तेषु द्यान्तु पिण्डान् तीर्थं विधानतः। स्वाहाकारेण मनसा केशवादीन् क्रमेण वै।।१३०

दस्त्रा पिण्डान् समभ्यक्क्यं गन्धपुष्पाक्षतोद्कैः। नित्यमभ्यर्च्य मुक्तंभ्यो वैष्णत्रेभ्यस्त्रथैव च ॥१३१ द्द्यात् पिण्डत्रयं चैव तेषां दक्षिणतः क्रमान्। विष्णोर्नुकेति मुक्तंन उपम्थानजपं तथा ॥१३२ प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा भक्त्याऽथ वृष्णवः। पिण्डांस्तु सिळिले दत्त्वा स्नात्वा संपूच्य कशवम ॥१३३ ब्राह्मगान् भो जयेरपश्चात्पाद्प्रक्षालनादिभिः। अर्घ्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैवस्ति उलङ्कारभूपणैः ॥१३४ केशवादोन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वष्णवान् । सम्रज्य विधिवद्भत्तया महाभागवतोत्तमान ॥१३५ पायसं सगुडं साज्यं शुद्धान्नं पानकः फलैः। सम्भोज्य विप्रानाचान्तान् प्रणिपत्य विसज्ञेयेत् ॥१३६ ह्रविष्यश्व सक्रद्भत्तवा भूमौ दद्यान दुशोत्तरे । अयं नारायणविस्मृनिभिः सम्प्रकीतितः ॥१३७ स्वग्रस्थानां च सर्वेषां कर्तत्र्यो वेष्णवोत्त्रमेः। अलाभेषु तु विषेषु वैष्णवेष्यराक्तितः ॥१३८ सर्वं ऋत्वा विधानेन जपहोमार्चनादिकम्। केशवादीन् समुद्दिश्य नित्यान् मुक्तांश्च वैष्णवान् ॥१३६ एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवतोत्तमम्। श्रुतित्मृत्युदितं धर्मं विशिष्टाद्यः समाचरेत् ॥१४० वैष्णवं परमं धमं महाभागवतोत्तमम्। तस्मिन् सम्पूजिते विप्रे सर्वं सम्पूजितं जगत्।।१४१

ऽष्यायः ]

तस्माद्भागवतंत्रप्रमेकं वाऽपि सुपूजयेत्। हरिश्च देवताश्चेव पितरश्च महर्पयः ॥१४२ तस्मिन् सम्प्रजिते विप्र तुष्यन्त्येव न संशयः। अचेनं मत्त्रपठनं ध्यानं होमश्च वन्द्रनम् ॥१४३ मन्त्रार्थचिन्तनं योगो वंष्णवानाश्व पजनम्। प्रमादनीर्थसेवा च नवेज्याकर्म उच्यते। पञ्चसंस्कारसम्पन्नो नवेज्याकमेकारकः ॥१४४ आकारत्रयमम्पन्नो महाभागवतोत्तमः। श्राद्धानाम यलाभे तु एकं नारायणं वलिम् ॥१४५ कुर्वीत परया भत्तया वैकुण्ठपदमाप्तुयात्। नित्यश्व प्रतिमासश्व पित्रोः श्राद्धं विधानतः ॥१४६ सोद्कुम्भं प्रद्द्यान्तु याव (ब्दान्तिकं) दिष्ट्यान्तिकं द्विजः। प्रत्यन्दं पार्वणश्राद्धं मातापित्रोर्मृ तेऽह्नि ॥१४७ अर्चयित्वाऽच्युतं भदःया पश्चान् कुर्याद्विधानतः। वैष्णवानेव विप्रांस्तु सर्वकर्मसु योजयेत् ॥१४८ सर्वत्रावैष्णशान् विशान् पतितानिव सन्यजेत्। शङ्खचक्रविहीनास्तु देवतान्तरपूजकाः। द्वादशीविमुखा विप्राः शंवाश्चावैष्णवाः स्मृताः ॥१४६ अवैष्णवानां संसर्गात् पूजनाद्वन्दनादपि । यजनाध्यापनात्सद्यो वैष्णवत्वा ब्च्युतो भवेत् ॥१५० श्रुतिस्मृत्युदितं धर्मं नातिक्रम्याऽऽचरेत्सदा। स्वशास्त्रोक्तविधानेन वैकुण्ठार्श्वनपूर्वकम् ॥१५१

कर्तृ त्वफलमङ्गित्वे परित्यज्य ससाचरेत । धर्मस्य कर्ता भोक्ता च परमात्मा सनातनः ॥१४२ अधमं मनसा वाचा कर्मणाऽपि त्यजंत्सदा। अकृत्यकरणाद्विप्रः कृ यस्याकरणाद्धि ॥१४३ अनिम्रहाचेन्द्रियाणः सद्य पननमृच्छति । अनिशं मनमा यस्तु पापमेवाभिचितयेत ॥१५४ कल्पकोदिमहस्राणि निरयं वै स गच्छति । यम्तु वाचा बदेरवाप ममत्यकथनादिकम् ॥१५५ कल्यापुतमहमाणि तिर्यग्योनिषु जायते । यस्त्रघं कुमते नित्यं चापल्यात्करणादिभिः॥१५६ युगकोटिसहमाणि विष्ठ यां जायते क्रिमिः। दान्तः श्चि म्तपम्बी च सत्यवाग्विजितेन्द्रियः ॥१४७ म मान्विक शमयुनः सुरयोनिषु जायते। यस्त्वर्थकामनिरतः सहा विषयचापलः ॥१४८ स राजमो मनुष्येषु भूयो भूयोऽभिजायते। कोबी प्रमादवान् ह्यो नास्तिको विपरीतवाक् ॥१५६ निद्रालु स्वामसो याति बहुशो मृगपक्षिताम् । महापापञ्चानिपापं पातकञ्चोपपातकम्। प्रामङ्गिकं नरः कृत्या नरकान् याति दारुणान् ॥१६० तामिन्न मन्त्रतामिन्नं महारौरवरौरवौ । सङ्घातः कालमूत्रश्व पृथशोणितकदमम् ॥१६१

कुम्भीपाकं लोहशङ्करतथा विष्मृत्रसागरः। तप्तायसाख्यो जोग स्तवायसमयं गृहम् ॥१६२ शय्या तप्रायसमयी पानकञ्चाप्रिसन्निभम्। शुलमुदुगरसङ्घातं काककङ्कोलदंशितम् ॥१६३ सिहब्याव्रमहानागभोकरं सम्प्रतापनम् । क्रिमिराशिमहाज्वालं तथा विष्मृत्रभोजनम् ॥१६४ असिपत्रवनं घोरं तपाङ्गारमयी नदी। सञ्जीवनं महाघोरमित्याद्या नरकाः स्मृताः ॥१६४ महापातकजेघीर रुपपातकजेरपि। ब्रजतीमान महाघोरान दुई त्रेरन्वितश्च यः ॥१६६ प्रायश्चित्तरपत्येनो यदकार्यकृतं महत्। कामतस्तु कृतं यत्तु मरण रिसद्धि मुन्छति ॥१६७ ब्रह्महत्या सुरापानं विप्रस्वर्णत्य हारणम् । गुरुदाराभिगमनं तत्संयोगश्च पञ्चमः। संलापात् स्पशनाद्वासा सोद्)देकशय्यामनाशनान् ॥१६८ मौहार्दाद्वीक्षणाहानात्त्रेनेव समता ब्रजेत् । गुर्वाक्षेपस्रयीनिन्दा सुहदाम्वध एव च ॥१६६ ब्रह्महत्यासमं ज्ञयमधीतस्य च नाशनम्। यागर्सं क्षत्रियं वश्यं विशिष्टं शूद्रमेव च ॥१७० शरणागतं स्वामिनं च पितरं भ्रातरं गुरुप । पुत्रं तपस्वनं शिष्यं भार्यां तेषां च सर्वतः ॥१७१

अन्तर्वत्नी स्त्रियो गाश्च तथाऽऽत्रेयी रजस्वलाः। देवताप्रतिमां साध्वीं बालांश्चेव तपस्विनीम् ॥१७२ घातयित्वा समाप्नोति ब्रह्महत्यां न संशयः। नैह्मयमात्मस्तवं ऋरं निषिद्धानां च भक्षणम् ॥१७३ रजस्त्रलामुखास्त्रादः पञ्चयज्ञादिवर्जनम् । अनृतं कूटसाक्षी च महायन्त्रप्रवर्तनम् ॥१७४ आकर्षणादि पट्कमें लाक्षालवणविक्रयः। पाषण्डकल्ककुह्कवेदवाह्यविधिक्रिया ॥१७५ यक्षराक्षमभूतानामर्चनं वन्दनं तथा। वक्त्रणेवाम्बुपानञ्च सुरापस्त्रीनिषेवणम् ॥१७६ गवां निष्पीडनं क्षीरं ताम्रस्थं गव्यमेव च। पात्रान्तरगतं यत्तु नारिकेलफलाम्यु च ॥१७७ तालहिन्तालमाध्कफलानां रसमेव च ! खरोष्ट्रमानुषीक्षीरं सुरापानसमानि वै ॥१७८ मानकूट तुलाकूटं निक्षेपहरणानि च। भूरत्ननारीहरणं रसाम्नातेयमेव च ॥१७६ गुडकार्पासलवणतिलकान् सामिषाम्बु च। का(कु)प्यवस्त्रे च हत्वा च लोहानां हरणं तथा ॥१८० विषाप्रिदाहरं चैव सुवर्णस्तेयसम्मितम् । सखी भार्या कुमारी च सगोत्रा शरणागता ॥१८१ साध्वी प्रव्रजिता राङ्गी निश्चिप्ता च रजस्वला। वर्णोत्तमा तथा शिष्या भार्या भ्रातृपितृज्ययोः ॥१८२

मातामही पितामही पितुर्मातुश्च सोद्राः। अन्या मा(भ्रा)तृज्यदुहिता मातुलानी पितृष्वसा ॥१८३ अननी भगिनी धात्री दुहिताऽऽचार्यभामिनी। स्तुपाऽऽचार्यसुता चैव तत्पत्नी सुमहातपाः ॥१८४ मातुः सपत्नी सार्वभौमी दीक्षिता चैव भामिनी। कपिला महिषी घेनुदेवताप्रतिमा तथा।।१८४ आसामन्यतमाङ्गच्छेद् गुरुतस्पग उच्यते । महापातकिनामत्र तत्संयोगिन एव च ॥१८६ प्रायश्चित्तं नास्ति तेषां भृग्वग्निपतनं समृतम् । हीनवर्णाभिगमनं गर्भेष्टनं भर्तृहिंसनम् ॥१८७ विशेषपतनीयानि स्रोणां पुंसां च यानि तु। बीशुद्रविट्श्रत्रवधो गोवालहननं तथा ॥१८८ फलपुष्पद्रमाणां हि चोषधीनाश्व हिंसनम्। वापीकूपतड़ागानां ध्वंसनं प्रामघातनम् ॥१८६ अभिचारादिकं कर्म्भ सस्यव्वंसनमेव च। उद्यानारामहननं प्रपाविध्वंसनं तथा ॥१६० मातापितृसुतत्यागो दारत्यागस्तथैव च। स्वाध्यायाग्निगुरुत्यागस्तथा धम्मस्य विक्रयः ॥१६१ कन्याया विक्रयश्चेव स्वाध्यायमद्यविक्रयः। परस्त्रीगमनञ्चेव परद्रव्यापहारणम् ॥१६२ तथा पुंसोऽभिगमनं पशुनां गमनं तथा। वृषक्ष्रद्रपशूना**भा पुंस्त्व**विष्वंसनं तथा ॥१६३

कन्याया दृषणं चेत्र गवां योनिनिपीड्नम्। मानुवाणां पशूनाश्व नासाद्यङ्गविभेदनम् ॥१६४ प्रामान्त्यजस्त्रीगमनं विज्ञयमनुपातकम्। नित्यनैमित्तिकश्राद्धवर्जनं पश्रहिंसनम् ॥१६४ मृगपक्षिमहासर्पयादसां हननक्रिया। साधारणस्त्रीगमनं पत्न्ययाम्ये मैथुनं तथा ॥१६६ पारवित्तं पारदार्यं निन्दितार्थोपजीवनम् । तथैवानाश्रमे वासो देवद्रव्योपजीवनम् ॥१६७ पयोद्धितिलानाश्च निक्रयं लवणक्रयम्। शाकमूलफलम्तेयमतिवद्ध्युपजीवनम् ॥१६८ निमन्त्रितातिक्रमणं दुष्प्रतिष्रह्मेव च। ऋगानामप्रदानत्वं सन्ध्याकालानिवर्तनम् ॥१६६ वृथैवाऽ हमपरित्यागः संग्रनोत्र पळायिता । दुर्भाजनं दुरालापं स्वधःर्भस्य च कीर्तनम् ॥२०० परेषां दोपवचनं परदारनिरीक्षणम्। नाम्ति ग्यं व्रतलोपश्च स्वाश्रमाचारवर्जनम् ॥२०१ असन्छास्त्राभिगमनं व्यसनान्यात्मविक्रयः। ब्रात्यतात्मार्थवचनमे क्रैकमुपपातकम् ॥२०२ इन्धनार्थं द्रुमच्छेदः क्रिमिकीटादिहिंसनम् । भावदुष्टं कालदुष्टं क्रियादुष्टं च भक्षणम् ॥२०३ मृत्रमंतृणकाष्टाम्बुस्तेयमत्यशनं तथा। अनृतं विषयचापस्यं दिवास्वप्नमसत्कथा ॥२०४

तच्छावणं परामं च दिवामेथुनमेव च। रजस्वला सुतिकां च परस्त्रीमभिदर्शनम् ॥२०४ उपवासदिने श्राद्धे दिवा पर्वणि मैथुनम्। शूर्त्रेष्यं होनसस्यमुन्छिष्टम्पर्शनादिकम् ॥२०६ स्रोभि शंस्यं काम तल् ं मुक्तकेश्यादिवीक्षणम् । इत्याद्यो ये च दोषाः प्रकीर्णा परिकीर्तिताः। महापापं पातकञ्च अनुपानकमेव च ॥२८७ उपपापं प्रकीण अप पश्चया तत्र कीर्तितन । महापातकतुल्यानि पापान्युक्तानि यानि तु ॥२०८ वानि पानकसंत्रानि तन्न्यून मनुपातकम्। उपपापं ततो न्यूनं ननो होनं प्रकीर्णवम् ॥२०६ संमगेस्त्र तथा तेपा प्रसङ्गात्सम्प्रकीर्तितम् । क्रमेण वक्ष्यते तेषां प्रायश्चित्तं विशुद्धते ॥२१० यो येन सम्बसेतंपा तस्यव व्रतमाचरेत। संसर्गिणस्तु संसगेन्तत्संमर्गस्तथेव च ॥२१४ चतुर्थम्य न दोपस्तु पतत्येषु यथाक्रमम्। प्रकीणेकादिदीपाणां प्रासङ्गिक मविद्यते ॥२४२ स्वल्पत्वात्पतनाभावात्तत्संसर्गान्न दुप्यति । स्नानच्च शुद्धिरीपस्य संसर्गात्पतितं विना ॥२१३ सावित्रया वाऽपि शुध्येन कर्तुरव व्रतक्रिया। कृते पापे यस्य पुंसः पश्चात्तापोऽनुजायते ॥२१४

प्रायश्चित्तन्तु तस्येव कर्तव्यं नेतरस्य तु। जातानुतापस्य भवेत्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥२१४ नानुतापस्य पुंसस्तु प्रायश्चित्तं न विद्यते। नाश्वमेधफलेनापि नानुतापी विशुद्धवते ॥२१६ तस्माज्ञातान्तापस्य प्रायश्चित्तं विशुद्धः यते । चरदकामतः कृत्वा पतनीयं महत् पुमान् ॥२१७ न कामतश्चरंद्धमं भूग्वप्रिपतनं विना। यः कामतो महापापं नरः कुर्यात्कथञ्चन ॥२१८ न तम्य शुद्धिनिर्दिष्टा भृग्विप्रपत्तः विना । इत्युक्तं ब्रह्मणा पूर्वं मनुना च महर्पिभिः ॥२१६ पातकेषु च सर्वत्र कामतो द्विगुणं व्रतम्। कामतः पतनीयेषु मरणाच्छुद्धिमृच्छति॥२२० ह्यमेधाय नः(न) शुद्धिः सवेभौमस्य भूपतेः। कामतस्वनुपारेषु लोके न व्यवहार्यता ॥२२१ महत्सु चातिपापेषु प्रदीप्रज्वलनं विशेत्। प्रायश्चित्तैरपैत्येनो यदकामकृतं भवेत् ॥२२२ कामतो व्यवहारस्तु वचनादिह जायते। इति योगेश्वरंणोक्त मुपपापेषु तत्र तत् ॥२२३ तस्मादकामतः पापं प्रायश्चित्तेन शुध्यति । तेषां क्रमेण वक्ष्यामि प्रायश्चित्तं विशुद्धये ॥२२४ शिरः कपालध्वजवान् भिक्षाशी कर्म वेदयन् । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि पुण्यतीर्थे समाविशेत्। १२२४

प्रयागे सेतुबन्धादिपुण्यक्षेत्रेषु पापकृत् । तत्र वर्षादि विज्ञाप्य स्वस्वकल्पमशेषतः ॥२२६ तत्रस्यैर्बाह्मणेरेवानुज्ञातो व्रतमाचरेन्। चत्वारो ब्राह्मणाः शिष्टाः पर्पदिन्यभिधीयते ॥२२७ त रुक्तमाचरेद्धर्भमेको वाऽध्यात्मवित्तमः। जटी वरुकलवामाश्च बहिरेव समाविशन ॥२२८ स्नानं त्रिपवणं कुर्वन् क्षितिशायी जितेन्द्रिय । एकभुक्तेन नक्तंन फलरनशनेन च ॥२२६ समापयेत्कम्फलं यथाकालं यथावलम् । राममिन्दीवरश्यामं पौलस्यव्नमव लमषम् ॥२३० ध्यात्वा षडक्षरं मन्त्रं नित्यं तावदहर्निशम्। एवं द्वादशवर्षाणि पुण्यतीर्थं समाचरन । २३१ मुच्यते ब्रह्महत्याया स्तपसा वीतकल्मपः । चरितव्रत आयाते यवसं गोपु दापयेत् ॥२३२ त स्तस्य च सुसंस्काराः कर्तव्या बान्धवैर्जनैः। विप्रमुख्याय गां दःवा ब्राह्मणान् भोजयेत्ततः॥२३३ प्रारम्भव्रतमध्ये तु यदि पश्वत्वमाप्नुयात्। विशुद्धिःतस्य विजया शुभाङ्गतिमवाग्नुयात् ॥२३४ असंस्कृतातु गोपु स्यात् पुनरेव वृतं चरेत्। अशक्तस्तु वृते दद्याद् गोसहस्रं द्विजन्मनाम् ॥२३४ पात्रे धनं वा पर्याप्तं दत्त्वा शुद्धिमवाष्नुयात्। ब्रह्महत्यासमेष्वेवं कामतो वृतमाचरेत ॥२३६

अकामतश्चरेद्धमं पापं मनसि चोच्यते। आज्ञापयिताऽनुमन्ताःनुप्राहकस्त ग्रेव च ॥२३७ उपेक्षिताऽशक्तिमांश्चेत्पादोनं व्रतमाचरेत्। कामतस्तु चरे । पूर्णं तत्रापि द्विगुणं गुरी ॥२३८ अन्तर्दत्यां तथा ऽऽत्रेय्यां तथेव दतमाचरेन्। आचार्यं च वनम्थंन मातापित्रोर्गुरी तथा ॥२३६ तपस्विन इद्घविदि द्विगुणं व्रतमाचरेत्। यावत्स्वक्षत्त्रियं वैश्यं विशिष्टं शृद्रमेव च ॥२४० कपिलां गर्भिगोङ्गाञ्च हत्वा पूर्णव्रतं चरेत्। अकामतरतु तंप्वध मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ॥२४१ विधेः प्राथमिकादसमाद् हितीये हिगुणं चरेतु। तृतीये त्रिगुपं प्रोक्तं चतुर्थं नास्ति निष्कृतिः॥२४२ चतुर्णामाश्रमाणाञ्च शौचवत् साधनं चरेत्। प्रायश्चित्तान्तरं मध्ये केचिदिच्छि त सुरयः ॥२४३ गोत्राह्मणपरित्राण मध्यमेधावभृथं तथा। इयं विशुद्धिरुद्दिता प्रहृत्या कामतो द्विजान् ॥२४४ अग्निप्रपतनं केचिदिच्छन्ति मुनिसत्तमाः। लोमभ्यः स्वाहेत्यादि मन्त्रेहु त्वा पृथक् पृथक् ॥२४५ अवाक्शिराः प्रविश्याग्नौ दग्धः शुद्रो भवेन्नरः। अकामतः सुरां पीत्वा मद्यं वाऽपि द्विजोत्तमः ॥२४६ पूर्वद् द्वादशाब्दानि चरेद् वृतमचिह्नितम्। जपित्त्रा दशसाहस्रं त्रिसन्ध्यासु निरन्तरम् ॥२४७

द्वादशाब्दं मनुं जप्त्वा ततः शुद्धो भवेश्नरः। यानि कानि च पापानि सुरापानसमानि तु ॥२४८ अकामतश्चरेदधं कामतः पूर्णमाचरेत्। सर्वत्र पातनीयेषु चरित्रा बतमुक्तवन ॥२४६ पुनः संस्कारमहीन्त त्रयश्चेते द्विजातयः। अज्ञानात्त् सुरा पीत्या रेतोविण्मृत्रसेव च ॥२५० मानुपीक्षीरपानेन पुत संस्कारमर्हति। इत्युक्तं मनुना पूर्वमायश्चापि महर्विभिः ॥२४१ करञ्जं लगुनं शिष्ट्र मूलकं प्रामस्करम् । छत्राकं बुक्कुटाण्डञ्च कालं(काकं) पिण्याकं लशुनं तथा ॥२५२ गृध्रमुष्टं नृमासं च (गो) खरं तत्तक्रमेत च । माहिषं माकरं माससंवृ(मृ)क्षं वानरमेव च ॥२४३ निष्पोडितञ्च गोक्षीरमारनालं च मृपकम् । मार्जारं श्वेदयुन्ताकं कुम्भीनिम्बद्छं तथा ॥२५४ क्रव्याद्व तथा भेकं शृगालं व्यावमेत्र च। एवमादिनिपिद्धास्तु भक्षयित्वा तु कामतः ॥२५५ चरेद्वतं तथा पर्ण पादोनम्याद्कामतः। नारिकेलरसं पोत्या वायुना ताडितं द्विजः ॥२५६ द्(ज) ध्या तालपलाशम्बा करनिमेथितं द्धि । ताम्रपात्रगतं गव्यं क्षोरं च स्वणान्वितम् । २४७ कराग्रेगैव यहत्तं घृतं लवणमम्बु च। सूतकाझव शूद्राझं कदर्यायझ मेव च ॥२६८

श्वरपृष्टं सृतिकादृष्ट मुद्(ाया)क्यादृष्टमेव च । पाषण्डभण्डचण्डालवृषलीपतिवोक्षितम् ॥२५६ दुत्त्वावशिष्टं यक्षाणां भूतानां रक्षसां तथा। उद्घृत्य वामह्स्तेन वक्त्रंणैव पिबेदपः ॥२६० यचात्रमाघैकोह्रिट्रमुच्छिष्टमगुरो रपि । हरेरनर्पितं भुक्त्वा न भुक्त्वा देवतार्पितम् ॥२६१ कामतम्तु चरेद्धर्मञ्चरेद्वदमकामतः। अकामतः मकुज्ञम्बा चरेबान्द्रायणव्रतम् ॥२६२ म्लेच्ड्रचण्डालपतितपापण्डा(न्न)नामकामतः । उद्क्यासह् भुक्त्वा च चरेद्धर्मव्रतं द्विजः ॥२६३ चण्डालकूपभाण्डस्थं मद्यभाण्डस्थमेव च । पीत्वा समाचरेत्पापं कामतोऽद्वं समाचरेन ॥२६४ मद्यगरं समाद्राय कामतो व्रतमाचरेत्। अकामतस्तु निष्ठीव्य चरेदाचमनं द्विजः ॥२६४ अभिमन्त्रय जलं प्राश्य सावित्रया च समन्वितम् । वृथा मांसाशनं चेव भावदुष्टादि अक्षणे ॥२६६ चरेत्सान्तपनं कुच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा । कामतन्तु चरेत्पादमभ्यासे पूर्णमाचरेत् ॥२६७ कामतस्तु सुरां पीत्वा सततं चाग्निसन्निभम्। गोमूत्रमम्बु वा पीत्वां मरणाच्छुद्धिमृष्ठद्रति ॥२६८ सुरायाः प्रतिषेधस्तु द्विजानामेत्र कीर्तितः। विशिष्टस्यापि शृद्रस्य केचिदिच्छन्ति सूरवः ॥२६६

अनृतं मद्यमांसञ्च परस्त्रीस्वापहारणम् । विशिष्टस्यापि शूद्रस्य पातित्यं मनुरत्रवीन् ॥२७० सुरा वै मलमन्नादे पापाद्वे मलमुख्यते । तस्माद् ब्राह्मणराजन्यौ वश्यश्च न मुरां पिवन् ॥२७१

चकाराद्विशिष्टम्य श्रूद्राम्यापि पर्ववचनात् यत्तु राजन्यवेश्ययो-गवाज्यादिमद्यस्याप्रतिपेधस्तन्न मतं म्यात् न च निषिद्वादीनां सतां मतः । विशिष्ट श्रूद्रम्यापि मद्यमासनिपिद्धन्वात् । इज्याध्य-यनादिश्रौतस्मातंकर्मार्हस्य । अत्त्रविशिष्टस्यापि तद्वद्वंश्यस्य च प्रति-षेधात् न तु प्रायश्चित्ताल्पत्वप्रतिपादनपराण्येव नत्वप्रतिपिद्धपराणि ब्राह्मणस्य मरणान्तिक मुपदिष्टं राजन्यवेश्यविशिष्टश्रूद्राणाम् पूर्ण-पादोनाद्धोनव्रतचर्या उक्ता । सुरायान्तु सर्वेषां द्विजाणां मरणा-न्तिकमेव श्रूद्रस्य गोसहस्रदानं वा परिपूर्णव्रतं वाऽऽचरित्तव्यम् नतु मरणान्तिकम् ।

अग्निवर्णां सुरां पीत्वा सुरायाम्तु द्विजातयः।
मरणाच्छुद्धिमुच्छन्ति शूद्रस्तु व्रतमाचरेत्।।२७२
राजन्यवैश्यौ तु मद्यं पीत्वा चरेतां व्रतमेव च।
शूद्रस्वर्थभ्वरेत्तद्वद् ब्राह्मणो मरणाच्छुचिः।।२७३
यक्षरक्षः पिशाचान मद्यं मांसं सुरासमम्।
नात्तव्यमेव विप्रेण भुक्त्वा तु ज्वलनं विशेत्।।२७४
मद्यं वाऽपि सुरां वाऽपि यः पिवेद् ब्राह्मणाधमः।
अभिवर्णन्तु गोमूत्रं पिवेद्खलिपभाकम्।।२७४
७३

मरणाच्छुद्धिमाप्नोति जीवेद्यदि विशुध्यति। मद्यस्य प्रतिषिष्यर्थं घृतं क्षीरमथाम्बु वा ॥२७६ प्राशियत्वाऽग्निवर्णन्तु तद्वत्तां शुद्धिमाप्नुयान् । दस्वा सुवर्णं विप्राय गाश्व दस्वा विशुध्यति ॥२७७ क्षत्त्रविट्शूद्रजातीनां सुवणे तु यथाक्रमम्। पादोनमद्धं पाढं वा चरेद् व्रतं यथोक्तवत् ॥२७८ समेष्वर्धं प्रकुर्वीत कामतः पूर्णमाचरेत्। कामतः स्वर्णहारी तु राज्ञे मुसलमर्पयेन ॥२७६ स्वकर्म ख्यापयंश्चेव हतो मुक्तोऽपि वा गुचिः। राज्ञा यदि विमुक्तः स्यान् पूर्ववद् त्रतमाचरेन् ॥२८० आत्मतुल्यमुवण वा दद्याद्विप्रस्य तुष्टिकृत्। तत्समब्यतिरिक्तंषु पादमेव चरेद् व्रतम् ॥२८५ चान्द्रायणं पराकं वा कुर्याद्रुपेषु सर्वशः। द्रव्यप्रत्यर्पणं कर्तुस्तनमृल्यद्रव्यमेव वा ॥२८२ व्रतं समाचरेन् कृत्वा यथा परिषदीरितम्। बलाच्छीर्य्येण वा स्नेहाद् व्यवहारादिनाऽपि वा।।२८३ समाहरति यद् द्रव्यं तत्सवं स्तेयमुच्यते । देशं कालं वयः शक्ति पापभावेक्ष्य सर्वतः ॥२८४ प्रायश्चित्तं प्रदातव्यं धर्मविद्धिर्मनीषिभिः। भगिनी मातरं पुत्री स्तुषामाचार्ययोषितम् ॥२८५ अकामतः सकुद् गस्वा चरेत् पूर्णव्रतं नरः। पश्चिमाभिमुखा गङ्गां कालिन्या सह सङ्गताम् ॥२८६

प्रश्नप्रस्रवणं पुण्यं द्वारका सेतुमेव वा । चन्द्रपुष्करणी वाऽपि वंणी सागरमङ्गमम् ॥२८७ गोदावर्याः शवर्या वा गन्वा तत्राऽउचरेदु व्रतम्। पूर्ववन् द्वादशाब्दानि चरेद् इतमनुत्तमम् ॥२८८ कृष्णाय नम इत्येष मन्त्रः सर्वाघनाशनः । इममेव जपन्मन्त्रं व्यात्वा हृदि सनातनम् ॥२८६ त्रिसन्ध्याम्बयुतं भत्तया नित्यं द्वादशवत्मरम्। चान्द्रायणैः पराकं वां कुच्छं वां शमयेत् ममाः ॥२६० जीवे क्षीणेऽथवा पुण्यकामी मण्डपपाटलेः। निवसित्वा बहिर्घामान् क्षितिशायी जितेन्द्रियः ॥२६१ मनः सन्तापकरणमुद्धहेच्छोकमन्ततः। सदा कृष्ण हरि ध्यायन् जपन्मन्त्रमनुत्तमम् ॥२६२ द्वादशाब्दाहिमुच्येत पापादस्मात्तपं बलात्। भगिन्यादिषु योपित्सु यो गच्छंत्कामतो नरः ॥२६३ प्रतप्रासमतोयेन समाश्चिष्य हुताशने । शयित्वा सुमहद्वही दग्धः शुद्धिमवाष्नुयात् ॥२६४ एतासु मतिदुष्टासु कामता बहुशो व्रजेत । एवममि विशेद्धीमान् पापं विज्ञाप्य पर्षदि ॥२६५ अकामतः सकृद् गत्वा चरेद्धमंत्रतं नरः। अभ्यासे तु चरंत् पूर्णं कामतः सक्रदेव च ॥२६६ कामतोऽभ्यासविषये तत्रापि मरणान्तिकम्। समेष्वयं प्रक्रवीत सक्रदेव सकामतः ॥२६७

कामतस्तु चरत् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम्। अकामतो वाऽभ्यासे तु पूर्णमेव व्रतं चरंत् ॥२६८ अन्यास्विप च नारीषु सकुद्गत्वाऽप्यकामतः। पाढमेवाऽऽचरेब्रिद्वानभ्यासे त्वर्थमाचरेत ॥२६६ माधारणासु सर्वामु चरेबान्द्रायणत्रतम्। कामतो द्विगुणं ताम् अभ्यासे व्रतमाचरेन्। स्वद्रारास्वास्यगमने पृंसि तिर्यक्षु कामतः ॥३०० चान्द्रायणं पराकं वा प्राजापत्यमथापि वा। उद्दयां मृतिकां गत्त्रा चरन्सान्तपनं व्रतम् ॥३०१ चान्द्रायणं तथाऽन्यासु कामतो हिगुण चरेत्। अष्टम्याञ्च चतुदश्यां दिवा पर्वणि मैथुनम् ॥३०२ कृत्वा सर्चलं स्नात्वा च वारुणीभिश्च मार्जयेत्। चण्डाली पृंश्वली म्लेन्छां पाषण्डी पतिनामपि ॥३०३ रजकी बुर्वर्डी व्याधां सर्वा प्रामान्त्यजाः स्नियः। अकामतः सकृद् गत्वा चरेबान्द्रायणव्रतम् ॥३०४ अभ्यासे तु त्रतं पूर्णन्ताभिश्च सह भोजने। कामतस्तु मक्कर् गत्वा भुक्त्वा त्वर्थत्रतं चरेत्।।३०४ तत्र भ्यश्चरेन् पूर्णमभ्यासे मरणान्तिकम्। यो येन सम्बसेदेषान्तत्पापं सोऽपि तत्सम. ॥३०६ संलापस्पर्शनादेव शय्याशनासनादिभिः। तद्वदेवाऽऽचरेन् सर्वे व्रतं द्वादशवार्षिकम् ॥३०७

अकामतश्चरेद्धर्मं षम्मासात्पादमाचरेत्। मासत्रये द्विवर्षं स्यान्मासमात्रं तु वत्सरम् ॥३०८ कामतो हिगुणं तत्र चरेद्ब्दादिकं व्रतम्। कर्द्धन्तु बस्सरात्पृणं हेगुण्याद्यमतः क्रमात् ॥३०६ कामतो वत्मरादृध्वै द्विगुणव्रतमाचरेत्। उध्वं द्विवर्षात्तस्यापि मरणान्तिकमुच्यते ॥३१० यजनाध्यापनाहानात्पानाच मह भोजनान्। सद्य एव पतत्यस्मिन पतितेन सहाऽऽचरन ॥३११ तत्राप्यकामनस्त्वर्थं कामनः पूर्णमाचरेन । पण्मासे वत्सरेऽत्यत्र द्विगुणं त्रिगुणं स्पृतम् ॥३१२ अर्घ्वे तु निष्कृति न स्याद् भृग्विग्नपतनं विना। द्वितीयस्य तृतीयस्य नेप्यतं मरणान्तिकम्।।३१३ अद्धं पादं समुहिष्टं क मतो हिगुणं तथा। महाकृचीपवासेन चतुर्थस्य विनिष्कृतिः ॥३१४ पश्चमस्य न दोषः स्यादिति धर्मविदो विदुः। अन्येषामपि संसर्गाःप्रायश्चित्तं प्रकल्पयेत्।।३१४ पननीयेषु नारीणां मरणान्तिकमुच्यते । अकामतश्चरेद्धर्भन्नतं पृथु यथोदितम् ॥३१६ व्यभिचारे तु सर्वत्र कामतो मरणाच्छ्चिः। अकामतश्चरेरपूर्णं प्रातिलोम्यं गता सती ॥३१७ अर्द्ध मेवाऽऽनुस्रोम्येषु तथैव भ्रणहादिषु । यतिश्र ब्रह्मचारी च गत्वा हिरमका मतः। ३१८

गुरुतल्पगमुहिष्टं पूर्णमर्थं समाचरेत्। नामतो ब्रह्मचारी तु पूर्णमेवाऽउचरेदु व्रतम् ॥३१६ यतेम्तु मरणाच्छद्धिः शिश्नः स्थान क्रन्तनेन वा । तयोग्तु रेतः स्वलने कृच्छं चान्द्रायणं चरेत् ॥३२० जप्त्वा सहस्रं गायत्र्या गृहस्थः शुद्धिमाप्नुयान् । द्विसहस्रं वनस्थस्तु जपेद्रतो निपानने ॥३२१ तत्रापि कामतस्तेषां द्विगुणत्रिगुणादिकम्। परिव्राजनकामस्तु नयनोत्पाटनं तथा ॥३२२ एवं समाचरेदीमान प्रायश्चित्त मनन्द्रितः। प्रायश्चित्त मकुर्वाणः पापेषु निरनः मदा ॥३२३ कल्पायुतशतं गत्वा नरकं प्रतिपद्यते । धृत्वा गोचर्ममात्रन्तु सममेकं निरन्तरम्।।३२४ पश्चगव्यं पिबन गोष्नो गुरुगामी विशुध्यति । गोमुत्रंणेव च स्नात्वा पीत्वा चाउऽचम्य वारिभिः ॥३२४ विष्णाः सहस्रनामानि जपेन्नित्यं समाहितः। शयीत गांबजे रात्री गवां हित मनुस्मरन् ॥३२६ व्याघादिभिर्गृहोतां गां पङ्के निपतितां तथा। स चरेदथवा प्राणान तद्रथं वे परित्यजेत ॥३२७ तेनैव हि विशुद्धः स्यादसम्पूर्णव्रतोऽपि वा । व्रतान्ते गोप्रदो भूत्वा ततः शुद्धिसवाष्नुयान् ॥३२८ गोस्त्रामिने च गां दस्त्रा पश्चादेवं व्रतं चरेत्। द्यात त्रिरात्रमुपोप्य वृपमेक 🕶 गा दश ॥३२६

योक्त्रेच गृहदाहाद्येर्बन्धनैर्वा हता यदि । मतिपूर्वेण गां हत्वा चरेत्त्रैवार्षिकं व्रतम् ॥३३० द्विवर्षं पूर्ववद्वाऽपि चर्मणाऽऽर्र्रेण वाससा । कपिलां गर्भिणीं वाऽपि वृषं हस्त्रा च कामतः ॥३३१ व्रतं द्वादशवर्षाणि चरेद्र ब्रह्मव्रतोदितम् । आचार्यदेवविप्राणां हत्वा च द्विगुणं चरेत ॥३३२ होमधेनुं प्रसृताञ्च दाने च समलङ्कृताम्। उपभुक्तां वृषेणापि ताश्व द्वादशवार्षिकम् ॥३३३ निष्पीडनं वाऽपि तेषु दापष्ट्रवस्यमतिद्रतः। शरणागतवालस्त्रीघातुर्कः सम्बसेन्न तु ॥३३४ चीर्णव्रतानपि चरन कृतःनानपि सर्वदा। अग्निदाङ्गरदां चर्ण्डा भर्तृष्ट्नां लोकघातिनीम् ॥३३५ हिस्रयंस्तु विधानस्त्री हत्वा पापं न गच्छति । गुर्ह वा बालगृद्धान्या श्रोत्रियं वा वहुश्रुतम् ॥३३६ आततायिन मायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। नाऽऽततायिवंध दोपो हन्तुर्भवित कश्चन ॥३३० प्रस्यातदोपः कुर्वीत परित्यक्तं यथोदितम् । अनभिक्यातदोषस्तु रहस्यव्रतमाचरेत् ॥३३८ कण्ठमात्रजले स्थित्वा राममन्त्रं समाहितः। जपेद्वा दशसाहमं ब्रह्महा शुद्धिमाप्नुयान ॥३३६ सुरापः स्वर्णहारी तु जपेदष्टाक्षरं तथा । लक्षं जप्त्वा कृष्णमन्त्रं मुच्यते गुरुतल्पगात् ॥३४०

उपोध्यान्तजेले स्थित्वा वासुदेवमनुं शुभम्। जपेद्द्वादशसाहस्रं गोष्नः प्रयतमानसः ॥३४१ असंख्यानि च पापानि अनुक्तान्यिप यानि च। चिक्तस्थो भगवान कृष्णः सर्व हरति तत्स्यणान् ॥३४२ एकादश्युपवासस्य फलं प्राप्नोति मानवः। आषाढ़ादिचतुर्मासे कृते भुक्षा जितेन्द्रियः ॥३४३ दुग्धाच्यो शेषपर्यङ्कं शयानं कमलापितम्। ध्यात्वा समर्चयेक्नित्यं महद्भिर्मुच्यते ह्यद्यैः ॥३४४

इति रहम्यप्रायश्चित्तवर्णनम्।

अथ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणवर्णनम् ।
र जस्वलां सृतिकाश्च चण्डालं पतितं तथा ॥३४६
पाषण्डिनं विकर्मस्यं शेवं स्पृष्ट्राऽध्यकामनः ।
गोमयेनानुलिप्राङ्गः सवासा जलमाविशेन् ॥३४६
गायन्यप्रशतं जप्त्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ।
स्पृष्ट्रा तु कामतः स्नात्वा चरेत्सान्तपनं व्रतम् ॥३४७
श्वपचं पतितं स्पृष्ट्रा गोपालन्यजनादृतम् ।
विड्वराहं शुनङ्काकं गर्दभं यूपमेव च ॥३४८
मद्यां सासं तथैकोष्ट्रं विष्यूतं दशमेव च ॥३४६

करखं लशुनश्वानुगच्छति स्वस्य शुद्धये। सचैलमेकवाद्यापः सावित्री त्रिशतं जपेत्।।३५० तलपृष्टसृष्टिनौ सृष्ट्रा सवासा जलमाविशेन । ऊर्ष्वमाचमनं प्रोक्तं धर्मविद्भिरकल्मपः। उन्छिष्टकेशभस्मास्थिकपालं मलमेव च ॥३५१ स्नानार्द्रधरणीञ्चैव म्ष्रष्टृा स्नानं समाचरेत् । प्रक्षाल्य पादौ संक्रम्य तथंबाऽऽचम्य वारिणा ॥३५२ मन्त्रसन्मार्जितजलं म्पृट्ग ताञ्च विशुध्यति । विशिष्टानाञ्च विप्राणां गुरूणां व्रतशालिनाम् ॥३५३ विनीततराणाभुच्छिष्टं स्पृष्टा स्नानं समाचरेन्। शैवानां पतितानाश्व वाह्यानान्त्यक्तकमेणाम् ॥३५४ उच्छिष्टम्पर्शनं कृत्वा चरेश्वान्द्रायणं व्रतम्। उच्छिप्टेन स्वयं चान्यमुच्छिप्टं यद्यकामतः ॥३५४ रपृष्ट्रा सचैलं स्नात्वा च साविज्यप्रशतं जपेत्। कामतश्चाऽऽचरेत् कुन्छ्ं ब्रह्मकुर्चं द्विजोत्तमः ॥३५६ राजानञ्च विशं शूद्रं चरेचान्द्रायणं द्विजः। तौ च स्नात्वा चरेत् कुच्छ्ं गां वा दद्यात्पयस्विनीम् ॥३५७ उच्छिष्टिनं सृशन् शुद्रमुच्छिष्टं श्वानमेव वा । सवासा जलमाप्लुत्य चरेत्सान्तपनन्नतम् ॥३५८ तत्रापि कामतः शृष्ट्या पराकद्वयमाचरेत । पश्चगव्यं पिवक्कुद्रः स्नात्वा नद्यां विधानतः ॥३५६

चण्डालं पतितं मद्यं सृतिकाश्व रजस्वलाम्। उच्छिष्टेन तु संस्पृष्टः पराकत्रयमाचरेत ॥३६० उच्छिप्टेन चिरं काल मुफ्तिया स्नानमाचरेत्। उच्छिष्टाशौचमरणे चरेदब्दं द्विजातयः ॥३६१ रजस्वला सृतिका वा पऋत्वं यदि चेद् गता। पञ्चगव्यैः स्नापयित्वा पावमान्यैद्धिजोत्तमाः ॥३६२ प्रत्यृचं कल्हीः स्नाप्य सपवित्रंजलेः शुभैः । शुश्रवस्त्रण सम्बष्ट्य दाहं कुर्याद्विधानतः ॥३६३ चण्डालान् ब्राह्मणात्सर्पान् क्रज्यादादुदकादिभिः। हतानामपि कुर्वात पूर्ववद्द्विजपुङ्गवः ॥३६४ तत्रापि कामत कुर्यात् पडव्दं तस्य बान्धवाः। विपार्चर्वनशाबाद्यंरात्मान् यदि घातयेत् ॥३६५ गोशनं विप्रमुख्येभ्यो द्द्यादेकं वृषं तथा। नारायणवर्छि कृत्वा मर्वमप्यौर्ध्वदेहिकम् ॥३६६ रजस्वला तु या नारी स्पृष्ट्वा चान्यां रजस्वलाम् । चण्डालं पतितं वाऽपि शुनं गर्दभमेव च ॥३६७ तावत्तिष्ठेन्निराहारा चरेत्मान्तपनं व्रतम्। स्पष्टाज्यकामनः स्नात्वा पश्चगज्येः शुभैर्जलै. ॥३६८ चातुर्वर्णस्य गेहेपु चण्डालः पतितोऽपि वा । अन्तर्वन्नी भवेत्मा चेत्कर्थं स्यात्तत्र निष्कृतिः ॥३६६ तद्गृहस्तु परित्यक्ता दग्ध्वा वाऽन्यत्र संस्थितः। संसर्गोक्तप्रकारेण प्रायश्चित्तं समाचरेत्।।३७०

पथक् पथक् प्रकुत्रीरन् सव गृहनिवासिनः। दाराः पुत्राश्च सुहृदः प्रायश्चित्तं यथोदितम् ॥३७१ सभतृ काणां नारीणां वपनन्तु विवजेयेत्। सर्वान् केशान समुद्धृत्य च्छेद्येद्ङ्गुलित्रयम् ॥३७२ केशानां रक्षणार्थाय द्विगुणं व्रतमाचरेत्। प्रायश्चित्तं तु सम्पूर्णं कुत्वा सान्तपनं व्रतम् ॥३७३ ब्रह्मकूचीपवासं वा विश्रध्यन्ति तदेनसः। अविक्सम्बत्मराधांत् गृहदाहं न चोदितम् ॥३७४ यद्गृहे पातकोत्पत्ति म्तत्र यत्नेन दाहयेत्। त्यजेद्वा संनिकृष्टाच शुद्धिञ्चवाऽऽत्मनस्ततः ॥३७४ सन्बन्धाचेव संसर्गात्तुल्यमेव नृणामघम्। तस्मारसंसर्गसम्बधान पतितेषु विवर्जयेन ॥३७६ चण्डालपतितादीनां नोयं यस्तु पिवंत्ररः। पराकं कामनः कुर्याद् ब्रह्मकूर्ममकामनः।।३८७ अभ्यासे तु षडव्दं स्याचान्द्रायणमकामतः । चण्डालानां तडागे वा नदीनां तीर्थ एव वा ॥३७८ स्नात्वा पीत्वा जलं विप्रः प्राजापत्यमकामतः। कामतस्तु पराकं वा चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३७६ अभ्यासे तु व्रतं पूर्णं पडब्दं म्यादकामतः। सर्वेषां प्रतिलोमानां पीत्वा सन्तापनं चरेत् ॥३८० चान्द्रायणं पराकं वा त्र्यव्दं वाऽपि यथाक्रमम्। भोजने गमनेऽप्येवं प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८१

चाण्डालपतितादीनां गृहेष्वन्नमपि द्विजः। भुक्ताऽब्दमाचरेत् कृच्छं चान्द्रायणमकामतः ॥३८५ चण्डालवाटिकायान्तु सुप्त्वा भुक्ताऽप्यकामतः । चरेत्सान्तपनं कुच्छ्ं चान्द्रायणमथाऽपि वा ॥३८३ चण्डालवाटिकायान्तु मृतस्याब्दं विशोधनम्। म्नापनं पश्चगव्येश्च पावमान्यै शुभैर्जलैः ॥३८४ श्रुद्रान्नं सूतिकान्नं वा गुना स्पृष्ट्रश्व कामतः। भुक्तवा चान्द्रायणं कुच्छं पराकं वा समाचरेत् ॥३८५ जलं पीत्वा तयोर्विप्रः पश्वगव्यं पिबेद् द्वश्यहम्। चण्डालः पतिनो वाऽपि यरिमन गेहे समा(विशेत)चरेत । त्यक्तवा मृण्मयभाण्डानि गोभिः संक्रामयेत् त्र्यम् । १३८६ मासादृध्वं दशाहन्तु हिमासं पक्षमेव तु। पण्मासान् तथा मासं गवां वृन्दं निवेशयेन ॥३८७ अर्ध्वन्तु दहनं प्रोक्तं लाङ्गुलेन च खातनम्। ब्रह्मकूच तथा कृच्छ्रं चान्द्रायणमथापि वा ।।३८८ अतिकृष्ट्रं पराकश्व ज्यब्दं वाऽपि समाचरेत्। पढ्दमूर्घं पण्मासात्प्रायश्चित्तं समाचरेत् ॥३८६ वत्मरादृध्वंसम्पूर्णं व्रतमेवाऽऽचरेद् बुधः । अमेध्यशवचण्डालमद्यमांसादिदृषितात् ॥३६० कूपादुद्धृत्य कलशैः सहस्रं रेचयेजलम्। निक्षिप्य पश्चगड्यानि वारुणैरपि मन्त्रयेत्।।३९१

तडागम्यापि ग्रुध्यर्थं गोभिः संक्रामयेज्ञलम्। धान्यन्तु क्षालनाच्छुद्धिर्बाहुल्यं प्रोक्षणादपि ॥३**६**२ रसानान्तु परित्याग श्चाण्डालादिप्रदृषणातु । प्रासाद्देवहर्म्याणां चण्डालपतिनादिषु ।।३६३ अन्तः प्रविष्टेपु तदा शुद्धिः स्यात्केन कर्मणा । गोभिः संक्रमणं कृत्वा गोमूत्रेणैव लेपयेत ॥३६४ पुण्याहं वाचयित्वाऽथ तत्तीयदर्भमंयुतः। सम्ब्रोध्य सर्वतः पश्चादेवं सम्भिपंचयेत् ॥३६४ पश्चामृते पश्चपत्र्येः स्नापयित्वाऽथ वैष्णवः। प्रत्युचं पावमान्येश्च वैष्णवैश्वाभिषचयेन् ॥३६६ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमद्योत्तरं तु वा । चतुर्भिवेष्णवेर्मन्त्रैः स्नाप्य पुष्पाञ्जलि तथा ॥३६७ श्रीमूक्तेन तदा दित्र्येदयान्नीराजनं तत । अवैष्णवस्पर्शनेऽपि एवं कुर्वीत वैष्णवः। भिन्नं बिम्बे तथा दुग्धे परित्यत्तवैव तं गृहे ॥३६८ बैदेहीं वैष्णवीमिष्ट्रा पुनः स्थापनमाचरेन्। चोराद्यपहृते नष्टे वासुदेवीं यजेश्वरुम् ॥३१६ स्थानान्तरयते विम्बे पुनः स्थापनमाचरेत्। तोयाधिवासनं वेद्यामधिरोहणमेव च ॥४०० नयनोन्मीलनं दीक्षां वर्जयित्वाऽन्यमाचरेत्। पश्चगरयैः सापयित्वा पश्चत्वक्पह्नवाश्चितैः ।।४०१

मङ्गलद्रव्यसंयुक्तरिद्धः समभिषेचयेत्। सूक्तेश्च ब्राह्मण स्पत्ये रविगैर्वेष्णवीस्तथा ॥४०२ चतुभिर्वेदणवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम्। वैष्णव्या चैव गायज्या शङ्कं न स्तापयेद् बुधः ॥४०३ ध्रवसूक्तमृचं समृत्वा जपन् संस्थापयेद्धरिम्। ततस्तन्मृर्तिमन्त्रेण मूलमन्त्रेण वा द्विजः ॥४०४ दद्यात पुष्पसहस्राणि देवतां स मर्नु स्मरन्। पश्चात् सावरणं विष्णोरर्चेयित्वा विधानतः ॥४०४ इन्द्रसोमं सोमपतेरिति मूक्तमनुत्तमम्। जपन् भत्तयाऽथ देवैस्तु दद्यान्नीराजनं द्विजः ॥४०६ प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्वा विप्रांस्तु भोजयेत्। अवंष्णवेन विप्रेण शूद्रंणैवार्चिते हरौ ॥४०७ सहस्रमभिपंकं च पुष्पाञ्जलिसहस्रकम्। महाभागवतो विप्रः कुर्यान्मन्त्रद्वयेन च ॥४०८ देवतोत्तरसम्पर्कं विना स्वाहरणं हरी । अवैष्णवानां मन्त्राणां पकान्नस्य निवेदने ॥४०६ कृत्वा नारायणीमिष्टिं पुनः संस्कारमाचरेत्। देशान्तरगते बिम्बं चिरकालमनर्चिते ॥४१० अधिवासादिकं सर्वं पूर्ववद्वेष्णवात्तमः। विष्णोरुत्सवमध्ये तु विद्युत् स्तनितसम्भवे ॥४११ रथे बिम्बं ध्वजे भग्ने बिम्बे च पतिते भुवि। प्रामदाहेऽस्मवर्षे च गुरावृत्विजि वै सृते ॥४१२

ऽध्यायः ]

नालङ्कृतेषु विधिषु परिणीते जनार्दने । अवैदिकक्रियापेते जपहोमादिवर्जिते ॥४१३ कुर्वीत महती शान्ति वैष्णवी वैष्णमोत्तमः। अग्निनाशे तु तन्मध्ये पुनरादानमाचरेत् ॥४१४ कुर्वीत वैनतेयेष्टि वेप्त्रक्सेनीमथापि वा। श्रश्करादिसम्पर्के पवित्रेष्टिं समाचरेन ॥४१४ वैष्णवेष्टि प्रकुर्वीत पापण्डादिप्रदृपिते । अथाम्य मंद्रवं विष्णोयत्र यत्र च सङ्करम् ॥४१६ तत्र तत्र यजेदिष्टि पावमानी द्विजोत्तमः । स्वापचारं स्तथाऽन्यंवां मुच्यतं सर्वकिल्बिषैः ॥४१७ अवष्णवेन विष्रण स्थापिते मधुसूद्ने । तद्वाष्ट्रं वा भूपतिर्वा विनाशमुपयाम्यति ॥४१८ कुर्वीत वास्रदेवेष्टिं सर्व पापं प्रशामयेन् । महाभागवतेनेव पुनः संन्कारमाचरेन ॥४१६ सेनेशवनतेयादि नित्याना च दिवौकसाम । मुक्तानामपि पृजार्थं विम्बानि स्थापयेद्यदि ॥४२० स निवेश्ये करात्रन्तु गव्येः स्नाप्याऽथ देशिकः । सर्ववैष्णवसूक्तेश्च तद्गायज्या सहस्रकम् ॥४२१ शङ्कं (दुम्मं)नैवाभिषिच्याथ भगवत्पुरतो न्यसेन् । स्थण्डिलेऽप्रिं प्रतिष्ठाप्य यजेच पुरतो हरेः ॥४२२ अस्य वामेति सूक्तेन पायसं मधुमिश्रितम्। अष्टोत्तरशतं प्रधादाज्यं मन्त्रचतुष्टयात् ॥४२३

मु(प)वर्णतार्क्यमूक्ताभ्यां पृषदाज्यं यजेत्ततः । तिलैंव्याहितिभिहुत्वा पश्चादष्टोत्तरं शतम् ॥४२४ वैकुण्ठं पाषंद्रज्येव होमशेषं समापयेत् ! अहमस्मीतिस्कें न पीठं संस्थापतेद्बुधः ॥४२४ प्रणवादि चतुर्ध्यन्तनामभिस्तत्प्रकाशकै । आवाह्य पूजयित्वाऽथ द्यात्पुष्पाञ्जलि ततः ॥४२६ द्वादशार्णेन मनुना सहस्रमथवा शतम्। सोमरुद्रेति सूक्तं न दीपैनींराजयेत्ततः ॥४२७ भोजयित्वा ततो विप्रान गुरुं सम्यक् प्रपूजपेत । मत्स्यकूर्मादिमूर्नीनामेवं संस्थापनं चरंत् ॥४२८ तत्तत्त्रकाशकैर्मन्डीजेपहोमादिकं चरेत्। सहस्रनामभिद्यात्युष्पाणि सुरभीणि च ॥४२६ वापीकृपतडागानां तरुणां स्थापने तथा। वारुणीभिश्च सौम्यंश्च जपहोमादिकं चरेन् ॥४३० तरूणा स्थापने गोपकुष्णं मातरमेव च। ताभ्यामेव तु मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयादु घृतम् ॥४३१ वैनतेयाङ्कितं स्तम्भं मध्ये संस्थापयेद्वुधः। अवेष्णवान्वये जातः कृत्वेष्टि वैष्णवीं द्विजः ॥४३२ वैष्णवैः पञ्चसंस्कारैः संस्कृतो वैष्णवो भवेत्। देवतान्तरशेषस्य भोजने स्पर्शने तथा ॥४३३ अनर्चिते पद्मनाभे तस्यानर्पितभोजने। अवैष्णवानां विप्राणां पूजने बन्दने तथा ॥४३४

याजनेऽध्यापने दाने श्राद्धं चैपाश्च भोजने।
अनचिते भागवते हरिवासरभोजने ॥४३६
प्रायश्चित्तं प्रकुर्ज्ञात वेय्यूहो मिष्टिमृत्तमाम्।
पश्चाद्धागवतानाश्च पिवेन पादजलं शुभम्॥४३६
एतःसमस्तपापानां प्रायश्चित्तं मनीपिभिः।
निर्णातं भगवद्धक्तपादामृतिनपेत्रणम्॥४३७
अङ्गीवृतं महाभागमहाभागवतैर्हिजः।
सन्दर्भपचारम् चेते परां वृतिश्च विन्द्रति॥४३८
प्रयश्चित्तं तथा चीर्णे महाभागदताद् द्विजात्।
देवगवैः पश्चसंस्कारेः संकृतो हरिमचयेत्॥४३६
इति वृद्धहारीतस्त्रतौ महापापादिप्रायश्चित्तप्रकरणं
नाम पष्टोऽध्यायः।

सम्मोऽध्यायः ॥
 अथ नानाविधोः सविधानवर्णनम् ।
 अम्बरीष उवाच ।

भगवन् ! भवता त्रोक्ता विष्णोराराधनक्रिया । प्रायिक्षक्रित्यानामसतां दण्डमेव च ॥१ अधुना श्रोतुमिच्छामि शाश्वतों वृत्तिमुत्तमाम् । इष्टीनाश्व विधानानि विशेषांश्चोत्सवान् हरेः ॥२

## हारीत उवाच।

शृणु राजन् ! प्रत्रक्ष्यामि सर्वे निरवशेषतः । इप्टीनाश्व विधानश्व हरेन्त्सवकर्मणाम् ॥३ नारायणो व सुरेवी गः हडी दैंड गवी तथा। बैय्यूही वैभवी प.द्मो (ग्नो) पवित्री पावमानिका ॥४ सौर्शिनी च सेनेशी आनन्ती च शुभाह्या। महाभागदतीत्येताः सर्दपापहराः शुभाः ॥४ प्रायश्चित्तार्थमपि वा भोगार्थं वा समाचरेत्। पूर्व विधनसे विष्णु श्रोक्तवान विधनसा भृगोः ॥६ प्रोक्तं ममेरितं तेन भृगुणा दिव्यमुत्तमम्। गुद्धं तत्सर्ववेदेपु निश्चिनं ते व्रश्नीम्यहम्।।७ अग्निर्दे देशनामव मे विष्णुरीश्वरः। तदन्तरेण वे सर्वा देवता इति ह श्रुतिः ॥८ निवसन्ति पुरोहाशमग्नौ वेष्णवम्बयम्। देवाश्च ऋ ।यः सर्वे योगिनः सनकाद्यः ॥६ अग्नौ यद्घूयते ह्ट्यं विष्णारे परमात्मने । तदग्नी बैष्णवं शोक्तं सर्वदेवापजीवनम् ॥१० एतदेवहि कुर्बन्ति सदा नित्या अपीश्वराः। विमुक्ता अपि भोगा मेतमेव मुमुक्षवः ॥११ एतरेव परं प्रीतिः सश्रियः परमा मनः। एतद्विना न तुष्येत भगवान पुरुषोत्तमः ॥१२

यज्ञार्थमेव संसृष्टमात्मवर्ग चतुर्विधम्। यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्तु तदेवां वर्मबन्धनम् । १३ वहिर्जिह्वा भगवतो वेदा अङ्गाः सदाऽध्वरं। अस्थोनि समिधः प्रोक्ता रोमा दर्भाः प्रकीर्तिताः ॥१४ स्त्राहाकार: शिर: प्रोक्तं प्राणा एव हवींपि च। सर्ववेदक्रिया भोगा मन्त्राः पत्न्यः प्रकीर्तिताः ॥१६ एवं यज्ञवपुर्विष्णुर्विदित्वेनं हुताशने । जुहुयाद्वै पुरोडाशं अज्ञात्वैवम्पतेदथ ॥१६ यज्ञो यज्ञपति यङ्गा जज्ञाङ्गो यज्ञ्ञाहनः। **५इभृगदारु**चज्ञी यज्ञभुग्यज्ञसाधनः ॥१७ यज्ञान्तकृदाज्ञगुह्यमन्नमन्नाद् एव च। तम्मादेनं विदित्वंबं यज्ञं यहेन पूजयेन ॥१८ कोऽयं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कथं स्यात्परतः शुचिः। द्रव्ययक्रास्तपोयक्रा योगयक्रास्तथा परे ॥१६ स्वाध्यायज्ञानयज्ञःश्च सदा कुर्वन्ति योगिनः ॥२० हरभगितया कुर्यात्र साधनतया कचित्। साधनं भगवान् विष्णुः साध्याः स्युवेदिकाः क्रियाः ॥२१ शेषभूतश्च जीवस्य तद्दास्यैकफलाः क्रियाः। श्रुतिस्मृत्युदितं कर्म तहास्यं परिकीर्तितम् ॥२२ नैसगिकं तथा कुर्यात्तहास्यंकं निकीर्तितम्। बैदिकेनंब मार्गेण पूजयेत्परमेश्वरम् ॥२३

अन्यथा नरकं याति कल्पकोटिशतत्रयम्। तस्म च्य्र त्युक्तमार्गेण यजे हिष्णुं हि देष्णवः ॥२४ अर्चायामचयेत्पुष्परग्नौ च जुहुयाद्वविः। ध्यायेत्त मनसा वाचा जपेन्मन्त्रान सुवैदिकान ॥२४ ण्वं विदि वा सत्क्रमें भीग थं परमात्मनः। कुर्वीत परमें कारती पत्युः पत्नी यथा प्रिया ॥ १६ इदं प्रसङ्गणोक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते। पूर्वपक्षदशम्या तु स्नात्वा सम्रुज्य वेशवम् ।।२७ श्यस्तियाचनपूर्वेण कुर्यादत्राङ्करार्यणम्। हरि नारायपंष्ट्यधीनित सङ्ग्रह्ण्य पूजयेन ॥२८ विष्णुप्रकाशके राज्यं भूमूक्ताभ्या शतं ततः। मन्त्रेण चेत्र वे कुण्ठं पापदं हुत्वा समापयेत ॥२६ अयुतं तु जपेनमत्रं होमश्वाहोत्तरं शतम्। शेषं निवेच देवाय भुजीयात् स्त्रयमेव च ॥६० ततो मीनी जपेन्मत्रं शयीत पुरतो हरे:। प्रभाते च नदी गत्त्रा स्नात्त्रा मन्तर्प्य देवताः ॥३१ सन्ध्यामन्वास्य चाउटगय स्वगेहे समलहकृते। वेद्यां संपूज्य देेेेेेेेे मन्त्रस्त्रविधानतः ॥३२ सप्तावरणसंयुक्तं महिषीभिः समन्त्रितम्। अभ्यर्च्य गन्धपुरपार्गेर्ष्रदीपनिवेदनैः ॥३३ अर्चयित्वा विधानेन कुण्डं दक्षिणभागतः। विस्तरायामनिष्नेश्च हस्तमात्रन्त्रिमेखलम् ॥३४

तत्र विह्नं प्रतिष्ठाप्य इध्माधानानतमाचरेत्। ओङ्कारः स्यात्परं ब्रह्म सवमन्त्रेषु नायकः ॥३४ ज्यक्षरं तत्त्रयाणाञ्च वेदानां बीजमुच्यते। अजायन्त भृचः पूर्वेमकाराद्विष्णुवाचकान् ॥३६ श्रीवाचकादुकारात्तु यज्ञंपि तद्नन्तरम्। अजायन्त तयोः सङ्गारमामान्यन्यान्यनेकशः ॥३७ तयोद्धासो मकःरण प्रोच्यते सबंदेहिनः। कारणं सर्ववर्णानामकारः प्रोच्यते वृधैः॥३८ अकारो वै च सर्वा वाक सेपा स्पर्शोप्सभिः सदा। बह्रौ सा व्यज्यमानाऽपि नानाम्ब्या इति श्रुतिः ॥३६ अकार एव ल यन्ति सर्वमन्त्राक्षराणि हि। अकारो वामुदेवः स्यात्तस्मिन् मर्व प्रतिष्ठितम् ॥४० मन्त्रो हि बीजं सवत्र क्रिया तच्छत्ति रुच से । मन्त्रतन्त्रसमायुषतो यज्ञ इत्यभिनीयते ॥४४ मन्त्रः पुमान् क्रिया स्त्री च तदुक्तं मियुनं म्हतम्। तस्माद्यजंपि तःत्राणि ऋचो मन्त्राणि चाध्वरं ॥४२ मत्त्रक्रियाज्ञामे । मिथुनं यज्ञ उच्यते । मन्त्रतन्त्रांशमेते भृष्यज्ञुषी यज्ञकर्मणि ॥४३ ब्दुगीतं तु भवेत्साम तस्मात्तद्वेग्णवं त्रयम्। ऋगिभरंव तमुद्दिश्य पुरोहाशं यजेद् बुधः ॥४४ ताभिरेव तु पुष्पाणि दद्यात्कर्मसु शार्ङ्गिण । इन्द्राग्निवरुणादीनि नामान्युक्तानि तत्र तु । **क्रे**यानि विष्णो स्तःन्यत्र नान्येषां स्युः कथश्वन ॥४५

अकारे रूढइत्यग्निमिन्द्रः वं वर ईश्वरं। आत्मनां प्रसवे सूय सौम्यत्वात्साम इत्यतः ॥४६ वायुः स्याज्ञोवतः प्राणाद्वरुणः सर्वजीवनः । मित्रः स्यात्सर्वमित्रत्वादात्मैकत्व द् वृहस्पतिः ॥४७ रोगनाशो भनेद्रद्रो यमः स्यात्त नियामकः। हिरण्यत्विमिति प्रोक्तं नेति प्राप्यत्वमुख्यते ॥४८ नित्यसत्वाद्धिरण्यः स्यात्तद्गर्भत्वाद्धिरण्मयः। हिरण्यगर्भ इत्युक्तः सत्वगर्भो जनार्दनः ॥४६ हिरण्मयः स जूतेम्यो दहशे इति वै श्रुतिः। सर्वान् म त्राति मितता पिता च पितृतस्पिता ॥६० स्वर्भर्भव इति प्रोक्तो वेदवेद्यंति चोच्यते। यस्य छन्दांमि चाङ्गानि स सुपर्ण मिहोच्यते ॥५% अत्र'ङ्गं 👉 मियुक्तं छन्दोमयमुदाहृतम् । गायत्र्युष्मिगतुरुष् च वृहती पङ्क्तिरेव च ॥५२ त्रिष्ट्रप् च जगतो चैव छन्दांन्येतान्यनुक्रमात्। एतानि यम्य चाङ्गानि स सुपर्ण इहोच्यते ॥५३ यस्माज्ञातास्त्रयो वेदा जातवेदाः स उच्यते । पवमानः पावयित्वा शिवः स्यात्सवदा शुभात ॥५४ सुजनैः सेव्यते यस्तु अतो वै शम्भुस्त्यिजः । सञ्यान्यस्येव नामानि वैदिकानि विवेचनात् ॥ १४ पुन्नामानि यानि विष्गोः स्रो नामानि श्रियस्तथा । परस्य वैदिकाः शब्दाः समाकृष्येतरेष्वपि ॥६६

व्यवह्रियन्ते सततं लोकवेदानुसारतः। न तु नारायणादीनि नामान्यन्यस्य कर्हिचित्।।४७ एतनाम्ना गतिर्विष्णरेक एव प्रचक्षते। शब्दब्रह्मत्रयो सब वैष्णवं तदिहोच्यते ॥४८ देवतान्तरशङ्का तु न कर्तव्या हि बैदिकैः। वषट्कृतं यहेदेन तद्त्यः तप्रियं हरेः ॥४६ स्वाहास्वधाभ्यां नमसा हुतं तद्वैष्णवं सपृतम् । समिदाज्ये या आहुतार्थे वदेनैव जुडूति। यो मनसा सबर इत्यचां प्रोक्तः सद्। ध्वरे ॥६० वेदेनेव हरि तस्माद्यजेत द्विजसत्तमः। प्रसङ्गादेव मुक्तं स्याद्विधानं तद् ब्रवीमि ते ॥६१ सृग्वेदसंहितायान्तु मण्डलानि दश क्रमान्। एककिमिष्ट्या होतव्यं चरुणा पायसेन वा ॥६२ घृतेन वा तिलै वांऽपि बिल्वपत्रेरथापि वा। अग्निमील इति पूर्वं मण्डलं प्रत्यचं यजेत्। ६३ पुष्पाणि च तथा द्दाःत् सुगन्धीनि जनार्दने । विष्णुसूक्तैहेविर्दु त्वा चतुर्मन्त्रैः शतं यजेत् ॥६४ वैष्णवान् भोजयेत्रित्यमग्निश्वापि सुसंप्रहेत्। उपोषितो दीक्षितश्च यार्वादृष्टिः समाप्यते ॥६४ अन्ते चावभृथेष्टिश्व पुष्पयागश्व पूर्ववत्। आचार्यं माद्मणांश्चापि दक्षिणाभिः प्रपूजयेत् ॥६६

इमान्नारायणेष्टिश्व सक्कृद्वाऽपि यजेत् यः। अनधीतवेदश्चेष्टिमयुतं मृत्यमन्त्रतः ॥६७ होमं पुष्पाञ्जलि वाऽपि त ग्रैवायुतमाचरेत् । पूजियत्वा ततो विप्रान्निष्ट्याः सन्यक्फलो भवेत् । अवाक्यपौर्णं सूत्तमष्टोत्तरस्तं चरुम् । हृत्वा चतुर्भिर्मन्त्रीश्च लभेदिष्टिं न संशयः ॥६६

अथ वासुदेविष्टिरुच्यते।

एकादश्यां कृष्णपक्षे समुपोष्य जनार्दनम् । समर्चयेद्विधानेन रात्री जागरणान्वितः॥७० द्वाद्श्यां प्रातकथाय स्नायान्नद्यां तिलैः सह । द्वादशार्णेन मनुना मिञ्चे छोत्तरं शतम् ॥७१ अभिमन्त्र्य जलं पश्चात्त्रसीमिश्रितं पिवत्। सर्वकर्मस्वभिद्दित एत रेवाघमर्पणः ॥७२ तत्तरक्रमणि तन्मन्द्रां यो जपेद्यमप्णे। **न्ना**त्वा सन्तर्य देवर्यान् क्टन्क्रःयः समाहितः॥७३ गृहं गःत्राऽर्चयेद्वं वासुदेवं सनातनम् । द्वादशाणविधानेन कश्तूरीचन्द्रतादिभिः॥७४ जातिकेतककुन्दाद्यैः सुकृष्णतुलसीद्लैः । सुवाब्वी रोपपयङ्के समासीनं श्रिया सह ॥७६ इन्दीवरदलस्यामं चक्रशङ्खगदाधरम्। सर्वाभरणसम्पन्नं सदायौवनमच्युतम् ॥७६

अनन्तं विद्याधीशं शौनकाद्यं हपासितः । त्रिदरोन्द्रैविमानस्थेद्रह्माद्वादिभि स्तथा ॥७७ ग्तूयमःनं हरि ध्यात्वा अर्चयेत्प्रयतात्मवान् । सर्वमावरणं पश्चाद्र्चयेन कुमुमादिभिः॥७८ प्रथमं महिपीमङ्गं लक्ष्मीभृभ्यौ सनीलया। अनन्तरञ्च गरुडधर्मसेनादिभि स्तथा ॥७६ ऐश्वर्यज्ञानवैराग्याः पूजनीया यथःक्रमम्। सनन्दनश्च सनकः सन्तरुमारः सनःतनः॥८० औडुश्च सोमकपिलः पश्चमो नारद् स्तथा। भृगुर्भिघनसोऽत्रिश्च मरीचिः कश्यपोऽङ्गिराः ॥८१ पुलहः स्वायम्भुवो दालभ्यो वशिष्ठाद्यास्ततः क्रमात्। वशिष्ठो वामदेवश्च हागीतश्च पराशरः ॥८२ व्यास श्कश्च प्रह्लादः शीनको जनकस्तथा। मार्कण्डेयो घुवश्चेव पुण्डरीकश्च मारुतः ॥८३ रक्माङ्गदः शिवो इह्या प्जनीया यथाक्रमम्। तथा लोकेश्वराः पूज्या शङ्ख्यकादिहेतयः ॥८४ वेदाश्च साङ्गाः स्मृतयः पुराणं धर्मसंहिताः । राशयो प्रह्नक्षत्राः पुजनीया समं ततः ॥८४ एवं सम्पूज्य देवेश मग्न्याधानादिपूर्वकम्। द्वितोयं मण्डलमृचा जुहुयात्स रृतं चरुम् ॥८६ ध्यात्वा बह्नी बासुदेवं दद्यात्पुष्पाणि तत्र तु । वैद्यावांश्च यजेत्तत्रावभृथं पु.पयागकम् ॥८७

ब्राह्मणान् भोजयेदन्ते गुरुषापि प्रपूजयेत्। इमाञ्च वासुदे रेष्टि यः दुर्योहंष्णवोत्तमः ॥८८ कुलकोटि समुद्भृत्य स गच्छंत्परमं पदम्। अथवा वासुदेवस्य मन्त्रेणैव द्विजोत्तमः ॥८६ जुरुयाद्यतं वही वैष्णवे. प्रत्यचं तथा । पुष्पाणि दस्त्रा देवेशे सम्यगिष्ट्या लभेत्फलम्।।६० अथ वक्ष्यामि राजर्षे । वैष्णवेष्ट्या विधि ततः । श्रवणर्क्षे तु पूर्वाह्नं पूर्वत्रच समारभेत् ॥६१ डपोष्य पूर्वदिवसे पूजयेज्ञागरे हरिम्। प्रभाते पूर्ववत् स्नात्वा तर्पयेज्ञगतां पतिम् ॥६२ प**ड**श्नरविधानेन परव्योन्नि स्थितं हरिम्। बह चर्क हेमविम्बाद्येयोंगपीठसुसंस्थितम् ॥६३ चतुर्भूजं सुन्दराङ्गं सर्वाभरणभूषितम्। चकराङ्क्षगदाशाङ्गीन् विभ्राण दोभिरायतैः ॥६४ वामाङ्कश्रिया साद्धं गन्धपुत्रपाक्षतादिभिः। नवेद्यंश्च फलेभेक्येदिंटयैभोज्यैः सुपानकैः ॥६४ अर्चयेद्वदेवेशं सर्वाभरण संयुतम्। श्रीर्छक्ष्मीः कमला पद्मा सोता सत्या च मिक्मणी ॥६६ मावित्री परितः पूज्या ततस्तुते बलाद्यः। अनन्ततार्क्यदेवेशसत्यधर्मद्माः शमाः ॥६७ बुद्धिश्च पूजनीयास्ते दिक्षु सर्वास्वनुक्रमात्। ततो लोकेश्वराः पूज्या स्ततश्रकः दिहेतयः ॥६८

महाभागवताः पृष्टया होमकर्म समाचरेत्। चतुर्भिर्वेष्णवेः सूक्तेः प्रत्यृचं जुद्याबरुम् ॥६६ व्यापका मन्त्ररव्रश्व चतुर्मन्त्रा उदाहृताः। तरप्यष्टोत्तरशतं पृथक् पृथगतां यजेत् ॥१०० तृतीयमञ्डलं पश्चाज्जुह्यात्प्रत्यचं ततः। तया पुष्पेश्च सम्पूज्य कुर्याद्वश्रृथं ततः ॥१०१ समाप्य पुष्ययोगेन वंष्वान् भोजयेत्ततः। एवं कर्तुमराक्तश्चेद्वेष्णवीं वैष्णवोत्तमः ॥१८२ वैष्णव्या चैव गायज्या पुरपाञ्चल्ययुतं चरेत्। त्रिसहस्रं चर्त हुत्वा वै णंदिन्या. फलं लभेत् ॥१०३ इमां तु वैष्गवी मिष्टिं यः कुर्याद्वैष्गवोत्तमः । त्रिकोटिकुलमुद्धृत्य याति विष्गोः परं पदम् ॥१०४ प्रायश्चित्त मिदं कुर्याद् वृत्तिभङ्गेषु वैष्गवः। शान्स्ययं देवकार्येषु पापेषु च महत्स्विप ॥१०४

अथ वैयुही इंग्रिक्च्यते।

गुहुपक्षे तु द्वादश्यां सङ्क्रान्तौ ग्रहणंऽपि वा। उपोष्य विधिविद्वष्णं पूजयित्वा विधानतः ॥१०६ अभ्यर्चयेद् गन्धपुष्पैः केशवादीन् पृथक् पृथक्। सङ्क्ष्वणादीनपि च पूजयेत्प्रयतात्मवान् ॥१०७ तत्तन्मृति पृथक् ण्यात्वा पृथगेव समर्चयेत्। केशवस्तु सुवर्णाभः श्यामो नारायणोऽज्ययः ॥१०८

माधवः स्यादुत्पलाभो गोविन्दः शशिसन्निभः। गौरवर्ण स्तथा विष्युः शोणो मधुजिद्दव्ययः ॥१०६ त्रिविकमोऽद्रिसङ्काशो वामनः स्फटिकप्रभः। श्रीधरस्तु हरिद्राभो हुपं केशों शुम न् यथा ॥११० पद्मनाभो घनश्यामो हैमो दामोद्रः प्रभुः। सङ्कर्पणर मुकाभो वासुदेवो घनद्यतिः ॥१११ प्रचुम्रो रक्तवर्णः स्यादनिरुद्धो यथोत्पलम् । अधोक्षजः शाद्वलाभो रक्ताङ्गः पुरुषोत्तमः ॥११२ नृसिंहो मणिवणीः स्यादच्युतोऽर्कसमप्रभ । जनादन कुन्दवर्ण उपेन्द्रो विद्रमद्यतिः ॥११३ हरिवे सूर्यसङ्काशः वृष्योभिन्नाञ्जनद्वातिः। आयुधानि त्रृते चर्षा दक्षिणाधः करादितः ॥११<mark>४</mark> पद्मं शङ्कं गदाचक्रं गदां द्धाति केशवः। शङ्खं पद्मां गदाचक्रं धत्ते नारायणोऽव्ययः ॥११४ माधवस्तु गरां चकं शङ्कं पद्मं विभक्ति च। चक्रं गदां तथा पद्मं शङ्कं गोविन्द एव च ॥११६ गदां पद्मं गदाशङ्कं चक्रं विष्णृर्विभक्ति हि। चकं शङ्खं तथा पद्मं गदां च मधुसूदनः ॥११७ पद्मं गदां तथा चक्रं शक्क्षं चैत्र त्रिविक्रमः। शङ्कं चर्कं गदापद्मं व मनो विभृयासया ॥११८ पद्मं चक्रं गदाशक्कं श्रीधरः श्रीपतिद्धन्। गदां चक्रं ह्रषीकेशः पद्मं शक्क्षं विभक्ति हि ॥११६

पद्मनाभस्तथा शङ्कं ५द्मं चक्रं गदां धरेत्। पद्मं र 🚁 गरां चक्रं धत्तं दामोदरस्तथा ॥१२० सङ्कपणो गदां शङ्कं पद्मं चक्रं द्धाति हि। वासुदेवो गदां शङ्खं चक्रं पद्मं विभक्ति हि ॥१२१ चक्रं शङ्कं गदां पद्मं प्रयुक्तो विभृयात्तथा। अनिरुद्धस्तथा चक्रं गरां शङ्क्षं च पङ्कजम् ॥१२२ चक्रं पद्मं तथा शङ्खं गदां च पुरुषोत्तमः। पद्मं गद्गं तथा शङ्कं चक्रं चाधोक्षजो हरि: ॥१२३ चक्र पद्म गद्म शङ्ख नरसिहो विभन्ति हि। अच्युतश्च गदां पद्मं चक्रं राह्नं विभर्ति हि ॥१२४ जनार्दन स्तथा पद्मं शङ्खं चक्रं गदां धरे।। रपेन्द्रातु तथा शङ्कं गदां चकं च पङ्करम् ॥१२५ हरिस्तु शङ्कं चक्रं च पग्नं चैव गदां धरेत। शङ्कं गदा पङ्कजं च चकं वृष्गो विभर्त्ति हि ॥१२६ एवं चतुर्विशतिम्तु मूर्ती ध्यात्वा समर्चयेत्। ततिद्वस्थेषु वा राजन ! शास्त्रामशिलामु वा ॥१२७ गन्धे पुष्रिश्च ताम्बूटैर्धूपैदीपैनिवेदनैः। फलेश भक्ष्यभोज्यंश्च पानीयैः शर्करान्वितैः ॥१२८ नामभिस्तेश्चतुर्श्यः तैर्मूलमन्द्रंण वा यजेत्। देवानावरणीयां अपूजयेत्परितः क्रमात् ॥१२६ यं हेत्त्राह(ब्रह्मी त्वने)तिसूक्तंन कुर्यात्रीराजनं शुभम्। पुरतोऽर्गिन प्रतिष्ठाप्य म्वगृह्योक्तविधानतः। मण्डलेन चतुर्थेन प्र.युर्च जुहुयाबरुम् ॥१३०

पुष्यः सम्पू त्रयेद्भत्तया कुर्यादवभृथं नरः। इमां वैयूहिकीमिष्टि सम्यक् प्राहुर्महर्षयः ।।१३१ प्रायश्चित्त मिदं प्रोक्तं पातकेषु महत्स्वपि । अनुफ्वपि च विस्वानां शान्त्यर्थं वा समाचरेत ॥१३२ प्रायश्चित्तं विशिष्टं म्याद्यं प्रत्यृचकर्मसु । अनधीतः कथं कुर्याद्वैयूही वैष्णवी द्विजः ॥१३३ प्रत्येकं शतमष्टी च मन्डीस्तेषां यजेद्रुपः। सर्वेत्रावभृथेष्टिश्व पुष्ययागश्व वैष्णवः ॥१३४ द्वयेन मूलमन्त्रेण कुर्वीत सुसमाहितः। वैष्मवान् भोजयेद्भक्तया कर्मान्ते सत्वसिद्धये ॥१३४ चतु वैशतिसंख्यान्वे महाभागवतान् द्विजान । एकं वा भोजयेद्विप्रं महाभागवते तमम्। सर्वे सम्पूर्णनामेति नस्मिन संप्जिते द्विज ॥१३६ यः करोति सुभामिष्टि वैयृही वैणवोत्तमः। अनन्तरयाच्युतानाश्व विशिष्टोऽन्यतमो भवेत् ॥१३७ वैभवीनथ वक्ष्यामि सवपापप्रणाशिनीम्। पावनीं सर्वछोकानां सर्वकामप्रदां शुभाम्।।१३८ भगवज्ञ मदिवसे वारं सूर्यसुतस्य वा। स्त्रजन्मर्क्षे जि वा कुर्याद्वैभ री मङ्गलाङ्कयाम् ॥१३६ पूर्व ज्वन्य मृद्यं कुर्या द हुरार्पण पूर्व कम्। उपोध्य पुजयेद्विष्णु मान्याधानं समाचरेत्।।१४०

स्नात्त्रा परेऽह्नि विधिना सन्तर्प्य पितृदेवताः। विशिष्टैर्शाह्मणैः सार्द्धमर्चयित्वा जनार्दनम् ॥१४४ मत्स्यं कूर्मं च वाराहं नारसिंहं च वामनम्। श्रीरामं बलभद्रश्च कृष्णं कक्किनमन्ययम् ॥१४२ ह्यमीवं जगदोनि प्तयेद्वैष्णवोत्तमः। नाचेयेद्वागेवं वुद्धं सवत्रापि च क्रमेम् ॥१४३ कुशप्रनिथपु विम्बप् शालप्रामशिलामु वा । अर्चयेद्ग धपुष्पाद्ये. प्रागुर्दप्रवणेन च ॥१४४ पृथक् पृथक् च नैवेद्यं विविधं वे समर्पयेत्। मे दकान् पृथुकान सक्त्रनपूरान् पायसांस्तथा ॥१४४ हविष्यमन्नमुदुगान्नं मण्डकान् मध्संयुतान्। दध्यन्नञ्च गुडान्नञ्च भत्तया तेभ्यो निवेद्येत् ॥१४६ कर्पूरसंयुतं दिन्यं ताम्यूरुषा निवेदयेत् । इसा विश्वेतिसृक्तेन दद्यान्नीराजनं तथा ॥१४७ सहस्रनामभिः स्तुःवा भक्त्या च प्रणमेद्बुधः। इध्माधानादिपय्य तं कृत्वा होमं समाचरेत् ॥१४८ सबस्तु इंडगवैः सूक्तैर्हु त्वा पूर्व शुभं हविः । पश्चमं मण्डलं पश्चात्प्रत्यृचं जुह्याद्द्विजः ॥१४६ इमान्तु दैभवोमिष्टि कुर्याद्विष्णुपरायणः। अकृत्वा बेभवीमन्त्रं योऽध्यापयति देशिकः ॥१५० रौरवं नरकं याति यावदाभूतसंद्रवम्। होमं विना स शुद्राणां इर्यात् सबेमशेपतः ॥१५१

मन्त्रीवां जुहुयादाज्यं तत्तत्मृर्तिप्रकाशकैः। पुजयित्वा द्विजवरान् पश्चान्मनः प्रदापयेत् ॥१४२ अशक्तो यस्तु वेदेन कर्तुमिष्टि द्विजोत्तम.। तत्त सूर्तिमयेर्म जीः पृथगद्योत्तरं शतम ॥१५३ हुत्वा चर्रः घृतयुनं सम्यगिष्ट्या. फलं ल्रेन् । वेष्णवस्याच्युतस्यापि कारपेदिधिमुत्तम म् ॥१५४ उद्दिश्य टैष्णवान् स्वस्विपतृनिप च बैष्ण यः । यः कुर्याद्वेष्णवीमिष्टि भक्त्या परमया युनः ॥१५५ वैष्गवत्रं कुठं सर्वं लभेत स न संशयः। अत ऊर्ध्व प्रवस्यामि आनन्तीमधनाशनीम् ॥१५६ पौर्णमाम्यां प्रकुर्वीत पूर्वोक्तविधिना नृप !। आदानं पूत्रवरक्रत्वा अङ्करार्पगर्पूरकम् ॥१५७ उपोष्याभ्यर्चयेद्वमनन्तं पुरुगोत्तमम्। सहस्रशीपं विश्वेशं सहस्रकरखोचनम् ॥१५८ सहस्र(किरणं)चरणं श्रीशं सदैवाश्रितवरसङ्म्। पौरुपेण विधानेन पूजयेत् पुरुपोत्तमम्।।१५६ गत्धगुष्रीश्च घूपेश्च द्रोपेश्चापि निवेदनैः। प्जयित्वा जगन्नाथं पश्चादावरणं यजेत् ॥१६० पार्श्वयोश्च श्रियं भूमि नीलाश्व शुभलोचनाम्। दिरण्यवर्णा हरिणी जातवेरा हिरण्मयी ॥१६१ चन्द्रा सूर्या च दुर्धर्पा गन्धद्वारा महेश्वरी। निखटपुष्टा सहस्राक्षी महालक्ष्मीः सनातनी ॥१६२ पूजनीया समम्ताश्च गन्धपुष्पाक्षतादिभिः। संकर्षणस्तथाऽनन्तः शेषो भूधर एव च ॥१६३ लक्ष्मणो नागराजश्च बलभद्गो हलायुधः। तच्छक्तयः पूजनीयाः प्रागादिषु यथाक्रमम् ॥१६४ रेवती वारुणी कान्तिरंश्वर्या च इला तथा। भद्रा सुमङ्गला गौरी शक्तयः परिकीर्तिताः ॥१६४ अस्तान् लोकेश्वरान् पूज्य पश्चाद्वोमं ममाचरेत्। प्रशास्त मण्डलं पप्टं प्रत्यचं जुद्दयाश्वरुम् ॥१६६ पुष्पाणि च तथा दस्वा कुर्ग्याद्वभृथादिकम्। अशक्तश्चेन्नृस्केन शतमष्टीत्तरं चम्म ॥१६० इष्टु वेष्ट्याः फलं सम्यगाप्नोत्येव न संशयः । आनन्तीयामिमामिष्टि वेकुण्ठपदमा नुयान १६८ न दास्यमीशस्य भवेदाश्य दास्यं नृणामसत्। तत्र कुर्यादिमामिष्टि दाम्यंकफलसिद्धये ॥१६६ अधुना वैनतेयेष्टि वक्ष्यामि नृपसत्तम !। पश्चम्यां भानुवारे वा करिमश्चिच्छुभवासरे ॥१७० उपोष्व पूर्ववत्सर्वं कुर्यादभ्युदयादिकम्। स्नात्वाऽर्चयित्वा देवेशं गन्धपुष्पाक्षतादिभिः।।१७१ छक्ष्म्या सह समासीनं व<sup>े</sup>कुण्ठभवने शुभे। सव मन्त्रमये दिच्ये वाङ्मये परमासने ॥१७२ मन्त्रस्वरे रक्षरेश्व साङ्गेवेदैः समन्वितः। तारेण सह साविज्या संस्तीर्णे शुभवर्षसि ॥१७३ **L**Y

ईश्रर्या च समामीनं सहस्रार्कसमद्गृतिम्। चतुर्भजमुदाराङ्गं कन्द्पशतसन्निभम्। युवानं पद्मपत्राक्षं चक्रशङ्कगदाङ्गिनम् ॥१७४ **६ँष्णञ्या चैव गायज्या पूजयेद्धरिम**ज्ययम् । श्रियं देवी नित्यपुष्टां सुमगा**ष्ट्र** सुलक्षणाम् ॥१७५ ऐरावनी वेदवनीं सुकेशी खसुमङ्गलाम्। अर्चयेत्परिनो देवीः सुरूपा नित्ययौवनाः ॥१७६ ततः समर्चे ताक्ष्य गम्डं विनतासुतम्। सुपर्णभ्च चतुर्दिश्च विदिश्च शक्तयत्तथा ॥१७७ श्रृतिस्मृतीतिहाम'श्र्य पुराणानीति शक्तयः। अस्तादीनीश्वरान पश्चाद्चयेन कुसुमाक्षतैः ॥१७८ ध्षं दीपञ्च नैवेदां ताम्बळञ्च समर्चयेत्। अर्थ हि ते चार्थों त दद्यान्नीराजनं शुभम्।॥१७६ प्रदक्षिणं नमस्कारं कृत्या होमं समाचरेत्। विशा(मि) 'ठेन च संदृष्टं सप्तमं मण्डलं ध्(ह्)नेत् ॥१८० पुष्पाणि च ततो दन्वा कुर्यादवभृथादिकम्। रद'थ)यानादिभङ्गे च वाहनध्रंसने तथा ॥१८१ अवैदि रिक्रयाजुष्टे कुर्यादिष्टिमिमां शुभाम्। अरिष्टं चोपपातेषु शान्स्वर्थमपि वा यजेत् ॥१८२ इप्ट्याऽनया पूजितेशे रोगसर्पाग्निभः शमेत्। दैनतेयसमो भूत्वा भवेदनुचरो हरेः ॥१८३

वैष्वक्सेनीं ततो वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशिनीम्।
उपोष्यंकादशीं ग्रुद्धां पृष्ट्ववत् पूजतेद्धिरम्।।१८४
तद्धिष्णोरितिमन्त्राभ्यामुपचारः समर्चयेत्।
विष्वकसेनच्च सेनेशं सेनान पच चमृपितम्।।१८५
अर्चियन्या चतुर्दिश्च शक्तयश्च विदिश्च च।
त्रयीं सूत्रवर्ती सौस्यां सावित्रीं चाच्येद्द्विजः।।
अस्त्रान (दिगीशान्)दीपांश्च सम्पूज्य होमं पश्चात् समाचरेत्। १८६
कृत्वेश्माधानपर्यन्तमप्रमं मण्डलं यजेत्। ४७७

पायसेनाथ पुत्र्याणि द्वात् प्रयतमःनमः अन्ते चावभृथंप्रिश्व प्रस्नयजनं तथा ॥१८८ ब्राह्मान् भोजयेन्छत्तयः दक्षिणाभिश्च नौपयेन् । अशको यम्तु वेदेन कर्तुमिष्टिश्च वैष्णवः॥१८६ तिः दगोरिति मन्त्राभ्यां सहस्रं जुहुयाच्चरम्। **ह**ःचा पुष्पाञ्चलिञ्चापि सम्यगिष्टि लभेत्रर । १६० व प्यक्सेनी मिमां हत्वा विष्वक्सेनसमा भदित्। प्रभूतधनधान्याह्यमैश्रयं चैव विन्द्ति ॥१६१ यक्षराक्षसभ्तानां तामसानां दिवीकसाम्। अभ्यचेते तद्दोपस्य विशुद्धश्रथमितं यजेत्।।१६२ सौर्शनी प्रवक्ष्यामि सर्व पापप्रणाशिनीम्। ब्यतीप ते वंधृती वा समुपोष्याचियेद्धरिम् ॥१६३ अखण्डिं हत्रपरेवां कोमले स्तृत्रसीदले । अर्चियत्वा हृपीकेशं गन्धपुरपाक्षत दि

पद्मातमर्चनीयाः स्युः श्रीभूनीलादिमातरः। सुरम् न रहस्रारं पवित्रं ब्रह्मण स्पतिम ॥१६५ सहयाक शतोद्यामं लोकद्वारं हिरण्मयम । अन्य गत् क्रमाहिक्षु तथा शक्तीः समर्चे येत् ॥१६६ र्आन धांमनी माया लजा पुष्टिः सरस्वती। হক্ত तैर्जनदाधारा कामधुक् चाष्ट्रशक्तयः ॥१६७ तया नाध्वव लोकशाः पुज्या दिक्ष यथाक्रमात्। अन्यन्य गन्धपुष्पाचेनवेद्यैविविधेरपि ॥१६८ भागांतस्य सुक्तंन ततो नीराजनं हरे:। नवमं म डलं पश्चाद्वोतव्यं चरुणा नृप । ॥१६६ आङ्रोन वा निलीर्वाऽपि बिल्बै वांऽपि सरोक्है:। हुन्या पुरमा**ञ्जलि दस्त्वा कुर्यादवभृथादिकम् ॥२००** व हा गान भोजयेनपश्चाद् गुरुखापि समर्चयेत्। उद्घाद्य वष्णवी कन्या याचित्वा बंदणवी तथा ॥२०१ हुत्या वा वैष्णवेनेव तथीवाऽऽदिस्यभुज्यपि । अन्यलिन्धृतौ चापि कुर्यादिष्टिमिमा द्विजः॥२०२ सीदर्शनन मन्त्रेण महस्रं जुहुयाश्वरम्। पुष्पाणि दत्त्वा साहस्रं सम्यगिष्ट्याः फलं लभेत्।।२०३ अथ भागवतीमिष्टि प्रवक्ष्यामि नृपोत्तम !। इपोप्ये गद्रशी शुद्धां हाद्रश्यां पूर्वबद्धरिम् ॥२०४ अचयित्या विधानेन गन्धपुष्पाक्षसादिभिः। पौरुपण तु सूक्तेन श्रीमदश्राक्षरेण वा ॥२०४

अर्चयेज्ञगतामीशं सर्वाभरणसंयुतम्। ततो भागवतान् सर्वानर्चयेत्परितो द्विजः ॥२०६ पुष्पेंर्वा तुछसीपत्रैः सिछ्छं रक्षतैरपि । प्रह्लादं नारदञ्जेव पुण्डरीकं विभीषणम् ॥२०७ रुषमाङ्कदं तत्मृतश्व हन्मन्तं शिवं भृगुम्। वशि(सि)ष्ठं वामदेवश्व ज्यासं शौनकमेव च ॥२०८ माकण्डेयं चाम्बरीयं दत्ताज्ञेयं पराशरम् । कक्मदारुम्यो कश्यपञ्च हारीतञ्चात्रिमेव च । २०६ भरद्वाजं वलि भीष्म सुद्धवाक्रूरपुष्करान्। गुहं सृतञ्च वाल्मीकं स्वायन्भुवमनुं ध्रुवम् ॥२१० वणश्व रोमशञ्चेव मातंगं शबरी तथा । मनन्द्रनश्च सनकं विधनश्च मनातनम् ।२११ बोटु(ढुं)पञ्चशिखञ्चव गजेन्द्रञ्च जटायुपम् । सुशीळां त्रिजटां गौरीं शुभा सन्ध्यावलि तथा ॥२१२ अनमूयां द्रौपदीश्व यशोदां देवकी तथा। सुभद्राञ्चैव गोपीश्च ग्रुभा नन्द्वजे स्थिताः ॥२१३ नन्दं च वसुदेवश्व दिलीपं दशरशं तथा। कौसल्याञ्चेव जनककन्यामि च वैष्णवान्।।२१४ अर्चयेद्गन्धपुष्पाद्येर्पेदीपेनिवेदनैः। साम्बूळेर्भक्ष्यभाष्ट्रयेश्च दीपैनीराजनैरपि ॥२१४ अहं भुवेति सूक्तेन दशाशीराजनं हरेः। पश्चाद्धंमं प्रकुर्वीत अग्न्याधानादिपूर्ववत् ॥२१६

दशमं मण्डलं सर्व प्रत्यृचं जुहुयाद्धविः। तिलमिश्रेण साज्येन चरुणा गोघृतेन वा ॥२१७ सर्वेश्च वष्णवंः मृक्तेश्चतृभिश्चाष्टोत्तरं शतम्। नामभिश्च चतुर्थ्यन्तं स्तान मर्वान वेष्णवान् यजेन् ॥५१८ पुष्पैरिष्टा चावभृथं प्रस्तेष्टि च कारयेत्। होमं कर्तमशक्तश्रद्धदेन नृपनन्दन । ॥२५६ चतुर्भिवेष्णवमन्त्रीः साहस्र वा पृथक् पृथक् । इसां मत्मायतीमिटि यः कुर्योद्धण्णवात्तमः॥२२० अनन्तगरुडादीनामयमन्यतमा भवेत्। पावमानर्यदा भूग्मिरिज्यते मधुमृदनः ॥२२१ तन्वावमानी मुनिभि प्रोच्यते मधुमुदनः। यदा तु ढादशी झुठा भृगुवासरसंयुता ॥२२२ तस्यामे र प्रकृत्रांत पाद्मामिष्टि द्विजानमः। महाप्रीतिकरं विष्णां सद्योमुक्तिप्रदायकम् ॥२२३ तम्या क्रुतायामिष्टचा तु लक्ष्मीभत्तां जनार्दनः। प्रत्यक्षो हि भवेत्तत्र सर्वकामफलप्रदः ॥२२४ श्रीधरं प्रजयेत्तत्र तन्मन्त्रेणैव वष्मवः। सुवणमण्डपे दिव्ये नानारत्नप्रदीपिते ॥२२४ उद्यारित्यसङ्कारो हिरण्ये पङ्कतं शुभे । लक्ष्माः सह समामीनं कोटिशीताशुसन्निसम्।।२२६ चक्रशङ्खगदापद्मपाणिनं श्रीधरं विभूम् । पीताम्बरधरं विष्णुं वनमालाविराजितम् ॥२२७

अर्चयेज्ञगतामीशं सर्वाभरणभूपितम् । पद्मां पद्मलयां लक्ष्मी कमलां पद्मसम्भवाम ॥२२८ पद्ममाल्यां पद्महस्तां पद्मनाभी सनातनीम्। प्रागादिषु तथा दिश्च पूजयेन कुसुमादिभिः॥२२६ अस्तादीनीश्वरान पुष्टय नमम्कुर्वीत भक्तितः। ततो नीराजनं दुस्वा श्रीसृक्तेन तु वैष्णवः॥२३० पुरतो जुहुयादग्ना पायसं घृतमिश्रितम्। तन्मज्ञेणेव साहम् भूक्ताभ्या सकृदेव हि ॥२३१ हुत्वा मन्त्रेण साहम्यं दद्यान पुरपाणि शार्क्किण । वंष्णवं विप्रमिथुनं पजयेद्भोक्तयेत्तथा ॥२३२ इसां पाद्मी गुनामिष्टि यः कुर्याहेष्णवीत्तमः। प्रभृतधनधान्याह्यो महाश्रियमवाः नुयात् ॥२३३ सर्वान् कामानवापनोति विष्णुहोकं स गन्छति । **लक्ष्म्यायुक्तो जगन्नाथः प्रत्यक्षः समग्रहरिः ॥२३४** द्दाति सकलान् कामानिह लांके परत्र च। पुण्यैः पवित्रदैवत्यंरिज्यतं यत्र वेशवः ॥२३४ तां पविशेष्टिमित्याहुः सर्वपापप्रणाशिनीम्। यत्तं पवित्रमित्यादि भगिभयेत्र यजंदुहिजः ॥२३६ प्रायश्चित्तार्थं सहसा शाःत्यर्थं वा समाचरेत्। एवं विधानमिष्टीनां सम्यगुक्तं मह्पिभिः ॥२३७ वैदिकेनेव विधिना यथाशकत्या समाचरेत्। अवैदिकक्रियाज्ञष्टं प्रयत्नेन विवर्जयेत् ॥२३८

क्षीराब्धौ शेषपर्यक्के बुध्यमाने सनातने। अत्रोत्सवं प्रक्रुवीत पश्वरात्रं निरन्तरम् ॥२३६ नदाश्च पुष्करिण्या वा तीरे रम्यतले शुचौ। मण्डपं तत्र कुर्वीत चतुर्भिस्तोरणैर्युतम् ॥२४० वितानपुरपमालादि पताकाध्वजशोभितम्। अङ्करापंगपूर्वेण यज्ञांदिश्व कल्पयेत् ॥२४१ भृत्विग्भः सार्द्धं माचार्यो दीक्षितो मङ्गलस्वनैः। रथमारोप्य देवेशं छत्रचामरसंयुतम् ॥२४२ पठन्वशाकुनान मन्त्रान् यज्ञशाला प्रवेशयेन् । स्विन्तवाचनपूर्वण कुर्यात्कौतुकबन्धनम् ॥२४३ पूर्णकुम्भान् शम्ययुतान् पालिकाः परितः क्षिपेन् । अभ्यर्च्य गन्धपुष्पाद्यैः पश्चावावरणं यजेन् ॥२४४ वासुदेवमनन्तञ्च मत्यं यज्ञं तथाऽच्युतम्। महेन्द्रं श्रीपति विश्वं पूर्णकुम्भेषु पूजयेत्।।२४४ पालिकाः सिहगीशाश्च दीपिकाश्वथ हेतयः। तोरणेषु च चण्हाद्याः पूजनीया यथाक्रमम् ॥२४६ वैद्यारच दक्षिणे भागे कुण्डं कुर्यात्सलक्ष्णम् । निक्षिप्याप्ति विधानन इध्माधानान्त्रमाचरेत् ॥२४७ आचार्योपामाग्नी वा लौकिके वा नृपोत्तम !। आधानं पूर्ववन् इत्वा पश्चात्कर्म समाचरेन् ॥२४८ प्रातः स्नात्वा विधानेन पूजयित्वा सनातनम्। प्रत्युचं पावमानीभिर्ज्हयात्पायसं श्रभम् ॥२४६

वेष्णवेरनवाकेश्च मन्त्रेः शक्या पृथक् पृथक् । चतुर्भिर्ठ्यापकेश्चान्यं प्रत्येकं जुहुयादु घृतम् ॥२५० वैकुण्ठं पार्वदं हुस्वा होमशेषं समाचरेत्। ताभिरेव च पुष्पाणि दद्यात्र जगनाम्पतेः ॥२५१ उदुवोधयित्वा शयने देवदंवं जनार्दनम्। पश्चान सर्वमित्रं कुर्यादृत्सवार्थ द्विजोत्तमः ॥२५२ अथ नावं सुविस्तीणां कृत्वा तस्मिन जले शुभे। पुष्पमण्डपचिह्नादि समास्तीर्णसमन्विताम ॥२५३ सुनारणवितानाह्यां पनाकाश्वजशोभिनाम् । तस्मिन कनकपर्येङ्कं निवेश्य कमलापतिम् ॥२५४ अचयित्वा विधानेन लक्ष्म्या सार्ह्धं मनात्ततम्। पुष्पाञ्जलिशतं तत्र मन्त्ररत्नेन कारयेन ॥२५५ श्रीपौरुपाभ्यां सृक्ताभ्यां दद्यान्युष्पाञ्जलि ततः । परितः शक्तयः पुष्टया स्तथाऽऽवरणदेवताः ॥२५६ दीपैनीराजनं कृत्वा बलि द ात समन्ततः। नौभिः समन्ति द् बहुभि गीतवादित्रसंयुत्तम् ॥२५७ दीपिकाभिरनेकाभि स्तोत्रंगपि मनोरमैः। ष्ट्रावयन्तो भगन्नाथं तत्र तत्र जलाशये ।१५८८ फलैर्भक्षेश्च ताम्युळं कलशैदिधिमिश्रिते । कुङ्कमै: कुमुमैर्लाजेविकिरन्तः परस्परम् ॥२५६ गानैबंदै: पुराणैश्च सेवेत निशि केशवम्। भृत्विजो बारुण म् मूक्तान् जपेयुस्तत्र भक्तितः ।।२६०

जपेश्व भगवनमन्त्रान् शान्तिपाठश्वरेत्तथा। एवं संसेव्य बहुधा रात्रावस्मिन् जलाशये ॥२६१ प्रदेवजेति सूक्तंन यज्ञशालां प्रवेशयेत्। तत्र नीराजनं दस्त्रा कुर्याद्रध्यादिपूजनम् ॥२६२ धतव्रतेनि सूक्तंन तत्र नीराजनं द्विजः ॥२६३ स्नात्वा पूर्ववद्भयर्च्य हृत्वा पुष्पाञ्जलि तथा । आशियोवाचनं कृत्वा भोजयद् ब्राह्मणान् गुभान् ॥२६४ शाययित्वाऽथ देवेशं भुञ्जीयाद्वाग्यतः म्वयम् । एवं प्रतिदिनं कुर्यादृत्सवं पञ्चवासरम् । २६४ अन्ते चावभृथंटि च पुष्पय गञ्च कारयेत्। आचाय मृत्विजां विप्रान् पूजयेह्क्षिणादिभिः ॥२६६ एवं श्लीराव्धियजनं प्रत्यव्दं कारयेन्नृप !। स्वसम्यगर्थेट्रद्धचर्यं भोगाय कमलापतः ॥२६७ वृद्धचर्थमपि राष्ट्रस्य शत्रुणां नाशनाय च। सवधमविवृद्धचथ क्षीराध्धियजनं चरेत्। तत्र दुर्भिक्षरोगाभिपापवाधा न मन्ति हि । २६८ गाव. पूर्णद्रघा निन्यं वहुलम्य फलाधरा । पुष्पिताः फलिता वृक्षा नार्यो भर्तृ परायणाः । २६६ आयुष्मन्तश्च शिशवो जायते भक्तिरच्युते । यः करोति विधानेन यजनं जलशायिनः ॥२७० क्रतुकोटिफलं तत्र प्राप्नोत्येव न संशयः। यस्त्वदं शृणुयान्नित्यं भ्वीराब्धियजनं हरे: ॥२७१

सर्वानु कामानवाप्नोति विष्णुलोकश्च विन्द्ति। पुष्पिते तु रसाले तु तत्राप्युत्सवमात्मनः ॥२७२ त्रिवासरं प्रकुर्वीत दोलानाम महोत्सवम् । उपोषितः संयतात्मा दीक्षितो माधवं हरिम्।।२७३ **छत्रचामरवादिज्ञैः पनाकैः शिविकां शुभाम्** । आरोप्यालङ्कृतं विष्णुं स्वयञ्च समलङ्कृतः ॥२७४ हरिद्रां विकिरन्तो वै गायन्तः परमेश्वरम् । गच्छेयुराद्रुमं प्रातर्नरनारीजनैः सह ॥२७५ तत्राऽऽम्रशृक्षच्छ।य।यां वेशांसम्रजयेद्धरिम् । चृतपुष्पैः सुगन्धोभिमोधवीभिश्च यथिकैः ॥२७६ मरीचिमिश्रं दृध्यन्नं मोद्कञ्च समप्येत्। शष्त्रस्यादीनि भक्ष्याणि पानकः च निवेद्येन् ॥१७७ सकर्पूरञ्च ताम्त्रृलं पूर्गीफलसमन्वितम्। सर्वमावरणं पुज्यं होमं पश्चात्ममाचरेत्।।२७८ कृत्वे भानादिपर्यन्तं विष्णुसूने श्चर्मं यज्ञेत्। माधवेनैव मनुना शर्करासंयुतान् निलान्।।२७६ सहम्नं जुहुयाद्वह्नी भत्तया वैष्णवसत्तमः। वैकुण्ठं पार्वदं हुत्वा होमशेषं समापयेत्।।२८० प्रत्यृचं पावमानीभिदेदात् पुष्पाञ्जिहि हरेः। अथ दोलां शुभाकारां बद्धास्मिन् समल्ड्**कृ**नाम् ॥२८१ वजवैदृर्यमाणिक्यमुक्ताविद्रमभूषिताम्। तस्यां निवेश्य देवेशं छक्ष्म्या साद्धं प्रप्जयेत्।।२८२

गन्धैः पुःपेर्ध्पदीपैः फल्लेर्भक्ष्यैर्निवेदनैः। कुसुमाक्षतदृर्वाप्रतिलसपिर्मधूद्कम् ॥२८३ सर्पपाणि च निश्चिष्य अष्टाङ्गाध्यं निवेद्येत्। पादेषु चतुरो वेदान् मन्त्राण्योक्तंपु चास्तरे ॥२८४ नागराजब्च दोलायां पीठे सर्वम्बरैरपि। व्यजनैवैनतेय च सावित्रीं चामरे तथा ॥२८४ द्विनिशामचेयेहिश्च अध्व त्रह्म वृहस्पतिः। अधस्ताद्यण्डिकां कर्द्रं क्षेत्रपालविनायकौ ॥२८६ विनाने चन्द्रसुर्यो च नक्षत्राणि प्रहास्तथा। वेदाश्च सेतिहासांश्च पुराणं देवता राणा ॥२८५ भूधराः सागराः सर्वे पजनीयाः समन्ततः। एवं सम्पूज्य दोलायां लक्ष्म्या सह जनार्दनम् ॥२८८ दोलयेच तनो दोलां चतुर्वेदैश्चतुर्दिनम्। सुक्तेश्च ब्रह्मणोऽपत्यैः सामगानैः प्रबन्धकैः ॥२८६ नामभिः कीर्तयन् देवमेव मन्दं प्रकोल्बेस्। क्षियं स्वलड्कृताः सर्वा गायन्त्यो विभुमच्युतम्।।२६० चरितं रघुनाथस्य कृष्णस्य चरितं तथा। दोलयेयुर्मृदा भक्तया दोलायां परमेश्वरम्।।२६१ दोलाया दर्शनं विष्णोर्महापातकनाशनम्। भक्तिप्रसादनं नृणां जन्ममृत्युनिकृन्तनम् ॥२६२ देवाः सर्वे विमानस्था दोलायामर्चितं हरिम् ! इर्शयन्ति ततः पुण्यं दोलानामोत्सवं हरेः ॥१८३

भक्तया नीराजनं द्यात् श्रीसृक्तेनेव वैष्णवः । ब्राह्मणान् भोजयेत्परचाहक्षिणाभिश्च तोपयेत् ॥२६४ एवं त्रिवासरं कुर्यादृत्सवं बेप्णबोत्तमः। प्रदासमेवं कुर्वीत तत्तत्काले तु वैष्णवः ॥२६५ श्रीतेनैव च मार्गेण जपहोमपुरःसरम्। उत्मवं वासुरेवस्य यथाशत्तया समाचरेन ॥२६६ यत्र यत्रोत्सवं विष्णोः कर्त्तुमिच्छ्रित वैष्णवः। होमं कुर्यात्तत्र मन्त्रे म्तथाविष्णुप्रकाशकः ॥२६७ अतो देवंतिमुक्तेन तथा विणानुकन च। परोमात्रेति सूक्ताभ्यां पौरुषण च वैष्णवः ॥२६८ नारायणानुवाकेन श्रीसूर्तन।पि बैंप्णवः। प्रत्यृचं जुहुयाद्वह्नी चरुणा पायसेन वा ॥२६६ चतुर्भि वंडणवैर्मन्त्रीः पृथगष्टोत्तरं शतम्। आज्यहोमं प्रकुर्वीत गायज्या विष्णुसंज्ञ्या ॥३०० बैकुण्ठपार्पदं हृत्वा शेपं पूर्ववदाचरेत्। ' अनादिष्टेषु सर्वेषु कुर्यादेवं विधानतः ॥३०१ ब्राह्मणान भोजयेद्विप्रान् सर्वं सम्पूर्णता व्रजेत्। अथवा मन्त्ररत्नेन सहस्रं प्रतिवासरम् ॥३०२ हृत्वा पुष्पाणि दस्वा च शेषं पूर्ववदाचरत्। होमं विना न कतंव्य मुत्सवं परमात्मनः ॥३०३ जपहोमविहीनन्तु न गृह्वाति जनार्द्नः। तस्माच्छौतं प्रबक्ष्यामि विष्णोराराधनं नृप ! ॥३०४

अश्वयुक्कृष्णपक्षे तु सम्यगभ्यदिते रवी । आदर्शान सप्ररात्रन्तु पूजयेत्प्रभुमव्ययम् ॥३०४ स्नात्त्रा नद्यां विधानेन कृतकृत्यः समाहितः। गृहीस्त्रा जलकुम्भन्तु वारुणान प्रवरान ब्रजेन ॥३०६ पश्चत्वमपह्यान् प्रपाण्यभिमः ज्य विनिक्षिपेत्। मौरभेयीं तथा मुद्रां दर्शयित्वा च प्जयेत ॥३०७ त्रिवारं वैष्णोर्मन्त्रीः शङ्को नैवाभिषेचयेत । पूत्रयिस्त्रा विधानेन गन्धपुष्पाक्षतादिभिः॥३०८ अपूपान् पायसं शक्तून् कृसरश्च निवेदयेत्। मन्त्रीरष्टोत्तरशतं दस्या पुष्पाणि चक्रिणः ॥३०६ पश्चाद्वोमं प्रकृवीत साज्येन चरणा ततः। कम्य वा नैतिसूक्तन वैष्णवरिष वैष्णवः ॥३१० हुत्वा तु मन्त्रग्रतेन घृतमत्रोत्तरं शतम्। वेंकुण्डं पार्षद्ं हत्वा वैष्णवान् भोजयेत्ततः ॥३११ सकृद्भाजनसंयुक्तः क्षितिशायी भवेश्निशि। सायाहे ऽपि समभ्यच्य जातीपुष्पैः सुगन्धिभः ॥३१२ बह्मिद्भिदः हैश्च सेवेरन् पुरवासिनः। एवं महोत्सवं कृत्वा धनधान्ययुतो भवेत्।।३१३ तत्तरहालोचितं विष्णोरस्यवं परमात्मनः। द्रव्यहीनोऽपि कुर्शीत पत्रपुष्पैः फलादिभिः ॥३५४ समिद्भिविल्वपत्रैवा होमं कुर्वीत वैष्णवः। स त्तपयेश विप्रांस्तु कोमछैस्तुहसीदछैः ॥३१४

भत्तया वै देवदेवेशः पिनुष्टो भवेद् ध्रुवम्। आस्तिक्यः श्रद्धानश्च वियुक्तमद्मत्सरः ॥३१६ पुजयित्वा जगन्नाथं यावज्जीवमतन्द्रितः। इह भुत्तवा मनोरम्यान भोगान सर्वान यथेष्मितान् ॥३१७ सुखन देहरुतसृज्य जीणेन्वच मिर्वारगः। स्थृत्स्र्सात्मकःव्येमां विहाय प्रकृतिन्द्रुतम् ॥३१८ सारूप्यमीश्वरम्याऽञ्जु गत्वा तु स्वजनः सह । दिव्यं विमानमारुह्य वैकुण्ठं नाम भास्करम् ॥३१६ दिज्याप्तरोगणेयुंको दिन्यभूषगभृपितः। स्तूयमानः सुरगणेर्गायमानश्च किन्नरेः ॥३२० इह्मलोकमनिकम्य गन्वा ब्रह्माण्डमण्डपम्। विष्णुचकेण वं भित्वा सर्वानावरणान् घनान् ॥३२४ अतीत्य बीरजाम ह्यु सर्ववेदस्रवां नदीम्। अभ्युरुगच्छद्विरव्यप्र पुज्यमानः सुरोत्तर्भः ॥३२२ सम्त्राप्य परमं धाम योगिगम्यं सनातनम । यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं हरेः॥३२३ त्तद्विष्णोः परमं धाम सदा पश्यन्ति योगिनः। शीत'शु होटिसङ्काराः सर्वैश्व भवनैर्युतम् ॥३२४ आरूढयौवनंदिं यैः पृंभिः स्त्रीभिश्च सङ्कलम्। सर्वेलक्षणसम्पन्नेदिंग्यभूषणभूषितैः ॥६२४ अक्षरं परमं ब्योम यस्मिन्देवा अधिष्ठिताः। इरावसी घेटमती व्यस्तभनासूयवासिनी ॥३०६

यत्र गावो भूरिशृङ्गाः साऽयोध्या देवपूजिता। अनन्तव्यूहलोबैध तथा तुल्दशुभावदै:॥३२७ सर्ववेदमयं तत्र मण्डपं सुमनोहरम्। सहस्रस्थूणसदिम ध्रव रम्योत्तरे शुभे ॥३२८ तस्मिन् मनोरमे पीठे धर्माचे सूरिभिवृते। महाऽऽसीनं कमलया हृष्ट्रा देवं सनातनम् ॥३२६ स्तुतिभिः पुष्कराभिश्च प्रणम्य च पुनः पुनः । प्रह्पपुलको भृत्वा तेन चाऽऽलिङ्गितः क्रमान् ॥२३० पूजितः सक्लर्भोगैः श्रिया चापि प्रपुजितः । अनन्तविहरोशाद्यं रर्चितः सवदंवतः ॥३३१ तेपामन्यनमो भूत्वा मोदते तत्र देववन् । एपु केपु च लोकेपु निष्ठते कमलापतिः ॥३६२ तेषु तेष्वपि देवस्य नित्यदासो भवत्सदा। दासवत्पुत्रवत्तम्य मित्रवद् बन्धुवन् सदा ॥३३३ अर्नुते सलकान् कामान् सह तेन विपश्चिता । इमान् लोकान् कामभोगः कामम्प्यनुमश्वरन् ॥३३४ सर्वदा दूरविध्वम्तदुःखावेशलवौशकः। गुणानुभवजप्रीत्या कुर्याद्दानमशेषतः ॥३३४ इवमेव परं मोक्षं विदुः परमयोगिनः। काङ्कन्ति परमं दासा मुक्तमेकं महर्षयः ॥३३६ हरदस्यिकपरमां भक्तिमालम्ब्य मानवः। इहैव मुक्तो राजर्पे । सर्वकमनिबन्धनैः ॥३३७

इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टपरमधर्मशास्त्रं नानाविधोत्सवविधानं नाम सप्तमोऽध्यायः । ॥ अष्टमोऽध्यायः॥

अथ विष्णुगूजाविधिवर्णनम्।

हारीत उवाच।

अथ वक्ष्यामि राजेन्द्र ! विष्णुर्जाविधि परम् ॥१ श्रीतं महर्षिभिः प्रोक्तं वशिष्ठाद्यैः पुरातनैः। वैखानसेश्व भृग्वाद्यैः सनकाद्येश्व योगिभिः॥२ बैष्णवै वैदिकं पूर्वैर्यद्यदाचरितं पुरा। तत्ते वक्ष्यामि राजेन्द्र ! महाप्रियतमं हरे: ॥३ त्राह्ये मुहूर्ते उत्थाय सम्यगाचम्य वारिणा । ध्यात्वा हृत्पङ्कजे विष्णुं पूजयेन्मनसैव तु ॥४ तं प्रचैवेति सूक्तेन बोधयेत्कमलापतिम् । बनस्पतेति मूक्तेन तूर्यघोषं निनाद्येत् ॥४ कुर्यात्प्रदक्षिणं विष्णोरतोदेवेत्यनेन तु। तद्विष्णोरिति मन्त्राभ्यान्त्रिः प्रणम्याऽऽचरेत्ततः ॥६ कृतशौचस्तथाऽऽचान्तो दन्तधावनपूर्वकम्। स्नानं कुर्याद्विधानेन धात्रीश्रीतुलसीयुतम् ॥७ नारायणानुवाकेन कृत्वा तत्राधमर्षणम्। कृतकृत्यः शुचिर्भूत्वा तर्पयित्वा च पूर्ववत् ॥८ भृतोभ्वेपुण्ड्देह्झ पवित्रकर एव च। प्रविश्य मन्दिरं विष्णोः संमाजेन्या विशोधयेत् ॥६ œ٤

बास्ते ज्यतेति वै सूक्तं जपन् संमार्जयेद् गृहम्। आगाव इति सक्तेन गोमयेनानुलेपयेन् । आनोभद्रेति स<del>ुत्ते</del>न रङ्गवहिष्ट निक्षिपेत् ॥१० ततः कलशमादाय जप वे शाकुनीर्म्भ चः। गरमा जलाशयं रम्यं निम्मलं ग्रुचि पाण्डुरम् ॥११ इमं मे गङ्गेति भृचा जलं भनयाऽभिमन्त्रयेत्। आपो अस्मानिति भ्रचा कल्हशं क्षालयेद् द्विजः ॥१२ समुद्र इरेष्ठमन्त्रेण गृह्वोयात्प्रयतो जलम् । उतस्मेनं वस्तुभिरिति वस्त्रणाऽऽच्याद्य वैष्णवः ॥१३ प्रसम्राजेति सुक्तं वै जपन् सम्प्रविशंद् गृहम्। धान्योपरि तथा कुम्भं न्यसेइक्षिणतो हरे: ॥१४ इमं मे वरुणेत्यचा मङ्गरु द्रव्यसंयुतम्। अञ्जनित (मित्र)त्वेति सुक्तेन कुर्यान्पु परय स<del>ञ्चयम् ॥१४</del> अर्व्वाञ्चि सुभगे द्वाभ्यां गन्धांश्च पे ग्येत्तथा। वाग्यतः प्रयतो भूत्वा श्रीसूक्तं नेव वंष्णवः। विश्वानि न इति भृचा दोपं दद्यात्सुदीपितम्।।१६ तत्तत्पात्रेषु सिळलं दस्ता गन्धा स्तु निक्षिपेत्। शन्नो देडया च सल्लिं गायत्र्या च बुशांस्तथा ॥१७ आयनेति च पुष्राणि यवोऽसीति मुचाऽक्षतान्। गन्धद्वारेति वे गन्धा नौपध्या तिलसर्षपःम् ॥१८ काण्डात्काण्डंति दूर्वामान् सिह्रण्येति रव्नकम्। हिर्ण्यरूपेति सुचा हिर्ण्यं निक्षिपेश्वया ॥१६

एवं द्रवयाणि निक्षिप्य तुरुस्या च सम्धित्। सवितुश्चेत्वादि ऋचा दद्यादृष्यीदकं हरे: ॥२० श्रियेति पादेति ऋ वा द्यान पादजलं तथा। भद्रन्ते हःतेत्यनेन हस्तप्रक्षास्त्रं चरेत्।।२१ वयः सुपर्वेति ऋ वा सुखसम्माजनं तथा। आपो अस्मानिति ऋधा वक्तगण्डपसेव च ॥२२ हिरण्यद् तंत्यनेन दन्तकाष्ठं निवंद्येत्। वृहस्यते प्रथमेति जिह्वालेखनमेव च ॥२३ आपयित्वा उ भेपजीरिति गण्यमाचरेत्। आपो हि ष्ठा इत्यनेन कुर्यादाचमनीयकम् ॥२४ मूर्धामव इत्यनेन तैलाम्यङ्गं समाचरेत्। मूर्धान दोव इत्यनेन गन्धान् केरोपु लेपयेत्।। तद्भियस्तम्यो केशबन्ते केशान् वं क्षालयेत्पुनः। श्रिये पृश्त(इ)ति श्रा वा तद्वचेंहर्रन।दिकम् ॥२६ आपोयम्बः प्रथममिति स्के नाभ्यङ्गस्चनम् । क्रत्वाद्रः स्नापयेत्सूक्त देंदगवंगन्धवारिणा ॥२७ ततः पश्चामृतैर्गव्यै. स्नापयेन्तत्प्रकाशकैः। आप्यायस्वेत्युचा क्षीरं दधिकाञ्णेति वै दिध ॥२८ घृतमामिश्नेति घृतं मधुवातेति वै मधु। ततं वयं यथा गोभिरित्युचे भ्रुरसं शुभम्।।२६ एभिः पश्चामृतैः स्नाप्य चन्दन 🕶 निवेदयेत् । श्रीसुक्तपुरुषस्काभ्यां पुनः संस्थापयेद्वरिम् ॥३०

वनस्पतेति सुक्तेन कुट्यांद् घोषसमन्वितम्। श्रिये जात इति ऋवा दद्यात्रीराजनं ततः ॥३१ युवा सुवासेति ऋ वा वस्त्रणाङ्गं प्रमार्जयेन्। प्रसेनानेति मन्त्रेण वस्त्रं सम्बेष्टयेत्ततः ॥३२ युवं वस्त्राणीति भृवा उत्तरीयं तथैव च। सवत्राऽ चमनं द्द्याच्छन्नो देवीत्यूचा च तु ॥३३ उपवीतं ततो द्याद् ब्राह्मणानिति वे ऋचा। भ्रतस्य तन्तुवितते दद्यात्कुशपवित्रकम् ॥३४ पश्चादाचमनं दद्याद् भूषणैर्भूययेद्धरिम् । विश्वजित्स्कं न दद्याद् भूपणानि शुभानि वे ॥३४ हिरण्यकेशेनि भूचा केशान् संशोषयेत्तथा। सुपुष्पैः कवरी द्याद्विहिमोतेत्वनेन वै।।३६ कुपायमिन्द्र ते रथ इत्युचा निलकं गुभम्। गन्धञ्च लेपयेद् गात्रे गन्धद्वारेति वै भ्रृचा ॥३७ त्रातारमिन्द्र इत्युचा पुष्पमाला समर्पयेन् । चक्षुषः पितेति भृचा चक्षुषो रक्षनं शुभम् ॥३८ सहस्रशीर्षेति भूचा किरीटं शिरमि क्षिपेत्। भुक्सामाभ्यामिति श्रोत्रे दुण्डले मा करेऽपयेत्।।३६ दमूनमौ अपस इति केयूरादिविभृषणम्। आश्वेते यस्येति भृचा हाराणि विमलानि च ॥४० इस्ताभ्यां दशशासाभ्या मित्यृचा चाङ्कुजीयकम् । अस्य त्रिपूर्णमघुना सूर्यांके विन्यसेच्छ्मे ॥४१

इद्गन्त्वदुत्तर इति कटिसूत्रं सुरोचिषम्। स्विद्धाः विशस्पतिरित्यायुधानि समर्पयेन् ॥४२ योर्नय इन्द्रेति द्द्याच्छत्रं सुविमलं तथा। सोमः पवर्ततेत्यचा चामरं हममुत्तमम् ॥४३ सोमापूषणेत्यूचा तालवृन्तौ सुवर्चसौ । रूपं रूपमिति भृचा द्यादादर्शनं शुभम्।।४४ इन्द्रमेव धीषगंति भूचा ऽऽसने विनिवेशयेत्। इहैवास्तमेति भूचा दद्यात्र कुशविष्टरम् ॥४४ आप्स्वन्तरिति भृचा पादां दद्याच भक्तितः। गौरीमिमाय सुक्तं न अर्घ्यं हस्ते निवेदयेत्।।४६ नतमंहो न दुरितमित्याचमनं समर्पयेत्। पिवासोममित्यनेन मधुपर्कश्व प्राशयेत्।।४७ अप्स्वग्ने सधिष्टवेति पुनराचमनं चरेत्। अर्चन्तस्त्वाहवामहेत्यक्षतेर्र्चयेन्छ्भः ॥४८ तण्डुलाः सहरिद्रास्तु अक्षता इति कीर्तिनाः। विष्णोर्नुकमिति सूक्तेन धूपं दद्यःद् घृतान्वितम्।।४६ भावामितेति स्कंन दीपात्रीराजयेच्हुभान्। इदन्ते पात्रमिति(च)भाजनं विन्यसेच्छुभम् ॥५० तस्मा अरङ्गमामवेति पात्रप्रक्षात्रनं चरत्। अस्मिन् पदे पर(मेतच्छिवांस)मिति गवाज्येनाभिपूर्येत्। पितुं नुस्तोषमिति सुक्तेन द्याद्मादिकं हविः॥५१

तद्तरयानिकमिति भृवा सहिरण्यं घृतं तथा। तस्मिन रायवतय इति दद्यादापोशने घृतम् ॥ १२ त्ततः प्राणाद्याहुतयो होतव्या परमात्मनि । अग्ने विवस्वदुषस इति पश्वभिश्च यथाक्रमम् ॥५३ समुद्रा द्रमाति स्कोन घृतधारा समाचरत्। परोमात्रति सूक्तन भोजयेत्सिश्रयं हरिम् ॥५४ तुभ्यं हिन्वान इत्यनेत वयः सर्वे निवेद्येत्। इन्द्र पीवेत्यनेन दद्यादापोशनं पुनः ॥५५ प्रत आश्विनि पवमानेत्यचा हस्तप्रक्षालनं चरेत्। सरस्वती देवयन्त इति (तिमृभि)र्गण्युषमेव च ॥५६ वृष्टिं दिवीश तद्वारित (द्वाभ्या) दद्यादाचमनं ततः। शिशुं जिज्ञापिनमिति भृवा मुख .स्ती च माजयेत्॥५७ दक्षिणावतामिति ऋचा दद्यात्ताम्बूलमुत्तमम्। स्यादु प्रस्येति सृचः दद्यादाचमनं पुन आउयं गौरिति सूक्त भ्या दद्य त् पुष्पाञ्जलि ततः ॥६८ दीपन्नीराजयेत्पश्चाद् घृतसूरंन वैष्णवः। यत इन्द्रत्यादि पड्भिर्दिश्च रक्षां प्रदापयेन् ॥५६ यहा देवानामिति सू हन उपस्थानवर्ष चरेत्। तद्विष्णोरिति (च)द्वाभ्या प्रणमेश्वेव भक्तितः ॥६० गौरोमिमायेति भृवा दद्यादाचमनन्ततः। सहस्रनामभिः स्तुत्रा पश्चाद्वोमं समन्वरत् ॥६१ प्रातरीपासनं हुत्वा तिसम्मग्नी जनार्दनम् । ध्यात्त्रा संपूज्य जुहुयाद्वेष्णवेः प्रत्युषं हिवः ॥६२

श्रीभृसू काभ्यामपि च हुत्वा घृतयुतं हविः। याभिः सोमो मोर्तेयनेन मातृभ्यां जुर्याद्धविः॥६३ किस्विद्धनमित्या(ति मृचाअ)न्नन्तं जुहु ग्रद्धविः । सुपर्ण विप्रा इति भृचा सुपर्णाय महात्मने ॥६४ चमूप च्ड्रेचन इति च सेनेशायापि ह्यताम्। पवित्रन्त इति द्वाभ्याश्वकःयामिततेजसे ॥६४ स्वाद्यं स इति भृवा हेतिभ्यो जुहु ग्रद्धविः। इन्द्रश्रष्टानितीन्द्राय अग्निमूर्धेति पावकम्।६६ यमाय सोमे त यमन्नेर्सृतं मोपुणे यचा। यचिद्धितेति वरुगं वाय गयाशेति मामतम्। द्रविणोरा ददातु नाद्रविणाद्याशमेव च ॥६७ इयम्बक्तमृ(कमित्यृ)चा रुद्र मानः प्रजां प्रजापतिम्। यज्ञतेत्युचा साध्येभ्यो मरुतो यद्धवेति च ॥६८ योनः सपत्नेति ऋ वा वयुरुद्रभ्य एव च। विश्वेदेवाः स च (वाश्च)तसृभिर्य देवा स ऋचा तथा ॥६६ सर्वभ्यश्चेत्र देवेभ्यो जुहु गदन्नमुत्तमम्। नासत्याभ्यामिति भृता अधिन्छत्दोभ्य एव च ॥७० सोम(मा)पूर्वे(वणे)ति अनुवा सूर्व्याचन्द्रमसोस्तथा। संसमिग्रद(व)सूकं न वैष्णवेभ्यम्तथापुनः ॥७१ तत स्त्रष्टकृतं हुःया भुक्तस्यश्च बल्लि क्षिपेत्। नमो महद्भ्य ऋ(इत्य)चा बिंछ भुत्रि विनिक्षिपेत्॥७२

आचम्य वारिणा पश्चान्मन्त्रयागं समाचरेत । एतच्छ्रीतं नृपश्रेष्ठ ! मुनिभिः सम्प्रकीर्तितम् ॥७३ सम्यगुक्तं मया तेऽच निश्चितं मतमुक्तमम्। एतत्त्रियतमं विष्णो. स्नि(अ)यो नाथस्य सर्वदा ॥७४ श्रीतेनैव हरिं देवमर्चयन्ति मनीषिणः। श्रौतस्मात्तांगमैर्विष्णो स्निविधं पूजनं समृतम् ॥७४ एतच्छीतं तत स्मार्त्तं पौरुषंण च यत् स्मृतम्। मन्त्रीरष्टाक्षराद्येस्तु तद्दिव्यागममुच्यते ॥७६ श्रीतमेव विशिष्टं स्यात्तेषां नृपवरात्तम ।। श्रौतमेव तथा विप्राः प्रकुर्वन्ति जनार्दने ॥७७ यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रिसन्ध्यासु च देशिकाः। यजन्ति केचित्त्रितयन्त्रयो वर्णा द्विजोत्तमाः ॥७८ शुश्रुषा च तथा नामकीर्तनं शृद्गजन्मनः। अपि वा परमेकान्ति बालकृष्णवपुर्रिस् ॥७६ स्त्रीणामप्यर्चनीयः स्यात्स्ववर्णस्याऽऽनुरूपतः। मन्त्ररत्नेन वे पूज्यो हित्वा श्रीतं विधानतः ॥८० एवमभ्यर्चनं विष्णोर्मनिभिः सम्प्रकीर्तितम्। श्रोतस्मार्तागम।काश्च नित्यनेमित्तिकाः क्रियाः ॥८१ प्रायश्चित्तमकृत्यानां दण्डमःयाततायिनाम्। अधुना सम्प्रवक्ष्यामि वृत्तिमैकान्तिलक्षणाम् ॥८२ नारीणामपि कर्तञ्या अहन्यहनि शाश्वतीम्। क्याय पश्चिमे यामे भर्त्तः पूर्वमतन्त्रिताः ॥८३

कृत्वा शौचं विधानेन दन्तधावनमाचरेत। कृत्वाऽथ मङ्गलरनानं धृत्वा गुक्काम्बरं तथा ॥८४ आचम्य धारयेदृष्वंपुण्डुं शुभ्रं मृदैव तु । चन्द्नेनापि कस्तृर्याः बुङ्कमेनापि वारसति ॥८४ जप्ता मन्त्रं गुरुं पश्चाद्भिनन्दा च वैष्णवान् । नमरकुत्वा जगन्नाथं जप्त्वा च शरणागितम् ॥८६ आत्मानं समलड्कृय चिन्तयेन्मधुमृद्नम्। गृहभाण्डादिकं सर्वं वाग्यता नियतेरिद्रयाः ॥८७ संशोधयेत्प्रतिदिनं यज्ञार्थं परमात्मनः। मार्जियत्वा गृहं पश्चाद् गोमयेनानुहिष्य च ॥८८ रङ्गवरूत्यादिभि पश्चाद् लङ्कृत्य समन्वतः। चतुर्विधानां भाण्डानां क्षालनन्तु समाचरेत् ॥८६ पाचकानि बहिष्टानि जलस्याऽऽनयनानि च। स्थापनानि जलार्थ वा चतुर्विध मुदाहृतम्।।६० पृथक् पथगुद्भानि तेषु तेष्वपि विन्यसेत्। नान्योन्यं सङ्करं कुर्याद्राण्डानां सर्वकममु ॥६१ तानि तानि स्पशेत्पाणि प्रक्षाल्यैव पुनः पुनः। सम्यक् प्रक्षाल्य भाण्डानि दाह्येग्रज्ञियेस्तुणैः ॥६२ पुनः प्रक्षाल्य सन्तप्त्वा पश्चात्पचनमाचरेत्। रसभाण्डानि सर्वाणि क्षाल्येदुष्गवारिणा ॥६३ चतुर्भिः पश्वभिध्यांत्वा सुक्सूवौ क्षालयेत्तरा । वहिन निष्कामयीत पाचकानि गृहान्तिकात् ॥६४

ताभिरेव तु दशात् भुष्तीत हि कथवन । दस्या पात्रान्तरे दशास्त्रांखेवा मृष्मयेऽपि वा ॥६४ पुटे पणमये बाऽपि दद्यादत्र तु बैष्गते। स्रवं दः रुपयं कांस्यं कुञ्जीतायोमयं न तु ॥६६ न द्यादारनाञ्चस्य घटं तस्मिन् महावने । आरनालस्य यत् कुम्भन्त्यजेन्मचवटं यथा ॥६७ आरनालङ्कारशाकं करञ्जं तिलपिष्टकम्। लशुनं मूलकं शिमुं छत्रां (त्रं) कोशातकीफउम् । अलाबुश्वान्त्रं शाकश्व करनिर्मथितं दिध ॥६८ बिम्बं बिइज्ब निर्यासं पीछं श्लेप्मातकं फलम्। आरग्वधञ्च निर्गुण्डी कालिङ्गन्नालिकां तथा ॥६६ नालिकेया हियशाकञ्च श्वेतवृन्ताकमेव च। उष्ट्राविमःनुरोक्षोरमवत्सानिर्दशाहगोः ॥१०० एतान्यकामतः म्पष्टा सवासा जलमाविशेत्। मत्या जाष्या वर्त क्योत्मुर्ज जाष्या पतेह्यः ॥१०१ केशानां रञ्जनार्थं वा न स्पृरोदारनालकम् । चन्द्रतं घनसारं वा मकरन्द्रमथापि वा ॥१०२ माषमुद्गादिचर्गं वा तक्रं जाम्बीरमेव वा। तिन्तिड्भ कलायं वा केशरञ्जनमाचरेन ॥१०३ कवं मासात्यजेत्सर्वं मृद्धाण्डं वैष्णवीत्तमः। न त्यजेह्रोहभाण्डानि तापयेष हुताशने ॥१०४

## अथायः ] सभावदुष्यादिद्रवयभाण्डादीनां संगुद्धिवर्णनम् । १२११

दारूणां सन्त्यजेद्वा पि तक्षणं वा समाचरेत। अश्मनामश्मभिष्यात्वा गोवालैघर्षयेत्तथा ॥१८५ मृतके मृतके वाऽपि शुनादिम्पर्शने तथा। स्पर्शने वाउप्यभक्ष्याणां सद्य एव परित्यजेत्। एवं संशोध्य भाण्डानि यज्ञार्थं याचयेद्वविः ॥१०६ सम्प्रोक्ष्याद्भिः शुचौ देशे धान्यं संशोधयेद् वृधः। अवह्न्याच्छ्रभनरं गायन्ति मधुमृदनम् ॥१०७ संशोध्य तण्डुलान् पश्चाद्द्रिः संभालयेत्त्रिभिः। अम्भिष्वारं वस्त्रण शोवयित्वा घटान्तरे ॥१०८ **कुरोनैव प**वित्रेण तण्डुलान निर्वपेच्लभ न् । अन्तर्धाय कुशं तत्र मन्त्रस्त्र मनुःमःन् ॥१०६ पाचयेत्सपवित्रेण वाग्यता नियतेन्द्रयः। उपविश्य शुभे कुण्डे विद्वं प्रज्वालयेत्तत ॥११० अवैष्णवस्य शूद्रम्य पतितम्य तथैव च। पाषण्डस्याप्यशुद्धन्य गृहेष्विम्न विवर्जयेत् ॥११४ सम्प्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वहिं कुशब्लेश्विभिः। यक्रियंभिलं: काप्ठेर्व्यजनेन प्रदीपयेत् ॥११२ सान्तर्धानमुखंनापि धमयित्वा प्रदोपयेत्। पालाशैकां दिरै विल्वैगीशकृत्पिटकंरपि ॥११३ अन्यैवा यित्रयैः काष्ठेत्तृणैवा यित्रयैः शुभैः। वर्जयेन्मचदिग्धानि तथा वैभीतकानि च ॥११४

आरग्वधानि शिप्रणि तथा नैगुण्डिकानि च। नैपानि च कपित्थानि कार्पासैरण्डकानि च ॥११४ अमेध्यानि सकीटानि दौर्गन्धानि तथेव च। असद्वाहानि चैत्यानि काकखट्वासनानि च ॥११६ देवालयानि यौष्यानि तथोपकरणानि च। महिषोष्ट्रखरादीनां कारीपपीटकानि च ॥११७ अन्यानां पाकरोषाणि वर्जयेद्यज्ञकर्म्भणि । प्रदीप्याप्नि ततो ऽऽन्नाद्यं पच्यान्नियतमानसः ॥११८ चिन्तदम् परमात्मानं जपनमन्त्रद्वयं तथा। शुद्धं हृद्यं तथा रूच्यं पश्चाद्भ्यन्तरं शुभम् ॥११६ निषिद्धानि च शाकानि फलमूलानि वर्जयेतु। अतिरूक्ष चातिदुष्टमतिरक्तञ्च वर्जयेत् ॥१२० भावदुष्टं क्रियादुष्टं कालदुष्टं तथैव 🖘 । संसर्गदृष्टमपि च वर्जयेयज्ञकर्म्मणि ॥१२१ रूपतो गन्धतो वाऽपि यश्वाभक्ष्यैः समम्भवेत् । भावदुष्टश्य यत्त्रोक्तं मुनिभिर्धर्म्भपारगैः ॥१२२ आर्नालञ्च मद्यञ्च करनिर्माथितं दिध । इस्तर्त्तऋ लवणं क्षीरं घृतपयांसि च ॥१२३ हस्तेनोद्धृत्य यत्तोयं पीतं वक्तुण बकदा। शब्देन पीतं भुक्तभा गव्यं ताम्रोण संयुतम ॥१२४ क्षीरव्य लवणोत्मिश्रं क्रियादुष्टमिहोदयते। एकादश्यां तु यवाशं यवाशं राहुदर्शने। सूतके सृतके चान्नं शुष्कं पर्यूषितं तथा ॥१२४

ऽध्यायः ो

अनिर्दशाहगोःक्षीरं षष्ठ्यां तैलं तथाऽपि च । नदीष्वसमुद्रगासु सिंहकर्कटयोर्जलम् ॥१२६ निःशोपजलवाप्यादौ यत्प्रविष्टं नवोदकम । नातीतपश्चरात्रं तत्कालदुष्टमिहोच्यते ॥१२७ रोवपापण्ड पतितैर्विकर्मस्थेनिरीश्वरै:। अवैष्णवैदिंजेः शूर्देर्हरिवासरभोक्तृभिः॥१२८ श्वकाकसूकरोष्ट्राचैरुद्दयासृतिकादिभिः। पुंखलीभिश्च नारीभिर्गु पलीपतिभिस्तथा ॥१२६ दृष्टं स्पृष्टं च दत्तं च मुक्तशोषं तथेव च। अभस्याणां च संयुक्तं संसर्ग दुष्ट मुच्यते ॥१३० विम्बं शिमु च कालिङ्गं तिलपिष्टश्व मूलकम्। कोशातकीमलाबुश्व तथा कट्फलमेव च ॥१३१ शा(बाली)लिका ना(रि) लिकेत्यादिजातिदुष्टमिहोच्यते । एवं सर्वाण्यभक्ष्याणि तत्सङ्गान्यपि संत्यजेत् ॥१३२ तथैवाभक्ष्यभोक्तृणां हरिवासरभोजिनाम्। लोकायतिकविप्राणां देवतान्तरसेविनाम्।।१३३ अधैष्णवानामपि च संसर्गं दूरतस्त्यजेत ॥१३४ पकान्नाद्यं यथा पकं वाग्यतो नियतेन्द्रियः। सम्मार्जयेच्छ्भतरं वारिणा वाससैव च ॥१३४ करकैरपिधायाथ चकंजैवाङ्कयेत्ततः। गन्धेन वा हरिद्रेण जलेनाप्यथ वा खिलेत्।।१३६

सुदर्शनं पाञ्चजन्यं भाष्ट्रानां यज्ञयोगिनाम्। कुशोत्तरे शुची देशे विन्यस्य कुशवारिणा ॥१३७ संत्रोक्ष्य मन्त्ररत्नेन वस्त्रणाऽऽच्छाद्येत्ततः। क्षालियत्वाऽथ देवस्य भाजनानि शुभैर्जलैः॥३३८ अभिपूर्वं ततो दद्याङ्गोजयेच विशेपतः। भोजयेदागतान काले सखिसम्बन्धिवान्धवान् ॥१३६ बालान् वृद्धान् भोजयित्वा भर्तारं भोजयेत्ततः । म्बयं हृष्टा ततोऽस्नीयाद्धर्तुर्भृक्तावशोपतम् ॥१४० पशाचिकानां यक्षाणां शक्तानां लिङ्गधारिणाम्। द्वादशीविमुखानां च संलापादि विवजयेत् ॥१४४ शैवदौद्धाकान्दशात्त स्थानानि न दिशेत कचित । वर्जयेत्तत्समीपन्थं जलपुष्पफरादि च ॥१४२ न निरीक्षेत देवानामुरसवादि कदाचन। स्तुति वाऽध्यन्यदेवानां न कुर्यान्ह्णुयान च ॥१४३ कामप्रसङ्गसंलापान् परिहासादि वजेयेत् । अन्यचिह्नाद्धितं वस्तं भूपणासनभाजनम् ॥१४४ वृक्षं पशुं कूपगृ ग़न् भाण्डं चैव विवर्जयेत्। अन्यालये हरि ह्या देवतान्तरसंसदि ॥१४५ नाचयेन्नप्रणमेश्व तीर्थसेवां विवर्जयेत्। अवैष्णवस्य हस्तान्त् दिञ्यदेशादुपागतम् ॥१४६ हरेः प्रसादतीर्थाग्रं यत्नेन परिवर्जयेत्। आकारत्रयसन्पन्नो नवेज्याकम्मणि स्थितः ॥१४७

विष्णोरनन्दशेयत्वं तथैत्रःनन्यसाधनम्। तथैवानन्यभोग्यत्वमाकारत्रयमुष्यते ॥ अर्चनं मन्त्रपठनं ध्यानं होमश्च वन्द्रनम् । स्तुतियोगः समाधिश्च तथा मन्त्रार्थचिन्तनम् ॥१४६ एवं नविधा शोक्ता चंज्या वैष्णवसत्तमैः। प्राप्यस्य ब्रह्मणो रूपं प्राप्यञ्च प्रत्यगात्मनः ॥१५० प्राप्त्युपायं फलब्चैव तथा प्राप्तिविरोधि च। ज्ञातब्यमेतदर्थस्य पञ्चकं मन्त्रवित्तमैः ॥१५१ जगतः करणत्वं च तथा स्वामित्वमेव च। श्रीशत्वं सगुरुत्व 🕶 ब्रह्मणो रूपमुच्यते ॥१४२ देहेन्द्रियादिभ्योज्न्यस्वं नित्यत्वादिगुणीयता । श्रीहरेर्ज्ञस्य धर्मत्वं स्वरूपं प्रत्यगात्मनः ॥१५३ उपायाध्यवसायेन त्यक्तवा कर्मोघमात्मनः। हरेः कृपावलम्बत्वं प्राप्त्युपायमिहोच्यते ॥१५४ सर्वैश्वर्य ५.छं त्यत्तवा शब्दादिविषयानपि। दास्यैकसुखसङ्गित्वं विष्णोः फलमिहोच्यते ॥१५५ तज्जनस्यापराधित्वं शब्दादिष्वनुरक्तता । कृत्यस्य च परित्यागो ह्यकृत्यकरणं तथा ॥१५६ द्वादशीविमुखत्वं च विरोधि स्यात् फलस्य हि। अर्थपश्वकमेतद्धि ज्ञातःयं स्यान्मुमुश्लुभिः ॥१५७ विहितं सक्छं कर्म विष्णोराराधनं परम्। निबोध तन्नपश्रेष्ठ ! भोगार्थं परमात्मनः ॥१४८

ष्ट्र<del>त्या</del>रूयस्य तरोरस्य सुदृढं मूलमु<del>च</del>्यते । त्यागेन चैव धमस्य निषिद्धाचरणेन च ॥१४६ आज्ञातिक्रमणादिज्ञः पतत्येव न संशय: । ज्योतिष्टोमाद्यः सर्वे यज्ञा वेदेषु कीर्तिताः ॥१६० पुण्यव्रताः पुराणोक्ता दाना नैमित्तिकादिषु । विष्णोर्भोगतया सर्वाः वर्तव्या वैष्वणोत्तर्भैः ॥१६१ यस्तूपायतया क्रत्यं नित्यनमित्तिकादिकम्। सन्द्व यं कुरुते त्रिष्णोर्वेष्णवः स उदीरितः ॥१६२ विष्णो रज्ञतया यातु सत्कृत्यं कुरुते बुधः। स एकान्तीति मुनिभिः प्रोच्यते वैष्णवोत्तमः ॥१६३ यस्त भोगतया विष्णोः सत्कृत्यं कुरुते सदा। स भवेत्परमैकान्ती महाभागवतोत्तमः ॥१६४ वर्जनीयम्कत्यन्तु सर्वेषा करणै क्विभिः। अकामतस्तु यस्पाप्तं प्रायश्चित्ताद्विनश्यति ॥१६४ अकृत्यं वैष्णवैः पापबुध्या शास्त्रविरोधितः। एकान्त परमैकान्ति रुच्यभावाच सन्त्यजेत् ॥१६६ श्रुतिम्मृत्युदितं धर्मं यस्त्यजेद्वैष्णवाधमः। स पापण्डीति विज्ञेयः सवलोकेषु गर्हितः ॥१६७ अकृत्यकरणाद्वाऽपि क्रुयस्याकरणाद्दपि । द्वादशीविमुखत्वेन पतत्येव न संशयः ॥१६८ तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सत्कृत्यं सर्वदा चरेत्। आज्ञातिकमणाद्विष्णो मुंकोऽपि विनिषम्यते ॥१६६

समस्तयक्रभोक्तारं कात्वा विष्णुं सनातनम्। देवं पैत्रं तथा यहां कुर्याञ्चतु परित्यजेन ॥१७० त्रिदण्डमवलम्बन्ते यतयो ये महाधियः। तेषामपि हि कर्तत्र्यं सत्कृत्यमितरेषु किम् ॥१७१ ब्रह्म ब्रह्मा ब्राह्मणाश्च त्रितयं ब्राह्ममुच्यते । तसाद् ब्राह्मणविधिना परं ब्रह्माणमर्चयेन् ॥१७२ समस्तयज्ञभोक्तारमज्ञात्वा विष्णुमन्ययम्। वेदोदितं यः कुरुते स लोकायतिकः स्पृतः ॥१७३ यस्त वेहोदितं धर्मन्त्यत्तवा विष्णुं समर्चयेत्। स पाषण्डत्वमापन्नो नरकं प्रतिपद्यते ॥१७४ वेदाः प्राणा भगवतो वासुदेवस्य सवदा। तदुक्तकर्माकुर्वाणः प्राणहर्ता भवेद्धरेः ॥१७४ विष्णोराराधनाद्वदं विना यस्त्रवन्यकर्मणि । प्रयुक्षीत विमृढात्मा वेदहन्ता न संशयः ॥१७६ बत्सं माता लेढि यथा तथा लेढि स मातरम । भूतं विष्णोः प्रियं ज्ञात्वा विष्णुं वेदेन वै यजेत् ॥१९७७ तस्माद्वंदस्य विष्णोश्च संयोगो यस्तु दृश्यते । स एव परमो धर्मो बैंच्णवानां यथा नृप । ॥१७८ कश्चित् पुरा नृपश्रेष्ठ । काश्यपो बाह्मगोत्तमः। शाण्डिल्य इति विरूयातः सर्वशास्त्रविशारदः॥१७६ स तु धर्मप्रसङ्गेन विष्णोराराधनं प्रति । अवैदिकेन बिधिना कृतवान् धर्मसंहिताम् ॥१८०

अवलम्ब्य मतं तस्य केचिदत्र महर्षयः। अवैदिकेन मार्गेण पूजयन्ति सम केशवम् ॥१८१ अशास्त्रविहितं धर्मं सर्वे कुर्वन्ति मानवाः। स्वाहास्वधावषट्कारवर्जितं स्यान्महीतलम् ॥१८२ सत बुद्धो जगन्नाथः शङ्कचक्रगदाधरः। इदमाह मुनिश्रेष्ठं शाण्डिल्यममितौजसम् ॥१८३ हुर्बुद्धे । मामकं धर्म परमं वैदिकं महत् । अवैदिकक्रियाजुर**ं** प्राग्लभ्यान् कृतत्रानसि ॥१८४ यस्माद्वदिकं धमें प्रवर्तयसि मां द्विज !। तस्माद्वैदिकं लोकं निरयं गच्छ दारुणम् ॥१८५ तद्वाक्यादेव देवस्य शाण्डिल्योऽभूद्भयाकुलः। स्तुवन् प्राह जगन्नाथं प्रणिपत्य पुनः पुनः ॥१८६ त्राहि त्राहीहि लोकेश ! मां विभो ! सापराधिनम् । ततः स कृपया विष्णुर्भगवान् भूतभावनः ॥१८७ दित्र्यवर्पशतं विप्र ! भुत्तत्रा नरकयातनाम् । हत्पत्स्यसे भूगोवशे जमदाग्निरितीरितः ॥१८८ सत्राऽऽराध्य पुनमा तु वैदिकेनैव धर्मतः। गच्छ तस्मिन् मुनिश्रेष्ठ ! मम लोकं सुनिर्मलम् ॥१८६ इत्युत्तवा भगवान्विष्णुस्तत्रेवान्तरधीयत। शाण्डिल्यो निरयं प्राप्य पुनकत्पद्य भूतले ॥१६० वैदोक्तविधिना विष्णुमर्चयित्वा सनातनम्। विशुद्धभावात् सम्प्राप्य तद्धाम परमं हरेः ॥१६१

तस्मादवैदिकं धमें दूरतः परिवर्जयेत । वैदिकेनेव विधिना भक्त्या सम्पूजयेद्धरिम् ॥१६२ श्रौतेन विधिना चक्रं धृत्वा वै वाह्मूलयोः। धृतोर्ध्वपुग्डः शुद्धात्मा विधिनैवार्चयेद्धरिम् ॥१६३ कर्मणा मनसा वाचा न प्रमाद्येत सनातनात्। न प्रमाद्यत्परं धर्मात् श्रुतिस्मृत्युक्तगौरवान् ॥१६४ सुशीलन्तु परं धर्मं नारीणां नृपसत्तम ।। शीलभङ्गेन नारीणां यमलोकः सुदारुणः ॥१६४ मृते जीवति वा पत्यौ या नान्यमुपगच्छति । सैव कीर्ति मवाप्नोति मोद्ते रमया सह ॥१६६ पति या नातिचरति मनोवाकायकर्मभिः। सा भर्च लोकमाप्नोति यथैवारुन्धती तथा ॥१६७ आर्ताऽर्जे मुद्रिते हृष्टा प्रोषिते मलिना कृशा । मृते म्रियेत या पत्यौ सा स्त्री ज्ञंया पतिव्रता ॥१६८ या स्त्री मृतं परिष्वज्य दग्धा चेद्वव्यवाहने। सा भव छोकमाप्नोति हरिणा कमला यथा ॥१६६ ब्रह्मजं वा सुरापं वा कृतव्नं वाऽपि मानवम्। यमादाय मृता नारी तं भत्तरिं पुनाति हि ॥२०० साध्वीनामिह नारीणामग्निप्रपतनाहते। नान्यो धर्मोऽस्ति विज्ञेयो मृते भर्तर कुत्रचित् ॥२०१ वैष्णवं पतिमादाय या दुग्धा हव्यवाहने। सा वैष्णवपदं याति यत्र गण्डान्ति योगिनः ॥२०२

मृते भतिरि या नारी भवेद्यदि रजस्वला। चिताम्नि संप्रहे तावत् स्नात्वा तम्मिन् प्रवंशयेत्।।२०३ गभिणी नानुगन्तव्या मृतं भत्तीरमव्यया। ब्रह्मचयवतं दुर्याद्यावज्ञोवमतन्द्रिता ॥२०४ केशरञ्जनताम्त्रुलगन्धपुःपादिसेवनम् । भूषितं रङ्गवस्त्रञ्च कास्यपात्र च भोजनम् ॥२०५ द्विवार भाजन चाक्ष्णो (ञ्चनं वजयत्मदा। स्नात्या शुराम्बरधरा जितकोधा जितेन्द्रिया।।२०६ न कल्क कुहका माध्वी तन्द्र।लस्य विवर्जिता। सुनिर्मला गुमाचारा नित्यं सम्प्रजयेद्वरिम् ॥२०७ क्षितिशाया भवंद्रात्रौ शुचौ देंगं कुशोत्तरे । ध्यानयागपरा नित्यं मता सङ्ग व्यवस्थिता ॥२०८ त्राश्चरणसंयुक्ता यावजीवं समाचरेत्। तावत्तिप्ठेन्निराहारा भाद्यदि रजस्वला ॥२०६ समर्र का सती वाऽपि पाणिपूरान्नभोजनम्। एकवारं समानीयाद्रजमः च परिष्ठुता ॥२१० एवं सुनियताहारा सम्यम्ब्रतपरायणा। भर्त्रा सह ममाप्नोति वकुण्ठपद्मव्ययम् ॥२११ द्ग्धव्या साऽग्निहोत्रेण भर्त्तु पूर्व मृता तु या। स्वांशमर्गिन समादाय भत्ता पूर्ववदाचरेत् ॥२१२ कृत्वा कुशमयीं पत्नीं यावज्ञीवमतन्द्रतः। जुहुयाद्गिनहोत्रं तु पञ्चयज्ञादिकं तथा ॥२१३

१२२१

अथ च प्रव्रजेद्विद्वान् कन्यां वाऽपि समुद्वहेत्। प्रब्रज्यामपि कुर्वीत कर्म वेदोदितं महत् ॥२१४ आत्मन्यर्गिन समारोप्य जुहुय दृत्मवान् सदा। मनमा वा प्रकुर्वीत नित्यनैमित्तिकक्रियाः । २१५ गृहस्थो वा वनस्थो वा यतिर्वारिप भवेद हिजः। अनाश्रमी न तिष्टेत यावजीवं द्विजोत्तमः ॥२१६ वर्णाश्रमेषु सर्वेषां पूजनीयो जनार्दनः। न व्यापकेन मन्त्रेण सर्देव च महीपते ॥२१७ व्यापकानां च सर्वेषां ज्यायानद्राक्षरो मनुः। अष्टाक्षरस्य जन्ना तु साक्षान्नागयणः स्वयम् ॥२६८ सन्यासं च समुद्रश्च मिषश्छनदोऽधि दंदतम्। न (स) दीक्षा विधि न(स)ध्यानं सार्थ मन्त्रमुद हृतम्।।२१६ स्नात्वा शुद्धः प्रसन्नात्मा कृतकृयो जनार्दनम्। मनसाऽप्यचेथित्वा वा जपे म त्रं सदा वुधः ॥२२० दानप्रतिष्रही यागं स्वाध्यायं पितृतपणम्। पितृक्रियाष्टाक्ष्रस्य जन्ना कुर्यादतन्द्रितः ॥२२१ धृतोध्वं पुण्डदेहश्च चक्राङ्कितभूजस्तथा। अष्टाक्षरं जपन्नित्यं पुनाति भुवनत्रयम्।।२२२ जपेद्गोगतया मन्त्रं सततं वैष्णवोत्तमः। न साधनतया जप्यं कर्तव्यं विष्णुतत्परेः ॥२२३ अष्टोत्तरसहस्रं वा शतमष्टोत्तरन्तु वा! त्रिसन्ध्यासु जपेन्मन्त्रं तद्रर्थमनु चिन्तयन् ॥२२४

उपोष्य पूर्वदिवसे नद्यां स्नात्वा विधानतः। आचार्य संश्रयेत् पूर्वं महाभागवतं द्विजः ॥२२४ आचार्या विष्णुमभ्यच्ये पवित्रं चापि पूजयेत्। पुरतो वासुदेवस्य इध्माधानान्तमाचरेत् ॥२२६ प्रजपहरय सूर्कन पवित्रन्तेवतेत्युचा । पवमानस्य आद्यंन ऋग्भिश्चतसृभिः क्रमात् ॥२२७ आज्यं हुत्या ततश्चकं तद्भौ प्रतपेद् गुरुः । चरणं पवित्रमिति यजुषा तचकंणाङ्कयेद्भुजम् ॥२२८ वामां सम्प्रतपेत्पश्चात्ताञ्च जन्येन देशिकः ॥२२६ अग्निर्म यंति यजुषा तद्धोमाग्नौ प्रतप्य वै। ततहरु पाथिवे भू गिभद्ग त्वा पुण्डाणि धारयेत्।।२३० अतो देवेति सूक्तन विष्योर्नुक्रमणेत च। पूजयद्वादशभिवं केशवादीननुक्रमान् ॥२३१ कुरामनियपु संपूर्य जुहुयात्ताभिरेव तु । हुत्व।ऽय चरुणा सम्यक् मृहा शुत्रेण देशिकः ॥२३२ ललाटादिषु चाङ्गेषु भृग्भिम्ताभि क्रमेण वै। नामभि केशवाद्यैश्व सच्छिद्राण्येव धारयेत्।।२३३ श्रिये जात इति ऋवा कुङ्कमङ्केषु धारयेन्। परोमात्रेति सूक्तेन उपस्थाय जनाईनम् ॥२३४ होमरोपं समाप्याथ मृत्र्युद्वापनमाचरेत्। एवं पुण्डकियां कृत्वा नाम द्यात्ततः परम्।।२३६

प्रवः पान्तमिति सूर्कन नाममूर्ति समचयेत्। गवाज्यं प्रत्यचं हुत्वा नाम दद्याश्च देदगव. ॥२३६ अभिप्रियाणीति सूक्तनोपस्थाय जनार्दनम् । प्रदक्षिण नमस्कारी कृत्वा शेषं समाचरेत् ॥२३७ मन्त्रदीक्षा विधानन्तु श्रोतं मुनिभिरोरितम्। नवाहिता भवेहीक्षा न पृथक्तान वक्ष्यते ॥२३८ अदीक्षितो भवेचस्तु मन्त्रं वरणवमुत्तमम्। अर्चनं वाऽपि कुरुते न संमिद्धिमवाष्त्रयान्।।२३६ नादीक्षितः प्रकुर्वीत विष्णोराराधनिकयाम् । श्रीतं वा यदि वा म्मानं हिन्यागममथापि वा ॥२४० तस्मादुत्तप्रकारेण दोक्षितो हरिमचयेन्। पूर्वेन्ह्यपोष्य गुरुगा नद्या स्नात्त्रा वृत्तिकयः ॥२४१ आचार्यः प्जयेिष्ण् गन्धपुष्पाक्षतादिभि । ईशान्यादि चतुदिक्ष संस्थाग्य कलशान शुमान् ॥२४२ तेषु गत्र्यानि निक्षिष्य चतुर्मृतीन् समर्चयेत्। षाराहं नारमिहञ्च वामनं कृणमेव च ॥२४३ सिंहिषगोरिति च द्वाभ्या वाराहं पूजयेत्तत । प्रतिद्विणु इति ऋचा नारसिंह्मनामयम् ॥२४४ न ते विष्णो रित्यनेन वामनं पुजयेनथा। षपट्तेविग्णा इति कृणं संपज्ञयेन द्विज ॥२४५ संपूज्याऽ वरणं सर्वं गन्धपुरपैर्विधानतः। प्रतिष्ठाप्य ततो वहिमिध्माधानान्तमाचरेत्। चतुर्भिवैष्णवैः सूक्तैः पायसं मधुमिश्रितम् ॥२४६

हुत्वाऽऽङ्यं जुह्यात्पश्चाच्छीसृक्तेन समाहितः। अग्निमील इत्यनुवाकेन साविज्या वैष्णवेन 🔫 ॥२४७ सर्वेश्च वैष्णवैर्मन्त्रैः पृथगष्टोत्तरं शतम् । हुत्वा वेदसमाप्तिश्व जुहुयाइशिकोत्तमः ॥२४८ ततो भद्रासने शिष्यमुपविश्याभिषेचयेत्। चतुर्भिर्वेष्णवर्म हो: सूत्तं स्तरम्हशोदकै: ॥२४६ ऋ त्विग्भिन्नां हाणेः शिष्यमभिषिच्याऽथ देशिकः। कीपोनं कटिमृक्तभ्व तथा वस्त्रभ्व धारयेत् ॥२५० **ऊ**र्त्वपुण्डाणि पद्माक्ष तुलसीमालिकेऽपि च । कुशांत्तरे समासीनमाचान्तं विनयान्वितम् ॥२५१ अध्यापयेष्ट्रंप्णवानि सूक्तानि विमलानि च। व्यापकान् वैष्णवान् मन्त्रानन्यांश्चःपि विधानतः ॥२४२ त्तदर्थन्यासमुद्रादि सर्षिश्छन्दोऽधिदैवतम् । तिमिन्निवेश्य सद्गृत्तौ शासयेच्द्रासनाच्ड्रुतेः ॥२५३ शामितो गुरुगा शिष्यः सद्वृत्तौ सत्पथे स्थितः। अच्येत्परमैकान्त्य सिद्धये हरिमव्ययम् ॥२४४ आचार्यात्समनु प्राप्तं विप्रहं सुमनोहरम् । स्टब्ध्वाऽथ विधिना विष्णोः पूजये**त्त**द्नु**इ**या ॥२५५ पूवःहि पूववत्पूष्टयः श्रीतेनेवोपचारकैः। ताभिरेव च हुत्वाऽथ ऋग्भिराज्यं तथाक्रमात् ॥२५६ शय्यासूक्तान्तमाज्येन हुत्वाऽप्ति बैंप्णवोत्तमः। अध्यापयिस्वा तान् मन्त्रान् वैदिकान् वैदिकोत्तमः ॥२६७

पूजाविधानं त्रिविधं तस्मै होमान्तमाविशेत्। स्नानतर्पणहोमार्चा जप्याद्या विविधाः क्रियाः ॥२४८ वैशिष्येण गुरोर्ज्ञान्वा शक्त्या सर्वं समाचरेत्। परमापद्गतो वाऽपि न भुङ्जीत हरेदिने ॥२५६ न तिर्यग्धारयेत्पुग्डमान्यं देवं प्रपूजयेत्। वैष्णवः पुत्रपो यस्तु शिव ब्रह्मादिदैवनान् ॥२६० प्रणमेतः चयेद्वाऽपि विष्ठायां जायते क्रिमिः। रजस्तमोऽभिभूतानां देवतानां निरीक्षणात् ॥२६१ पूजनाद्वनद्दनाद्वाऽपि वैष्णवो यात्यधोगतिम् । शुद्धसत्वमयो विग्णु पूजनीयो जगत्पतिः॥२६२ अनर्चनीया सदाद्याः विष्णोरावरणं विना । यस्तु स्वात्मेश्वरं विष्णुमतीत्यान्यं यजेत हि ॥२६३ स्वात्मेश्वराय हरये च्यवते नात्रसंशयः। यज्ञाध्ययनकाले तु नमस्यानि वपट्कृता ॥२६४ तानि वे यज्ञियान्यत्र यज्ञो वै विष्णुरव्ययः । तस्यैवाऽवर्णं प्रोक्तं यज्ञाध्ययनकमंसु ॥२६४ स्तुवन्ति वेदास्तस्यात्र गुणरूपविभूतयः। तस्मादावरणं हित्वा ये यजन्ति परान् सुरान् ॥२६६ ते यान्ति निरयं घोरं कल्पकोटिशतानि वै। रुद्रः काली गगेशश्च कूष्माण्डा भैरवादयः ॥२६७ मद्यमांसाशिनश्चान्ये तामसाः परिकीर्तिताः। श्चद्वानामपि देवानां या स्वतन्त्राऽर्घनक्रिया ॥२६८

सा दुर्गति नयत्येव वैष्णवं वीतकल्मषम् । अर्चियत्वा जगन्नाथं वेष्णवः पुरुषोत्तमम्।।२६६ तदावरणरूपेण यजेंदव न् सम तत । अन्यथा नरकं याति यावदाभृत नेष्ठवम् ॥२७० वासुदेवं जगन्नाथमर्चियत्वेव मानवः। प्राप्नोति महदैश्वर्यं ब्रह्मेन्द्रत्वादिकं क्षणात् ॥२७१ मनसाऽपि जलेनापि जगन्नाथं जनादनम् । सम्प्राप्नोत्यमलां सिद्धिं जगत्सर्व समश्चितम् ॥२७२ हृपोकेशं त्रयीनाथं लक्ष्मीशं सर्वदं हरिम्। तं विना पुण्डरीकाक्षं कोऽर्चयेदितरान् सुरान् ॥२७३ नारायणं परित्यज्य योज्न्यं देवमुपासते। स्वपति नृपति हित्वा यथा स्त्री पुरुपाधमम् ॥२७४ विष्णोर्निवेदिनं हत्र्यं देवेम्यो जुडुयात्त्या । पितृभ्यश्चेत्र तद्द्यात्मर्वमानन्त्यमरनुते ॥२७४ निर्माल्यमितरेपां तु यद्त्राद्यं दिवौकसाम्। उपभुत्य नरो याति ब्रह्महत्यां न संशयः ॥२७६ नैवेद्य भोजनं विष्णो स्तत्पादाम्बु निपंवणम्। तुलसी खादनं नृणां पापिनामपिमुक्तिदम् ॥२०७ एकाद्श्युपवासश्च शङ्कचक्राद्विवारणम्। तुलस्या पूजनं विष्णो ह्यतयं वैष्णवं स्मृतम् ॥२७८ अवैष्णवः स्याद्यो विप्रो बहुशास्त्रश्रुतोऽपि वा। सजीवन्नेव चण्डालो मृतः श्वानोऽभिजायते ॥२७६

कतुसाहस्त्रिणं वाऽपि लोके विप्रमवेष्णवम् । चण्डालमिव नेक्षेत वर्जयेत्सवकमंस् ॥२८० भगवद्गक्तिदोप्तानिद्ग्यदुर्जातिकल्मपः। चण्डालोऽपि वुधः श्लाच्यो न तु पून्यो हावैज्यवः ॥२८१ शङ्कचक्रोध्वेपुण्डादिरहिनं ब्राह्मणाधमम्। पूजियदयति यः श्राद्धे सर्वकर्मास्य निष्फलम् ॥२८२ तिर्यक्रुण्डधरं विष्रं यः श्राद्धं भोजयिष्यति । पितरस्तस्य यान्त्येव कालसृत्रं सुद रूगम् ॥२८३ कर्ष्वपुण्ड्धरं विप्रं चक्र ड्वितभुजं तथा। पुजयिष्यति यः श्राद्धं गया श्राद्धायुतं रुभेन्।।२८४ शङ्कचक्रोर्ध्वपुग्ड्राद्यंरित्वतं वेष्गवं द्विजम्। भक्तया सम्पूजयेद्यस्तु दैवे पित्र्यं च कर्मणि ॥२८५ कल्पकोटिसहस्राणि कल्पकोटिशतानि च। यास्यित पितरतस्य विष्मुलोकं सुनिर्मलम् ॥२८६ ऊर्वपुण्ड्धरं विप्रं तप्तचक ह्नितांसकम्। श्राद्धे सम्पूजयेद्यस्तु गयाश्राद्धायुतं लभेत् ॥२८७ त्तत्रचक्रेण विधिना बाहुमूलेन लाञ्छितः। पुनाति सकलं होकं नारायण इवाघभित्।।२८८ अविद्यो वा सविद्यो वा शङ्ख्यकोध्वं उण्डधृत्। ब्राह्मणः सर्वलोकेपु पूज्यमानो हरिर्यथा ॥२८६ दुराशी वा दुराचारी शङ्कचकोर्ध्वपुग्ड्धृत्। नृणां हन्ति समस्ताघं तमः सूर्योदये यथा ॥२६०

चकाङ्कितस्य विप्रस्य पादप्रक्षालितं जलम्। पुनाति सकलं लोकं यथा त्रिपथगानदी ॥२६१ तिस्रः कोट्यर्द्ध कोटो च तीर्थानि भुवनत्रये। चक्राङ्कितम्य विप्रस्य पादे तिष्ठन्त्यसंशयः ॥२६२ चक्राङ्कितम्य विप्रस्य पाद्प्रक्षालितं जलम्। पीत्वा पातकसाहस्रोर्मुच्यन्ते नात्र संशयः ॥२६३ श्राद्धे दाने व्रते यज्ञे विवाहे चोपनायने । चक्राङ्कितं विप्रमेव पूजयेदितराम्न तु ॥२६४ विष्णुचक्राङ्किता विप्रो भुझानोऽपि यतस्ततः। न लिप्यते स पापेन तमसैव प्रभाकरः ॥२६४ चकाङ्कित भुजो विप्रः पङ्क्ति मध्ये तु भुझते। पुनाति सकलां पङ्क्ति गङ्गे वोत्तरवाहिनी ॥२६६ चक्राङ्कित भुजं विशं यो भृम्यामभिवादयेत्। ललाटे पांशु संख्यानि विष्णुलोके महीयते ॥२६७ ब्राह्मणः क्षत्त्रियो वैश्यः शूद्रो वा वैष्णवः पुमान्। अर्चियत्वेतरान् देवान् निरयं यान्यसंशयम्।।२६८ विष्गोरावरणं हित्वा पूजयित्वेतरान् सुरान्। वैष्णवः पुरुषो याति कालसूत्रमधोमुखः ॥२६६ महापापी महापापैरन्वितो यदि बैरणवः। मन्वादि धर्मशास्त्रोक्तं प्रायिध्वतं समाचरेत्।।३०० प्रायश्चित्तविशेषं तु पश्चान कुर्वीत वैष्णवः । वयासिकी देखावी च पवित्रीश्व समाचरेत् ॥३०१ ऽन्यायः ।

बष्णवानान्तु विप्राणां पश्चात्पाद् जलं पिबेत्। वृत्ती न परिपूर्णोऽथ कर्मस्वधिकृतो भवेन ॥३०२ मन्त्ररत्नाथविच्छान्त नवेज्यावःर्मसंयुतः। द्वादशी नियतो विप्रः स एव पुरुषोत्तमः ॥३०३ किमत्र बहुनोक्तन सारं वक्ष्यामि ते नृप !। एकाद्रयुपबासश्च शङ्खचक्राद्धारणम् ॥३०४ तदीयानां पूजनश्च वैष्णवं त्रितयं समृतम् पुण्याद्विष्णुद्दिनादन्यन्नोपोप्यं वैष्गवै. सदा ॥३०४ तथा भागवताद्वन्यो नार्चनीयो हि कुत्रचित्। भगवन्तमनुद्दिश्य न दशा न यजेत कचित्।।३०६ नावैष्णवानं भुङ्जीत दद्यान्ना वैष्णवाय च । नार्चयेदितरान देवान्न तिर्यग्धारयेत्तथा ॥३०७ एकादश्यात्र भुञ्जीत वसेन्नावैष्णवैः सह । अष्टाक्षरस्य जप्तारं शङ्खचक्रधरं द्विजः ॥३०८ अवमत्य विमृढात्मा सद्यश्चग्डालतां व्रजेन्। वैज्ञानं ब्राह्मणं गाश्व तुलसी द्वादशीं तथा ॥३०६ अनर्चयित्वा मृहात्मा निरयं दुर्गति द्रजेत्। विष्णोः प्रधानतनवो विप्रा गावश्च वैष्णवाः ॥३१० शक्तया संपूज्य तानेव याति विष्णोः परं पद्म । एकाद्रयुपवासश्च द्वाद्यां विप्रपूजन ॥३११ नित्यमामलककानं पापिनामपि मुक्तिदम्। पक्षे पक्षे हरि दिने चक्राङ्कितभुत्रे नृप ! ॥३१२

संपूज्यमाने विप्रेन्द्रं हरिस्तेषां प्रसीद्ति। अभावे वैष्णवे विप्रे संप्राप्ते हरि वासरे ॥३१३ तद्वत्सम्पूजयेद् गःवं तुलसी वाऽपि वैष्णवः। अग्निहोत्रन्तु जुहुयात्सायं प्रातर्द्धिजोत्तमः ॥३१४ पञ्चयज्ञांश्च कुर्वीत वैष्णवान् विष्णुमर्चयेत्। तदर्पितं वै भुञ्जीत पिबेत्तत्पादवारि वै ॥३१४ एकादश्यां न भुञ्जात पक्षयोरुभयोरपि । पूजये 🔊 ज्यां विप्रं द्वादश्यामपि वैष्णवः ॥३१६ विष्णोः प्रप्ताद तुलसीं तीर्थं वाऽपि द्विजोत्तमः। **उपवासिद्देने वा**ऽपि प्राशये**द्विचारयन् ॥३१७** उपवासिद्ने यम्तु तीर्थं वा तुलसीदलम् ॥३१८ न प्राशये द्विमृढात्मा रौरवं नरकं श्रजेत्। हर्व्यर्पितन्तु यश्चानं तीर्थं वा पितृकर्मणि ॥३१६ दद्यात् पितृणां यद्भक्षयं गयाश्राद्धायुतं स्रभेत्। हरेर्निवेदितं भक्त्या यो दद्याच्छाद्धकर्मणि ॥३२० पितरस्तस्य यान्त्येव तद्विष्णोः परमं पदम् । तीर्थं वा तुलसीपत्रं यो दद्यास्पितृद्वैवतम्।।३२१ आकल्पकोटि पितरः परिष्मा न संशयः। यः श्राद्धकाले मृढात्मा पितृणाश्व दिवोकसाम्।।३२२ न ददाति हरेर्भुक्तं तस्य वै नारकी गतिः। हर्यर्पितन्तु यवामं यव पादोद्कं हरेः ॥३२३

तुलसी वा पितृणाश्व दत्त्वा श्राद्धायुतं लभेत्। सर्व यज्ञमयं विष्णुं मत्वा देवं जनादेनम् । आमृत्त्र्य वेष्णवान् विप्रान् कुर्याच्हाद्धमतन्द्रितः ॥३२४ प्रत्यब्दं पार्वणश्राद्धं कुर्यात्पित्रोम् ते इनि । अन्यथा वैष्णवो याति ब्रह्महस्यां न संशयः ॥३२४ अमायां कृष्णपक्षे च पिःये वाऽभ्यदये तथा। क्यांत् श्राद्धं विधानेन विष्णोराज्ञा मनुम्मरन् ॥३२६ न क़र्यान यो विधानेन पितृयज्ञं नराधमः॥३२७ आज्ञातिक्रमणाद्विष्णोः पतत्येव न संशयः। शङ्खचकः ध्वं पुण्डादिचिह्नेः प्रियतमैर्हरेः ॥३२८ अन्वितान् ब्राह्मणानेव पूजयेत्सवकर्मसु । अश्रद्धिनोऽप्ययज्ञस्य कर्मत्यागिन एव च ॥३२६ वेदस्याप्यनधीतस्य संसर्गं दृरतस्त्यजेत्। पित्रोः श्रःद्व' प्रकुर्वीत नैकादृश्यां द्विजोत्तमः ॥३३० द्वादश्यान्तत्प्रकृवीत नोपवास दिने कचित्। विष्णोर्ज मिदने वाऽपि गुरूणाञ्च मृतेऽहनि ॥३३१ **वै**ष्णवेष्टिं प्रकुर्त्वीत वेदिकं वैष्णवोत्तमः । अगम्य।गमनं हिंसा मभक्ष्याणाञ्च भक्षणम् ॥३३२ असत्य कथनं स्तेयं मनसाऽपि विवर्जयेत्। तप्तचकाङ्कनं विष्णेरेकादश्यामुपोपणम् ॥३३३ धृतोध्वे पुण्डदेहत्वं तन्मत्राणां परिप्रहः। नित्यम मञ्जलानं देवतान्तरवर्जनम्। श्यानं मन्त्रं जपो होमस्तुलस्याः पूजनं हरेः ॥३३४

प्रसादस्तीर सेवा च तदीयानाश्व पूजनम्। **उपायान्तर सन्स्यागस्तथा मन्त्रार्थ चिन्तनम् ॥३३**४ श्रवणं कीर्तनं सेवा सत्कृत्यकरणं तथा। असत्कृत्य परित्यागो विषयान्तरवर्जनम् ॥३३६ दानं दम स्तपः शौच मार्जवं क्षान्तिरेव च। आनृशंस्यं सतां सङ्गः पारमेकान्त्यहेतवः ॥३३७ वैष्ववः परमैकान्ती नेतरो वैष्णवः स्मृतः । नावंष्णवो व्रजेन्मुक्ति बहुशास्त्रश्रुतोऽपि वा ॥३३८ वैष्णवो वर्णवाह्योऽपि याति विष्णोः परं पद्म् । एतत्तं कथितं राजन् पारमैकान्त्यसिद्धिदम् ॥३३६ बेशिष्ट्यं वैद्यावं धर्मशास्त्रं वेदोपष्ट्रंहितम्। विष्वक्सेनाय धात्रे च सम्प्रोक्तं परमात्मना ॥३४० विष्वक्सेनाय सम्प्रोक्तमेतद्विधनसे पुरा। भृगोः प्रोक्तं विघनसा भृगुणा च महर्षिणा ॥३४१ भृगुणा च (वैवस्वत) मनोः प्रोक्तं मनुना च ममेरितम् । मनुश्तु धर्मशास्त्रन्तु सामान्येनोक्तवान् स्वयम् ॥३४२ तदेव हि मया राजन् ! वैशिष्येण तवेरितम् । विशिष्टं परमं धर्मशास्त्रं वैष्णवमुत्तमम् ॥३४३ य इदं शृणुयाद्भक्तया कथयेद्वा समाहितः। पारमैकान्त्य संसिद्धि प्राप्नोत्येव न संशयः ॥३४४ सर्वपापविनिर्मुक्तों याति विष्णोः परं पदम्। यस्त्वदं शृणुयाद्वत्तया नित्यं विष्णोश्च सन्निधी ॥३४४

## ऽध्यायः ] सर्वे**रण**वधर्माभिधानैतच्छाम्बस्यफल्रश्रुतिवर्णनम् । १२३३

अश्वमेधसहस्रस्य फर्छं प्राप्नोत्यसंशयः। हारीतमेतच्छासन्तु परमां धर्म्मसंहिताम् ॥३४६ आ<del>ळोक्</del>य पूजयन् विष्णुं पारमैकान्त्यमस्तुते । एतच्युत्वाम्बरोषातु हारीतोक्ति नृपोत्तमः ॥३४६ ववन्दे पर्या भत्तया तमृषि वैष्यवोत्तमः। त्वमेव परमोधर्म्मस्वमेव परमं तपः ॥३४७ स्वदक्षि युगलं प्राप्य सर्वसिद्धिमवाप्नुयाम्। महामुनिमिति स्तृत्वा राजिषः स महातपाः ॥३४७ प्राप्तवान् परमैकान्त्यं तत्प्रसादारमुसिद्धिदम्। वैशिष्ट्यं पारमैकान्त्य मेतन्छास्नं ममाञ्ययम् ॥३४८ भारद्वाजादयः सर्वे नृपाश्च जनकादयः। योगिनः सनकाद्याश्च नारदाद्याः सुर्पयः ॥३४६ वसि(शि)ष्टागा वैष्णवाश्च विष्वकु सेनादयः सुराः। एतच्छास्नानुसारेण पूजयामासुरच्युतम् ॥३५० परमं वैदिकं शास्त्रमेतद्वैष्णवमुत्तमम्। ज्ञात्वेव परमेकान्ती पूजयेदिष्ममीश्वरम् ॥३४१ इति वृद्धहारीतस्मृतौ विशिष्टधर्मशास्त्रे वृत्यधिकारो नाम अष्टमोऽष्यायः॥

समाप्ताचेयं वृद्धहारीतस्मृतिः।

समाप्तश्वायं धर्मशास्त्रस्य ( स्मृतिसन्दर्भस्य ) द्वितीयोभागः ॐ तत्सद्ब्रह्मार्पणमस्तु ।

#### ॥ श्रीगणेशायनमः॥

# विनम्र निवेदन

ईशा वास्यमिद्ध सर्वं यत्किषा जगत्यां जगत्। तेन त्यक्तेन भुद्धीथाः मा गृधः वस्य स्विद्धनम् ॥

शुक्र यजुर्वेद अध्याय ४० मन्त्र १

ईश्वर का आदेश है कि सृष्टि के सारे प्राणी मेरी ही आत्मा है। ज्ञान के द्वारा प्राणीमात्र की पूर्णक्ष्णेण रक्षा का ध्यान रखते हुए अपना भोग—जो कि प्रकृति द्वारा निर्दिष्ट किया हुआ है—भोगो। (किसी की भी हिंसा मत करो। सभी प्राणी सृष्टि की परिचर्या में पूर्णक्ष्पेण सहायक है)। किसी भी प्राणी की शक्ति (द्ध) को हरण करने की मन मे भावना भी न आने दो इसी में अपना कल्याण है। "अथ त्रिविधदु:खात्यन्तिनृत्तिरत्यन्तः पुरुषार्थः" परमात्मा के आदेश का पालन करने से ही त्रिविध दु:खों की निवृत्ति होगी इसी में मानव जीवन को साथकता एवं सफलता निहित है। "तस्माच्छासं प्रमाणम्"

सत्त्र रजस् और तमो गुण की साम्यावस्था के गुणों का अधिप्रान होने से प्रकृति परमा शक्ति के रूप में और प्रधान पुरुष सदाशिव के रूप में अभिन्यक्त होते हैं; उन्हीं की इच्छानुसार त्रिगुणात्मिका सृष्टि का क्रम बराबर चलता रहता है। इस सृष्टि मे सत्त्व गुण प्रधानता से मानव की; रजोगुण प्रधानता से पशुपक्षी की और तमोगुण प्रधानता से कीट पत्रक्वादि की उत्पत्ति हुई। ये सब मानव के अविभाज्य अक हैं।

अतः प्राणीमात्र की पूर्णरूपेण रक्षा करते हुए अपनी शक्ति (आत्मबल) की वृद्धि करना ही मानवजीवन का परम लक्ष्य है। "कामये दुःखतप्रानां प्राणिनामार्तिनाशनम्"

४, क्वाइव रो, कलकता। आपका सेवक:— मनसुखराय मोर ।

॥ श्रीः ॥

# अथ द्वितीयभागस्य शुद्धा-शुद्धि-पत्रम्

पत्राङ्कम्	पङ्क्तः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६२४	8	द्वह्मण	द्ब्रह्मणे
६२६	6	शक्त्रिपुत्र	शक्तिपुत्र
६२८	8	प्रमथो	प्रथमो
६२८	१६	सामध्य	सामर्थ्यं
६२८	१८	तद्धम	तद्धर्म
<b>हे</b> २ <u>६</u>	Ę	मूर्ख	मूर्षः
<b>६</b> २६	१७	द्त्वा	दस्वा
६३३	8	द्त्वा	दस्वा
६३४	Ę	एकपिण्डारतु	एकपिण्डास्तु
६३४	२३	द्रवीक्	दर्वाक्
६४१	8	परिवित्तेरतु	परिवित्तेस्तु
६४२	१५	प्रक्षालाना	प्रक्षालना
६४३	<b>२</b> १	त <b>त</b>	ततः
६४५	२३	स्ष्ठि	स्तिष्ठे
६४६	ર્	यरतु	यस्तु
र्दे४८	¥	२८	३८

पत्राङ्कम्	प <b>रू</b> क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
<b>६४</b> ६	3	शुष्यति	शुध्यति
६४६	१३	कुर्वन्त्यनुहं	कुर्वन्त्यनुप्रहं
६५०	8	तीथं	तीर्थं
६५०	१४	रतथेव	स्तथैव
<b>६५१</b>	•	ध्वाय:	<b>ध्या</b> यः
६५४	११	रपृष्ट्	स्ट्रष्ट्रा
<b></b> <b>ξ</b> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del> <del></del>	8	स्बदेहादि	स्वदेहादि
६५७	Ę	अनाहिताग्तयो	अनाहिताप्रयो
६५८	१७	निष्कतिः	निष्कृतिः
<b>६</b> ६८	१५	निष्क्वनिर्न	निष्कृतिर्न
६७२	3	क वेत्	कथं भवेत्
६७३	3	मृवा	मृचा
<b>६७३</b>	Ę	<del>धृ</del> य	<b>भृ</b> त्य
६७४	<b>२</b> २	सवाा	सर्वेषा
<b>६</b> ७५	१८	स्वावम्भुवो	स्वायम्भुवो
<b>६७७</b>	3	दानमतेषु	दानमेतेषु
<b>६७७</b>	¥	नान्यदा	नान्यथा
६७८	Ę	जुहुयाद्वविः	जुहुयाद्वविः
६७८	१२	तिष्ठत्यु	तिष्ठत्सु
ද්රහි	6	कल्पान्रान्तरे	कल्पान्तरास्तरे
<b>६८६</b>	38	युत्रस्य	पुत्रस्य

## ( ३ )

पत्राङ्कम्	पङ्क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
<b>६८</b> ६	१४	बा	वा
<b>६</b> ६१	१४	रतथा	स्तथा
<b>ह</b> १	१४	यरतस्यां	यस्तस्यां
<b>ह</b> १	१६	प्रक्षऽऽल्या	प्रक्षाऽऽल्या
<b>६</b> ६५	२	दृ <b>द्</b> ध्व	दृ <b>द्</b> ध्वै
६६५	26	विस्मय	विस्मयः
<b>६</b> ६६	१८	मान्त्रं	मन्त्रं
<b>\$</b> 2 <del>\$</del>	<b>२</b> १	बुघै:	बुधै:
333	ર	रवप्सु	स्वप्सु
333	3	नवाभिनि	नवाभिर्नि
<b>\$</b> 88	१०	•	तं
७०२	٤	वि <b>ड</b> ण	विष्णु
<b>७</b> ०३	१४	मूघनि	मूर्घनि
७०५	26	पितॄनेते	पितॄनेते
७०७	8	२०७	७०७
300	२	पितन्	पितृन्
<b>૭</b> ૦૯	8	पितणां	पि <b>नॄ</b> णां
<b>૭</b> ૦૯	१२	त्रहणः	<b>ब्रह्मण</b> ः
<b>७</b> १ <b>१</b>	6	मानुपम्	मानुषम्
७१२	8	<b>ुंन्नपुंसकं</b>	पुन्नपुंसकं
७१६	•	त्राह्यणा	त्राह्मणा

### (8)

पत्राङ्कम्	प <b>ब्</b> क्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
७२०	१८	गधम <b>त्र</b>	गन्धमन्त्र
७२२	१	पराश	पराशर
७२४	२२	न्यरत्वा	न्यस्त्वा
६२६	२	दशर्मी	दशमीं
ဖ= နိ	¥	ष <b>ञ्चद्</b> शीं	पञ्चदर्शी
७२६	१८	द्विवानत	द्विधानतः
७२६	8	<b>ऽ</b> ध्याय	ऽध्यायः
७३१	8	पाथसा	पयसा
७३३	४	वर्णनम	वर्णनम्
७३३	3	कश्वि	कश्चि
७३३	२१	वंश्देवान्ते	वैश्वदेवान्ते
७३३	२३	कतध्यं	कर्तव्यं
७३३	१५	२०२०६	२०६
७३४	¥	<b>त</b> रमान्नदातुरत्त्व	तम्मान्नदातुरत्व
७३६	२	<b>व्या</b> घियुक्तं	व्याधियुक्तं
७३७	२१	दवलुप	दवलुप्त
<b>७</b> ४२	39	ध्रवम्	ध्रुवम्
७४४	१२	घ्वानं	ध्वानं
<b>७</b> ४६	¥	स्थि ो	स्थितो
৩৪७	38	वाह्यां	वाद्यां
७८४	२०	<b>श्रीष्म</b>	<b>मीष्म</b>

# ( & )

पत्राङ्कम	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	गुद्धपाठः
७५०	२३	प्रकाराय	पकाराय
<b>এ</b> ধ্	१	कारवर्णनम्	करणवर्णनम्
७५१	۶	श्चत्तष्णा	<b>धु</b> त्तृष्णा
७६०	२	भतु	મર્તું
<b>७</b> ६५	१०	त्वग्जिह्ना	त्वग्जिह्वा
<b>૭</b> ફેંટ	٧	दर्शनान	दर्शनान्
<b>3</b> 50	٤	स्रानि	स्नाति।
<b>৩৩</b> १	ঽঽ	तीथ	तीर्थ
७७२	Ę	म्बर्गी	स्वर्गो
૭૭૪	१६	कतव्यं	कर्तर्ज्यं
روو	G	शौच	शौचे
૭૭૬	२०	प्राक्त	प्रोक्त
७८२	२०	<del>कु</del> युः	कुयुः
७८३	२१	बुधाः	र्बुधाः
৩८४	१	षष्ट्रो	षष्ठो
<b>৬</b> ८४	१३	वत्ति	वृत्ति
964	१०	घर्म	धर्म
७८५	<b>२</b> १	दच्छन्ति	दिच्छन्ति
७८७	<b>9</b> 9	वित्रो	विप्रो
330	6	ह्युत्थित	ह्युत्थित
350	१३	फलप्रद्राः	<b>फ</b> लप्रदाः

( & )

		`	
पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठ:	गुद्धपाठः
<b>૭</b> ૮૬	२३	मन्त्रारतेषां	मन्त्रास्तेषां
७६२	8	शूहा <b>म</b>	शूद्रान्न
७६४	Ę	निवपे	निर्वपे
७६६	હ	त्येत	ह्येत
330	3	पितणा	पितॄणां
600	१०	दिवस्याष्ट्रमे	६ दिवसस्याष्ट्रमे
८०२	38	वश्रदेविके	वेश्रदैविके
८०४	११	करणं	करण
८०४	86	सवेद्यदि	सचेद्यदि
८०५	२३	पूर्वाह्र	पूर्वा <u>ले</u>
८०८	२३	हरते	हम्ते
८१०	१८	परिपूर्ण	परिपूर्णं
८१२	8	अन्नपूणम्य	अन्नपूर्णम्य
८१५	१२	अनभ्यच्य	अनभ्यर्च्य
८१६	ŧ	युण्यं	પુખ્યં
८१६	२०	मिपा	मिष
८२१	3	त्रीन्पिण्डाश्च	त्रीन्पिण्डांश्च
८२१	११	संरमृत्य	संस्मृत्य
८२२	8	ोप्तमस	सप्तमो
८२२	२	कुयानि	कुप्यानि
८२४	२३	क्तयु	युक्तः

( 🗷 )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अगुद्धपाठ:	शुद्धपाठः
८२६	२	रन्नैर	रन्नैर्
८३२	११	मेत्तारा	भेत्तारा
८३२	१२	सन्ये	सैन्ये
८३२	१२	परा <del>ङ्</del> गुःव	परा <b>ङ्</b> मुखे
८३३	२२	पितणां	पितृणां
८३८	¥	कतत्र्यो	कर्तव्यो
<b>C87</b>	१५	स्नात्बा	स्नात्वा
୯୪७	१६	शुद्ध <b>-य</b> थ	<b>શુદ્ધ-વ</b> થ
686	8	वामहरतेन	वामहस्तेन
८४६	११	पिबच्छुचिः	<b>पिब</b> ञ्च्छुचि:
८५०	१४	पादमाचरे	पादमाचरेत्
628	3	संशुद्ध <b>-य</b>	संशुद्धेच
८५३	२३	शुद्ध-य	शुद्धेच
C48	<b>२</b> ३	स्पृष्टा	स्प्रद्भा
८५८	२	रत्वनातुरः	स्वनातुरः
648	<b>२</b> २	र्घ सीरिण	धे सीरिणः
८६२	<b>2</b>	<b>कु≂</b> छ:	क्रच्छ्:
८६४	१६	निष्न्नं	निष्पन्नं
८६८	¥	करतु	कस्तु
८६८	१४	युक्तं	र्युक्तं
८६८	२०	गारुड	गारुडे

( )

		( 2 )	
पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
८७१	v	सर्वे:	सर्वै:
८७३	Ę	मपपि	मपि
८७५	46	तस्मि	तस्मिन्
૮७६	3	दानादा	दानाना
<b>८७७</b>	3	कांरयकम्	कांस्यकम्
200	२२	संस्तुति	संन्तुति:
८७८	१३	विवजयेन	विवर्जयेत
666	२०	हेन्रा	हेम्ना
८७६	१५	दुष्कतम्	दुष्कृतम्
८८१	8	हस्तोदक	ह्य गज
<b>CC8</b>	6	दवतेः	देवतः
<b>८८</b> 8	6	रवर्गे	म्बर्गे
<b>668</b>	१७	चतर्द्वाराः	चतुर्द्वाराः
<b>CC8</b>	२०	दृष्ट्व	दृष्ट्रैव
<b>669</b>	÷	क कपरं	कर्पूरं
435	१०	परिक्रप्टा	परिक्थिया
<b>CE</b> ¥	२३	र्घटः	र्घटः
८६६	8	<b>3</b> 5	< <b>₹</b> €
232	११	गृह्वीत	गृह्णीत
33>	Ŀ	<b>घृतार्चः</b>	घृतार्च <u>े</u> :
600	११	कधितं	कथितं

		( 3 )	
पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०३	१४	प्रकतव्य	प्रकर्तव्य
<b>E</b> 08	२२	शुमवृक्षः	<b>શુ</b> મવૃક્ષેઃ
६०२	Ę	મહો	फलो
६०२	१४	यावन्स्ति	यावन्ति
६०२	१५	मूर्ष्नि	मृर्धिन
६०२	१६	वृक्षेदिव	वृक्षंदि्व
६०६	3	विघिना	विधिना
<b>દ</b> ૦ફ	१२	शिनानन्दन	शिवानन्द्न
<b>2</b> 03	१५	शुकं	शुक्रं
303	१६	बुघ्यध्वं	बुष्यध्वं
<b>६</b> १०	१६	भूमिपुत्रंम्य	भूमिपुत्र <del>स</del> ्य
६१२	१७	•	च
६१४	१२	द्यतन्	<b>द्येतन</b> ्
६१४	१८	प्रकोप्ठके	प्रकोष्ठके
६१५	Ę	मुर्धिन	मूर्ष्टिन
६ १५	3	कवचं	कवच
393	१५	सहिण्यान्	सहिरण्यान्
६२२	१८	ब्बिष्टभ्	स्त्रिष्टुभ्
६२२	२२	श्रद्धया	श्रद्धया
६२३	6	निर्दश	<sub>'</sub> निद्श
६२३	१२	पब्चेद्रं	पञ्चेन्द्रं

( %)

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
६२४	१८	पातका	पताका
६२४	२०	यथाक <b>छं</b>	यथाका <b>ष्</b> ठं
१६३	१३	बह्वच:	बह् वृचः
६३३	8	ययर्नु पैः	येयें नु दै:
<b>१</b> इ३	१५	आर्ष	आर्ष
<b>६३</b> ६	ş	ह्यस्यां	ह्यस्या
६३६	११	मरुन्वान्	मरुत्वा <b>न्</b>
<b>६</b> ३६	१६	चात्रोक्तं	चात्रोक्त
3\$3	१५	रथाद्दीनां	रथादीनां
383	२३	सद्व	सदैव
६४१	88	सवं	सर्वे
६४१	१८	प्राज्ञा	प्राज्ञो
६४४	<b>y</b>	द्वपौरुष संयोगो	दंवपौरुषसंयोगे
१४४	२३	गभ	गभँ
६४४	१०	स्वामिः	स्वामि
£85	२०	स्यस्तु	यस्तु
દેશ્કરં	<b>२</b> ३	कार्ति	कीर्ति
६४६	२३	करतस्य	कस्तस्य
६५१	१४	वतेत	वर्तेत
६४२	१४	वर्जयेन्	वर्जायन्
६५३	२०	<b>कृ</b> त	<del>कृत</del> ः

# ( ११ )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अद्यु <b>द्ध</b> पाठः	<b>गुद्धपा</b> ठः
६५७	१३	सवः	सर्वैः
<b>८५७</b>	१७	सस्यक्	सम्यक्
६५७	२३	त्ररूपं	त्रिरूपं
६६८	٤	द्वार्यंते	द्धार्यते
६५८	१८	समरता	समस्ता
६६२	Ę	तुय	तुर्यं
<b>६</b> ई४	१८	वर्जयेन्	वर्जयेत्
<b>१</b> ६५	6	तत्द	तद्
<b>१</b>	११	तदृध्व	तदृर्ध्वं
<b>८</b> है ७	3	त्रविध	त्रैविद्य
८६७	6	ब्रह्म	न्नह्म
६६७	१४	मध्यस्यं	मध्यस्थं
<b>६</b> ६८	११	उपाघि	उपाधि
<b>८</b> ६८	१६	वपुष्पान्	वपुष्मान्
333	8	घूपः	घूप:
१७३	Ę	पुत्रः-	पुत्र
१७३	१६	प्रत् <b>याहर</b> श्च	प्रत्याहारश्च
१७४	१	ऽ <b>ध्या</b> य	ऽध्यायः
१७५	१३	वाह्वो	वाह्नो
દહ્ય	88	तेष	तेषा
୭୭୬	१२	चतुवर्णानां	चतुर्वर्णानां

# ( १२ )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
303	3	मुनीद्राः	मुनीन्द्राः
303	v	मानवको	माणवको
303	१०	चेधनानि	चेत्धनानि
303	१५	तस्म	तस्मा
१८३	6	वहवः	बह्बः
१८३	२२	मदन्तान्थवातेन	मथवातेन दुन्तान्
<b>६८३</b>	8	धम	धर्म
823	8	<b>म्भृ</b> ति	म्मृति <u>ः</u>
8८8	१०	विचक्षण	विचक्षणः
<b>१८</b> ४	१२	पिवं	पिब
६८५	<b>१</b> ३	र्ज्ञात्या	र्ज्ञात्वा
<b>६</b> ८६	Ę	शुचिव	शुचिष
223	8	हारित	हारीत
033	१४	तपयित्वा	तर्पयित्वा
<i>8</i> 83	१७	जनहोंयं	ज <b>नेर्ज्ञयं</b>
833	१०	<b>म्भृ</b> तिः	स्मृतिः
833	१८	विदाम्बर	विदाम्बर
<i>\$33</i>	8	त	तं
<b>88</b> 8	¥	सवषां	सर्वेपां
<i>88</i>	४०	र्पेषां	र्येषा
<b>v33</b>	6	धम्म	धर्म

# ( \$9 )

पत्राहुम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
333	9	सपन्नं	संपन्नं
<b>333</b>	१२	आस्तीक्य	आस्तिक्य
>33	१४	प्ररीक्ष्यार्थे	प्रतीक्ष्यार्थे
333	v	सर्वेश्च	सर्वेश्च
8008	3	तमन्तरा	मनन्तरा
8008	3	विभृया	विभृया
१००२	१३	हुत्वो	हुत्वा
१००३	3	सव	सर्वं
१००३	१८	मृष्वे	मूर्ध्व
१००५	२०	विद्युद्वर्णा	विद्युद्वर्णो
१००६	v	वैध्णबानां	वैष्णवानां
8000	१५	सर्वेष	सर्वेषां
300\$	6	चायेण	चार्येण
3008	१५	जत्वा	जप्त्वा
3008	२०	तमे	तस्मै
3008	२१	घैवतम्	द्वतम्
१०१२	१८	सवषा	सर्वेषा
१०१३	२०	वेङ्कय	कङ्कर्यं
१०१४	१७	लिपा <b>ङ्गं</b>	लिप्ता <b>ङ्ग</b> ं
१०१५	१७	दन्मुखो	<b>दक्</b> मुखो
१०१६	¥	उत्तनं	<b>उत्ता</b> नं

पत्राङ्कम्	पंकिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
<b>१</b> ०१६	¥	प्रा <b>णा</b> यमं	प्राणायामं
१०१६	6	वाश्रये	वाश्ये
१०१६	२०	मटाक्षरं	मष्टाक्षरं
१०१७	२	<b>लौकिकम</b>	लौकिकम्
१०१७	Ę	पापकम्	पातकम्
१०१७	<b>१</b> १	तथेवच	तथैवच
१०१७	<b>१</b> ३	शतवारं	शतवारं
१०१७	१६	चतुर्या	चतुर्था
१०१६	>	मनुप	मनप
3909	Ę	स्तते	स्तर्थे
१०२०	१०	सवदा	सर्वदा
१०२०	१३	मृषिसत्तमेः	मृषिसत्तमै:
१०२१	6	ोक्षते	वेक्षते
१०२१	6	देहिनाम	देहिनाम्
१०२१	१५	सव	सर्वे
१०२१	१८	तस्मातु	तस्मात्तु
१०२२	१८	चतुर्द्वा	चतुर्द्धा
१०२२	२३	विप्णो	विष्णो
१०२३	v	मत्र	मन्त्र
१०२४	११	सङ्करां	सङ्गार्श
१०२६	v	नर	नरः
			· •

		( १५ )	
पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०२८	१७	समत्तं	समस्तं
१०२८	38	के <del>ड</del> ्कर्याधं	केंद्कर्यार्थ
१०२८	२३	निवतन्ते	निवर्तन्ते
१०२६	२	द्वा <b>द्शा</b> ण	द्वादशार्णं
१०२६	१२	ध्र <b>व</b>	ध्रुव
१०३०	<b>१</b> १	विभ्राणं	बिभ्राणं
१०३०	38	स्थाष्व	स्थानेप्व
१०३०	२१	वष्णवं	वैष्णवं
१०३३	१२	चतुभुजं	चतुर्भुजं
१०३६	6	टद्छे	ष्टदले
१०४०	¥	कुणतः	<b>कृ</b> ञ्णतः
१०४०	Ę	<b>कु</b> णेति	<b>कृ</b> ष्णेति
१०४०	3	एवमथं	एवमर्थं
१०४०	११	मणो	मनो
१०४०	39	कुर्गित	कुर्वीत
१०४०	२१	मुख	मुखे
१०४०	२४	भरणनि	भरणानि
१०४१	6	<b>बि</b> राजितम्	विराजितम्
१०४२	१०	গ্রুদ্ব	શુખ્ર
१०४३	२२	शाश्वती	शाश्वती
१०४४	¥	जहुया <b>च</b>	जुहुया

( १६ )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०४५	૨	नहा <b>ऋ</b> षिः	<b>ब्रह्मा</b> र्ष
१०४६	¥	वृत्ताय	वृत्तायत
१०४६	१ ई	लस्मी	<del>लक्ष्मी</del>
१०४६	२१	स्वग	स्वर्ग
१०४६	28	माक्षञ्च	मोक्ष 🕶
१०४७	Ŗ	वर्णनम्	वर्णनम्
१०४७	9	समर्च	समर्थये
१०४७	१३	पुद्मा	पद्मा
१०४७	<b>२३</b>	पड़्क्कार्य	पड़ङ्गाद्यं
१०४८	ર	पाय	<u>पायसं</u>
१०४८	98	जप्रवा	जपवा
१०४६	२	विजितेन्द्रियः	विजितेन्द्रिय
१०५०	१	<b>त्रतीयो</b>	चतुर्थो
१०५०	ą	•	३६२
१०५१	१	समारधन	समाराधन
१०५२	१	<b>रुतीयो</b>	चतुर्थो
१०५२	२	उपविद्यः	उपविष्टः
१०५३	१६	<b>लालाटादिषु</b>	<b>ल्लाटादि</b> षु
१०५४	१६	सध्या	सन्ध्या
१०५७	१२	ूप	घूप
१०५७	२३	तेलेनाईर्त	तेलेनोद्धत
१०५८	<b>२२</b>	सुदन्धा	सुगन्धा

पत्राङ्कप	पंक्तिः	अगुद्धपाठ:	गुद्धपाठः
१०६०	१४	वजये	वर्जये
१०६०	र्व	शिय	<b>হি</b> ।দ্ৰ
१०६२	ર્	दचमनं	दाचमर्न
१०६३	<b>v</b>	सवपां	सर्वेषां
१०६३	G	सर्वेश्च	सर्वेश्च
१०६३	8	वकुण्ठ	बैकुग्ठ
१०६४	3	वश्या	वैश्या
१०६४	¥	वैशया	वैश्या
१०६६	3	ंस्कारां	संस्कारां
१०६८	२	शुद्ध-चथ	શુદ્ધ-ચર્થ
१०६६	¥	सवस्व	सर्वस्व
१०७०	१४	म्बसन्य	म्बसैन्य
१०७१	१३	क्तथाकालं	द्यथाकालं
१०७४	१८	धर्म	धर्म
१०७५	२३	सवस्य	सर्वस्य
१०७६	<b>२</b> १	<b>लोकयतिकः</b>	<b>लोकायतिक</b> ः
१०७७	१७	त्यजेचे	त्यजेचे
३०७६	४६	कौपी '	कौपीनं
१०८०	ર	परित्यजेन्	परित्यजेन्
१०८०	११ -	तुष्ट्यथं	तुष्ट्यर्थं

पत्राङ्कम	पक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
१०८०	११	दुपाकम	दुपाकर्म
१०८१	8	वङ्कटोद्भवम्	वङ्कटोद्भवम्
१०८२	११	विधेयुक्तो	विधेर्युक्तो
१०८२	११	वष्णवः	वेष्णवः
१०८३	Ę	पोक्तं	प्रोक्तं
१०८४	१२	सध्यगन	मध्यगम
१०८४	१६	विष्णुं	विष्णु
१०८४	२०	भ्यच	भ्य <b>न्</b> च्य
१०८५	, 8	कुण्डल	कुण्डल
१०८५	6	यथाविधिः	यथाविधि
१०८५	११	विसजयेन	विसर्जयेन
१०८५	१३	स्वचयेद्	स्वर्चयेद
१०८५	२२	सम्पर्णैः	सम्पूर्णेः
१०८६	१६	वष्णवस्य	वेष्णवस्य
१०८६	88	तिले	ਰਿਲੈ
१०८७	v	<u> </u>	चतुष्ट्यम
१०८७	88	गात	गीत
१०८७	१३	सहः	सह्
१०८८	8	म्नापयेन्त्र	म्नापयेन्मन्त्र
१०८८	१३	पु <b>र</b> पाश्चलि	पुष्पाञ्जलि
3309	१	त्रित्य	<b>न्नि</b> त्य

### ( 38 )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
3008	१	धम	धन
१०८६	२१	पश्च	पश्चा
3508	११	५४	१५४
8080	8	मन्त्रेण	मन्त्रेणै
१०६०	k	सवश्च	सर्वेश्च
१०६०	88	ूक्तं	मूर्त्ते
१०६२	3	द्धिष्यं	द्विष्णुं
१०६२	२०	द्या	र्द् <b>च</b> ा
१०६४	१४	नथ	तथा
१०६५	¥	वेंकूण्ठ	वेंकुण्ठ
१०६५	११	वकुण्ठ	<sup>∴</sup> वे <b>कु</b> •ठ
१०६५	6	विधानत	विधानतः
१०६५	१७	ताम्त्रृत्वे	तःम्यूले
१०६७	१०	मन्त्र्याभ्यां	मन्त्राभ्यां
३३०१	३	सव	सर्वे
११०३	¥	ब्राह्मति	<b>ब्राह्म</b>
११०४	8	चारुगा	चरुणा
११०५	6	मालाद्यं	मालाद्य
११०५	१३	वेष्णयोत्तमः	वैष्णवोत्तमः
११०ई	१५	ब्रे	શુશ્ર
११०७	Ę	र्दांळां	द्वेंखां

#### ( २० )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठ:
११०८	¥	शकर	शर्कर
११०६	२	यजेत्	र्यजेत्
१११०	१०	यवश्च	यवैश्च
<b>११११</b>	<b>y</b>	नवेद्यं	नैवेद्य
"	१३	बकुले:	बंकुलं:
*7	२२	रामायणं	मायणं
१११२	•	पुष्पा	पु <b>ब्</b> पा
१११३	३	र्बिल्वे	र्बिल्व
• •	११	केशवाद्यश्च	केशवाद्येश्च
••	२१	अचयित्वा	अर्बयित्वा
१११७	१५	वशाख्यां	वैशाख्यां
१११८	१३	वस्यंव	स्यैव
११२०	१८	सवश्च	सर्वेश्च
११२१	6	शुभाम्बितः	शुभान्वितः
"	<b>२</b> १	दांलाञ्च	द्शिः
११२२	<b>y</b>	नुचर:	<b>नुचरे</b> ः
"	3	दोळाय	दोलाया
"	38	ैष्णवः	वैष्णवः
1628	<b>ર</b>	सर्वेश्च	सर्वश्च
"	86	श <b>न्</b> कुली	शष्कुलीः
17	२२	पाद्श्च	पादेश्च

## ( २१ )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठ:	शुद्धपाठ:
११२४	२३	<b>कुशु</b> मा	कुसुमा
११२५	१२	वष्णवान्	वंष्णवान्
११२८	१६	यार्च्य	यार्च
११३०	११	नृत्येश्च	नृ त्येश्च
११३१	8	शव	सव
77	ą	मागपु	मार्गेषु
११३३	38	अध्यान्ते	अध्यायान्ते
१२३५	Ę	पञ्चत्प	पञ्चत्व
१ <b>१</b> ३८	११	द्ग्स्वा	द्ग्ध्वा
११३६	Ę	सतिलाक्षत:	सतिलाक्ष्तैः
११४०	१६	स्वग	स्वग
१६४१	१	क्रियात	क्रियात:
११४२	२	ससाचरेन्	समाचरेत्
११४३	8	महातका	महापातका
११४४	१६	मानकूट	मानकूटं
११४५	*	महातका	महापातका
"	38	धन्मस्य	धम्मस्य
१ <b>१</b> ४६	y	परन्ययास्ये	पत्न्यास्ये
११४७	3	रजस्वला	रजस् <b>व</b> लां
**	२०	स्नानच	स्नानाच
११४६	Ę	त	ते

## ( २२ )

	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
पत्राङ्कम्	यासा १६	त त	तै
११४६		पीत्वां	पीत्वा
११५२	<b>૨</b> १	मारे <b>व</b> र्थ	समेष्ट्रत्रर्थं
११५५	२३	स्त्वर्थ	स्त्वर्थं
११५७	१०	_	नारायणबर्लि
११६ै२	१५	नारायणवस्टि	
११६ै३	१	महापपा	महापापा ——
17	२	सव	<b>मव</b> ्र
••	8	सभतृ	सभर्व
••	१२	सन्बन्धा	सम्बन्धा
११ई४	હ	स्नापनं	स्नपनं
17	१६	उध्वन्तु	उध्बेन्तु
••	१६	ब्रह्मकृचं	ब्र <b>ह्मकू</b> चं
<b>१</b> १६५	१०	पञ्चपञ्चः	पश्चगव्यैः
११ई७	४२	अवष्णवेन	अवंद्णवेन
११६८	¥	संस्थापतेद	संस्थापयेद
११७०	¥	वसुदेवी	वासुदेवी
११७२	१३	पापदं	पापेदं
११७४	ą	मिद्रत्वं	<b>मिन्द्र</b> त्वं
११५४	<sup>9</sup> ,5	छन्दांत्ये	छन्दांस्ये
११७५	¥	सव	<b>म</b> र्व
११७७	<b>૨</b> ૧	<b>म</b> वृतं	स <b>ृतं</b>
• •			

### ( २३ )

पत्राङ्क	पंक्तिः	अगुद्धपाठः	शुद्धपाठ
११७८	હ	सम्यगिट्या	सम्यगिष्ट्या
"	१ ६	गध <b>पु</b> पा	गन्धपुष्पा
38.08	१४	शान्त्यर्थं	शान्त्यर्थ
११८०	v	संकर्पणम	संकर्पणम्तु
"	6	प्रद्युम्ना	प्रद्युम्नो
११८१	२०	नामभिस्त	नामभिन्ते
११८२	१७	नथ	मथ
"	38	भगवज्ञम	भगवजन्म
११८३	3	गधपुष्पाद्य	गन्धपुष्पाद्यैः
77	१६	<b>स्</b> तुवा	म्तुत्वा
••	१७	पय्यतं	पय्यन्तं
77	96	मवम्तु	सर्वेम्तु
११८४	२३	नित्यष्टपुष्टा	नित्यपुष्टा
११८५	१२	इप्रू	<b>ਡ</b> ੲੂੰ
**	88	भवेद्यश्य	भवेद्यस्य
11	26	उपोप्य	<b>उपोष्</b> य
"	<b>રુ</b> ગ્	साङ्गर्वेदै:	साङ्गेवदै:
११८६	v	ऐरावती	ग्रावर्ती
"	3	त्ताक्यं	त्ताक्ष्यं
११८७	१२	त्राह्यान्	<b>ब्राह्मणान्</b>
,,	२१	वेधृतौ	वेंघृती

( 28 )

पत्राङ्कप	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
११८८	8	नवेद्यं	नैवेद्य
47	عخ	अचयित्वा	अर्चियत्व
११८६	58	चव	चेव
११६०	6	म्त्त्रे:	र्मन्ही:
••	१३	भृड	भृगु
8 8 E 8	8	महोणैव	मन्त्रोणीव
११६३	88	भगन्नार्थं	जगन्नाथं
१ <b>१</b> ६५	88	च्तपुर्षेः	चृतपुष्पैः
११६७	90	विणो	विष्णो
5385	5	अश्वयुव	अश्वयुक्
**	२३	सन्तपयेच	सन्तर्पयेच
3388	<b>२</b> ३	इरावसी	इरावती
१२००	٤	प्रह्ष	प्रहर्ष
44	१ 🗧	सलकान	सकलान
••	<b>२</b> ३	सवकम	सर्वकर्म
१२०१	8	राजेद्र	राजेन्द्र
१२०२	Ļ	हरते	हस्ते
१२०८	१०	वरात्तम	वरोत्तम
१२०६	ų	वासनि	वाऽसति
"	6	समलड्	समलङ्
"	१५	जलाथ	जलार्थं

# ( २५ )

		( २५ )	
पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्वपाठः	शुद्धपाठः
१२१०	6	पिष्टकम्	पिष्टकम्
१२११	8	दुप्या	दुष्टा
१२१२	<b>y</b>	पोटकानि	पीठकानि
१२१३	v	हिं जी	द्विजो:
१२१५	१	१२१	१२१५
१२१६	3	सत्ऋयं	सत्कृत्यं
"	४६	सव	सर्व
१२१८	३	रम	स्म
77	8	गभिणी	गर्भिणी
11	*	त्रह्यचयवतं	ब्रह्मचर्यव्रतं
17	Ę	ब्रुद्धो	ऋद्धो
"	6	द्विवार	<b>द्विवारं</b>
"	१७	भृगोवशे	भृगोर्वश
,,	१७	जमदाग्नि	जमद्ग्रि
"	१८	पुनमा <b>तु</b>	पुनर्मान्तु
"	२२	पर्ली	पर्झी
१२२२	3	चरणं	चरणं
*)	१०	सम्रत	सम्प्रत
"	१२	पाथिवै	पार्थिवं
22	१४	वे	<u>ः</u> वं
१२२६	8	समततः	समन् <b>त</b> तः

#### ( ३६ )

पत्राङ्कम्	पंक्तिः	अशुद्धपाठः	शुद्धपाठः
**	3	जनाद्नम्	जनार्दनम्
**	१८	निपेवणम	निषवणम
१२२७	१	वष्णव	वंष्णय
••	82	याम्यनि	यास्यन्ति
१२२८	<b>२</b> ३	वयासकी	वयासकी
१२३६	S	वष्णवा	वेष्णवा
••	8	रत्नाथ	रत्नार्थ
••	२१	विप्रपूजन	विप्रपृजनम
१२३१	8	आमृन्त्रय	आमन्त्र्य
••	१७	जमदिन	र्जनमदिने
••	ခုခ	मत्राणा	मन्त्राणां
**	२३	ममलकस्त्रानं	मामलकस्नानं
१२३२	y	पारमे	पारमे
१२३३	१	छाम्बस्य	छा <b>स</b> स्य
१२३३	<b>૨</b>	रमृति	स्मृति
१२३३	<b>=</b> १	सम।प्रश्वायं	समाप्तश्चायं

इति स्मृति सन्द्भस्थ द्वितीयभागस्य शुद्धाशुद्धि पत्रम् ।

#### लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, पुस्तकालय L.B.S. National Academy of Administration, Library

#### <del>मसूरी</del> MUSSOORIE

#### यह पुस्तक निम्नांकित तारीख तक वापिस करनी है। This book is to be returned on the date last stamped

दिनाक	उधारकर्ता की सख्या	दिनाक	उधारकर्ता की सख्या
Date	Borrower's No.	Date	Borrower's No
	-		
			•
			-
1	•	' ·	

SMR V 2 C 1

्रा वर्ग सं.	अवाप्ति सं <b>्</b> ACC. No
लंखक Author	
ग्रीपंक	• •

Sans

26 LIBRARY

31

# National Academy of Administration MUSSOORIE

### AIG-1 ....

- Accession No. 12-5/00

  1. Books are issued for 15 days only but may have to be recalled earlier if urgan-
- tly required.

  2 An over-due charge of 25 Paise per day per volume will be charged.
- 3. Books may be renewed on request, at the discretion of the Librarian.
- Periodicals, Rare and Reference books may not be issued and may be consulted only in the Library.
- Books lost, defaced or injured in any way shall have to be replaced or its double price shall be paid by the borrower.